रतामश्वन्नवतीश्च॥'अन्नवत्यः पितृंस्तुस्तोषमिति॥ पृथ्वीचन्द्रोदये भरद्वाजः-"भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् । पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥" क्षणपाद्यादिदत्त्वा इत्यर्थः ॥ विप्रवमने तत्रैव दक्षः-" निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे भोजने मुखनिःसृते । तदैव होमं कुर्वीत स्वाग्नौ विप्रः समाहितः ॥ प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैर्यावद्वात्रिंशसंख्यया । ब्राह्मणस्तुः ततः कृत्वा घृतप्राशनमाचरेत् ॥ २॥" ऋग्विधाने तु-" इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं सम्पूर्णमेव हि ॥ ". इत्युक्तम् ॥ अग्न्यादिभिरिति लौकिकाग्नि-

'अन्नवतीः' ऋचा पढनी चाहिये, यदि पितरोंके संतोषकी इच्छा करें तो ऐसा करें पृथ्वीचन्द्रोदयमें भरद्वाजका वाक्यहै कि; ब्राह्मणोंके भोजन करतेहुये यदि प्रमादसे अधोवायु निकल जाय तो वह उसी समय पादकृच्छ्र सम्पादन करके और पाद्य अर्घ्य आदि देकर और ब्राह्मणोंका निमंत्रणदे यदि ब्राह्मणको वमन (कै) होजाय तो ऐसे स्थलमें दक्षने कहाहै कि, निमंत्रित ब्राह्मणके मुखसे श्राद्धके विषे यदि वमन होजाय तो उसी समय उस ब्राह्मणको अपनी अग्निमें प्राणआदि पांच वा तीस ऋचाओंसे होमकरना चाहिये फिर वह ब्राह्मण घृतको पान करे ॥ ऋग्विधानमें तो यह लिखाहै कि, यदि श्राद्धमें विघ्न होजाय तो वह श्राद्ध इन्द्रके निमित्त सामसूक्तका जप और अग्निस्थापन आदि कर्म और पुनः श्राद्ध करनेसे सम्पूर्ण होताहै, यहां, अग्न्यादिभिः' इसका यह अर्थहै कि, लौ-

नस्य च किञ्चिदन्यत् । जातस्य च यच्चापि च वर्द्धतो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि ॥ ७ ॥ मातापित्रोर्यन्न कृतं वचो मे यत्स्थावरं जङ्गममावभूव । विश्वस्य तत्प्रहृपितं वचो मे तत्पावमानीभिरहं पुनामि ॥ ८ ॥ गोब्राचस्करत्वात्स्त्रीवधाच्च किल्बिषम् । पापकं च चरणेभ्यस्तत्पाव० ॥ ९ ॥ ब्रह्मवधात्सुरापानात् स्वर्णस्तेयाद्वृषलीगमनमैथुनसंगमात् । गुरोर्दाराधिगमनाच्च तत्पा- वमा० ॥ १० ॥ बालघ्नान्मातृपितृवधाद्भूमितस्करात् सर्ववर्णगमनमैथुनसंगमात् । पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात्सद्यः प्रहरति सर्वदुष्कृतं तत्पावमा० ॥ ११ ॥ क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद्भक्ष्याद्भोज्यात्प्रतिग्रहात् । असंभोजनाच्चापि नृशंसं तत्पावमा० ॥ १२ ॥ दुर्यष्टं दुरधीतं पापं यच्चाज्ञानतो कृतम् । अयाजिताश्चासंयाज्यास्तत्पाव० ॥ १३ ॥ अमंत्रमन्नं यत्किञ्चिद्धूयते च हुताशने । संवत्सरकृतं पापं तत्पा० ॥ १४ ॥ ऋतस्य योनयो मृतस्य धाम विश्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः । तान आपः प्रवहन्तु पापं शुद्धा गच्छामि सुकृतामु लोके तत्पावमा० ॥ १५ ॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीर्याभिर्गच्छति नान्दनम् । पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ १६ ॥ पावमानी० पितृन्देवान् ध्यायेद्यश्च सरस्वतीम् । पितृस्तस्योपवर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १७ ॥ पावमानं परंब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् । ऋषींस्तस्योपतिष्ठेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १८ ॥ पावमानं परंब्रह्म ये पठन्ति मनीषिणः । सप्तजन्मभवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ १९ ॥ दशोत्तराण्यृचाश्चैव पावमानीः शतानि षट् । एतज्जुहृज्जपेन्मन्त्रं घोरमृत्युभयं हरेत् ॥ १ ॥

स्थापनचरुनिर्वापाज्यभागान्ते नामगोत्रपूर्वमग्नौ पितॄनावाह्य संपूज्यान्नत्यागं कृत्वा प्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्जुहुयादित्यर्थः ॥ भोजनेन पुनः श्राद्धेन ॥ तेन होमः पुनः श्राद्धं चेति पक्षद्वयमुक्तम् ॥ सूक्तजपस्तूभयानुगतः ॥ स्मृतिसंग्रहे–' प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदङ्गता । अतो भुक्तिक्रियाहानौ श्राद्धवृत्तिं न मन्वते । पिण्डदानोत्तरं वान्तौ होम एव नावृत्तिः '॥ पिण्डदानात् प्राग्वान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परेद्युः पुनः श्राद्धं कार्यमित्यर्थः ॥ तत्रैव–" श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य अर्चयेच्च हुताशनम् ॥ " तथा– " एक एव यदा विप्रो भोजने छर्दितो यदि । तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ " द्वितीयपक्षे ऋग्विधाने–" भोजनोपक्रमादूर्ध्वं प्रक्रमात् पूर्वतो यदि ॥ श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ ॥ " स्मृतिसंग्रहे–" अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमेत् । पुनः पाकात्तु कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ " पिण्डदानं श्राद्धम् ॥ " अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा । पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि " इति तत्रैवोक्तेः । तथा–" पित्रर्थानां त्रयाणां च पिता च वमते यदि । तद्दिने चोपवासः स्यात्पुनः

किक अग्नि स्थापन और चरुका निर्वाप (पाचन करना) आदि आज्यभाग इनके अन्तमें नामगोत्र पूर्वक अग्निमें पितरोंका आवाहन और फिर भलीभांति पूजन और अन्नको त्याग करके प्राणआदि ऋचाओंको पढकर ३२ बत्तीस आहुति प्रदान करै, इस श्लोकमें भोजनशब्दसे पुनः श्राद्धका ग्रहण करतेहैं, इसमें होम अथवा फिर श्राद्ध करना ये दोनों पक्षहैं, और सोमसूक्तका पढना तो दोनों पक्षोंके तुल्य है ॥ स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, श्राद्धमें पिंडदान प्रधानहै और भोजन उसका अंगहै इससे भोजनकी हानिमें श्राद्धका फिर करना उचित नहीं अर्थात् पिंडदानके उत्तर वमन होजाय तो होमही करै श्राद्ध न करै और यदि पिंडदानसे पहिले वमन होजाय तो उसीदिन व्रतकरके अगलेदिन हवन करै, वहांही लिखाहै कि, श्राद्धकी पंक्तिमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणसे वमन होजाय तो वह लौकिक अग्निका स्थापन करके अग्निका पूजन अर्थात् हवन करै, इसीप्रकार लिखाहै कि, एकही ब्राह्मण यदि भोजनके समय वमन करदे तो उसी समय अग्निको स्थापन करके विधिपूर्वक होम करे, और, दूसरा पक्ष (पुनःश्राद्ध) के विषय ऋग्विधानमें यह लिखाहै कि, भोजनके आरंभसे उत्तर वा पाहिले यदि श्राद्धमें विघ्न होजाय फिर श्राद्ध करै, जप होम ,,ये उसमें पितरोंको तृप्त करनेवाले नहीं ॥ स्मृतिसंग्रहमें लिखाहै कि, पिंडदानसे पहिले भोजन करताहुआ ब्राह्मण यदि वमन करदे तो फिर पाकको बनाकर विधिसे पिंडदान करै कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, पिण्डदानसे पहिले यदि पिताको वमन होजाय तो दूसरीवार पाक (खीरआदि) को बनाकर विधिसे श्राद्ध करै, तैसेही वाक्य है कि, पितृपक्षके ब्राह्मणोंमेंसे यदि पिता वमन करै तो उसदिन

श्राद्धं परेऽहनि ॥ वमने वा विरेके वा तद्दिनं परिवर्जयेत् ॥ " एषु वचनेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ इदं मासिकाब्दिकविषयम् ॥ दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम् ॥ "श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सराहते" इति मरीचिस्मृतेः॥ श्राद्धे पिण्डदानमेव प्रधानमिति कर्काचार्याः ॥ तन्मते दक्षोक्तो होमएव नावृत्तिः ॥ विप्रभोजनमिति मेधातिथिः ॥ भोजनपिण्डदानाग्नौकरणानीति कपर्दिधूर्तस्वामिहेमाद्र्यादयः । श्राद्धस्य होमदानोभयरूपत्वात्संपूर्णदानाभावाद्भोजनस्याङ्गत्वेपि सोमवमते इति युक्तम् ॥ तन्मते पूर्वोक्तो निर्णयः ॥ अन्नत्यागमात्रं प्रधानम् । भोजनं तु प्रतिपत्तिरूपमङ्गमतो वान्तौ तद्धानेपि नावृत्तिरिति गौडमैथिलादयः ॥ नैमित्तिकविधानमिति युक्तं प्रतीमः ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ वैश्वदैविकस्य वमने होम एव । नावृत्तिः । अङ्गत्वात् ॥ तच्च रक्षार्थत्वात् ॥ इष्टिश्राद्धे 'क्रतुदक्षौ' इत्यादिस्मृतेश्च ॥ तत्र जयान् जुहुयादितिवत् । पितामहादेरपि तथा । पितृत्युक्तेरिति केचित् । तस्यापि प्रधानत्वात् पितृवदिति तु युक्तम् । सपिण्डीकरणादौ वार्षिकवत् "सपिण्डीकरणादीनि यानि श्राद्धानि

मतकरके अगलेदिन श्राद्ध करे, इसीप्रकार वचन है कि वमन वा विरेचन होजाय तो उस-दिनको त्यागदे, इन वचनोंमें मूल विचारकरने योग्यहै, यह मासिक और वार्षिक विषय कहा अमावस्या आदिमें वमन होजाय तो आम (कच्चे) अन्नसे उसीसमय श्राद्ध करे कारण कि, मरीचिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, श्राद्धमें विघ्न होनेपर द्विजातियोंको अमावास्या आदिमें कच्चा श्राद्ध मासिक और वार्षिक श्राद्धको छोडकर लिखाहै ॥ श्राद्धमें पिंडदान करनाही प्रधान है यह कर्काचार्यने लिखाहै उनके मतमें दक्षका कहा होमही होताहै, आवृत्ति और ब्राह्मण भोजन नहीं करना यह मेधातिथिका मतहै भोजन पिंडदान अग्नौकरण प्रधानहै, यह कपर्दिधूर्तस्वामी हेमाद्रि आदिका मतहै उनके मतमें पूर्वोक्त निर्णयहै सो उचित नहीं कारण कि, श्राद्धमें जो कुछ दियाजाय वह प्रधानहै, भोजन तो श्राद्धकी सिद्धिरूप अंगहै, इससे वमन होनेपर दान होनेपरभी श्राद्धका फिर करना नहीं होता यह गौडमैथिल आदिका मतहै, श्राद्धको यज्ञदान उभयरूप होनेसे सम्पूर्णके दानका अभावहै इससे भोजनको अंगहोनेपर भी सोमवमनके समान निमित्तसे श्राद्धका विधानही उचित है, यह ही हमको उचित प्रतीत होता है, यहां यह तत्वहै कि, यदि विश्वेदेवाओंका ब्राह्मण वमन करदे तो हवन होताहै श्राद्ध दूसरीवार नहीं होता कारण कि, विश्वेदेवा श्राद्धका रक्षक होनेसे अंगहै ॥ और स्मृतिमें भी लिखा है कि, इष्टि (यज्ञ) श्राद्धमें क्रतु, दक्ष, विश्वेदेवा होते हैं वहां जयोंका होम करे इसके समान पितामहआदि भी उसी प्रकार रक्षकहैं इससे पिताही प्रधान है कोई यह कहतेहैं कि, पितामहको भी पिताके समान प्रधानता उचितहै सपिंडीआदिमें वार्षि

धोडश। तत्र पिण्डप्रधानत्वं प्रेतत्वविनिवर्तकम्'' इति स्मृतेः॥ पितामहैकोद्दिष्टादौ तूभयप्राधान्यादावृत्तिरेव॥ 'एक एव द्विजो भोज्यः पिण्डोऽप्येको विधीयते' इति स्मृतेः॥ वृद्धिसंकल्पनित्यश्राद्धादौ तु भोजनप्राधान्याद्वान्तावावृत्तिरेव। ''वृद्धिश्राद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम्। नित्यश्राद्धमदैवं स्यात्पिण्डदानविवर्जितम्'' इति स्मृतेः॥ भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे संकल्पसंज्ञके। तत्रैव पितृविप्रस्य तूपघाते पुनः क्रिया'' इति संग्रहोक्तेश्च॥ मघादावप्येवम्॥ तीर्थमहालयादौ दर्शवदित्यपरार्काद्यालोचनेन प्रतीमः॥ तत्र तृप्तिप्रश्नः। आश्वलायनः–'तृप्तान् ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदंतेति च संपन्नं पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेदाभिमतेऽनुमते च' इति॥ अत्र गायत्री मधुवाति त्रिकजपोऽपि ज्ञेयः॥ 'तृप्तान् बुद्ध्वान्नमादाय सतिलं पूर्ववज्जपेत्' इति प्रचेतसोक्तेः॥ व्यासः–'तृप्ताः स्थेति तु पृष्टास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यथ' अभिमते विप्रैः स्वीकर्तुमिष्टे॥ शौनकोऽपि–'अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत तांस्ततः। ते इष्टैः

कके समान कर्म है कारण कि, जो सोलह सपिंडीकरण आदि श्राद्ध हैं उनमें प्रेतभावका दूर करनेवाला प्रवर्तकपिंडदानही प्रधानहै पितामहके एकोद्दिष्टश्राद्ध आदिमें तो दोनोंको प्रधान होनेसे आवृत्तिही है. कारण कि, यह स्मृति है कि, एकही ब्राह्मण जिमाना और एकही पिंड करना, वृद्धिसंकल्प नित्यश्राद्ध आदिमें तो भोजनकी प्रधानतासे वमन होनेपर भी आवृत्ति है, कारण यह स्मृति है कि, वृद्धिश्राद्धमें बुद्धिमानोंने विकल्पसे पिंडदान करना लिखा है, नित्यश्राद्ध, विश्वेदेवा और पिंडदानके विनाही होताहै, संग्रहका भी वाक्य है कि, संकल्प नामके श्राद्धमें भोजन करानाही प्रधान है यदि उसमें पिताके ब्राह्मणमें कोई विघ्न होजाय तो फिर कर्म करै, मघा आदिमें भी ऐसेही जानना, तीर्थ महालयआदिमें अमावस्याके तुल्य करै यह अपरार्कआदिके देखनेसे विदित होताहै॥ आश्वलायनने लिखा है कि, ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर 'मधुमती' और ''अक्षन्नमी मदन्त' ये ऋचा सुनावे सम्पन्न (सिद्धि) पूछकर जो जो अन्न ब्राह्मणोंने खाया हो उसको और स्थालीपाकको पिंडके निमित्त निकालकर शेषको निवेदन करै अभिमत और अनुमत जानकर। गायत्री और मधुमती इन तीन ऋचाओंका जप यह, जानना कारण कि. प्रचेताने कहाहै कि, ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर तिलोंसहित अन्नके पूर्वके तुल्य जप करै, व्यासने कहा है कि, ब्राह्मणोंको तृप्त हो, ऐसे पूछे, वे हम तृप्त हुए; इस प्रकार कहैं, अभिमत नाम ब्राह्मणके स्वीकार करने योग्यको कहते हैं॥ शौनकने कहाहै कि,

१ अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रियाअधूषत अस्तोषत स्वभानवो विप्रानविष्ठयामती योजान्विन्द्रते हरी॥ ऋ० १। ६। ३॥

सह भोक्तव्योमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथा० रुचि ॥" श्राद्धविशेषे प्रश्नभेदमाह हेमाद्रौ विष्णुः–'पित्र्ये स्वदितमिति गोष्ठ्यां सुश्रुतं संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचते' इति ॥' आयुष्यमिति स्वैरेषु' स्वैरेमिच्छाश्राद्धम् ॥ याज्ञवल्क्यः–"अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्यादापः सकृत्सकृत् ॥" इदं चात्र विकिरदानमन्यशाखिनाम् । आश्वलायनानां तु पिण्डान्त एव सूत्रकृतोक्तम् ॥ कात्यायनस्तु–'विकिरोत्तरं गायत्र्यादिजपं तृप्तिप्रश्नं चाह हेमाद्रौ देवलः–" ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विविधं बुधः । तेषामुच्छेषणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत् ।" माधवीये प्रचेताः–'सार्ववर्णिकमादाय ये अग्नीति भुवि क्षिपेत् ।' स च कुशे कार्यः ॥ 'दर्भेषु विकिरश्च यः' इत्युक्तेः ॥ मन्त्रः कातीयः " अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥" इति ॥ अन्येतु–"असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम्" इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेन दैवे "असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः ।

ब्राह्मणोंसे इस प्रकार पूछे शेष अन्नका क्या करूं, वे ब्राह्मण कहैं कि, इष्ट मित्रोंसहित भोजन करो यह कहकर श्राद्धका अन्न उसे देदे या अपनी रुचिके अनुसार आप स्वीकार करले, श्राद्ध विशेषमें प्रश्नका भेद हेमाद्रिमें विष्णुके वाक्यसे कहा है कि, पितृश्राद्धमें भली प्रकार भोजन किया गोष्ठीश्राद्धमें वेदपाठ अच्छी प्रकार हुआ वृद्धिश्राद्धमें सम्पन्न भी हुआ देवश्राद्धमें रुचा कि नहीं, इच्छा श्राद्धमें आयुष्य (अवस्थावर्द्धक) हुआ कि नहीं, इस प्रकार यजमान पूछे, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, अन्न लेकर तृप्त हुये यह पूछे, और शेष अन्नको उनकी आज्ञासे भूमिमें डालदे और एक २ वार जल देदे, यह विकिरका दान श्राद्धमें दूसरी शाखावालोंके निमित्त है, आश्वलायनोंको तो पिण्डदानके अन्तमेंही सूत्रकारने विकिरका दान लिखा है । कात्यायनहीने विकिरदानके पीछे तो गायत्रीका जप और तृप्तिका प्रश्न करना लिखा है, हेमाद्रिमें देवलका वाक्य है कि, फिर सब ब्राह्मणोंके भोजनका अन्न अनेक पात्रोंमें लेकर उनके उच्छिष्ट स्थानकी भूमीमें विकिरके निमित्त डालदे माधवीयमें प्रचेताका वाक्य है कि, सब वर्णोंके अन्नको लेकर ' ये अग्नि' इस मंत्रसे भूमिपर डाले, वह विकिर कुशापर करना चाहिये, कारण कि, ऐसे कहा है कि, कुशाओंपर विकिर करै, कातियोंका मंत्र यह है कि, मेरे कुलके जिन जीवोंको अग्निका दाह प्राप्त नहीं हुआ वे भूमिपर देनेसे तृप्त हों और तृप्त होनेपर परम गतिको जांय और अन्य तो जिन देवताओंने सोमपान नहीं किया और जिनको यज्ञका भाग नहीं मिला उनके निमित्त विश्वेदेवओंका विकिर अन्न देताहूं, हेमाद्रिमें लिखे इस गोभिलके वाक्यसे दैवश्राद्धमें यह विधान करै, और जो संस्कारहीन मरगये

दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम्" इत्यग्निपुराणोक्तेन पित्र्येन्नं विकीर्य 'ये अग्निदग्धाः' इत्युच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि पृथग्दद्यादित्याहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये-प्येवम् ॥ ब्राह्मे-'ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत् ॥' माधवीये गौतमः-'विकिरमुच्छिष्टैः प्रतिपादयेत् ' हेमाद्रौ व्यासः-' उच्छिष्टैरेव विकिरं सदैव प्रतिपादयेत् ' भृगुः-' पिण्डवत्प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौल्वलिः ' श्राद्धकारिकायां-" यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम । तस्मादन्नं त्यजेद्भूमौ वामभागेषु पैतृके ॥" मनुः-"उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥" विष्णुः-' उदङ्मुखेष्वाचमनमादौ दद्यात्, ततः प्राङ्मुखेषु पित्र्ये दैवे चेत्यर्थः । शातातपः-"विश्वेदेवानिविष्टानां चरमं हस्तधावनम्' ॥ हेमाद्रौ वाराहे-"हस्तं प्रक्षाल्य यश्चापः पिबेद्भुक्त्वा द्विजःसदा । तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ मरीचिः-"हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥" तत्रैव संग्रहे-" पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डलं भुवि निक्षिपेत् । हस्तादीन् क्षालयेद्विद्वान् शरावादौ तु कुत्रचित् ॥" व्यासः-" ताम्बूलोद्गिरणं चैव गण्डूषोद्गिरणं तथा । कांस्यपात्रे

हैं और जो त्यागनेवाली कुलकी स्त्री हैं उनको पितरोंका अन्न विकिर देताहूं, इस अग्निपुराणमें कहे मंत्रसे पितृश्राद्धमें अन्नको बखेरकर 'अग्निदग्धा' इस मंत्रसे उच्छिष्टका पिंड कुशके ऊपर पृथक् दे इस प्रकार कहते हैं ॥ और पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, फिर हाथपैर धो और दोवार आचमन कर नारायणका स्मरण करे, माधवीयमें गौतमका वचन लिखा है कि, उच्छिष्टसे विकिर दे । हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि, सदैव उच्छिष्टसे विकिर करे, भृगुने कहा है कि, विकिरकी सिद्धि पिंडके समान होती है यह तौल्वलि कहते हैं, श्राद्धकारिकाका कथन है कि, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ यजमानके दास आदिकोंके निमित्त पितरोंके वाईं ओर भूमिपर अन्न दे, मनुने लिखा है कि, जो कपटी और शठ न हों ऐसे दासोंको पितरोंका भाग भूमिगत उच्छिष्ट लिखा है ॥ विष्णुने कहा है कि, पितृ और देवश्राद्धमें उत्तरको मुख और पूर्वाभिमुख ब्राह्मणोंको पहले आचमन दे, शातातपने कहा है कि, विश्वेदेवाओंके श्राद्धमें बैठे हुये ब्राह्मणोंके हाथ पीछेसे धुवावे, हेमाद्रिमें वाराहपुराणमें लिखा है कि, जो ब्राह्मण हाथ धोकर पीछेसे जलपीता है वह अन्न राक्षसोंको मिलताहै, और पितर निराश हो जाते हैं, मरीचिने लिखा है कि, हाथ धोकर जो ब्राह्मण कुल्लेके पानीको पीता है वह श्राद्ध राक्षसोंको मिलता है, पितरोंको नहीं मिलता, वहांही संग्रहका कथन है कि, पवित्रोंकी ग्रन्थि खोलकर मण्डलकी पृथ्वीमें डाल दे, फिर किसी सरवे आदिमें बुद्धिमान् मनुष्य हाथ धोले, व्यासने लिखा है कि, पान और गंडूष

---

१ जो आधा जल पीकर आधा कुल्ला अग्निपर करते हैं इससे पितर और अग्निदेवता प्रसन्न होते हैं॥

तथा ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥ उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करौ श्मश्रूणि शोधयेत् ॥" पिण्डदाननिर्णयः । अथ पिण्डदानम् ॥ तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं चेति हेमाद्रौ स्मृतिषु च पक्षा उक्ताः ॥ तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ "प्रेतश्राद्धेषु पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम्" इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बहवः ॥ आश्वलायनः—'भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके । भुक्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम् । साग्निरिति प्रणीतसमीपे अनग्निर्द्विजसमीपे । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः—'व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत् ।' प्रसारितभुजान्तरं व्यामः ॥ संकटे तु व्यासः—'अरत्निमात्रमुत्सृज्य' इति ॥ यत्तु तत्रैव—'सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा' इति । तदन्यशाखिपरम् । देवलः—'ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च ' चन्द्रिकायाम्—" पिण्डनिर्वापणं कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः । काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे हिते ॥" आश्वलायनः—'स्फ्येन रेखामुल्लिखेत् ॥ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नैर्दर्भैरवस्तीर्य प्राची-

---

(कुल्ला) इसकी पीकको कांसी और तांबेके पात्रमें कभी न करै, गरम जल और अन्नके चूर्णसे डाढी मूछोंको शुद्ध करै ॥ अब पिण्डदान कहते हैं । उसमें इतने मत हेमाद्रि आदि स्मृतियोंमें लिखे हैं कि, पूजनके अनन्तर, अग्नौकरणके अनन्तर, भोजनके उपरान्त, विकिरके उपरान्त, स्वधा वाचनके उपरान्त, ब्राह्मण विसर्जनके उपरान्त पिंडदान करै, इन सब पक्षोंकी शाखाके भेदसे व्यवस्था जाननी उचित है चन्द्रिका और माधवतो यह मानते हैं कि, प्रेत श्राद्धमें भोजनसे पहिले, और दूसरे श्राद्धमें भोजनके पीछे पिंडदान करै, सब श्राद्धोंमें भोजनके पीछे करै, यह तो बहुत कहते हैं आश्वलायनने लिखा है कि, भोजनके पीछे और आचमनके पहिले पिण्डदान करै, आचमनके अन्तमें दे यह कोई कहते हैं, भोजनके अनन्तर दे, यह कथन पहले निषेधके निमित्त है अग्निहोत्री अतिप्रणीत (स्थापनकी अग्नि) के निकट और अनग्नि ब्राह्मणोंके समीप पिण्डदान दे हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका वाक्य है कि, व्याम (भुजा) मात्र अन्तरको त्यागकर पिंडदे, फैलाई हुई बांहके अन्तरको व्याम कहते हैं, और संकटमें अरत्नि मात्र अन्तर त्यागकर पिंड दे यह व्यास कहते हैं जो उसी स्थानपर लिखा है कि, रेत वा मृत्तिकासे दक्षिणको नीची वेदी बनावै वह अन्य शाखावालोंके निमित्त है । देवलने लिखा है कि, फिर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दक्षिण दिशामें जाकर पिंड दे, चन्द्रिकामें लिखा है कि, कुशा न हो तो बुद्धिमान् मनुष्य काश राजदूर्वाकी उत्तम पवित्रो पर पिंडदान दे ॥ आश्वलायनने लिखा है, कि, यज्ञके स्फ्यसे रेखा खिंचे, फिर ". अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः " इस मंत्रसे उसको छिडके फिर एकबार तोडी हुई कुशा उसपै धरै फिर अपसव्य

नावीतो रेखां त्रिरुदकेनोपनयेच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पिण्डान्निपृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तेऽसौ ये च त्वामत्रानु' इति ॥ हेमाद्रौ पारस्करः–' कराभ्यामुल्लिखेत् स्फ्येन कुशैर्वापि महीं द्विजः ॥' बह्वृचानां करेणैव लेखा चाग्रध्यभिमुखेति वृत्तिः 'दक्षिणाप्राचीं वेदिमुद्धृत्य ' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ देवलः–" आवाहयित्वा दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत् । तेष्वासीनेषु पात्रेण प्रयच्छेत्सतिलोदकम् ॥" पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन॥ वायवीये–'मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद्बुधः ॥ त्रिस्थलीसेतौ–"तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा । मधुसर्पिःखण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते॥" याज्ञवल्क्यः–"सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः। उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्दद्याद्वै पितृयज्ञवत॥" केचित् पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति ॥ "माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः । ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः"इति स्मृतिसारात् ॥ 'माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्' इति स्मृतेश्च । अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ हेमाद्रावपि सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम् ॥ अत्र शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रीकृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पि-

---

होकर रेखापर तीनवार जल छिडके कि, पिता पितामह प्रपितामह शुद्ध हों, फिर उस रेखापर सीधे हाथसे पिता पितामह प्रपितामहको. पिण्डदान दें और कहै कि, यह पिण्ड तुम्हारे और तुम्हारे अनुयायियोंके निमित्त है, हेमाद्रि में पारस्करका कथन है कि, हाथोंसे वा स्फयसे वा कुशाओंसे ब्राह्मण रेखा करै, बह्वृचोंको तो एक हाथसे रेखा अपने सन्मुख करनी लिखी है यह वृत्तिग्रंथमें लिखा है, आपस्तंबका भी वचन है कि, दक्षिणको नीची वेदीपर रेखा करके पिण्ड दे, देवलका कथन है कि, आवाहन करके तीन कुशाओंके अग्रभागपर पितरोंकी कल्पना करै, जब बैठजायँ तब पात्रमें रखकर पराचीन (नीचा हो पितृतीर्थ) से तिल जल दान करै, वायवीयका कथन है कि, बुद्धिमान् मनुष्य मधु घी तिलसे युक्त तीन पिण्ड दे ॥ त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है कि, तिल अन्न जल धूप दीप दूध मधु घी खांडसे युक्त अष्टांग पिंड कहा है, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, तिलोंसहित सम्पूर्ण अ को लेकर दक्षिणकी ओर मुख कर मनुष्य उच्छिष्टके निकट पितृयज्ञके समान पिंडदान करे, कोई तो इस स्मृत्यर्थसारके वाक्यसे पिंडोंमें उरदोंको वर्जित करते हैं कि, उरद श्राद्धोंमें लेने चाहिये और अग्नि. पिंडोंके विषय निषिद्ध हैं कारण कि, जैसे ब्राह्मणके विषे मदिरा दूषित है इसी प्रकार अग्नि और पिंडोंमें उरद दूषित हैं, और स्मृतिमें लिखा है कि, उरदोंको सर्वस्थानमें देना परन्तु पिंड और अग्निमें न देना, इसमें मूल विचारने योग्य है ॥ हेमाद्रिमें तो सर्व शब्दका प्रकृतार्थ लिखा है अर्थात् (विद्यमान अन्न) होनेसे संपूर्ण अन्नोंका ग्रहण करना यह कहा है, यहां संपूर्ण शेष रहे अन्नको ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर एक

ण्डान् दद्यात्' इति गोभिलसूत्रे ॥ 'सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात्पिण्डान्मधुतिलान्वितान्' इति च ॥ शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिः प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती ॥ तन्न। तुषोपवापवत् परप्रयुक्तद्रव्यत्वेऽप्यर्थकर्मत्वद्गुणानुरोधेन प्रधानत्यागाच्च शेषलोपेऽपि द्रव्यान्तरेण कार्यम् ॥ अतो नेयं प्रतिपत्तिः॥किं तु प्रधानमित्युक्तं प्राक् ॥ अन्यथा सपिण्डीकरणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक्॥अथ पिण्डप्रमाणम् । हेमाद्रावङ्गिराः—"कपित्थबिल्वमात्रान्वा पिण्डान्दद्याद्विधा। नतः।कुक्कुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः पुमान् ॥ " इति ॥ तत्रैव धूम्रः—"कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः । तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडंगुलैः ॥" अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु—"एकोद्दिष्टे सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते ।, नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा ॥ तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः । महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम् ॥ २ ॥ " इत्याहुः ॥ कालिकायामाचार्यः—यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र बिल्वफलोपमाः । यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशांगुल उच्यते" इति ॥ वायवीये—'पत्नी पिण्डांस्तु मृद्नीयात्त्रिवर्गस्य सहायिनी ॥' हेमाद्रौ लौगाक्षिः—"महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे

पात्रमें उठाले, फिर उसको उच्छिष्टके निकट कुशाओंपर तीन ३ पिंड दे, इस 'गोभिल-सूत्रके अनुसार संपूर्ण प्रकृत अन्नसे शहत तिलयुक्त पिंडोंका नियम होनेसे उसके अभावमें पिंडकी निवृत्ति जाननी चाहिये यह मैथिल और, वाचस्पतिका कथन है सो उचित नहीं तुषोंके उपवाप (बोना) की समान इसके (कहे) द्रव्यवाले कर्मको अर्थ कर्म होनेसे और गुणके अनुरोधसे प्रधानताके त्यागसे शेष पदार्थके अभावमें भी दूसरे द्रव्यसे कर्म करना, इससे यह प्रतिपत्ति नहीं, किंतु प्रधान है यह पहले कह आये हैं नहीं तो सपिंडीकरणके आदिमें मुख्य भी पिंड मिलानेका लोप हो जायगा यह संक्षेपसे कहा है ॥ अब पिंडके प्रमाण वर्णन करते हैं, हेमाद्रिमें अंगिराका वाक्य है कि, कैथ बेलके प्रमाण वा कुक्कुटके अण्डे वा आंवले वा बेरके तुल्य पिंड विधिसे देवै । वहांही धूम्रका कथन है कि कैथके प्रमाणसे सावधान होकर पिंड दे और पिंड दिये पीछे वहां छः अंगुलके अन्तर उतनेही विकिर दान करै, अंत्येष्टि पद्धतिमें भट्टोंने तो एकोद्दिष्ट और सपिंडोंमें कैथके तुल्य, मासिक और वार्षिकमें नारियलके तुल्य, तीर्थके मिलनेपर वा दर्शमें कुक्कुटके अंडेकी समान, महालय और गयाश्राद्धमें आमलेके समान पिंड देना कहा है, यह कहते हैं, कालिकामें आचार्योंने लिखा है कि, जहां बहुतसे पिंड हों वहां बेलफलके समान और जहां एक पिंड हो वहां खजूरकी सदृश और प्रेतका पिंड तो बारह अंगुल लंबा देना कहा है ॥ वायवीयमें लिखा है कि, धर्म अर्थ कामकी सहायिनी पत्नी यत्नसे उन पिंडोंको मलकर बनावे, हेमाद्रिमें लौगाक्षिका कथन है कि, महालय गया और प्रेतका श्राद्ध और

दशाहिके। पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥" शाठ्यायनिः—'असाव-तत्त इत्युक्त्वा तदन्ते च स्वधा नमः।' असावित्यत्र सम्बन्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनाम सम्बुद्ध्यन्तमुक्त्वा पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो न ममेति वदेदिति हेमाद्रिः॥ पिण्डदाननिर्णयः। पित्रादिनामाज्ञाने त्वापस्तम्बः—'यदि नामानि न विन्द्यात्स्वधापितृभ्यः पृथिवीदिविषद्भ्य इति पिण्डं दद्यात्, स्वधापितृभ्योन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्' स्वधापितृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्, एवं मातामहेषु मातृषु च'॥ बह्वृचानां तूक्तं प्राक् कलिकायां स्मृतिः—'यावदेवोच्चरेन्मन्त्रं तावत्प्राणं निरोधयेत् ॥' येषां तु गृह्योक्तं दर्शे श्राद्धं पृथगुक्तं तेषां पितृभ्यः पश्चिमे मातृभ्यस्तत्पश्चिमे मातामहीभ्यः पिण्डादि देयमिति सांख्यायनः 'अस्मिन्पक्षे तत्पश्चिमे मातामहीभ्योपि दद्यात्' इति हेमाद्रिः॥' पूर्वासु पितृभ्योपि दद्यादपरासु स्त्रीभ्यः' इति सूत्राच्च ॥ एवं यत्र तीर्थमहालयादौ—'केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक्छ्राद्धं महर्षयः' इति चतुर्विंशतिमतात् 'पित्रादिनवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतम्' इत्यग्निपुराणाच्च मातॄणां पृथगुक्तम् ॥ यत्र वा " आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च। तत्पत्नीभ्यश्च सर्वा-

दश दिनका श्राद्ध इनमें पिंड शब्द और अन्य श्राद्धोंमें अन्न शब्द उच्चारण करै, शाठ्यायनिका कथन है कि, य वह पिंड तुझे देता हूं, यह कहकर स्वधा नमः कहै और यहां पितरोंका संबंध रूप गोत्र आदिसे युक्त सम्बुद्ध्यन्त (हे पितः) आदि नाम कहकर फिर चतुर्थ्यन्त नाम (पित्रे आदि) फिर (अयं पिंडः) यह पिंड (इदमन्नं) यह अन्न' स्वधा नमः फिर (न मम) मेरा नहीं यह उच्चारण कर दे दे यह हेमाद्रिका मत है ॥ पिता आदिके नाम यदि न जानते हों तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि जो नाम न जाने तो पृथ्वी सत् पितरोंको स्वधा यह कहकर पहिला पिंड और अन्तरिक्ष सत् पितरोंको स्वधा यह कहकर दूसरा पिंड और दिविषत् पितरोंको स्वधा यह कहकर तीसरा पिंड प्रदान करै बह्वृचोंके निमित्त तो पहिले कह आये हैं। कलिकामें स्मृतिका वाक्य है कि, इतने मंत्रको जबतक कहै तबतक प्राणको रोकै जिनके गृह्यसूत्रमें अमावास्याको पितरोंका श्राद्ध पृथक् लिखा है उनके मतमें पितरोंके पश्चिम दिशामें माताओंसे पश्चिम ओरमें मातामहीको दे यह सांख्यायनका मत है ॥ इस पक्षमें उन्हीके पश्चिम और मातामहियोंकोभी दे, यह हेमाद्रिका कथन है, और यह सूत्रभी है कि, पूर्व दिशाओंमें पितरोंको और पश्चिम ओरमें स्त्रियोंको दे, इसी प्रकार जहां तीर्थ और महालय आदिमें कोई महर्षि स्त्रियोंके पृथक् श्राद्धकी इच्छा करते हैं और इस अग्निपुराणके कथनसे पिता आदि नौ देवताओंका और विश्वेदेवा आदि बारह १२ देवताओंका श्राद्ध होता है, माताओंका श्राद्ध पृथक् वर्णन किया है, कहीं ऐसा है कि, आचार्य गुरु शिष्योंका सखा जातियोंको और उनकी सम्पूर्ण पत्नियोंको और सदा उन सबको महालयमें

भ्यस्तथैव च जलांजलीन् ॥ पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात्पृथग्भाद्रपदे नरः । तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च " ॥ २ ॥ इति चतुर्विंशतिमते-" दौहित्रपुत्र-दाराश्च एकनिष्ठाः सहोदराः । निःसन्ताना मृता ये च तेभ्योऽप्यत्र प्रदीयते ॥" इति एकोद्दिष्टान्युक्तानि' तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम् ॥ येषां न पृथक् तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः । ' अन्वष्टकागयामातृश्राद्धंचैव मृतेहनि । एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीषु नान्यत्पृथग्भवेत् " इति शङ्खोक्तेश्च ॥ मनुः-'तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपनादिकम् ' हस्तलेपाभावेपि हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः ॥ विष्णुः-'अत्र पितरो मादयध्वमिति दर्भमूले करावघर्षणम् ॥ कलिकायां सुमन्तुः-"एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते । सपिण्डीकरणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते" ॥ मनुः-"आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवत् ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ॥" त्रिः प्राणायामं कृत्वेति मेधातिथिः ॥ अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः ॥ मन्त्रवत् 'वसन्ताय नमः नमो वः पितरः ' इत्याद्यैः ॥ शेषं पूर्वावनयनशेषम् ॥ आश्वलायनः-"निपृतानानुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभा-

---

पृथक् पिंड दे, और जलदे सम्पूर्ण तीर्थ , माघमास और मघामें भी इसी प्रकार देने और दौहित्र पुत्र स्त्री छोटे भाई और जो बिना सन्तान मरेहैं उनको भी यहां पिंड दिया जाता है भविष्यमें एकोद्दिष्ट लिखा है वहांभी उनसे पश्चिम ओरमेंही पिण्ड देना जानना, जिनके मतमें पृथक् पिण्ड देना नहीं वहां सपत्नीक पिता आदिका उच्चारण करना, और शंखका भी कथन है कि, अन्व का गया और और मातृश्राद्ध, मरण दिनका ऐकोद्दि इनके सिवाय अन्यश्राद्ध स्त्रियोंका पृथक् नहीं होता ॥ मनुका कथन है कि, उन कुशाओंपर लेपभागियोंके निमित्त उस हाथका मार्जन करै , हाथपर लेप न होय तो भी हाथको मार्जन करै, यह मेधातिथिका मत है, विष्णुका कथन है कि, "अत्र पितरो मादयध्वं" यह कहकर कुशाके मूलमें, हाथको घिसे, कलिकामें सुमंतुका कथन है कि, एकोद्दिष्ट और वर्षामें कुशाका लेप नहीं करना, सपिंडीकरण आदिमें तो सब स्थानमें लेप श्रेष्ठ है, मनुने कहा है कि, आचमन कर, उत्तरको मुख करके तीनवार शनैः २ प्राणायाम करके और छः ऋतु और पितरोंको नमस्कार करके मन्त्र पढै, और शेष जलको शनैः २ पिण्डके निमित्त फिर डालदे. मेधातिथिका कथन है कि, तीनवार प्राणायाम करै, यह अर्थ है यहां मंत्र बिना प्राणोंको निरोध करै, यह कर्क आचार्य आदि कहते हैं मन्त्रवत्का अर्थ 'वसंताय नमः' यह लिखा है कि, 'नमो वः पितरः' इत्यादि मन्त्रोंको पढकर यह कृत्य करै, शेष पदसे पहिले दिये जलका शेष ग्रहण करना चाहिये॥ आश्वलायनने कहा है कि, स्थित हुए पितरोंसे अनुमंत्रण (प्रार्थना) करे कि, यहां पितर

गभावृषायध्वमिति संव्यावृदुदङ्ङावृत्य यथाशक्ति प्राणान्निरुध्याऽभिपर्यावृत्याऽमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति चरोः प्राणभक्ष्यं भक्षयेन्नित्यं निनयनम् " इति ॥ नित्यग्रहणं शेषाभावेऽपि कुर्यादित्यर्थः ॥ शौनकः—"अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम् । अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणाप्यनुमन्त्र्य तान् ॥ पिण्डशिष्टचरोरन्नं किञ्चिदाघ्राय तत्त्यजेत् । प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्तामित्याद्यैरेव पूर्ववत् ॥ मन्त्रैः पिण्डेषु पानीयं निषिञ्चेत् पितृतीर्थतः ॥ २ ॥" व्याघ्रः "अद्भिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं तत्पिण्डं प्रति पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥" एतत्कातीयादीनाम् ॥ आचार्यः—'ततः सम्यग् द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः ॥' आश्वलायनः—'असावभ्यंक्ष्वासावंक्ष्वेति पिण्डेष्वभ्यञ्जने वासो दद्याद्दशामूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोन्यत् पितरो युङ्ध्वम्' इति ॥ श्राद्धचिन्तामणौ ब्राह्मे—"एतद्वः पितरो वासस्त्विति जल्पन्पृथक् पृथक् । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेद्बुधः ॥" इदं कातीयानाम् ॥' एतद्वा इति सूत्राणि प्रतिपिण्डम् ' इति तत्सूत्रात् ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे—"श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमञ्जनं नित्यमेव हि । तैलं) कृष्णतिलेभ्यश्च दद्यादभ्यञ्जनं हितम् ॥" त्रैककुदं सुरमा

प्रसन्न हों और अपने २ भागको ग्रहण करो, यह कहकर सव्य या उत्तर आवृत्ति (फिरना) यथाशक्ति प्राणोंको नासिकासे खींचकर पढै कि, "अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत" इसके चरुका जो प्राणके भक्षणका शेष है नित्य भक्षण करै, और दे नित्यके ग्रहणसे यह अर्थ जानना कि, शेष न रहै तो भी करै, शौनकने कहा है कि, इसके अनन्तर पितरोंका 'अत्र पितरः' इस पहिले मन्त्रसे वा 'अमीमदन्त' इस आदिके मंत्रसे अनुमन्त्रण करके पिण्डसे शेष रहे चरुके अन्नको कुछ सूंघकर उसको त्याग दे फिर हाथ धो और आचमन करके 'शुन्धंतामु' इत्यादि मंत्रोंसे पूर्वके समान पितृतीर्थसे पिंडोंके ऊपर जल छिडके ॥ व्याघ्रका कथन है कि, जलसे उस पात्रको प्रतिपिण्ड पूर्वके समान धोकर अवनेजन करै, और पिण्डके पात्रको औंधामुख धरै, यह कातियोंके निमित्त है, आचार्यका कथन है कि, फिर भली प्रकार दोबार आचमन और नीवीको ढीली करके मौन साधे रहै, आश्वलायनने कहा है कि, असावभ्यंक्ष्व असावंक्ष्व, ऐसे कह २ कर पिंडोंपर अभ्यंजन और अञ्जन दे वस्त्र देकर पढै कि, "दशामूर्णास्तुकां वा, पंचाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं सलोमैतद्वः पितरो वासो मानोतोऽन्यात्पितरो युङ्ध्वमिति" श्राद्धचिन्तामणिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, पृथक् २ कहता हुआ कि, हे पितरो ! यह तुम्हारा वस्त्र है, फिर पढै कि, अमुक २ गोत्रवाले आपको यह वस्त्र प्रदान कियाहै, यह कातियोंके निमित्त है कारण कि, उनका सूत्र है कि, एतद्वः इस मंत्रको प्रतिपिंडपर पढै हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सुरमेका अञ्जन और काले तिलोंके तेलका अभ्यञ्जन

इति प्रसिद्धम् ॥ अञ्जनप्रथमप्रश्नमापस्तम्बादिविषयम् ॥ तत्रैव व्याघ्रः—"गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत् ॥" देवलः— "दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् । भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च व्यञ्जनान्यशनानि च ॥" तत्रैव शंखः— "यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन ॥" एतत्सव्येनेति केचित् ॥ युक्तं त्वपसव्येन ॥ मनुः— 'अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः । 'ततो 'नमो वः पितर, इषे ' इत्यादिनोपस्थानम् ॥ मात्स्ये—" अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् । तिलपुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ॥" अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः ॥ परिभाषोक्तवचनात्सव्यमिति युक्तम् ॥ अत्र शिवा आपः सन्तु । सौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगो ज्ञेयः ॥ मात्स्ये—"दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः । अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः ॥ गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः । दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं चैवेत्युदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्यभक्तितः ॥२॥ स्वस्तिवाचनात्प्राक् पात्रचालनं कार्यम् ॥ हेमाद्रौ बृहस्पतिः—" भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः । तदन्नमसु-

---

उत्तम और सदा युक्त कहा है, अंजनका प्रथम कहना आपस्तम्बोंके निमित्त है वहांही व्याघ्रका कथन है कि, गंध, पुष्प, धूप, दीपको प्रदान करै, देवलने कहा है कि, दक्षिणा, सम्पूर्ण भोग, भक्षण पदार्थ, गन्ना और अनेक व्यंजनको प्रतिपिण्डपर दे, वहांही शंखका कथन है कि, जो कुछ भक्ष्य भोज्य अपने घर बनाया जाता है वह पिण्डके मूलमें निवेदन किये विना भोजन न करै, यह सव्य होकर करै, यह कोई कहते हैं, युक्त तो अपसव्यसे है, मनुने कहा है कि, देनेके अनुसार उन पिंडोंको सूंघे, फिर' नमो वः पितरः'० और 'इषे०' इत्यादि मंत्रोंसे स्तुति करै मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ब्राह्मणोंके आचमन करनेके उपरांत स्वयं आचमन करके तिल फूल चावल और पीछेसे अक्षय्योदक दे, यहां कर्कने यह कहा है कि, देवश्राद्धमें सव्य और पितृश्राद्धमें अपसव्य होकर करै ॥ परिभाषामें कहे उसी वचनसे सव्यसेही करना युक्त कहा है, यहां जल मंगलरूप, फूलरूप हो इत्यादि प्रयोग (विधि) जानना चाहिये, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इनको देकर बुद्धिमान् मनुष्य प्राङ्मुख होकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर यजमान कहै कि, ' अघोर हो ' ब्राह्मण कहे कि अघोर हैं, फिर कहै कि हमारा ' गोत्र बढे ' ब्राह्मण कहैं कि, ' बढे ' फिर दाताओंकी वृद्धि हो ब्राह्मण कहै और अन्न बहुत हो, इत्यादि कहै फिर भक्तिसे पिंडोंको उठाकर स्वस्तिवाचन करावै, स्वस्तिवाचनसे प्रथम पात्रोंको हिलाना उचित है, कारण कि, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि, पात्रोंकी स्थिति रहते जो स्वस्तिवाचन करते हैं उस अन्नको पितरोंके निराश हो चले जानेपर राक्षस भक्षण

रैर्भुक्तं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥ जातूकर्ण्यः—" पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथवा सुतः । न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन ॥ " याज्ञवल्क्यः—' स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ।' तत्रैव वृद्धशातातपः—पितॄणां नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् । प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्त्विति ॥" अत्र षष्ठी प्रागुक्ता ॥ तत्रैव नागरखण्डे—"उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्वा च दक्षिणाम् । हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥ " बृहस्पतिः—" तस्मात्पणं काकिणीं वा फलपुष्पमथापि वा । प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत् ॥ " अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं, विप्रोद्देशेन सव्यमिति माधवः ॥ कलिकायामाचार्यः—' दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा ॥ ' अत्रिः—' वदेच्च तांस्ततो विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ॥ ' गोभिलः—' अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्ते स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्तेऽस्तु स्वधेत्युच्यमाने धारां दद्यादूर्जंवहन्ती ' इति ॥ आपस्तम्बेन तु—' पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति ' इत्यपि परिषेचने मन्त्र उक्तः ॥ आश्वलायनः—'अथैतान् प्रवाहयेत् ॥ परेतनपितरः सोम्यासो गम्भीरेभिःपथिभिःपूर्विणेभिः॥दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिंश्च नः

करते हैं ॥ जातूकर्ण्यका कथन है कि, श्राद्धके पात्रोंको स्वयं, शिष्य वा पुत्र हिलावे, स्त्री बालक भिन्न जाति ये कभी भी न हिलावैं, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, फिर स्वस्तिवाचन और अक्षय्योदकका दान करै, वहांही वृद्धशातातपने कहा है कि, पितरोंके हाथमें नाम और गोत्र लेकर प्रत्येक पिंडपर तिल जल देना और ' इदम् अक्षय्यम् अस्तु ' ऐसे कहै, यहां षष्ठी विभक्तिका उच्चारण पहिले कथन कर आये हैं, वहांही नागरखण्डमें कहा है कि, अर्घ्यपात्रको सीधा करके देवताओंको सोना और पितरोंको चांदीकी दक्षिणा दे, बृहस्पतिने कहा है कि, तिससे पण काकणी फल पुष्पकी दक्षिणा यज्ञमें दे, कारण कि, दक्षिणासे वह सफल होता है, पितरोंके निमित्त दक्षिणा दानमें अपसव्य और ब्राह्मणोंके निमित्त दक्षिणादानमें सव्य होकर रहै यह माधवका मत है ॥ कलिकामें आचार्यका कथन है कि, सव्य होकरही तांबूल और दक्षिणा दे, अत्रिका कथन है कि, फिर ब्राह्मणोंसे कहै कि, पितरोंके निमित्त स्वधा उच्चारण करो गोभिलने कहा है कि, अघोर पितर हों ब्राह्मणोंके ऐसे कहनेके उपरांत यजमान पूछे कि, पितरोंके निमित्त स्वधा कहताहूं तुम पितरोंके निमित्त स्वधा पढो जब ब्राह्मण स्वधा हो ऐसा, कह चुकैं तब ' ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृत ' इस मंत्रसे पिंडोंपर जलकी धारा दे, आपस्तम्बने तो "पुत्रान् पौत्रानभितर्पयन्ति " यह मंत्रभी पिंडोंके सींचनेमेंही कहा है ॥ आश्वलायनने कहा है कि, फिर पिण्डोंको यह मन्त्र पढकर जलमें प्रवाह करै, "परेतन पितरः सोम्यासोगंभीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः ॥ दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत " मत्स्य-

स्वधौर नियच्छत ' इति मात्स्ये-'वाजे' वाजे' इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ' प्रचेताः-'स्वस्तिवाच्यं ततः कृत्वा पितृपूर्व विसर्जयेत् ॥' आश्वलायनः-' अन्नं प्रकीर्योपवीत्या ॐ स्वधेति विसृजेदस्तु स्वधेति वा ॥ ' ब्रह्मवैवर्ते-" आमावाजेति मन्त्रंमुपठित्वा च प्रदक्षिणाम् । द्वारोपान्ते ततः कृत्वा संयतः प्रविशेद्गृहम्॥ प्राञ्जलिश्च ततः प्राह तान् विप्रान्सत्यवादिनः । दातारो नोभिवर्धन्तामन्नं च न इति वर्ह्वाति ॥ एवमस्त्विति ते तं च कथयन्ति समाहिताः ॥ ३ ॥ " एतन्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ मनुः-" दातारो नोभि वर्धन्तां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोस्त्विति ॥ " बौधायनः-"अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु माच याचिष्म कश्चन" इति ॥ अत्र दातारो वोभिवर्धन्तां, लभध्वयाचध्वमित्यूहेन पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये ॥ 'स्वादुषंसद' इति 'ब्राह्मणासः पितरः' इति च मन्त्रद्वयं पठन्ति । शौनकः-"ब्राह्मणानथ निर्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम्ः सस्त्रीकः स्वजनैः सार्द्धं प्रणमेद्रचिताञ्जलिः ॥ कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ॥" हेमाद्रौ बृहस्पतिः-"अद्य मे सफलं जन्मभवत्पादाब्ज

पुराणमें लिखा है कि, "वाजे वाजे० " यह कहता हुआ कुशाओंके अग्रभागसे पिण्डोंको विसर्जन करै, प्रचेताका वाक्य है कि, स्वस्तिवाचन कर पिताके क्रमसे पिंड विसर्जन करै, आश्वलायनने कहा है कि, अन्नको बखेरकर और सव्य होकर 'ॐ स्वधा' वा ' अस्तु स्वधा' कहकर पिण्ड विसर्जन करै ॥ ब्रह्मवैवर्त पुराणमें लिखा है कि, 'आमावाज०' इस मंत्रको पढकर द्वारके निकट प्रदक्षिणा करके सावधानीसे गृहमें प्रवेश करै, फिर सत्यवादी उन ब्राह्मणोंको कर जोडकर कहै कि, हमारे दाताओंकी वृद्धि हो, और बहुत अन्न हो, वे ब्राह्मण सावधान होकर उसे एवमस्तु (ऐसेही हो) कहैं, यह मण्डलके देशमें भी करना उचित है यह हेमाद्रिका मत है, मनुने कहा है कि, हमारे यहां दाताओंकी वृद्धि हो वेद और सन्तानकी वृद्धि हो श्रद्धा न जाय, बहुत देनेको हमारे हो ॥ बौधायनने कहा है कि, अन्न हमारे बहुत हो अतिथि मिलैं, हमें याचना करनेवाले मिलैं हम किसी की याचना न करैं, हमारे दाताओंकी वृद्धि हो, लभध्वं मा याचध्वं (प्राप्त हो मत मांगो) इत्यादि ऊहसे पढकर ब्राह्मण प्रतिवचन दे, यह सुदर्शनभाष्यमें लिखा है 'स्वादुषंसद' 'ब्राह्मणासः पितरः' इन दो मंत्रोंको पढते हैं, शौनकका कथन है कि, जानेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्री और कुटुम्बियों सहित यजमान हाथ जोडकर तीन परिक्रमा करके प्रणाम करै, और परिक्रमामें छोटा पहिले और ज्येष्ठ पीछे रहै, हेमाद्रिमें बृहस्पतिका कथन है कि, आज तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करके मेरा जन्म सफल हुआ, आज

वन्दनात् । अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद्दिवम् ॥ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः । तत्क्लेशजातं चित्तात्तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ॥ २ ॥ " प्रचेताः—'विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्यनुव्रजेत्' ॥ अथ पिण्डप्रतिपत्तिः। हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—"पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः । पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥ उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति । प्रजां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥ प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति । आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः ॥ ३॥ " आश्वलायनः— 'वीरं मे दत्त पितरः' इति पिण्डानां मध्यमं पत्नीं प्राशयेत् ॥ 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथा यमरपा असत्' इति भर्त्रा दत्तस्यादानादाय द्वितीयेन प्राशनम् ॥ आपस्तम्बस्तु दाने मन्त्रमाह—' अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व ' इति मध्यमं पत्न्यै प्रयच्छति इति ॥ प्राशनेपि 'यथेह पुरुषो असत्' इति तद्वद्द्वितीयः पाठोऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः ॥ तत्रैव शंखः—'पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्तवान्विता ॥' कलिकायां छागलेयः— प्राचीनावीतिनाऽऽमन्त्र्य पत्नीः पिण्डो विभज्यते । प्रतिपत्न्यस्यमन्त्रस्य कर्तव्या-

---

मेरे वंशके पितर आपकी कृपासे स्वर्गको गये, ऐसे श्रेष्ठ आपको मैंने पत्रशाक आदिके देनेसे क्लेश दिया उसको आपने चित्तसे भूलकर क्षमा करनेको योग्य हो, प्रचेताका कथन है कि, भक्तिसे युक्त हो ब्राह्मणोंको विदा कर और सीमाके अन्ततक उनके पीछे पहुँचादे ॥ अब पिंडकी प्रतिपत्ति लिखते हैं । हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, प्रथम पिण्ड तो मनुष्य भोगके अर्थ अग्निमें डाले, द्वितीय पिण्डको प्रजार्थी मनुष्य मंत्र पढकर पत्नीको दे, उत्तम गतिकी इच्छावाला सदैव गौओंको दे, प्रजा बुद्धि यश कीर्तिकी इच्छावाला जलमें डालदे, दीर्घ अवस्थाकी इच्छावाला काकोंको दे वा जलमें खडा होकर आकाशमें दक्षिणाभिमुख होकर फेंकदे, आश्वलायनने कहा है कि, 'वीरंमें दत्त पितरः' (हे पितरो मुझे वीरपुत्र दो) यह कहकर पत्नीको मध्यम पिंडका भक्षण करावे, फिर 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजं " यथा यमरपा असत् ' इन मंत्रोंमें दिये पिंडका प्रथम मंत्रसे ग्रहण और दूसरेसे भक्षण करै ॥ आपस्तम्बने तो दानका मंत्र लिखा है कि, 'अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व ' इस मंत्रसे मध्यम पिंड पत्नीको दे, भक्षणका भी मंत्र है कि, ' यथेह पुरुषो असत्' यह आपस्तंबका पाठ है, अन्योंका मंत्र उन २ की शाखाओंमें जानना, वहांही शंखका कथन है कि, मध्यके पिंडको ऋतुवाली स्त्री भक्षण करले कलिकामें छागलेयका कथन है कि, अपसव्य होकर पत्नियोंको बुलाकर पिंडका विभाग करे अहां तो 'प्रतिपत्नी' इस मंत्रके पढनेकी आवृत्ति करनी ॥ माधवीयमें विष्णुधर्मका कथन

वृत्तिरत्र तु ॥" माधवीये विष्णुधर्मे-"तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे समाहितः । प्रक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥" अग्नौ अगाधे जले वा प्रक्षिपेत् विप्रेषु सत्सु भोजनदेशावस्थितेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेन्नोद्वासयेत् ॥ याज्ञवल्क्यः-"पिण्डांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपिवा ॥" वृहस्पतिः-"अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा । तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ॥ पिण्डोपघातप्रायश्चित्तनिर्णयः । अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे देवलः "श्वसृगालखरैः पिण्डः स्पृष्टो भिन्नः प्रमादतः । कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥" जातूकर्ण्यः पूर्वश्लोकान्ते-"तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं प्रकल्पयेत् ॥ पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि ॥-" काकस्पर्शे तु न दोषः पिण्डोपघातं प्रक्रम्य-"धनस्य तु विनाशः स्यात् काकस्पर्शादिकं विना" इति तत्रैव श्लोके गौतमोक्तेः ॥ स्मृतिदर्पणे अत्रिः-"मार्जारमूषकस्पर्शे पिंडे च द्विदलीकृते । पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥" बौधायनः-श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते । प्राजापत्यं चरित्वाथ पुनः पिण्डं समाचरेत् ॥" बोपदेवोऽप्येवमाह-"दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम् ॥" शेषप्रतिपत्तित्वेन पिण्डावृत्तौ मानाभावादिति मैथिलाः ॥ तन्न ॥ सपिण्डीकरणादौ शेषनाशे संयोजना-

है कि, तीर्थश्राद्धमें सदैव पिंडोंको तीर्थमें सावधान होकर डालदे, और ब्राह्मणोंके विद्यमान रहते उनके उच्छिष्टका मार्जन न करै, अग्नि, वा गहरे जलमें फेंकदे, ब्राह्मण भोजनके स्थानमें बैठे होंय तो उनके उच्छिष्टका मार्जन न करै, न उन्हें बाहिर निकाले, याज्ञवल्क्यका कथन है कि, गौ बकरा ब्राह्मणोंको दे, वा अग्नि, जलमें फेंक दे, बृहस्पतिका कथन है कि, पत्नी परदेशमें हो रोगयुक्त वा गर्भिणी होय तो उस पिंडको बूढे बैल वा बकरेको भक्षण करनेको दे ॥ अब पिण्डके उपघात (नाश) लिखतेहैं । प्रायश्चित्तकाण्डमें देवलने कहाहै कि, कुत्ता, गीदड, गधा, इन्होंने प्रमादसे पिण्डस्पर्श किया वा तोडदिया होय तो कर्ताकी अवस्थाका नाश होताहै, और प्रेतको नहीं मिलता, जातूकर्ण्यने लिखाहै कि पूर्वश्लोकके अन्तमें उस दोषकी शांतिके निमित्त प्राजापत्य व्रत करै, कर्ता फिर स्नान करके विधिसे पिण्ड बनावै काकके स्पर्शमें दोष नहीं, कारण कि, पिण्डनाशके प्रकरणमें उसी श्लोकमें गौतमका कथन है कि, पिंडका नाश काकके स्पर्शको छोडकर होजाय तो धनका नाश होताहै, स्मृतिदर्पणमें अत्रिका कथन है कि, बिलाव मूसाके स्पर्शसे पिंड फूटजाय तो उसी पाकसे पुनः पिंडदे, बौधायनका कथन है कि, कुत्ता चांडाल आदिके स्पर्शसे पिण्ड नष्ट होजाय तो प्राजापत्य व्रत करके फिर पिंडदान करै ॥ बोपदेवने भी ऐसेही कहाहै कि, प्राजापत्य मात्र तो किसी और दिनमें करै, शेष कर्मकी प्रतिपत्ति (सिद्धि) उससेही होजायगी, पिण्डकी आवृत्तिमें कोई प्रमाण नहीं, यह मैथिलोंका मत है, सो ठीक नहीं, कारण कि, सपिण्डीकरण आदिमें शेष

दिलोपापत्तेः ॥ तेन वचनाद्वमन इवात्रापि तन्मात्रपिण्डदानावृत्तिः ॥ अतएव– 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनात् ' इत्यापस्तम्बसूत्रम् ॥ रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वेद्युः कार्यम् ॥ श्राद्धसमाप्तिस्तु परदिने एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरिदत्तेन व्याख्यातम् ॥ तस्मात् पाकान्तरेण पिण्डदानमात्रं कार्यम् ॥ अथ पिण्डनिषिद्धकालः । स च प्रायेण महालयादिनिर्णये पूर्वमुक्तः ॥ हेमाद्रौ बृहत्पाराशरः–" युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा ॥ भरणीषु च कुर्वीत पिंडनिर्वपणं न हि ॥ " स्मृतिरत्नावल्याम्–" पुत्रे जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन पिण्डनिर्वपणादृते ॥ " तत्रैव कात्यायनः– "वृद्धेरनन्तरं चैव यावन्मासः समाप्यते । तावत् पिण्डान्नैव दद्यान्न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " बौधायनः–' संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्धमेव च ॥ ' तथा– "भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " त्रिस्थलीसेतौ कार्ष्णाजिनिः–'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । उत्तरार्द्धं प्राग्वत् ॥ " वृद्धिमात्रे तथान्यत्र पिण्डदाननिराक्रिया । कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मणाम् ॥" हेमाद्रौ ज्योतिःपराशरः–"विवाहे विहिते मासां

कर्मका नाश होनेपर पिंड मिलानेका लोप होजायगा, तिससे वचनके बलसे वमनके समान यहां भी पिंडदानकी पुनः आवृत्ति होतीहै, इसीसे रात्रिमें श्राद्ध न करै, और जब प्रारम्भ होजाय तो भोजन समाप्तिसे प्रथम न करै, यह आपस्तंबका सूत्र है, इसकी व्याख्या हरदत्तने यह लिखी है कि, पहिले दिन रात्रिको भोजन करै और श्राद्धकी समाप्ति तो दूसरे दिनमें करै, और समाप्तिपर्यन्त कर्ता व्रत करै, तिससे अन्यपाक बनाकर कर्ता पिंडदान मात्र करै ॥ अब पिंडमें निषिद्धकाल लिखतेहैं, वह काल महालय आदिके निर्णयमें पहिले कह दिया, हेमाद्रिमें वृद्धपराशरका कथन है कि , युगादि मघा विषुवत् अयन भरणी इनमें पिंडदान न करै, स्मृतिरत्नावलीमें लिखाहै कि, पुत्रजन्म व्यतीपात और चन्द्रमा सूर्यका ग्रहण इनमें पिंडदानको छोडकर यत्नसे श्राद्ध करै, वहांही कात्यायनका कथन है कि, पुत्रजन्मके पीछे जबतक मासकी समाप्तिहो तबतक पिंडदान और तिलोंसे तर्पण न करै; बौधायन सूत्रमें लखोह कि, तैसेही अन्यसंस्कारोंमें भी मास और अर्द्धमासतक न करै, तैसेही वाक्य है कि, रविवार भौमवार त्रयोदशी नन्दा शुक्रवार मघा नक्षत्रमें पिंडदान, मट्टीसे स्नान तिलतर्पण इनको न करना चाहिये ॥ त्रिस्थलीसेतुमें कार्ष्णाजिनिने लिखाहै कि, विवाह व्रत मुंडनमें वर्ष, छः महीने वा तीन महीनेतक पिण्डदान आदि पूर्वोक्त तीनोंको न करै, इसी प्रकार और भी वृद्धिमात्रमें पिण्डदानका निषेध गर्गआदि मुनियोंने करनेवालोंको कहाहै, हेमाद्रिमें पराशर ज्योतिषियोंके वाक्य हैं कि, विवाह किये पीछे सम्पूर्ण सपिण्ड बारह महीनेतक और

स्त्यजेयुर्द्वादशैव हि । सपिण्डाः पिण्डनिर्वापं मौञ्जीबन्धे षडेव हि॥'' तत्रैव-महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा' इति ॥ 'मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् हविरुभयत्ववद्विवक्षितम् ॥ तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिकेऽपि पिण्डदानं कार्यम्' इति केचित् ॥ सपिण्डीकरणं नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृत उक्तम् ॥ क्षयाहे विशेषः संग्रहे-''मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा । तिलैः पिण्डाः प्रदातव्यास्त्वन्यश्राद्धे विवर्जयेत् ॥ '' अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ रामकौतुके-''नन्दाश्वकामरव्यारभृगवामिपितृकालभे । गण्डवैधृतिपाते च पिण्डाहस्त्याज्याः सुतेप्सुभिः॥''विश्वरूपनिबन्धे-'' तिथिवारप्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन॥''अन्यदुक्तं प्राक्॥ उच्छिष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वसिष्ठः-''श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् । श्च्योतन्ते वै सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकृतोदकाः ॥'' व्यासः-'उच्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः ॥' इदं गृहान्तरसत्त्वे ॥ एतद्गृहे तु मनुः-''उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥'' बलि

यज्ञोपवीतमें छः महीनेतक पिण्डदान न करै, यहांही लिखाहै कि, महालय गयाश्राद्ध मातापिताका मरणदिन जिस किसी मनुष्यकी सपिण्डी, इनमें पिण्डदान वह भी मनुष्य करै, जिसका विवाह हुआहो इस वचनमें ' मातापित्रोः ' यह क्षयीके दिनका विशेषण, हवि दोनोंके निमित्त है, इसके समान विवक्षित नहीं है तिसके भाई पितृव्य आदिकके वार्षिक श्राद्धमें कोई पिंडदान करनेको कहतेहैं सपिंडीकरण नवश्राद्ध षोडशश्राद्धके उपलक्षणार्थ है, यह निर्णयामृतमें लिखाहै ॥ मरणदिनका विशेष संग्रहमें लिखा है, पिताके वार्षिक और विवाह आदिमें सदैव तिलसे पिंड देने चाहिये, अन्य श्राद्धमें वर्जितहै, इनमें मूल विचारने योग्य है, अर्थात् नहीं है । रामकौतुकमें कहा है कि, नन्दा अश्विनी रविवार भौमवार वा शुक्रवार कृत्तिका पिताके मरणका नक्षत्र गंड वैधृति व्यतीपातमें पुत्रकी इच्छावाला पिंडदान न करै, विश्वरूप निबन्धमें लिखा है कि, तिथिवारका किया जो दोष कहा है वह उसी श्राद्धके विषयमें है, जो तिथिवारके निमित्त हो अन्य श्राद्धमें किसी प्रकार नहीं, और तो पहिले कह आये हैं ॥ उच्छिष्टका फेंकना हेमाद्रिमें वसिष्ठने लिखा है कि, पहिलेही श्राद्धके उच्छिष्ट नहीं फेंकना, कारण कि, उच्छिष्टमेंसे जो अमृतकी धारा गिरती है उनको वे पान करतेहैं, जिनको जलदान नहीं प्राप्त हुआ, व्यासका कथन है कि, जबतक सूर्य न छिपै तबतक उच्छिष्टका मार्जन न करै, यह भी तब है, जब दूसरा घरहो, एक घरमें तो मनुका यह वाक्य है कि, उस समयतक उच्छिष्ट रहती है जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो, फिर गृहबलि करै

वैश्वदेवादि नित्यकर्मेति मेधातिथिः ॥ ब्रह्माण्डे–'शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत् ॥' तथा–' कामं दद्याच्च सर्वं तु शिष्याय च सुताय च ॥ भोक्तुरिति शेषः ॥ जातूकर्ण्यः–'द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत् ॥' अथ वैश्वदेवादिनिर्णयः । अत्र मामकः श्लोकः ॥ " श्राद्धेऽनग्निककर्तृकेऽग्निकरणात्पश्चाज्जुहोतिर्बलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विकिरतः पश्चात् पृथक्त्वे पचेः । श्राद्धान्ते त्वथवा महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात्क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यतः शुभविधावादौ तथा साग्निके ॥ " अस्यार्थः–साग्नेः पृथक्पाकेन सर्वत्रादौ वैश्वदेवः ॥ " पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च । वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदैविकम् ॥ २ ॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ अत्र साग्निक आहिताग्निरिति हेमाद्रिः ॥ "श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः । एकादशादिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते" इति हेमाद्रौ शालंकायनोक्तेश्च ॥ तत्रैव परिशिष्टे–"संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च । अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि ॥" स्मार्ताग्निमतां तद्-

---

यहही धर्मकी व्यवस्था है, बलिसें वैश्वदेवादि नित्य कर्म लेना यह मेधातिथिका मत है, ब्रह्मांडपुराणमें लिखा है कि, शूद्रको और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो उसको उच्छिष्ट न दे, तैसेही वाक्य है कि, शिष्य और पुत्रको यथेच्छ देकर भोजन करै, जातूकर्ण्यका कथन है कि, ब्राह्मणोंके भोजनका शेष पवित्र भूमिमें गाडदे ॥ अब वैश्वदेवादिको कहते हैं, उसमें मेरा बनाया श्लोक है, और उसका यह अर्थ है कि, जिस श्राद्धका अग्निहोत्री न हो उसमें हवन और बलि अग्नौकरणके पश्चात् होते हैं, वा पृथक् पाक होय तो, विकिरसे पीछे होते हैं और महालयमें श्राद्धके अन्तमें, क्षयाहमें भोजनके पीछे, अमावस्याको श्राद्धके उपरान्त और श्राद्धका कर्ता अग्निहोत्री होय तो सब शुभविधियोंके मध्यमें हवन और बलि होतेहैं, साग्निक ब्राह्मण पृथक् पाक बनाकर सब स्थानमें पहिले वैश्वदेव करै, कारण कि, लौगाक्षिने स्मृतिमें कहा है, पक्षांत कर्मसे और वैश्वदेवसे निवृत्त होकर साग्निक पिण्डयज्ञ करै, और फिर अन्वाहार्य कर्मको करै, पितरोंके निमित्त पाक दे और बनावै और विश्वेदेवाओंके निमित्त बनावै विश्वेदेवाओंका पाक पितरोंको और पितरोंका पाक विश्वेदेवाओंको न देना, यहां साग्निक आहिताग्नि हेमाद्रिने लिखा है हेमाद्रिमें शालंकायनका भी कथन है कि साग्निक श्राद्धसे पहिलेही एकादशाह श्राद्धको त्यागकर वैश्वदेव करै, कारण कि वहां अन्तमेंही लिखा है ॥ वहांही परिशिष्टका कथन है कि, पार्वण वा एकोद्दिष्ट श्राद्ध होय तो प्रथम और एकादशाह आदि होय तो पीछे होता है, स्मार्त अग्निवाले,

हितानां वाग्नौकरणोत्तरं विकिरोत्तरं वा होममात्रं पृथक्पाकेन भूतयज्ञादिं तु श्राद्धान्त एव ॥ अत्र मूलं हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम् ॥ सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेवनित्यश्राद्धादीति तृतीयः ॥ "श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः । कुर्याद्भिक्षां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा ॥" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ ततः श्राद्धशेषात् । 'श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्' इति चतुर्विंशतिमताच्च ॥ एवं वैश्वदेवकालत्रयस्य अपरार्के शांखायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैव व्यवस्थोक्ता ॥ "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये । एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ।" इति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषां श्राद्धान्ते एवेति मेधातिथिस्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः ॥ वोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं श्राद्धमुक्त्वा 'उच्छेषणं तु' इति पूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्बह्वृचानां श्राद्धान्त एव । मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव वैश्वदेवमाह ॥ कातीयानां तु श्रौतस्मार्ताग्निमतामादावेकेनैव पाकेनेति कर्कः ॥ अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः ॥ 'पञ्चयज्ञाश्च अन्ते च' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्व्यवस्था ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः–"ततो नित्य-

---

और अग्निसे हीन अग्नौकरणके वा विकिरके पीछे हवन मात्र करै, भूतयज्ञ आदिको तो पृथक् पाकसे श्राद्धके अन्तमें करै, इसमें मूल हेमाद्रि चन्द्रिका आदिमें स्पष्ट है अथवा सब मनुष्य श्राद्धके पाकसे श्राद्धके अन्तमें वैश्वदेव नित्य-श्राद्धआदि करै, यह तीसरा मार्ग है, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृति है कि विधिसे श्राद्धको करके पीछे वैश्वदेव करै, फिर उसी अन्नमेंसे भिक्षा और हन्तकार आदि दे, चतुर्विंशतिका भी कहाहै कि, श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नसे वैश्वदेव करै इस प्रकार वैश्वदेवके तीन कालोंकी व्यवस्था अपरार्क सांख्यायन परिशिष्टके वचनोंको जानकर कही, और वृद्धि श्राद्धकी आदिमें और क्षयके अन्तमें और अमावस्याके मध्यमें महालय और एकोद्दिष्टके निपट-नेपर वैश्वदेव लिखा है इत्यादि बहुत स्मृतियोंमें कहनेसे सबके मतमें श्राद्धके अन्तमेंही बलि वैश्वदेव करै यह मेधातिथि स्मृतिरत्नावलि आदि बहुत कहतेहैं ॥ वोपदेवने तो यह लिखाहै कि, वृत्तिकारने विसर्जन पर्यन्त कर्म कहकर 'उच्छेषणं तु' इस पूर्वोक्त मनुवाक्यके उदाहरणसे बह्वृचोंका तो वैश्वदेव श्राद्धके अन्तमेंही होता है, मध्य पक्ष तो अन्य शाखावालोंके निमित्त है, हेमाद्रिने तो वृद्धिमें भी वैश्वदेव पीछे ही कहा है. कातीय और स्मार्त श्रौता-ग्निवालोंको तो एक पाकसे पूर्वमेंही वैश्वदेव करना यह कर्क कहते हैं, औरके मतमें तैत्ति-रीय साग्निकोंको तो सर्वत्र आदिमें वैश्वदेव होता है, और पञ्चयज्ञ अन्तमें होतेहैं यह सुदर्शन भाष्यमें लिखा है इन दो पक्षोंकी पूर्वके समान व्यवस्था जाननी, हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका

क्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोऽतिथीन्। ततस्तदन्नं भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः॥" ततः श्राद्धशेषात्॥ नित्यक्रियां नित्यश्राद्धम्॥ तत्र–'पृथक्पाकेन नैत्यकम्' इति तेनैवोक्तेः पाकैक्ये विकल्पः॥ अथ नित्यश्राद्धम्। हेमाद्रौ व्यासः–'एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही॥' अपीत्यनुकल्पः॥ प्रचेताः–"नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम्। न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम्॥" अत्र–'निर्दिश्य भोजयित्वा तु किंचिद्दत्त्वा विसर्जयेत्' इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणाविकल्पः। यत्तु–"नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्जितम्। दक्षिणारहितं चैव दातृभोक्तृव्रतोज्झितम्॥" इति काशीखण्डे॥ तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः॥ भविष्ये–"आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम्। ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा न चैव हि॥ दातृणामथ भोक्तृणां नियमो न च विद्यते॥" एतद्दिवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम्॥"दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै॥ यामिन्याः प्रहरं यावत्तावत्कर्माणि कारयेत्॥" इति बृहन्नारदीयोक्तेः॥ "रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत्। ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः" इति पृथ्वीचन्द्रधृतसंग्रहोक्तेश्च॥ न च दार्शिकाब्दिकाद्यपि रात्रौ स्यादिति वाच्यम्॥ इष्टापत्तेः॥ तस्य तिथिसन्धित्वात्॥ 'संध्या रात्रौ न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विच-

कथन है कि, फिर नित्यक्रिया करके अतिथियोंको जिमावै, फिर भृत्य आदि सहित मनुष्य उस श्राद्धके अन्नका भोजन करै, नित्य क्रियासे नित्यश्राद्धका ग्रहण है यह पृथक् पाकसे नित्य करना, यह उसनेही कहा है एक पाक होय तो विकल्प जानना॥ अब नित्य श्राद्धका वर्णन करते हैं। हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि, गृहस्थी छहों पितरोंके निमित्त एक भी ब्राह्मणको जिमा दे, यहां एक कहना अनुकल्प (गौण) है कि, नित्यश्राद्धमें निमंत्रण हवन आवाहन विसर्जन पिण्डदान विकिर दक्षिणा न दे, यहां जानकर भोजन कराकर विसर्जन करै, यह प्रचेतानेही लिखा है इससे दक्षिणामें विकल्प है जो किसीने यह कहा है कि, नित्यश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन नियमोंसे वर्जितदक्षिणासे हीन दाता भोक्ताओंके विना होता है यह काशीखंडमें लिखा है, सो ब्राह्मणके अभावमें है, यह पृथ्वीचन्द्रमें लिखा है॥ भविष्यका कथन है कि, आवाहन स्वधाकार पिण्ड अग्नौकरण आदि, ब्रह्मचर्य आदि नियम, विश्वेदेवा दाता और भोक्ताके नियमसे सब नित्यश्राद्धमें नहीं होते, यह शास्त्रोक्त होनेसे दिनमें न बनसके तो रात्रिमें भी करना, कारण कि, बृहन्नारदीयका वचन है कि, दिनमें कहे कर्म प्रमादसे न किये हों तो रात्रिके पहिले प्रहरमें करने चाहिये, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्य है कि, ब्रह्मयज्ञ और सूर्यके कर्म (सोरसूक्त) को छोडकर दिनके कर्म रात्रिमें प्रहरपर्यन्त करके, यदि कोई शंका करै कि, वार्षिक और अमावास्या आदिके श्राद्धभी रात्रिमें होजायगे सो उचित नहीं, कारण कि, वे रात्रिमें इष्ट हैं, बुद्धिमानोंको संध्या और रात्रिमें श्राद्ध करना उचित नहीं,

क्षणैः' इति विष्ण्वाद्यै रात्रौ निषेधात् ॥ अत एवाल्पद्वादश्यां-' उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा ' इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नापकृष्यते ॥ भिन्नविषयत्वादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ नित्यं त्वपकृष्यते ॥ अन्वहमित्युक्तेस्तिथिसावधिकाभावात् ॥ यथा च सुदर्शनभाष्ये-'परपक्षे पित्र्याणीति नियमेपि नित्यश्राद्धत्वे संवत्सरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ बलाच्छुक्लपक्षेपीत्युक्तम् ॥' तथा रात्रावपि ॥ तथा च माधवेन प्रतिपत्प्रकरणे स्पष्टमुक्तम् ॥ वयं चाग्रे वक्ष्यामः ॥ अस्य दिनेऽकरणे लोप एव ॥ ' रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत ' इति निषेधादिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ पात्राभावे कौर्मे-' उद्धृत्य वा यथाशक्ति किंचिदन्नं प्रकल्पयेत् ॥ ' तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः-भिक्षुकाभावे अन्नं गोभ्यो दद्यादग्नौ वा प्रक्षिपेत्' इति॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे-"नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसङ्गाद्यत्र सिद्ध्यति। श्राद्धान्तरे कृतेऽन्यत्र नित्यत्वात्तन्न हापयेत् ॥ " षड्दैवतं पृथङ्नेत्यर्थः ॥ मात्स्ये-"ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥ " सर्वं पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपीत्यर्थः । एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोपि भोजनम् ॥ अस्य वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः ॥ एवं ग्रहणवेधेपि ॥ यत्त्वनाहिताग्नेरमाषमांसं

ऐसा विष्णुआदिमें रात्रिका निषेध है इस कारण थोडी द्वादशीमें उषःकालमें प्रात और मध्याह्नके दोनों कार्य करे, इन वाक्योंसे त्रयोदशी श्राद्ध अपकृष्ट नहीं होता भिन्न विषय होनेसे यह मदनरत्नमें कहा है नित्य तो खिचता है ' अन्वहम् ' कहनेसे तिथिके सर्वाधिकका अभाव है ॥ जैसा सुदर्शनभाष्यमें कहा है परपक्षमें पितरोंको नियमपूर्व नित्यश्राद्ध होनेसे संवत्सरमें अत्यन्तके संयोगमें द्वितीया है बलसे यह शुक्लपक्षमें भी कहा है और रात्रिमें भी, सोई माधवने प्रतिपत् प्रकरणमें स्पष्ट कहा है और हम भी आगे कहेंगे, इसको दिनमें न करै तो लोपही हो जायगा कारण कि, रात्रिमें श्राद्धका निषेध है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, पात्रके न मिलनेसे कूर्ममें कहा है यथाशक्ति लेकर कुछ अन्न कल्पना करै विष्णुने इसकी प्रतिपत्ति कही है कि, भिक्षुक न होय तो वह अन्न गौओंको दे, वा अग्निमें फेंक दे, हेमाद्रिमें नागरखंडमें कथन किया है कि, जहां प्रसंगसे होसके वहां नित्यश्राद्ध करै, जहां अन्य श्राद्ध न किया होय तो नित्यश्राद्धको न त्यागे अर्थात् पार्वणमें पृथक् न करै, और अन्यत्र करै ॥ मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, फिर विश्वेदेवाओंके अन्तमें भृत्य, पुत्र, अतिथि इनसे संयुक्त यजमान पितरोंके शेष संपूर्ण अन्नका भोजन करैं, सर्व कहनेसे पर्वमें निषिद्ध मांस माष आदि भी लेना इसी प्रकार कृष्णपक्षकी एकादशी आदिमें गृहस्थीको भी भोजन करना कारण कि, इसको शास्त्रोक्त होनेसे निषेध प्रवृत्त नहीं होता इसी प्रकार ग्रहणके वेधमें भी जानना उचित है

---

१ श्राद्ध करने उपरांत मदसे विह्वल हो जो परघरमें भोजन करताहै उसके पितर पिण्डजलक्रियासे लुप्त हो पतित होते हैं ॥

व्रतयेदित्युक्तं तद्धेयमेव श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात् ॥ देवलः–" श्राद्धं कृत्वा तयोर्मर्त्यो न भुंक्तेऽथ कदाचन । देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ॥ " शिवरात्र्येकादश्यादौ त्ववघ्राणमेवेत्युक्तं प्राक् । यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तमयाचितं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ जातूकर्ण्यः–"अहन्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः । अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपाके च सेविते॥" श्राद्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः–"पित्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम् । व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितम् ॥ " अन्ये भिन्नगोत्राः । व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥ " श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः । सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥ " इति तत्रैवोक्तेः ॥ तत्रैव जाबालिः–" विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत् । प्राजापत्याविशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ॥ " यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम् । अस्यापवादमाह स एव–"श्वशुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः । ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते ॥ इति केचित्प्रशंसन्ति मुनयस्तदसांप्रतम् ॥ २ ॥" विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ॥

है, जो किसीने यह लिखा है कि अनाहिताग्नि उरद और मांसको त्याग दे, सो त्यागने योग्य है कारण कि, वेदोक्त होनेसे माषादिका भक्षणही बलवान् है, देवलका कथन है कि,जो मनुष्य श्राद्ध करके भोजन नहीं करता उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते, शिवरात्रि और एकादशी आदिमें तो सूंघले यह पहले लिख आये हैं, जहां व्रत अनावश्यक है, वहां एकभक्त वा अयाचित करना यह हेमाद्रि कहते है ॥ जातूकर्ण्यका कथन है कि, श्राद्ध किये पीछे, द्विजाति दिनमेंही भोजन करलें अन्यथा वह श्राद्ध और पर पाकका श्राद्ध आसुर होते हैं, श्राद्धके शेष भोजनका कहीं निषेध कहा है हेमाद्रिके प्रायश्चित्त काण्डमें मार्कण्डेयका कथन है कि, पिता आदि और उनके अन्यके श्राद्धका शेष भोजन व्रती, विधवा, संन्यासी इनको वर्जित है, यहां अन्यसे भिन्नगोत्री और व्रतीसे ब्रह्मचारीका स्वीकार है वहांही यह कहा है कि, जो श्राद्धशेषको खानेवाले हैं वे नरकगामी हैं सगोत्री, सकुल्य और ज्ञातियोंके श्राद्धमें दोष नहीं यह वहांही कहा है ॥ वहांही जाबालिका कथन है कि, ब्राह्मण तो अन्यके घरमें श्राद्धशेष अन्नका भोजन करै तो प्राजापत्य व्रतसे श्राद्धकी शुद्धि होती है, और अपनी जाति और गोत्रका दोष नहीं, संन्यासियोंको मुण्डन और एक १००००० लक्ष ॐ कारका जप करना यह उसी स्थलमें है इसका अपवाद उसनेही लिखाहै, श्वशुर, गुरु, मामा, ज्येष्ठ भाई और पुत्र और ब्रह्मनिष्ठ योगी इनके श्राद्धमें शिष्ट अन्नका भोजन करके दोष नहीं, कोई मुनि इसकी प्रशंसा करतेहैं वह अनु-

हेमाद्रौ जाबालिः-"ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम्। रत्यौषधिपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत्॥" पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः-"न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने॥ श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि॥" इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पार्वणश्राद्धम्॥ अथ श्राद्धानुकल्पः॥ तत्र विप्रालाभे-"भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम्। दैवं कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत्" इति शंखोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः॥ विप्राभावे दर्भवटुः॥ "निधाय वा दर्भवटूनासनेषु समाहितः॥ प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्" इति देवलोक्तेः॥ अशक्तावामश्राद्धम्॥ "आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे" इति कात्यायनोक्तेः॥ पृथ्वीचन्द्रोदये जमदग्निः-"यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सन्नाग्निरथापि वा। आमश्राद्धं तदा कुर्याद्धस्तेऽग्नौकरणं भवेत्॥" कौर्मे-"अनग्निरधनो वापि तथैव व्यसनान्वितः। आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्वृषलस्तु सदैव हि॥" आहिताग्नौ प्रवासस्थे तत्पत्नी गृहे दर्शं ऋत्विगादिना कारयेत्॥ "अमावास्यादि नियतं प्रोषिते धर्मचारिणी। पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना" इति लघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रोदयः॥ आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः॥ सुमन्तुः-"पाका-

---

चित है, अन्य विशेष वहांही जनना, हेमाद्रिमें जाबालिका कथन है कि, ताम्बूल दँतौन स्नेहसे स्नान रति औषध पराया अन्न भोजनका त्याग श्राद्धका कर्ता इनको त्यागदे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें आचार्यका कथन है कि, श्राद्धके दिन यत्नसे शूद्रको न जिमावे और न सब श्राद्धोंमें श्राद्धका शेष दे। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पार्वणश्राद्धनिर्णयः॥ अब अनुकल्प (गौण) कथन करते हैं उनको ब्राह्मण न मिले तो एकभी पंक्तिपावन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणको जिमा दे, देवताओंके निमित्त नैवेद्य देकर पश्चात् उस ब्राह्मणको जिमावे, इस शंखके वाक्यसे पहिले एक ब्राह्मण कहा है ब्राह्मण न मिले तो कुशाका वटुभी पहिले लिखाहै, कारण कि, देवलने यह लिखाहै कि, सावधानीसे कुशाके वटु बनाकर आसनोंपर बैठावे और प्रश्न और उत्तरोंसहित श्राद्धविधिको करे, अशक्त हो तो कच्चा श्राद्ध कहाहै, आपत्ति अग्निका अभाव तीर्थ परदेश पुत्र उत्पत्ति भार्याके रजस्वला होनेपर आमश्राद्ध करे, यह कात्यायनने लिखाहै॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें जमदग्निका कथन है कि, जबतक अग्निहोत्री न हो वा अग्नि नष्ट होगईहो तबतक आमश्राद्ध करे और हाथमें अग्नौकरण करे, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, अग्निहोत्रीसे भिन्न धनहीन और दुःखित ब्राह्मण और शूद्र यह सदैव आमश्राद्ध करे, यदि अग्निहोत्री परदेशमें हो और उसकी पत्नी घरपर होय तो अमावस्याका श्राद्ध ऋत्विक् आदिका करना कारण कि, लघुहारीतका कथनहै कि, पति परदेशमें होय तो धर्मचारिणी स्त्री अमावस्या आदिके नियत श्राद्धको अन्य ऋत्विग् आदिसे करावै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, इस श्लोकमें आदि पद वार्षिक और सब पार्वणोंके निमित्त है, यह शूल-

भावेधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप। अपत्नीनां महाबाहो विदेशगमनादिभिः॥ सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः॥" प्रचेताः-"स्त्रीशूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ। आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु॥" स्वयं पचतीति स्वपचः अपत्नीकः। विष्णूशनसौ-"आत्मनो देशकालाभ्यां विप्लवे समुपस्थिते। आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसंभवे॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः। न पक्वं भोजयेद्विद्वान् सच्छूद्रोपि कदाचन॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं लभेत्॥ ३॥" अत्र प्रवासतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरत्नावल्यादयः॥ अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु-'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आमादि कार्यम्। पाकसंभवे त्वन्नेनैवेत्याहुः॥ अत एव पाकश्राद्धमुक्त्वा-"एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु। भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः" इति मात्स्ये निरग्नेरपि पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकल्पतरू। एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर इत्यन्ये॥ 'एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्' इति लघुहारीतीयमपि साग्नेरेव॥ निरग्नेर्मह्वैकोद्दिष्टमप्या-

---

पाणि कहतेहैं, सुमन्तुने कहाहै कि, हे महाभुज! पाक बनानेवाली स्त्री न होय तो ब्राह्मणोंका पाक बनानेका अधिकार है, और विदेशमें श्राद्ध करै, तो भी ब्राह्मणोंको पाक बनानेका अधिकार बुद्धिमान् मनुष्योंने सदैव शूद्रोंको आम श्राद्ध करना कहा है॥ प्रचेताका कथन है कि, स्त्री शूद्र और स्वयंपाक बनानेका और जातकर्ममें, पार्वणकी विधिसे सदैव आमश्राद्ध करै, विष्णु और उशनाका कथन है कि, यदि देश वा कालसे अपने यहां कोई उपद्रव होजाय तो आपत्ति अग्निका अभाव तीर्थ वा परदेशमें हो और चंद्रमा सूर्यके ग्रहणमें विशेष कर आम श्राद्ध करै, और श्रेष्ठ शूद्रभी ब्राह्मणोंको कदाचित् पक्वान्न न जिमावै, और जिमावै तो पापभागी होताहै और श्राद्धका फल उसको नहीं मिलता, यहां परदेश तीर्थ ग्रहण आदिमें आम वा हेम श्राद्धही होताहै, पाकश्राद्ध नहीं होता, यह हेमाद्रि और रत्नावली आदिका मत है॥ अपरार्क विज्ञानेश्वर आदिने तो यह कहा कि, पाकके अभावमेंही द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखा है, इस सुमंतुके वाक्यसे साग्निक हो वा निराग्निक हो प्रवास आदिके विषे सब स्थानमें पाकके अभावमेंही आम आदि श्राद्ध करै, पाक होसके तो अन्नसेही करै, इसीसे पाकश्राद्धको कहकर इस मत्स्यपुराणके वाक्यसे निरग्निककोभी पाकसे श्राद्ध कहा है, यह शूलपाणि और कल्पतरु लिखते हैं कि, इस संपूर्ण श्राद्ध मात्रको यज्ञोपवीत और भार्यासहित और परदेशमें स्थित भी सब पर्वोंमें सदैव करै, एकोद्दिष्ट सदैव पाकसे स्वयं करना, यह लघुहारीतका कथन भी साग्निकके निमित्त है, निराग्निकको तो उसप्रकार एकोद्दिष्ट भी आम अन्नसे कहा है,

मेन ॥ शूद्रस्य तु दशाहपिण्डाद्यामेनेति हलायुधः ॥ उत्सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात् ॥ मरीचिः—"श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ॥" स्मृतिदर्पणे—"मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् ॥ आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥" हेमाद्रौ व्यासः—"आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम् । द्विगुणं त्रिगुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् । सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेप्यसौ विधिः । आवाहनादि सर्वं स्यात् पिण्डदानं च भारत ॥ दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यः शृतं वाशृतमेव वा । तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥२॥" पक्षान्तरमाह स एव—"आमं ददाद्धि कौन्तेय तदामं द्विगुणं चरेत् । त्रिगुणं चतुर्गुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत्॥" स्मृत्यर्थसारे समप्युक्तम् । विष्णुपुराणे वाराहे च—"असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः । प्रदद्यात्तु द्विजातिभ्यः स्वल्पामपि च दक्षिणाम् ॥" अत्र स्वशक्तितः इत्यस्मात्समलाभः । आश्यत इति आशः॥ षट्त्रिंशन्मते—"आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत् । गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा ॥ पिण्डान् दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः—"आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सदा । हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः ॥"

शूद्रका तो दशाहके पिंड आदि आम अन्नसे करने यह हलायुध कहते हैं जिनकी अग्नि नष्ट होगई हो उनको भी पूर्वोक्त जमदग्निके वाक्यसे आमश्राद्धही करना चाहिये ॥ मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय तो ब्राह्मणको मासिक और वार्षिकको छोडकर अमावस्या आदिमें आमश्राद्ध करना लिखा है, स्मृतिदर्पणमें लिखा है कि, मरणदिनका श्राद्ध सपिंडी महालय इनको आपत्तिमें भी आमअन्नसे कभी न करै, हेमाद्रिमें व्यासका कथन है कि, आमअन्न देनेवाला हे कौन्तेय ! चौगुना, दुगुना, तिगुना दे, एक गुना न दे, सिद्ध अन्नमें जो आवाहन आदिका विधान है; हे राजेन्द्र ! वह सब विधि और पिंडदान आमश्राद्धमें भी होता है, और पका और विना पका जो अन्न ब्राह्मणोंको दिया जाय उससेही अग्नौकरण करै, और उसीसे पिंड दे, उसीका कथन है कि, हे कौन्तेय ! कच्चा अन्न, देताहुआ मनुष्य दूना, तिगुना, चौगुना दे, एक गुना न दे ॥ स्मृत्यर्थसारमें समान भी कहा है,; विष्णुपुराण और वाराहपुराणमें लिखा है कि, अन्न देनेको असमर्थ मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार भोजन मात्र अन्न दे, और थोडेसे थोडी भी दक्षिणा दे, यहां शक्तिके कहनेसे समका लाभ जानना, षट्त्रिंशतमतमें लिखा है कि, जब आमश्राद्ध करै, तो पिंडदान कैसे हो, घरके पाकमेंसे अन्नको निकालकर सत्तु वा पायस जो मिलसके उससे तिलोंसहित पिंड दे, और क्रोध न करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्यासका कथन है कि, जब आमश्राद्ध करै, तब विधिका ज्ञाता श्राद्ध देनेवाला ब्राह्मणके हाथमें विधिसे अग्नौकरण करै, यह साग्निकको भी सदैव है

एतत्प्राग्नेः निरग्नेः सदा तत्सत्त्वात् ॥ यत्तु-"आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान् पाकेन भोजयेत् । पक्केन कुरुते पिण्डमामान्नं यः प्रयच्छति ॥ तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकार्हौ न संशयः" इति ॥ तद्दर्शादिपरम् ॥ देशाचाराद्व्यवस्थेति युक्तम् ॥ मरीचिः-"आवाहने स्वधाकारं मन्त्रा ऊह्या विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृतः ।" आवाहने हविषे अत्तव इत्यत्र स्वीकर्त्तवे इत्यूहः ॥ स्वधाकारे नमो वः पितर इषे इत्यत्र इषेपदस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः ॥ विसर्जने वाजेवाजे इत्यत्र तृप्ता इति स्थाने तप्स्यंत तृप्यतेति वोहः ॥ यद्यपि तस्मादृचंनोहोतेति ऋच्यूहो निषिद्धः तथापि वचनाद्भवति ॥ "तृप्तिप्रश्नोविगाहश्च सुषमप्रश्नो यथासुखम् । आमश्राद्धे भवेन्नैतदापोशानं च पञ्चमम् ॥" अयं चानुवादः खलेपाल्यां छेदनादीनामिवार्थाभावाल्लोपसिद्धेः ॥ धर्मप्रदीपे तु-"आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा । हेम चाष्टगुणं तद्वदामे हैमेप्ययं विधिः ॥ आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च । व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति ॥ आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च । विकिरं नैव कुर्वीत

कारण कि, वह मिलसकता है, जो किसीने यह कहा है कि, आमअन्नसे पिंड दे, और ब्राह्मणोंको पक्कान्न जिमावे और जो पक्कान्नसे पिंड दे, और ब्राह्मणको आमान्न जिमावे वे दोनों मनुष्य नरकमें जानेयोग्य हैं, इसमें संदेह नहीं यह अमावस्या आदिके विषयमें लिखा है और इसकी देशाचारके अनुसार व्यवस्था करनी युक्त है ॥ मरीचिने कहा है कि, आवाहन स्वधाकार विदा करना इन मन्त्रोंका ऊह करना उचित है अन्य कर्ममें नहीं करना यह आम श्राद्धकी विधि वर्णन की है, आवाहनमें, 'हविषे अत्तवे' यहां 'स्वीकर्तवे' यह ऊह करना, स्वधाकारमें 'नमो वः पितरः इषे' यहां इस पदके स्थानमें 'आमद्रव्याय' यह ऊह करना, विसर्जनमें 'वाजे वाजे तृप्ताः' इसके स्थानमें 'तृप्यत' यह ऊह करना कहते हैं यद्यपि उससे ऋचाका ऊह न करै इस वाक्यसे ऋचाका ऊह करना निषिद्ध है, तथापि वाक्यसे ऊह होता है, तृप्तिका प्रश्न, स्नान, प्रीतिका प्रश्न, यथासुख भोजन, पांचवां आपोशान ये, आमश्राद्धमें नहीं होते, यह अनुवाद वचन है कारण कि, पशुबन्धन स्थानमें छेदन करनेके तुल्य अर्थके अभावसेही इनका लोप सिद्ध है॥ धर्मप्रदीपमें तो यह लिखा है कि, कचा अन्न चौगुना वा दुगुना देना, और सुवर्ण अठगुना देना यह आम और सुवर्णकी श्राद्धकी विधि है, आम सुवर्ण नित्य नान्दीश्राद्ध व्यतीपात श्राद्ध इनमें नियमन करै, आम और सुवर्णका श्राद्ध कियाहोय तो घरके पाकमेंसे अन्न निकालकर सत्तू वा खीरसे पिण्डदान करै आमश्राद्ध वृद्धिश्राद्ध प्रेतश्राद्ध इनमें विकिर न करै, यह कात्यायन मुनिने लिखा है, आमश्राद्धको

मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ आमश्राद्धमनंगुष्ठमग्नौकरणवर्जितम् । तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम् ॥ आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम् । तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन ॥ ६ ॥ " इत्युक्तम् ॥ एतच्च– 'आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च ' इति हेमाद्रौ भविष्यादिविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ शाखान्तरविषयं वास्तु ॥ विकिरोऽप्यामे नेति हेमाद्रिः ॥ शूद्रस्य तु तत्रैवोक्तम् ॥ ' अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते । ' अग्नये कव्यवाहनाय नमः, सोमाय पितृमते नमः, इत्ययं मन्त्रः ॥ मात्स्ये– " मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्रस्य सर्वमेव विधीयते । एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद्बुधः ॥" तच्च पूर्वाह्णे कार्यम् ॥" आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः ॥ पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् " इति हारीतोक्तेः ॥ एतत् द्विजविषयम् ॥ शूद्रकर्तृकं त्वपराह्ण एव ॥ "मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतुपः समुदाहृतः । आमश्राद्धं तु तत्रैव पितॄणां दत्तमक्षयम्" इति सुमन्तूक्तेरित्यपरार्के हेमाद्रौ चोक्तम् ॥ तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः–"आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् । धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ॥ "धर्मः–'आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेम तद्वच्चतुर्गुणम्॥'

मनुष्य अंगूठेका स्पर्श अग्नौकरण और तृप्तिका प्रश्न इनको त्यागकर निश्चय करै आम और हेम श्राद्धमें आवाहन और अग्नौकरण विकिर पात्रपूरण तृप्ति प्रश्नको न करै, यह धर्मप्रदीपिका कथन चिंत्य है, कारण कि, इसमें हेमाद्रिमें लिखे इस भविष्यपुराणके वचनका विरोध आता है कि, आवाहन और अर्घ प्रदान करने वा दूसरी शाखाओंके निमित्त यह कथन है, विकिर भी आमसेही करना चाहिये, यह हेमाद्रिने कहा है, शूद्रके निमित्त तो वहांही लिखाहै कि, अग्नौकरणका मंत्र शूद्रको नमस्कारसे लिखाहै कि, " अग्नये कव्यवाहनाय नमः " " सोमाय पितृमते नमः " ॥ मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, मंत्रको त्यागकर शूद्र सब कर्म करै, इसीभांति बुद्धिमान् शूद्रभी सामान्य श्राद्ध वृद्धिश्राद्ध सदा नमस्कारमंत्रसे और आमान्नसे करै, वह पूर्वाह्णमें करना, कारण कि, हारीतका कथन है कि, पूर्वाह्णमें आमश्राद्ध, मध्याह्नमें एकोद्दिष्ट, अपराह्णमें पार्वण करै प्रातःकाल वृद्धिश्राद्ध करै यह ब्राह्मणविषयक है शूद्रको तो अपराह्णमेंही करना कारण कि, सुमंतुने कहाहै कि, मध्याह्नसे परे जो कुतुप काल लिखाहै उसमें किया आमश्राद्ध पितरोंके निमित्त अक्षयहै, यह अपरार्क और हेमाद्रिमें लिखा है, उसके अभावमें सुवर्णसे श्राद्ध हेमाद्रिमें मरीचिने कहाहै कि, आमान्नके अभावमें बुद्धिमान् मनुष्य अन्नसे चौगुने कान्तिमान् सुवर्णसे श्राद्ध करै ॥ धर्मका कथन है कि, आमान्न दूना और सुवर्ण चौथाई लेना, स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, सुवर्ण अठगुना वा

स्मृत्यर्थसारे-"हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात् ॥ " हेमाद्रौ भविष्ये-"अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि" षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे-'वर्जयित्वा क्षयेऽहनि' इति पाठः ॥ 'यस्य भार्या रजस्वला' इति व्यासपाठः ॥ पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्तः-"पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्केन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् । ॥"भविष्ये-" गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धे कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत्पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तु मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम् ॥ २ ॥ " 'हेमश्राद्धे पिण्डदानं न' इति दिवोदासः ॥ स्मृत्यर्थसारे तु विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः ॥ षट्त्रिंशन्मते-" नामन्त्रणाग्नौकरणं विकिरो नैव दीयते । तृप्तिप्रश्नोऽपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत् ॥ " अत्र मरीचिना आमाभावे हेमविधानेन स्थानापत्त्या धर्मप्राप्तेः पूर्ववन्मन्त्रोहः पूर्वाह्णकालता च ज्ञेयेति दिक् ॥ पूर्वोक्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च ॥ व्यासः-"हिरण्यमामं श्राद्धीयं लब्धं यत्क्षत्रियादितः । यथेष्टं विनियोज्यं स्याद्भुञ्जीयाद्ब्राह्मणात्स्वयम् ॥ " विप्रलब्धं भुञ्जीयात् ॥ क्षत्रियादिलब्धे तु यथेष्टविनियोगः ॥ तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् ॥ देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तराय त्यागायोगादिति देवयाज्ञिकः ॥

चौगुना वा बराबर दे, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अन्न और ब्राह्मणका अभाव परदेश और पुत्रजन्म इनमें स्त्री शूद्रभी सुवर्णसे श्राद्ध करै, षट्त्रिंशतके मतमें चौथे चरणमें क्षयीके दिनको त्यागकरके करै, यह पाठ है, व्यासने तो जिसकी भार्या रजस्वला हो यह चौथा पाद लिखाहै, पुत्रकी उत्पत्तिमें सुवर्णका नियम संवर्तने लिखाहै कि, बुद्धिमान् मनुष्य पुत्रके जन्ममें सुवर्णसे ही श्राद्ध करै, कल्याण चाहै तो पक्क और आम अन्नसे न करै ॥ भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हेमश्राद्ध किया होय तो गृहपाकसे निकाले अन्नसे सत्तू वा पायससे पिंडके दान करने चाहिये, शूद्र तो गृहपाकसे उसके पिण्ड दे, और सत्तू मूल फल वा पायस उसके निमित्त लिखेहै, हेमश्राद्धमें पिंडदान नहीं होता, यह दिवोदासका मत है, स्मृत्यर्थसारमें तो विकल्प लिखाहै उसको हम नहीं जानते षट्त्रिंशत्के मतमें लिखाहै कि, आमंत्रण अग्नौकरण विकिर तृप्तिका प्रश्न इनको कोई न करै यहां मरीचिने लिखाहै कि, आमके अभावमें हेमकी विधिसे उसके स्थानमें होनेसे उसको धर्मप्राप्तिसे पूर्वके तुल्य मंत्रोंका ऊह करना उचित है यह सूक्ष्म लिखाहै और पूर्वोक्त धर्मप्रदीपका भी कथन है ॥ व्यासने लिखा है कि, जो सुवर्ण वा आमश्राद्धका द्रव्य क्षत्रियआदिसे प्राप्तहुआ है उसको यथेच्छ कार्यमें लगावे, और ब्राह्मणसे स्वयं भोजन करै, अर्थात् ब्राह्मणसे मिलेका भोजन और क्षत्रिय आदिसे मिलेका यथेच्छ विनियोग करै और वहभी श्राद्ध और बाकी वैश्वदेव आदिका न करै, कारण कि, एक देवके निमित्त दिये अन्नका अन्यदेवको दान देना अनुचित है यह देवयाज्ञिकका कथन है शूद्रसे जो मिले उसके

शूद्रलब्धे तूक्तं तथैव षट्त्रिंशन्मते-"आमं शूद्रस्य यत्किंचिच्छ्राद्धिकं प्रतिगृह्यते । तत्सर्वं भोजनायालं नित्यनैमित्तिके न च" इति ॥ शुद्धितत्त्वेऽङ्गिराः-"शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्तव्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम् ॥ शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि ॥" पराशरः-"तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुद्ध्यते ॥" विष्णुपुराणे-'संप्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम् ॥' अङ्गिराः-'पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम् ॥' सांकल्पविधिश्राद्धम् । सपिण्डश्राद्धाशक्ताविह हेमाद्रौ संवर्तः-"समग्रं वस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् । अपि संकल्पविधिना तस्य काले विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते ॥" व्यासः-"सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । नावाहनाग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥" पात्रमर्घ्यस्य ॥ समन्त्रकावाहनस्य निषेधः ॥ तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः ॥ स्मृत्यर्थसारे-'विकिरं तु न दातव्यम्' इति तृतीयपादे पाठः ॥ स्मृत्यन्तरे-"त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकरणमेव च । पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके ॥ " हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु-"पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु

निमित्त तो वहांही षट्त्रिंशत्के मतमें लिखा है कि, जो शूद्रका कच्चा अन्न श्राद्धको निमित्त किंचित्भी लिया जाय वह सब भोजन करनेके योग्य है, परन्तु नित्य नैमित्तिकमें नहीं ॥ शुद्धितत्वमें अंगिराका कथन है कि, शूद्रके घरमें दूध वा दहीको निवृत्तिमार्गमें स्थित ब्राह्मण भोजन न करै, कारण कि, वह भी शूद्र अन्न कहा है, शूद्रसे जो ब्राह्मणके घरमें अन्न गया हो वह सदाही शुद्ध है पराशरने लिखा है कि, तबतकही शूद्रान्न होता है जबतक ब्राह्मण उसको स्पर्श न करै, विष्णुपुराणमें लिखा है ब्राह्मणके हाथका स्पर्श होजाय तो उसके ग्रहणमें कोई दोष नहीं, घरमें आये हुए शूद्रके अन्नको जलसे भली प्रकार छिडककर ग्रहण करै, अंगिराका वाक्य है कि, घर आये शूद्रके दूधको दूसरे पात्रमें लेकर स्वीकार करले ॥ यदि सपिण्ड श्राद्ध न करसके तो हेमाद्रिमें संवर्तका यह वाक्य है कि, जो सम्पूर्ण पार्वण करनेको समर्थ न होय वह समयपर संकल्प विधिसे करै, सुपात्रको जो भोजन देना वा अन्नका त्याग है उसको संकल्प कहते हैं व्यासजीने कहा है कि, यदि मनुष्य संकल्प करै, तो पात्रपूरण आवाहन अग्नौकरण और पिण्डदान इनको न करे, यहां पात्रशब्दसे अर्घ्यका पात्र जानना और आवाहन मन्त्रसे न करै, और मौनतासे तो करदे यह हेमाद्रिका कथन है स्मृत्यर्थसारमें तो तीसरे चरणमें यह पाठ है कि, विकिर न दे ॥ स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि, आवाहन अर्घ्य अग्नौकरण पिण्ड और विकिर अक्षय्यजल इनको संकल्प श्राद्धमें न दे हेमाद्रिमें वृद्ध शाता-

१ शुष्कअन्न, गोरस, स्नेह यह शूद्रके घरसे आयाभी भोज्य है और ब्राह्मणके यहां पक्कान्न भोजन करलेना यह मनुने कहाहै ॥

श्राद्धं विधीयते । स्वधवाचनलोपोत्र विकिरस्तु न लुप्यते" इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः-"आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा॥ विकिरं पिण्डदानं च सांकल्पे षड्विवर्जयेत् ॥" विकिरे विकल्पः स्मृत्यन्तरे-" अङ्गानि पितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् संकल्पात्सिद्धिरस्त्विति ॥" छागलेयः-"पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः" ॥ कार्ष्णाजिनिः-"मौञ्जीबन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात् । पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु ॥" अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुक्तः ॥ त्यक्ताग्नेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते-' अनग्निको यदा विप्र उत्सन्नाग्निस्तथैव च । तथा वृद्धिषु सर्वासु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ॥" अशक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये-"द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥" देवलः-"पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते भवेन्निरशनोपि वा ॥" वृद्धवसिष्ठः-"किंचिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये-"अग्निना वा दहेत् कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिन्वोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम्॥"श्राद्धसंहिता समन्त्रश्राद्धसंकल्पः॥ विष्णुवराहपुराणयोः-"असमर्थोन्न-

तपका तो यह वाक्य है कि, जो श्राद्ध पिंडदानसे रहित है उसमें स्वधावाचन न करे और विकिरको तो करे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वसिष्ठका वाक्य है कि, आवाहन स्वधाशब्द पिंड अग्नौकरण विकिर और पिंडदान इन छःको संकल्पश्राद्धमें त्यागदे, विकिरमें विकल्प है कारण कि, स्मृत्यंतरमें लिखाहै कि, जब पितृयज्ञके अंगका करनेमें समर्थ न हो तब ब्राह्मणोंसे यह कहावे कि, संकल्पसे सिद्ध हो ॥ छागलेयका कथन है कि, जब मघाआदिमें किसी प्रकार पिण्डकी निवृत्ति होजाय तब ब्रह्मवादी नियमसे संकल्प श्राद्ध करै, कार्ष्णाजिनिका कथन है कि, यज्ञोपवीतसे छः मासतक और विवाहसे वर्षदिनतक प्रेतपिण्डको छोडकर पिंडको सब सपिंड न करें, "इसका अपवाद मातापिताके वार्षिक आदिमें प्रथम कथन कर आयेहैं. अग्निके त्यागीको भी संकल्पश्राद्ध षट्त्रिंशतके मतसे लिखाहै कि, जब अनग्नि वा त्यक्ताग्नि होय तो सम्पूर्ण वृद्धियोंमें संकल्पश्राद्ध करै ॥ असमर्थतामें तो पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहन्नारदीयका कथन है कि, द्रव्य और ब्राह्मणके अभावमें श्राद्धके दिन अन्नमात्रको पकावे और चतुर मनुष्य पैतृक सूक्तसे हवन करै देवलने कहाहै कि, द्रव्यके अभावमें विप्रको पिंडमात्रको देदे, वा व्रतकर करले, वृद्धवसिष्ठका कथन है कि, अशक्त मनुष्य जो कुछ जल घटआदि ब्राह्मणको दे वा तृण आदि गौओंको दे वा पिंड दे वा तिल और कुशाओंसे पितृतर्पण करदे, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, श्राद्धकालके आनेपर अग्निमें तृण जलादे, वा उस दिन व्रत करै वा मन्त्रोंसहित श्राद्धका संकल्प करै ॥ विष्णु और वराहपुराणमें लिखा है, कि अन्नदानमें असमर्थ

दानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः। प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि च दक्षिणाम् ॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः । सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति॥न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यं श्राद्धोपयोगि स्वपितृन्नतोऽस्मि। तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्। यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत ॥ ४ ॥" प्रभासखण्डे– "गत्वारण्यमयानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विरौत्यदः । निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो मानृणं कृथाः ॥ न मेऽस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । वनं प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः । आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥ भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ॥३॥" इत्यनुकल्पः ॥ अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तम् । दर्शे षट् प्राणायामाः ॥ वृद्धौ त्रयः ॥ संस्कारेषु जातकर्मादिचूडान्तेषु सांतपनम् ॥ आद्ये चान्द्रं वा । अन्यसंस्कारेषूपवासः ॥ सीमन्ते चान्द्रमिति विज्ञानेश्वरः ॥ आपदि नवश्राद्धैकादशाहेषु भोजने कायः । द्वादशाहे ऊनमासे च पादोनः ॥ द्विमासे त्रिपक्षे ऊनषष्ठेनाब्दयोश्चार्धकृच्छ्रः ॥ त्रिमासाद्याब्दिकान्तेषु सपिण्डने च पादकृच्छ्रः

अपनी शक्तिसे अन्न मांस वा तिल और थोडीसे थोडी दक्षिणा दे, और कुछभी न होय तो वनमें जाकर अपनी कांखमूल सूर्य आदि लोकपालोंको दिखाकर ऊंचे स्वरसे यह पढै कि, वित्त धन और श्राद्धके उपयोगी और वस्तु मेरे यहां नहींहैं, मैं पितरोंको नमस्कार करता हूं मेरी भक्तिसे पितर तृप्त हों इसमें मैंने अपनी दोनों भुजा पवनमार्गमें फैलादीहै यह पितरोंने होने और न होनेका प्रयोजन गायाहै, हे राजन्! जो इस प्रकार करताहै उसने श्राद्धही करलिया ॥ प्रभासखंडमें लिखा है कि, निर्जन वनमें जाकर ऊपरको भुजा कर इस प्रकार रोवे कि, हे देवताओ! मैं अन्न और धनसे हीन हूं। हे पितरो! क्रोध मत करना मेरे वित्त धन भार्या नहीं हैं, मैं आपका श्राद्ध कैसे करूं इससे इस वनमें प्रवेश कर मैंने दोनों बांह पवनके मार्गमें की हैं, और श्राद्धरूपी ऋण मैंने आपको दिया, पितर और देवता मेरे ऊपर कृपा करो, इस प्रकार कहकर, भुजा उठाये रातदिन व्रत करके खडा रहै, वह इस प्रकार करनेसे पितर और देवताओंके ऋणसे छूटता है। इत्यनुकल्पः ॥ अब श्राद्धभोजनका प्रायश्चित्त लिखते हैं, अमावस्याके श्राद्धमें छः प्राणायाम, वृद्धिमें तीन ३, जातकर्म आदि मुण्डनपर्यन्त संस्कारोंमें सांतपन वा जातकर्ममें चान्द्रायण, अन्य संस्कारोंमें व्रत करै, सीमंतमें चांद्रायण करै यह विज्ञानेश्वरका मत है आपत्तिमें नवश्राद्ध एकादशाहके भोजन करनेमें उपवास, द्वादशाह व्रत ऊनमासमें पादोन (६ दिन उपवास) द्विमास त्रिपक्ष ऊनषष्ठ, और ऊनाब्दमें अर्धकृच्छ्र और त्रिमासमें वार्षि-

उपवासो वा ॥ गुरुद्रव्यार्थभोजनेऽर्द्धम् ॥ जपशीले तदर्धम् ॥ अनापदि ऊन-मासान्तेषु चान्द्रं कार्यं वा ॥ द्विमासादौ पादोनम् ॥ त्रिमासादावर्द्धकायः ॥ आब्दिके पादोनकायः पुनराब्दिके एकाहः ॥ क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि ॥ चाण्डालसर्पश्वादिहतपतितक्लीबादिनवश्राद्धे चान्द्रम् ॥ आद्यमासिकान्ते चान्द्रं पराकश्च ॥ द्वादशाहादौ पराकः ॥ द्विमासादावतिकृच्छ्रः ॥ त्रिमासादौ कायः । आब्दिके पादः ॥ अभ्यासे सर्वं द्विगुणम् ॥ आमहेम-संकल्पश्राद्धेषु तत्तदर्धानि ॥ यतिर्ब्रह्मचारी चोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा त्रीनुपवासान् प्राणायामान्घृताशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ अनापदि द्विगुणम् ॥ दर्शादौ दशगायत्रीमन्त्रिता अपः पिबेत् षट् प्राणायामा वा । संस्कारेषु चौले कृच्छ्रः ॥ सीमन्ते चान्द्रम् ॥ अन्येषूपवास इति दिक् ॥ अत्र माधवमिताक्षरादौ कचिद्विरोधो विषयभेदात्परिहार्यः ॥ एकादशाहे चान्द्रं पुनः संस्कारश्चेति प्रायश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः ॥ यत्तूशनाः "दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुक् द्विजः " इति । तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः ॥ अथ क्षयाहश्राद्धम् । तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः—"मासपक्षति-

---

कपर्यन्तमें सपिंड पादकृच्छ्र वा व्रत करै, गुरुके द्रव्यके निमित्त भोजन किया होय तो आधा प्रायश्चित्त, यदि जपशील होय तो उससेही आधा, जो कोई आपत्ति न होय तो न्यून मासांतोंमें चांद्रायण व्रत करना और द्विमासमें पादोन और त्रिमास आदिमें आधा करना, वार्षिकमें पादोन करना, पुनराब्दिकमें एकदिन व्रत क्षत्रिय आदिके श्राद्धोंमें ये प्रायश्चित्त दुगुने तिगुने चौगुने जानने, चांडाल सर्प पशुआदिसे जो मरेहो पतित और नपुंसकके श्राद्धमें चांद्रायण करना ॥ प्रथम मासिकके अन्तमें चांद्रायण और पराक किया है, द्वादशाहमें पराक द्विमास आदिमें अतिकृच्छ्र करै वार्षिकमें चौथाई कृच्छ्र करै वारंवार अपराध करनेमें सब प्रायश्चित्त दुगुने होते हैं, आम सुवर्ण और संकल्पश्राद्धोंमें तिस २ के आधे करने संन्यासी और ब्रह्मचारी इन प्रायश्चित्तोंको करके तीन व्रत प्राणायाम घृतका भोजन इनको अधिक करके शेषव्रतको पूर्ण करै, आपत्ति न होय तो दूना करै, अमावस्याके भोजनमें दशवार गायत्री जप॰ कर जलपान वा छः प्राणायाम संस्कारोंमें मुण्डनमें कृच्छ्र सीमन्तमें चान्द्रायण करै अन्योंमें व्रत करै यह सूक्ष्म कहा है, यहां माधव और मिताक्षरा आदिमें कहीं विरोध होय तो विषयभेदसे उसको निवारण करना चाहिये, एकादशाहमें चांद्र और फिर संस्कार करना यह हेमाद्रिका कथन है, जो उसनाने यह लिखा है कि श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण दशवार गायत्री पढकर जल॰ पान करै, वह उस श्राद्धके विषयमें है जिसका प्रायश्चित्त न लिखाहो यह विज्ञानेश्वरका मत है ॥ अब क्षयाहश्राद्धको लिखते हैं । उसका स्वरूप हेमाद्रिमें व्यासके वाक्यसे कहा है कि, मास,

थिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि । मत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥" नारदीये—'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' अत्र चान्द्रं मानं ज्ञेयम् ॥ 'आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते' इति गर्गोक्तेः । मलमासमृतस्य तु सौरं—'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्' इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ एतन्मृतमासस्यैवाधिक्ये ज्ञेयम्॥ ब्राह्मे—"प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥" अपुत्रस्येति भ्रात्राप्यन्वयः ॥ ज्येष्ठस्येति कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम् ॥ मदनरत्ने भविष्ये—'सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् ॥' तथा—"भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप । मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि ॥ स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः॥" तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम् ॥ आद्यमाह यमः—"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥" व्यासः—"एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पित्रोश्चैव मृतेऽहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः ॥ अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः ॥" अन्त्यमाह शातातपः—"सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं छागलेनोदितो विधिः ॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नियोजयेत् । विधिघ्नस्तेन

पक्ष, तिथिसे युक्त जिस दिन जो प्राणी मरे प्रतिवर्ष वैसाही वह दिन जब आवे तब क्षयाह कहाता है, नारदीयपुराणमें लिखा है कि, पारणा और मनुष्योंके मरनेमें उस समय वर्तमान तिथि लिखी है, यहां मान चांद्र जानना कारण कि, गार्ग्यका कथन है कि, आब्दिक और पितृकार्यमें चांद्रमास उत्तम है, जो मलमासमें मराहो उसे सौरमास उत्तम है, कारण कि, हेमाद्रिमें लिखा है कि, मलमासमें मरोंके श्राद्धमें सौरमासको स्वीकार करै, यह भी तब जानना जब मरनेका मासही अधिक हो, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, माता पिता पुत्रहीन चाचा और पुत्रहीनज्येठा माई इनका वार्षिक श्राद्ध मरनेके दिन करै, यहां ज्येठा भाईका कथन इस कारण है कि, कनिष्ठका श्राद्ध करना आवश्यक नहीं ॥ मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, सब श्राद्धोंमें वार्षिकश्राद्ध उत्तम है, तैसेही और भी वाक्य है कि, हे खगाधिप ! मरनेके दिन जो मनुष्य मातापिताका श्राद्ध वर्ष २ में नहीं करता वह तामिस्रनाम घोर नरकमें जाता है, वहां अनेक स्मृतियोंमें एकोद्दिष्ट और पार्वण लिखा है उन दोनोंमें पहिला यमने लिखा है, सपिंडी करणके पीछे प्रतिवर्षमें पुत्र मातापिताका एकोद्दिष्ट पृथक् २ करै व्यासका कथन है कि, मातापिताके मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करना चाहिये, जो एकोदिष्टको त्यागकर पार्वण करता है वह न करनेकी समान है, और वह मनुष्य पितरोंका घातक (हत्यारा) होता है ॥ दूसरा (पार्वण) शातातपने लिखा है कि, सपिंडी किये उपरान्त प्रतिवर्ष क्षयी श्राद्ध पार्वणके तुल्य करै, यह छागलेयकी कथन कीहुई विधि है जो मनुष्य सपिंडी किये प्रेतको पृथक् पिंडमें मिलाता

भवति पितृहा चोपजायते ॥ २ ॥" अत्रौरसक्षेत्रजयोः पार्वणं दत्तकादीनामेकोद्दिष्टमित्येकः पक्षः ॥ साग्नेः पार्वणं निरग्नेरेकोद्दिष्टमित्यपरः ॥ तद्दूषणं मिताक्षरादौ ज्ञेयम् ॥ कल्पतरुस्तु—"साग्न्योरौरसक्षेत्रजयोः पार्वणम् ॥ निरग्निकयोस्त्वेकोद्दिष्टमित्याह ॥" अपरार्केप्येवम् ॥ दत्तकादयो दश पुत्रास्तु साग्नयो निरग्नयश्चैकोद्दिष्टमेव कुर्युः ॥ "प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश ॥" इति जातूकर्ण्योक्तेः ॥ यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शे महालये वा मृतस्तत्र पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः ॥ वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः ॥ स च देशाचाराद्व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः ॥ अत एव पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—'मातापित्रोः पृथक् कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि' इत्युक्त्वाह—"देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथा परे । सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाह्नयपि" इति ॥ तच्च केवलपितृणाम् । न सपत्नीकानामिति हेमाद्रिः ॥ अत्र मातामहा न कार्याः—"कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥" इति कात्यायनोक्तेः ॥ कर्षूसमन्वितं सपिण्डनं यैरेकोद्दिष्टं क्रियते

है वह विधिका नाशक और पितरोंका हत्यारा होता है, यहां औरस क्षेत्रज पुत्रोंका पार्वण करना, दत्तक आदि पुत्रोंको एकोद्दिष्ट करना यह एक पक्ष है, साग्निकका पार्वण और निरग्निकका एकोद्दिष्ट करना यह दूसरा पक्ष है, इनके दूषण मिताक्षरा आदिमें लिखे हैं। कल्पतरुमें तो यह लिखा है कि, साग्नि औरस क्षेत्रज पुत्रोंको पार्वण और निरग्नियोंका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना ॥ अपरार्कमें भी ऐसेही लिखा है, दत्तक आदि दशपुत्र तो साग्नि हो चाहै निरग्निहो एकोद्दिष्टही करै, कारण कि, जातूकर्ण्यका कथन है कि, क्षेत्रज और औरसपुत्र वार्षिक श्राद्ध पार्वणकी विधिसे करें, और इतर दशपुत्र एकोद्दिष्टही करैं, जब दत्तकका पिता अमावस्या वा महालयमें मृत्युको प्राप्त हुआ हो वहां पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प जानना, सिद्धान्तसे तो सब पुत्रोंको व्रीहि और यवके समान पार्वण और एकोद्दिष्टका विकल्प लिखा है और उसकी देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है, यह सब ग्रन्थोंका सिद्धान्त है ॥ इसीसे पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृहत्पराशरने मातापिताका एकोद्दिष्ट मृत्युके दिन पृथक् करना लिखकर कहा है कि, देशधर्म वा वंशधर्मका आश्रय लेकर और शूर वीर जन क्षयी श्राद्धके दिन पार्वणश्राद्धकी अभिलाषा करते हैं वह भी केवल पितरोंका करना, सपत्निकोंका नहीं करना यह हेमाद्रि कहते हैं. और इसमें मातामहका न करना कारण कि, कात्यायनने लिखा है, 'कर्षूसमन्वितम्' (सपिंडी) और आद्य षोडश श्राद्ध और वार्षिक श्राद्धको त्यागकर शेष श्राद्धोंमें छः पिण्ड होते हैं, यही मर्यादा है, जो एकोद्दिष्ट करते हैं उनको भी कहीं

तेषामपि क्वचित् पार्वणमेवेति शंखोक्तेः । एवं संन्यासिनोपि–"एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा ॥" इति प्रचेतसोक्तेः ॥ वायवीये–"संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः–"संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये । तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेपि च सत्तमैः ॥ चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः । सपिण्डितानामपि चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥ २ ॥" तथा–भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्रातानुजस्य च । दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत् ॥" दैवहीनमेकोद्दिष्टम् ॥ ज्येष्ठो भ्राता नाद्यगर्भजः ॥ तथा च तत्रैव, शातातपः–"अनाद्यगर्भज्येष्ठोपि भ्राता सद्भिर्निगद्यते । ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत् ॥" आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्यर्थः ॥ मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः–"प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् पुत्रः पित्रे सदा द्विजः । तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं चान्यदेव वा ॥" यत्तु तेनैवोक्तं–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणम् । पितृव्यभ्रातृमातॄणामेकोद्दिष्टं सदैव तु ॥" इति तत्सापत्नमातृपरम् ॥ यत्तु वृद्धपराशरः–"अपु-

---

पार्वण ही करना पडता है कारण कि, शंखका कथन है कि, अमावस्या वा प्रेत पक्षमें जो मृत्युको प्राप्त हुआ हो उसका पार्वण करै, एकोदिष्ट किसी प्रकार न करै, यतिका त्रिदण्ड ग्रहणके कारण एकोदिष्ट नहीं होता सपिण्डीकरण न होनेसे पार्वणही होता है यह प्रचेताका कथन है ॥ वायवीयमें है कि, संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध विधिसे फिर करै, महालयमें जो संन्यासीका श्राद्ध है वह द्वादशीको पार्वण करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध पराशरका कथन है कि संग्राममें प्रेतपक्ष वा अमावास्याको जो मृत्युको प्राप्त हुए हों उनको मरनेके दिन भी सज्जनोंने पार्वण औरही लिखा है, अमावास्या अनशन दिन व्रत प्रेतपक्ष इनमें जो सपिंड मरा हो सपिंडी किये पीछे भी उसके पार्वणश्राद्ध क्षयीके दिन होतेहैं, इसी प्रकारसे वाक्य है कि, ज्येष्ठ भाईका वार्षिक श्राद्ध भ्राता करै, परन्तु वह विश्वेदेवाओंसे हीन (एकोदिष्ट) करै, यह धर्मके ज्ञाता वर्णन करते हैं. ज्येष्ठ भ्राता वही न लेना जो प्रथम गर्भसे उत्पन्न हुआ हो ॥ सोई वहांही शातातपने लिखा है कि, आदि गर्भसे भिन्न भी भ्राता सज्जनोंने ज्येष्ठ कहा है; सपिंडीके विना उसका पार्वण न करै आद्य गर्भमें तो पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना, माताका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें कात्यायनने लिखा है कि, जो ब्राह्मण प्रतिवर्ष जैसे २ अपने पिताका श्राद्ध करता है, उसी प्रकार माताकाभी पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना चाहिये, जो तो उसनेही कहाहै कि, सपिण्डीसे पीछे पिताही पार्वण करै चाचा, भ्राता इनका सदैव एकोदिष्ट करना, सो सपत्नमाताके विषयमें है ॥ वृद्ध परा-

त्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत् । स एवास्य तु कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम् ॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु । पितृस्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत् ॥ २ ॥" इति ॥ तत्पितृवद्देशाचारवद्व्यवस्थितमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ श्राद्धदीपकलिकायां चतुर्विंशतिमते तु—" पितृव्यभ्रातृमातृणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत् । एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मिथः ॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः । मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत् ॥ २ ॥ " इत्युक्तम् । तत्पत्न्याः कर्तृत्वेपि पार्वणमेव ॥ "सर्वाभावे स्वयं पत्न्याः स्वभ्रातृणाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ 'ततः पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा ' इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम् ॥ अन्ये त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः ॥ अत एव—" भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत् । न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत् ॥ " इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैः ॥ 'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः' इत्यनेन विरोधाच्च ॥ अपुत्राणां चाह हेमाद्रावापस्तम्बः— अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये । तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च । दद्याद्वै मासिकं

शरने लिखाहै कि, जो चाचा अपुत्र होय तो उसके भाईके पुत्र पिण्डदान आदि क्रियाको करै, और वह भ्रातृज पुत्रके तुल्य पार्वण करै, और पिताके स्थानमें चाचाको कहकर शेष कर्मको पूर्ववत् करै, यह सब देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचित है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयका मत है. श्राद्धदीपकलिकामें चतुर्विंशतिके मतमें तो यह लिखा है कि, चाचा भाई भ्राता इनमें ज्येष्ठोंका पार्वण और कनिष्ठोंका एकोद्दिष्ट करना और स्त्री और पति ये परस्पर पार्वण श्राद्ध करै, पुत्रहीन पितृव्य और वडा भाई और नाना और उसकी स्त्री इनका श्राद्ध पार्वण होता है, पत्नी भी पार्वण करै ॥ कारण कि, लौगाक्षिकी स्मृति है कि, सबके न होनेमें पत्नी स्वयं अपने स्वामीका विना मन्त्र सपिण्डीकरण और पार्वण करै, सुमन्तुका भी कथन है कि, पत्नी भी सपिंडी और पार्वण करै, यही निर्णयामृतमें लिखा है, और तो इस वाक्यको पाक्षिक पार्वणके विषय लिखतेहैं, इसीसे त्रिस्थलीसेतुमें भट्टने लिखाहै कि, जो स्त्री अज्ञानसे पतिका श्राद्ध पार्वण करतीहै, उसका पति तृप्त नहीं होता, और स्वयं नरकको जाती है यह वचन क्षयीके दिन पाक्षिक एकोद्दिष्टकी प्रशंसाके विषयमें है, पार्वणके निषेधार्थ नहीं, अपने पति आदि तीनको प्रदान करै इस वचनके संग विरोधभी है ॥ अपुत्रोंका श्राद्ध तो हेमाद्रिमें आपस्तम्बने लिखाहै, स्त्री वा पुत्र जो अपुत्र मृतक हुएहैं उनकोभी एकोद्दिष्ट देना पार्वण नहीं, मित्र बन्धु सपिण्ड कुमारीको मासिक श्राद्ध देना और इसके अन्यथा वार्षिक श्राद्ध दे, पारि-

श्राद्धं सांवत्सरमतोऽन्यथा ॥ २ ॥" पारिजाते च अन्यथापार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्र पार्वणमित्युक्तम्। एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगार्ग्यः–"मातुः सहोदरा या च पितुः सहभवा च या। तयोश्च नैव कुर्वीत पार्वणं पिण्डनादृते ॥" प्रचेताः–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥" अपत्नीनां ब्रह्मचार्यादीनाम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे–"प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः। मृताहनि यथान्यायं नृणां तद्वदिहोदितम् ॥" नृणामिति दृष्टान्ताद्गोविप्रहतपाषण्ड्यादीनां सपिण्डनाभावेपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः अत्रिवृद्धवसिष्ठौ–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥ पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥" यत्तु जातूकर्ण्यः–"पितृव्यभ्रातृमातृणामपुत्राणां तथैव च। मातामहस्यासुतस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत् ॥" इति तदावश्यकत्वार्थं, न तु पार्वणार्थमिति हेमाद्रिः ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ "मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः । तेषां तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः॥" इति पुलस्त्योक्तेर्मातामहस्य पार्वणमेव॥ तत्साहचर्यात् पितृव्यादौ ॥ तथा–'पितृव्यभ्रातृणामेकोद्दिष्टं च पार्वणम्' इति क्षयाहोक्तोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः ॥ केचित्त्वापस्तम्बादिवाक्यानि–' व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव

जातमें तो अन्यथा पार्वण करे यह कहकर सर्वत्र पार्वण करना कहा है, एकोद्दिष्टके वाक्य तो तीर्थके महालयमें कहेहैं,यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, वृद्ध गार्ग्यका कथन है कि, माता और पिताकी जो सहोदर बहन है,सपिण्डीके विना उनका पार्वण न करै ॥ प्रचेताने लिखाहै कि, सम्पूर्ण पुत्रहीनोंका और ब्रह्मचारियोंका सपिंडीके पीछे एकोद्दिष्ट लिखाहै, मार्कण्डेय पुराणमें कहाहै कि, स्त्रीका प्रति वार्षिक एकोद्दिष्ट मनुष्योंके तुल्य करै, यहां मनुष्योंके तुल्य इसको दृष्टांत होनेसे गौ ब्राह्मणसे हते और पाखण्डी आदिकोंका सपिण्डीके न होनेमें भी वार्षिक एकोद्दिष्ट करना यह शूलपाणिका मत है, अत्रि और वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, सपिंडीके पीछे जहां कहीं भाई, बहन, पुत्र, स्वामी, मामा, चाचा और गुरुका एकोद्दिष्टही होता है पार्वण नहीं ॥ जो जातूकर्ण्य कहते हैं कि, पिता, भाई, माता, अपुत्रोंका अपुत्र मातामहादिका श्राद्ध पितावत् होताहै यह आवश्यकताके निमित्त है पार्वणके निमित्त नहीं, यह हेमाद्रिका मत है युक्त तो ऐसा है कि, माताके पितासे लेकर तीन मातामह कहेहैं, उनका श्राद्ध पुत्रीके पुत्रके पिताके समान करै, इस पुलस्त्यके वाक्यसे मातामहका श्राद्ध और उसके सम्बन्धसे पितृव्य आदिका पार्वणही होताहै, चाचा भाईका माताका एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध करै, क्षयाहके प्रकरणमें पुलस्त्यके वाक्यसे विकल्प लिखाहै कोई तो यह कहतेहैं कि, आपस्तम्ब आदिके

कार्या सपिण्डता ' इत्यस्य पितृव्यादिपरत्वादकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणी-त्याहुः ॥ माता सपत्नमाता ॥ एकोद्दिष्टं तु कनिष्ठपरमिति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्ये-वम् ॥ विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः॥ केचित् पुत्रान्तराभावेपि पितामहवार्षि-कमप्यावश्यकम् ॥ " पुत्राभावे च तत्पुत्राः पत्नी माता तथा पिता। वित्ताभावेपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्यौर्ध्वदैहिकम् ॥"इति मार्कण्डेयपुराणादित्याहुः॥ तन्न ॥ ' पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्' इति कातीये विशेषोक्तेः ॥ अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः । तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम् ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्त-दिनतृतीयभाग इति माधवः ॥ "आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं तु मध्यमे। पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥" इति हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहच-र्यात् ॥ तत्रापि कुतुपादिषु मुहूर्तद्वितये ज्ञेयम् ॥ "प्रारभ्य कुतुपे श्राद्धं कुर्यादा-रौहिणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत्॥" इति गौतमोक्ते-रेतत्परत्वात् ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ मैथिलाः श्राद्धकौमुदी चैवम् ॥ अन्य-था—"ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्य-

---

वाक्य उन पितृव्य आदिके विषयमें है जिनकी सपिंडी न हुई हो कारण कि, जो क्रमसे नहीं मरे उनकी सपिंडी न करनी चाहिये यह वाक्य पितृव्य आदिके विषयमें है, मातासे माताकी सपत्नी लेनी, एकोद्दिष्ट तो कनिष्ठके निमित्त है ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार लिखा है, विशेष तो अधिकारियोंके निर्णयमें लिख आये, कोई तो यह कहते हैं कि, और पुत्र न होय तो पितामहका भी वार्षिक श्राद्ध अव-श्यक है कारण कि, मार्कण्डेय पुराणका कथन है कि, पुत्रके अभावमें पौत्र, पत्नी, माता, पिता, शिष्य यह धनके अभावमें भी तिसका और्ध्वदैहिक श्राद्ध करैं, सो उचित नहीं कारण कि, कातीयमें यह विशेष लिखा है कि, पौत्र एकादशाह आदि षोडश १६ श्राद्ध करै ॥ अब क्षयाहके दो होनेपर निर्णय करते हैं, उनमें एकोद्दिष्ट तो मध्याह्न कालमें करना, और मध्याह्न माधवने पांच भागमें बटे दिनमें तीसरा भाग कहा है आमश्राद्धमें पूर्वाह्णमें करना एको-द्दिष्ट मध्यमें, पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल करना, इस हारीतके कथनमें प्रातःशब्दके सम्बन्धसे तीसरे भागको मध्याह्न कहते हैं वह भी कुतुप आदि दो मुहूर्तोंमें स्वीकार करना, कारण कि, इस गौतमके वाक्यसे यही संगत है कि कुतुपमें श्राद्धका प्रारम्भ करके रौहिण पर्यन्त करै, और रौहिणको उल्लंघन न करै, नवम मुहूर्तको रौहिण कहते हैं, मैथिल श्राद्धकौमुदीमें भी ऐसेही लिखा है, अन्यथा इत्यादि वाक्योंका विरोध होगा कि, कुतुप मुहूर्तसे पीछे जो चार मुहूर्त हैं, ये पांच मुहूर्त स्वधाके भवन स्वीकार

---

१ जिसमें सूर्य उदय हो वह तिथि देवकार्यमें जाननी जिसमें सूर्यास्त हो वह पितृकार्यमें श्रेष्ठ है, एकोद्दिष्टमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये ॥

तें॥" इत्यादिविरोधात् ॥ दीपिकापि-'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत कुतुपे' इति ॥ माधवीये व्यासोपि-"कुतुपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ तेन कुतुपादिरौहिणान्तो मुख्यः कालः । दिनद्वये तद्व्याप्तौ समव्याप्तौ च पूर्वा ॥ विषमव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः ॥ अव्याप्तौ पूर्वैव ॥ परविद्धाया निषेधात् सा च पूर्वदिने रौहिणलंघनापत्तेः परैवेति गौडाः॥शुक्लकृष्णवशात्खर्वदर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये । तन्न । परविद्धानिषेधप्राबल्यात् ॥ अत्र मूलं कालमाधवीये ज्ञेयम् । पार्वणं त्वपराह्णे कार्यं पूर्वोक्तवचनात् ॥ "मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगौतमोक्तेश्च ॥ पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शेऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव ॥ विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या "द्व्यपराह्णव्यापिनी स्याद्दाब्दिकस्य यदा तिथिः । महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः" इति मरीचिस्मृतेः ॥ "दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धामकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इत्यपरार्के नारदोक्तेः ॥ "द्व्यहेप्यव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य

किये है ॥ दीपिकामें भी एकोद्दिष्टके प्रकरणमें कहा है कि, एकोद्दिष्ट कुतुपमें होता है, माधवीयमें व्यासका कथन है कि, निश्चलमन मनुष्य आवर्त्तनके समीप कुतुपके प्रथम भागमें एकोद्दिष्टका आरम्भ करै, इससे कुतुप आदि रौहिणपर्यन्त मुख्य समय है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकार कथन किया है दोनों दिन तिथि तुल्य होय तो पहली तिथि लेनी और न्यूनाधिक होय तो जिस दिन अधिक हो उसी दिन लेनी, और दोनों दिन कुतुपमें न होय तो प्रथम लेनी कारण कि, परविद्धाका निषेध है, वह निषेध लिखेंगे पूर्वदिनमें ग्रहण होय तो रौहिण लंघना होगा इससे अगली लेनी यह गौडोंका मत है, शुक्ल और कृष्णके वशसे खर्व दर्प आदिसे व्यवस्था जाननी चाहिये यह अन्य कहते हैं, सो ठीक नहीं कारण कि, परविद्धाका निषेध बडा प्रबल है ॥ इसका मूल कालमाधवीयमें लिखा है, पार्वण तो पूर्वोक्त वाक्यसे अपराह्णमें करना चाहिये और पृथ्वीचन्द्रोदयमें गौतमका वाक्य है, एकोद्दिष्टमें वह तिथि होती है जो मध्याह्नव्यापिनी हो और पार्वणमें वह होती है जो अपराह्णव्यापिनी हो, जो पहले दिन हो वा पहले दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो वही लेनी, दोनों दिन अपराह्णमें हो और एक दिन किसी अंशमें तिथिका स्पर्श न होता हो वा समान व्याप्ति होय तो प्रथम लेनी और न्यूनाधिक व्याप्ति होय तो जिस दिन अधिक होय उसी दिन लेनी, कारण कि, मरीचिका कथन है कि, वार्षिक श्राद्धकी अपराह्णव्यापिनी तिथि जिस दिन अधिक हो उस अधिक विद्धातिथिकी ही महर्षि प्रशंसा करते हैं ॥ अपरार्कमें नारदका कथन है कि, अमा-

यदा तिथिः । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि'' इति सुमन्तूक्तेः ॥ 'पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डान्' इत्याङ्गिरसभाषितम्, इति हेमाद्रौ पाठः ॥ तत्रैव वृद्धमनुः-"न द्व्यह्व्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत् ॥" मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु काष्र्णाजिनिव्यासौ-"अह्नोस्तमयवेलायां कलामात्रा यदा तिथिः । सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा ॥" इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः ॥ पूर्वेद्युः सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव-'त्रिमुहूर्ता न चेद् ग्राह्या परैव कुतपे हि सा' इति कालादर्शे गोभिलोक्तेः ॥ कालादर्शेपि-"प्रत्याब्दिकेप्येवमेव तिथिर्ग्राह्यापराह्णिकी । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः ॥ समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेपि सा यदि । त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्वेवं विनिर्णयः ॥ २॥" अन्यत्रापि-"सायंतन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा द्व्यपराह्णयोर्यदि तदा यत्राधिका सा मता । तुल्या चेदुभयापराह्णसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोचिता ॥' माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु-दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वा वृद्धौ परा ।

वस्या पूर्णमासी पिताका वार्षिक दिन इनको जो पूर्वविद्धामें नहीं करता वह नरकको जाता है, दोनों दिन क्षयाहकी तिथि मध्याह्नव्यापिनी न होय तो यदि तीन मुहूर्त भी होय तो पूर्वविद्धामें नहीं करनी चाहिये यह सुमन्तुने लिखाहै । हेमाद्रिका तो यह पाठ है कि, पहली तिथिमें पिंड देना यह आंगिरसने लिखाहै वहांही वृद्धमनुका वाक्य है कि, दोनों दिन भी होय तो पूर्वविद्धा करनी चाहिये, मदनरत्नमें भी ऐसेही लिखा है कि ' जो काष्र्णाजिनी और व्यासने कहा है कि, सूर्य अस्त होनेके समय जो तिथि कलामात्र भी हो वही वार्षिकमें लेनी चाहिये; पुत्रहानिकी दाता प्रथम न लेनी यह तीन मुहूर्तकी स्तुति की है, पहले दिन सायंकालको तीन मुहूर्त न होंय तो पहलीही लेनी कारण कि, कालादर्शमें गोभिलने कहा है कि, तीन मुहूर्त न होंय तो अगले दिन कुतपमेंही वह तिथि लेनी ॥ कालादर्शमें भी कहा है कि, वार्षिकमें भी इसी प्रकार अपराह्णकी तिथि लेनी चाहिये, दोनों दिन अपराह्णमें होय तो अधिकसे निर्णय करना और जगह भी लिखाहै कि, समान होय तो पूर्व विद्धा न करै, और तुल्य न होय तो उसी दिन करै, जिस दिन वह सायंकालको तीन मुहूर्तमें हो और स्थानमें लिखा है कि, जो परदिनमें सायंकाल मृतककी तिथि होय तो वही वार्षिक और मासिकमें ग्रहण करनी यदि वह दोनों दिन अपराह्णमें होय तो जिस दिन अधिक होय तो वह ग्रहण करै, यदि अपराह्णके समय दोनों दिन समान होय तो पहली लेनी, दोनों दिन अपराह्णमें न होय तो वह लेनी जो सूर्यास्तके समय तीन मुहूर्त हो, वह भी न होय अगली ही लेनी उचित है ॥ माधव पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखतेहै कि, दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी होय तो क्षयाहमें पहली और वृद्धिमें पिछली लेनी, बृहन्नारदीयमें लिखा है कि,

'खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ' इत्युक्तेः ॥ "अपराह्णद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः । क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।" इति बौधायनोक्तेः ॥ "क्षयाहस्य तिथिर्या तु अपराह्णद्वये यदि । पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा" इति बृहन्नारदीयाच्चेत्याहतुः ॥ वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेः । न तु ग्राह्यतिथेः ॥ तस्याः क्षयेऽपराह्णद्वयव्याप्तेरसंभवात् ॥ तदाह माधवः—'न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ'' इति ॥यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—'पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनी तिथिरुक्ता तत्रापराह्णव्यापिनी ज्ञेया' । 'सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत्' इति मात्स्यादौ सायाह्ननिषेधात् ॥ यच्च-'त्रिमुहूर्तादिग्रहणं, तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरम्' इत्याह ॥ तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधाल्लक्षणापत्तेश्च चिन्त्यम् ॥ तस्मात् पूर्वोक्तमेव साधु ॥ यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम् ॥ "मृताहं समतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते' इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः ॥ 'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे चा भोजनसमापनम्' इत्यापस्तम्बेन गौणकालोक्तेश्चेति माधवः ॥ आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्रात्रिभागे पाते भोजनसमाप्त्यन्ते रात्रौ कार्यम् ॥ शेषसमाप्तिः परदिन एवेति हरदत्तः ॥ ग्रहणदिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिन एवान्नेनामेन हेम्ना वा कुर्यात् ॥ नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राक्

यदि क्षयाहकी तिथि दोनों अपराह्णमें होय तो क्षयमें पहली और वृद्धिमें अगली लेनी, और यहां तिथिके वृद्धि और क्षय परतिथिके लेने ग्राह्य तिथिके नहीं कारण कि, उसके क्षयमें दोनोंका अपराह्णमें होना नहीं होसकता है, सोई, माधवने लिखा है कि, ग्राह्यतिथिके वृद्धि क्षय नहीं लेने ऊर्ध्वतिथिके ग्रहण करने ॥ जो पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखा है कि, पूर्वोक्त वचनोंमें जहां सूर्यास्तके समयकी तिथि लिखीहै, वहां अपराह्णव्यापिनी जाननी चाहिये, कारण कि, सायाह्न तीन मुहूर्तका होताहै, उसमें श्राद्ध न करै, ऐसा मत्स्यादिकोंके वाक्यसे सायाह्नमें श्राद्धका निषेध है, और जो तीन मुहूर्तका निषेध कहाहै वह श्राद्धके योग्य अपराह्णरूप तीन मुहूर्तका कथन करता है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है ॥ वह हेमाद्रि मदनरत्न कालादर्श आदि ग्रन्थोंके विरोधसे और लक्षणा माननेसे विचारणीय है, तिससे पूर्वोक्तही श्रेष्ठ है जब कोई विघ्नसे दिनमें श्राद्ध न किया होय तब तो रात्रिमें भी करलेना कारण कि, मरीचिने उसके अवलंघनमें दोष लिखा है कि, मरणका दिन उल्लंघन करके चाण्डालोंमें उत्पन्न होता है और आपस्तम्बने यह गौणकाल लिखा है कि, रात्रिमें श्राद्ध न करै, और प्रारम्भ करदिया हो तो भोजनकी समाप्तितक करै, यह माधवका मत है ॥ यदि प्रारम्भ किये श्राद्धमें विघ्नवश रात्रि आजाय तो भोजनकी समाप्तितक करै शेषकी समाप्ति परदिनमें करनी यह हरदत्तका मत है, ग्रहणके दिन वार्षिक आजाय तो उस दिन आम अन्नसे वा सुवर्णसे श्राद्ध करना, परदिनमें

ग्रहणनिर्णये ॥ तच्च प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यम् ॥ अन्यथा न ॥ "प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः। क्वचित् त्रयोदशेपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्" इति लघुहारीतोक्तेः ॥ इदमन्त्याधिकमासपरम् ॥ द्वादशे त्रयोदशे वातीत इत्यर्थः ॥ तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेधिके एवाब्दिकं कार्यम् यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति माधवीये ॥ हेमाद्रौ चैवम् ॥ द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धमासे एव नाधिके, नाप्युभयोः ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम् ॥ दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे क्रम उक्तः ॥ स्मृतिसारेपि—"दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। आदौ क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते" इति ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ तद्वचने मूलाभावात् 'पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः' इति दर्शश्राद्धे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेप्यतिदेशात् प्राप्तेः ॥ 'पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो दर्शश्राद्धम्' इति व्यतिषङ्गस्तु न भवत्येव। तस्यार्थिकत्वात् ॥

न करै, यह पहले कह आयें हैं, वह प्रतिवार्षिक श्राद्ध त्रयोदश मलमासमें करना और प्रकार नहीं कारण कि, लघुहारीतका कथन है कि, प्रतिवर्ष वार्षिक श्राद्धमें पुत्र द्वादश मासमें पिंडदान करै, और प्रथम वर्षको छोडकर कहीं त्रयोदश मासमें भी करै ॥ यह भी तब है जब अन्तका अधिक मास हो यह अर्थ है कि, बारहवां वा तेरहवां महीना बीतजाय तिससे जहां बारह महीनेका श्राद्ध शुद्ध मासमें हो वहां अधिक त्रयोदश महीनेमेंही दो आदि वर्षोंका श्राद्ध करै, जहां अधिकके मध्यमें वार्षिक हो वहां उसकी द्विरावृत्ति करके शुद्ध चौदहवें मासमेंही प्रथम वार्षिक करै, यह निष्कर्ष सिद्धान्त है, माधवीय और हेमाद्रिमें भी ऐसेही लिखा है, दूसरे वार्षिक आदि तो शुद्ध महीनेमेंही होते हैं अधिकमें नहीं, और न दोनोंका मलमासमें जो मरे है उनका जो वही अधिकमास हो. तब उसमें करना, अन्यथा शुद्धमें यह पहले कथन कर आये हैं अमावस्यामें वार्षिक होय तो पहले वार्षिक करके फिरसे पिंडपितृयज्ञ और अमावसको श्राद्ध करै, यह निर्णयदीपमें क्रम लिखा है ॥ स्मृतिसारमें भी यही लिखा है कि, अमावस्यामें क्षयाह आन पडे तो याज्ञिक कैसे करते हैं पहिले क्षयाह निवृत्त होकर पीछेसे अमावस्या श्राद्ध करना लिखाहै, युक्त तो ऐसे है कि, इस वाक्यमें मूलके अभावसे फिर पितृयज्ञ करना, फिर बुद्धिमान् मनुष्य अन्वाहार्यक करे इस वाक्यके दर्शके श्राद्धमें पिंडपितृयज्ञके अनन्तरसे वार्षिकमें भी अतिदेश प्राप्त होगा, पितृयज्ञके उपरान्त वार्षिक फिर दर्शश्राद्ध यह व्यतिषंग तो नहीं होता कारण कि, यह कर्मसिद्ध

कालादर्शेऽपि–" निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् " इति ॥ सर्वान् प्रत्यैकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् ॥ देवजानीयेऽप्येवम् ॥ एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम् ॥ ' प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ' इति सर्वातिदेशात् ॥ मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे– "अयनद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च । उत्सृजेन्नीलवृषभं कौमुद्याःसमुपागमे ॥" कौमुदी कार्तिकी ॥ अथ शुद्धिश्राद्धम् । दिवोदासीये–" सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत् । तावदेव न भोक्तव्यं क्षयेहनि कदाचन ॥ " वर्षान्तसपिण्डनेऽप्येतत्तुल्यम् " मृताहनि तु सम्प्राप्ते यावदब्दचतुष्टयम् । बहिः श्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥ प्रथमेस्थीनि मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम् । तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थके ॥ २ ॥ " इति श्राद्धकारिकोक्तेः । शुद्धं किंचिदिति ज्ञेयम् ॥ स्मृत्यन्तरे–" सप्तत्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुंक्ते तमोहतः । स पंक्तिदूषितः पापः प्रेताशी च भवेत्तु सः ॥" तत्र प्रथमेऽब्दे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेह्नि सपिण्डनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यात् । इति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ हेमाद्रिस्तु मृताहे सपिण्डीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः ॥ " पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः ॥ तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दि-

---

इ ॥ कालादर्शमें भी लिखाहै कि, इसमें निमित्तका नियम नहीं है पूर्वकर्मका करनाही कारण है, सबके निमित्त एकरूपताके अभावसे क्षयाहनिमित्तक श्राद्ध नियत नहीं देवजानीयमें भी ऐसेही लिखाहै, इसी प्रकार मासिक आदिमें भी जानना, कारण कि, ये सबके निमित्त अतिदेश है कि, जो मनुष्य प्रतिवर्ष जैसे वार्षिक करै वैसेही महीनोंको भी करनेका कहा, मरण, दिनमें हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें वृषोत्सर्ग लिखाहै कि, दोनों अयने और बान्धवका मरणदिन इनमें कार्तिककी पूर्णिमाको नीलवृष त्यागे ॥ अब शुद्धिश्राद्ध लिखते हैं । दिवोदासीयमें भी लिखाहै कि, सपिंडीके पीछे जबतक तीन वर्ष पूर्ण न हों, तबतक क्षयाहमें कभी भोजन न करै, वर्षके अन्तमें सपिंडी होय तो भी यह तुल्य है, मरणके दिनमें जबतक चार वर्ष हों तबतक बहिःश्राद्ध (जंगलमें) करै, श्राद्ध भोजन न करै, प्रथमवर्षमें अस्थि और चरबी दूसरेमें मांस,तीसरेमें रुधिरका भोजन लिखाहै, चौथा वार्षिक कुछ शुद्ध होताहै यह श्राद्धकारिकामें लिखाहै ॥ स्मृत्यन्तरमें कहा है, सैंतीस मास पर्यन्त जो अज्ञानी वार्षिक श्राद्धका भोजन करताहै वह पापी पंक्तिदूषक और प्रेतयोनि होताहै, वहां जब पहले वर्षमें वर्षके अन्तमें सपिंडी करै यह पक्ष है तब मरणदिनसे पहिले दिन सपिंडी और वर्षपूर्तिका श्राद्ध करके अगले दिन वार्षिक करै, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै, कालकांडमें हेमाद्रिने तो यह लिखाहै कि, मरनेके दिन सपिंडी करनेसे ही वार्षिककी सिद्धि है; कारण कि, यह वाक्य है कि, पूरे वर्षमें सोलहवां पिण्ड लिखाहै उससे ही सपिण्डी और वार्षिक दोनों इष्ट हैं और

कमिष्यते " इति वचनादित्याह । इदमेव युक्तम् ॥ अथ क्षयाहाज्ञाने निर्णयः । मरीचिः—" श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः " इत्युक्तेः । शुक्लैकादश्यामपि बृहस्पतिः—" न ज्ञायते मृताहश्चेत्प्रमीते प्रोषिते सति । मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम् ॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रस्थानमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा॥२॥" मदनरत्ने भविष्ये—"मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं सांवत्सरं सदा ॥ दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥ २ ॥ " निर्णयामृते तु–" यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु । तदा चाषाढके मासि माघे वा तद्दिनं भवेत् ॥" इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढोप्युक्तः ॥ कालादर्शेपि–'मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाढमाघयोः ' इत्युक्तम् ॥ हेमाद्रौ प्रभासखण्डे–"मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथंचन । तेन कार्यममावास्या श्राद्धं माघेऽथ मार्गके ॥ " भविष्ये–'मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु ।' पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने च तद्दर्शे मासाज्ञाने दिनज्ञाने च मार्गादाविति वच्छ्रवणदिनेपि ज्ञेयमित्यर्थः॥श्रवणदिने मासाज्ञाने माघमार्गदर्शे कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात् ॥ अतोत्र लोप इति

यही उचित है ॥ अब क्षयाहके अज्ञानमें निर्णय लिखतेहैं, मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय और मरणदिनका ज्ञान न रहै, तो विशेषकर कृष्णपक्षकी एकादशीको करै, विशेषकर यह कहनेसे शुक्लपक्षमें भी करै, बृहस्पतिका कथन है कि, मरणदिनका ज्ञान न होय परदेशमें मरा होय, और मासका ज्ञान होय तो उस महीनेकी अमावस्याको वार्षिक होताहै, यदि मरनेके दिन दोनों महीनेका ज्ञान न होय तो (गमन) का महीना और दिन ये दोनों पूर्वोक्त दिशासे लेने, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे गरुड ! जो मनुष्य मरणदिनको न जाने वह मार्गशिर भाद्रपद वा माघमें उसी दिन करै ॥ निर्णयामृतमें तो जो महीनेको न जाने और दिनको जाने तब आषाढ और माघमें वह दिन होताहै इस बृहस्पतिकी स्मृतिसे आषाढभी लिखाहै. कालादर्शमें भी महीनेके अज्ञानमें और दिनके ज्ञानमें आषढ और माघमें कहाहै, हेमाद्रिके प्रभासखण्डमें लिखाहै कि, जो मरणदिनको वा महीनेको कथंचित् जाने वह माघ वा मार्गशिरकी अमावस्याको करै ॥ भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वोक्त क्रमसे दिन और महीनेके मरनेकी बात सुननेसे लेने, पूर्वोक्त कहनेसे यह आशय है कि, प्रस्थान दिनका ज्ञान न होय तो मार्गशिर आदिमें करै, यह सब श्रवण दिनमें भी जानना चाहिये सुननेका दिन और महीनेका ज्ञान न होय तो माघ और मार्गशिरकी अमावस्याको पूर्वोक्त प्रभासखण्डके वाक्यसे करना उचित है,

शूलपाण्युक्तं हेयम् ॥ तिथितत्त्वे यमः-'गतस्य न भवेद्वार्ता यावद्द्वादशवार्षिकी । प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः क्रिया । दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः ॥ २ ॥" अथश्राद्धविघ्ने निर्णयः । तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चाशौचाभावः ॥ "निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायादिरतस्य च॥ देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ कर्तुस्तु विष्णुराह- "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥" श्राद्धे प्रारम्भस्तेनैवोक्तः ॥ "प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥" इति ॥ माधवीये ब्राह्मेऽपि- "श्राद्धादौ पितृयज्ञे च कन्यादाने च नो भवेत् ॥" मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे-सद्यःशौचं प्रकृत्य-'यज्ञे सम्भृतसम्भारे विवाहे श्राद्धकर्मणि' इति ॥ तिथितत्त्वादि गौडग्रन्थास्तु निमन्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम् ॥'निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः' इति विष्णूक्तेः ॥ यत्तु 'श्राद्धे पाकपरिक्रिया' इति । तद्दर्श-

इससे ऐसे विषयमें जो श्राद्धका लोप (न करना) शूलपाणिने लिखा है वह त्यागने योग्य है. तिथितत्त्वमें यमका वाक्य है कि, जब गयेहुएकी बारह वर्षतक बात न सुनी जाय तो पुत्र और बांधव उसके मरनेका निश्चय करलें, जिस महीने और जिस दिनमें वह गया हो उस दिन और उसी महीनेमें उसकी क्रिया करनी दिनका ज्ञान न होय तो अमावस्या वा आषाढकी अमावस्याको करै ॥ अब श्राद्धके विघ्नमें निर्णय कथन करते हैं, उसके निमंत्रणके पीछे ब्राह्मणके जन्म वा मरणके अशौचका अभाव कहा है कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, निमंत्रित ब्राह्मणोंके पीछे श्राद्धकर्मका प्रारम्भ होगया हो और ब्राह्मणोंके देहमें पितर स्थित हों तो उस ब्राह्मणको निमंत्रणसे अशौच नहीं होता, जो वेदपाठ और गायत्री आदिमें तत्पर हो, श्राद्ध कर्ताके निमित्त तो विष्णुने यह लिखा है कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप इनका प्रारम्भ होगया तो सूतक नहीं लगता और प्रारम्भ न हुआ होय तो सूतक लगता है, प्रारम्भमें विष्णुने भी यही लिखा है कि, यज्ञका प्रारम्भ, ब्राह्मणोंका वरण व्रत और सत्रका संकल्प, विवाहका नान्दीमुख, श्राद्धका प्रारम्भ, पाकका करना है. माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, श्राद्ध आदि पितृयज्ञ और कन्यादानमें सूतक नहीं होता ॥ मिताक्षरामें तत्काल शौचके प्रकरणमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि, सामग्री इकट्ठी होनेपर यज्ञमें, विवाह और श्राद्धकर्ममें उसी समय शुद्धि है, तिथितत्त्व आदि गौड-ग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि, निमंत्रणके पीछे कर्ता और भोक्ता दोनोंको अशौच नहीं होता कारण कि, विष्णुका वाक्य है कि, निमंत्रणके पीछे श्राद्धका प्रारम्भ होता है यह स्मृति है. जो श्राद्धमें पाकक्रियाका प्रारम्भ किया है, वह अमावस्याके श्राद्धमें है, दाताके

श्राद्धविषयमित्याहुः ॥ दातृगृहे मरणादौ ब्राह्मे उक्तम् ' भोजनार्द्धे तु संभुक्ते विप्रैर्दातुर्विपद्यते ॥ ' गृहे इति शेषः ॥ " यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा समाहितः । आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः ॥" इति ॥ अस्य श्राद्धविषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । मम तु प्रतिभातीदं विवाहादिविषयं न तु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् ॥ ' विवाहोत्सवयज्ञेषु ' इत्युपक्रम्य-" भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके॥ अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ॥" इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् ॥"निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि" इति पूर्वोक्तविरोधाच्च ॥ श्राद्धे तु यद्यपि विष्णुना पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तः, तथापि कर्तुरेव सः, भोक्तुर्दोषोऽस्त्येव "अपि दातृग्रहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा । अविज्ञाने न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन ॥ विज्ञाने भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात् ॥" इति माधवीयब्राह्मोक्तेः ॥ आदिशब्देनाशौचमुच्यते ॥ तच्चाह विष्णुः-'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् ॥ यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्'॥ इति ॥ यत्तु ' देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् ' इति ब्राह्मं, तत् श्राद्धाकालीनस्य निषेधकम् ॥ न तदुत्तरकालीनस्य ॥

घरमें मृत्यु आदि होजाय तो ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि ब्राह्मणने आधा भोजन करलिया हो और दाताके घरमें कोई मृत्युको प्राप्त हो तो शेष उच्छिष्टको त्यागकर किसी औरके जलसे आचमन करके पवित्र होते हैं, हेमाद्रिने इस वाक्यको श्राद्धके विषयमें लिखा है ॥ और पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसेही लिखा है, मुझे तो यह विदित होता है कि, यह वाक्य विवाहके विषयमें है, श्राद्धविषयका नहीं है, कारण कि, इसमें श्राद्धपद नहीं है, और इस षट्त्रिंशत्के मतके साथ इसकी एकवाक्यता (संगति) भी है कि, विवाह उत्सव यज्ञ इनमें ब्राह्मण भोजन करते हो, और मध्यमें मृत्यु वा सूतक होजाय तो और घरके जलसे आचमन करके वे सब ब्राह्मण पवित्र होते हैं, और इस पूर्वोक्त वाक्यके संग विरोधभी है कि, जब निमंत्रण हुएके पीछे श्राद्धकर्ममें अशौच होजाय तो दोष नहीं है ॥ श्राद्धमें तो विष्णु पाकके अनन्तर यद्यपि अशौचका अभाव लिखते हैं तथापि वह कर्ताके निमित्त है भोक्ताको तो दोषही है, कारण कि, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दाता और ग्रहीताके सूतक और मरण होजायँ तो उनके अज्ञानमें श्राद्धमें किसी प्रकार दोष नहीं, और ज्ञान होय तो भोजन करनेवालोंकोही आदिशब्दसे अशौच लेना ये विष्णुने लिखा है कि, ब्राह्मण आदिके अशौचमें जो एकवार भी भोजन करता है, उसको उन ब्राह्मणोंका अशौचके बीतनेपर प्रायश्चित्त है, जो यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, देहमें पितरोंके रहते अशौच नहीं वह श्राद्ध (समयका) निषेधक है उत्तर समयका नहीं शुद्धिदीपने तो यह लिखा है कि, " निमंत्रितेषु०"

शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम्, भोजनार्थेष्वित्यादि त्वन्नश्राद्धपरमित्याह ॥ तत्र प्रायश्चित्तनिर्णयः । प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः–' भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सांतपनं द्विजः ॥ ' एतत्कामतः ॥ अभ्यासे शंखः– ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत् ' इति ॥ अज्ञानात्तु छागलेयः–" एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् । ततःशुचिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः' ' इति वर्णक्रमेणेदम् ॥ अभ्यासे तु द्वैगुण्यमित्यादि मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम् ॥ मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे कर्तुर्भोक्तुश्च सर्वथा दोषाभाव उक्तः ॥ आशौचमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये कालादर्शे च ऋष्यशृङ्गः–" देये पितॄणां श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदीयते ॥ " इति श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे–"प्रतिसांवत्सरं श्राद्धमाशौचात्पतितं च यत् । मलमासेपि तत्कार्यमिति भागुरिभाषितम् ॥" आशौचान्त्यदिनत्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः । एतन्मासिकादिपरं, न दार्शिकादौ ॥ अत एव सुदर्शनभाष्ये अपरपक्षे पित्र्याणीति नियमात् कृष्णपक्षश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव । न तु गौणकाले करणम् । तत्रोपवासः– "वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभो-

---

यह वाक्य आमश्राद्धके विषयमें है, और " भोजनार्थे०" यह वाक्य अन्नश्राद्धके विषयमें नहीं ॥ प्रायश्चित्त तो मार्कण्डेयने लिखाहै कि, ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके एक महीनेतक व्रत करै यह जानकर करनेमें है अभ्यासमें शंख कहतेहैं ब्राह्मणके भोजन कर एक महीने व्रती रहै. अज्ञानसे करनेमें तो छागलेयका कथन है कि, एक तीन पांच सात रात्रतक भोजन न करै, फिर शुद्ध ब्राह्मण पंचगव्य पान करै, यह वर्णके क्रमसे है, और अभ्यासमें दूना आदि मिताक्षरा माधवीय आदिमें लिखा है, मिताक्षरा और माधवीयने तो श्राद्धमें कर्ता और भोक्ताको सर्वप्रकार दोषका अभाव लिखा है, अशौचके मध्यमें श्राद्धका दिन आन पडै, तो माधवीयने और कालादर्शमें ऋष्यशृंगका यह वाक्य है कि, पितरोंको श्राद्ध देना हो और अशौच आन पडै तो अशौचके बीतनेपर श्राद्ध करै ॥ श्राद्धचिन्तामणिमें ज्योतिषका कथनहै, यदि वार्षिक श्राद्ध अशौचसे न किया होय तो, भागुरिने यह लिखा है कि, वह मलमासमें करना चाहिये, अशौचान्त दिनको निमित्त होनेसे उसमें करै यह मासिक और वार्षिक श्राद्धके विषयमें लिखाहै दर्श आदिके विषयमें नहीं, इसीसे सुदर्शन भाष्यमें कहा है कि, पितृकर्म कृष्णपक्षमें होतेहैं, इस नियमसे श्राद्धकर्मका लोप होजाय तो प्रायश्चित्तही है, गौणकालमें उसको न करना, यह प्रायश्चित्त भी व्रत है कारण कि, मनुका कथन है कि, वेदमें कहे नित्यकर्मोंका उल्लंघन और ब्रह्मचारीके व्रतका लोप होजाय तो भोजनका अभावही उसका प्रायश्चित्त है, अशौचमें तो

जनम्" इति मनूक्तेरित्युक्तम् ॥ आशौचे तु प्रायश्चित्तमपि न ॥ मुख्यकाले अनधिकारात् ॥ आशौचान्ते सम्भवे तु व्यासः—"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरामृतसूतके। अमावास्यां प्रकुर्वीत शुद्धावेके मनीषिणः ॥" हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतेपि—"मासिके चाब्दिके त्वह्नि संप्राप्ते मृतसूतके। वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे वापि विचक्षणाः॥"गोभिलः—"देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके। आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षये तथा ॥" मरीचिः—"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्नेऽप्यविज्ञाते मृतेहनि। एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" विशेषतः इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि ॥ आशौचेतरविघ्ने एतदिति माधवपृथ्वीचन्द्रौ ॥ यत्त्वत्रिः—"तदहश्चेत्प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना। सूतकानन्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव च" इति ॥ तत् पूर्वकालाभावे ज्ञेयम् ॥ एतदाब्दिकेतरश्राद्धपरम् ॥ यच्च देवलः—"एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिञ्छ्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः" इति ॥ तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च ॥ इदमपि पूर्वकालासंभवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम् ॥ अथ भार्यारजोदर्शने। तत्र दार्शिकमामेन कार्यम् ॥ "श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम्। अमावा-

---

प्रायश्चित्त नहीं लगता कारण कि, मुख्य समयमें अधिकार नहीं, अशौचके अन्तमें न हुआ होय तो व्यासने लिखाहै कि, श्राद्धमें विघ्न होजाय वा मरण और सूतक बीचमें हो जाय तो अमावस्याको करना कोई पंडित कहते हैं कि, शुद्धि होनेपर करना ॥ हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतमें लिखाहै कि, मासिक और वार्षिक श्राद्धके दिन मरण और सूतक होजाय तो विद्वान् यह कहतेहैं कि, शुद्धिमें वा अमावस्याको श्राद्ध करना, गोभिलका कथन है कि, वार्षिक श्राद्ध देनेके बीचमें यदि मरण और सूतक होजाय तो अशौचके अन्तमें वा उस महीनेकी अमावस्याको करै, मरीचिका कथन है कि, श्राद्धमें विघ्न हो वा मरणतिथिका ज्ञान न होय तो विशेषकर कृष्णपक्षकी एकादशीको करना चाहिये, विशेषकर यह कहनेसे शुक्लपक्ष एकादशीमें भी करना, माधव पृथ्वीचन्द्रोदय तो यह लिखते हैं कि,अशौचसे इतरमें यदि विघ्न हो तो यह कथन है ॥ जो अत्रिने यह लिखाहै कि, सूतक आदिसे जो श्राधका दिन दूषित होजाय तो सूतकके अनन्तर उसीही तिथिमें श्राद्धको करै, यह, पूर्वकाल न प्राप्त हो तब जानना, वार्षिक श्राद्ध विषय अन्यके लेखहै, जो देवलने कहाहै कि, एकोदिष्टके समय यदि विघ्न हो जाय तो और मासको उसी तिथिमें जिसमें एकोदिष्ट हो, प्रयत्नसे करै वहभी मासिक श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्न और हेमाद्रिने कहाहै यहभी पूर्वकालके न मिलनेपर रोग आदि और विस्मृतिमें जानना अब स्त्रीके रजोदर्शन होय तो उसमें श्राद्धका निर्णय कहतेहैं, इसमें दर्शका श्राद्ध आमान्नसे करना कारण कि, हेमाद्रिमें हारीतका कथन है कि, श्राद्धके विघ्नमें

दिनियतं मासंसंवत्सरादृते" इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ व्याघ्रपादोपि-"आर्तवे देशकालानां विप्लवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि" इति ॥ दीपिकापि-'दर्शे तु भार्यार्तवेप्यामश्राद्धविधिं प्रवासिविधुराद्याश्चाचरेयुर्द्विजाः' वस्तुतस्तु-'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः पाककर्त्रन्तरसत्त्वेऽन्नेनान्यथामेनेत्युक्तम् ॥ "मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला॥" इति कालिकायां वचनाच्च॥ कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेहनीति पक्षान्तरमुक्तम् ॥ पारिजातेप्येवम् ॥ एवं महालययुगादावपि ॥ आब्दिकं तु रजोदर्शनेपि तद्दिने एव कार्यम् ॥ " पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोप्यनग्निकः । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित्" इति माधवीये लौगाक्षिस्मृतेः ॥ मरीचिरपि-"अनग्निकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत् कुर्यान्मृतेहनि ॥ " कार्ष्णाजिनिः-" आपन्नोप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित् । अन्नेन तदमायां वा कृष्णे वा हरिवासरे ॥ " प्रयोगपारिजाते-" रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥

द्विजातियोंको आमश्राद्ध, मासिक और वार्षिकके विना अमावस्यामें करना लिखाहै व्याघ्रपादकाभी कथन है रजोदर्शन देश और कालका उपद्रव ये उपस्थित होंय तो द्विजोंको आमश्राद्ध करना, और शूद्र तो निरन्तर आमश्राद्ध करै, दीपिकामें भी कहाहै कि, अमावस्या होय तो स्त्रीके रजोदर्शनमें भी प्रवासी (परदेशी) विधुर (स्त्रीहीन) आदि द्विज आमश्राद्धकी विधिको करै, सिद्धान्त तो यह है यदि पाक न होय तो द्विजातियोंको आमश्राद्ध करना लिखाहै, इस सुमंतुके लेखसे पाक कर्ता और कोई होय तो अन्नके सिवाय आमान्नसे करै यह युक्त है, कारण कि कलिकामें भी लिखा है कि, मासिक, सपिंडी अमावस्याका श्राद्ध और वार्षिक ये जिसकी स्त्री रजस्वला हो उसे आम अन्नसेही करने ॥ कालादर्शमें तो यह और पक्ष कहा है कि, स्त्रीके रजोदर्शनमें अमावस्याका श्राद्ध पांचवें दिन करना चाहिये. पारिजातमेंभी इसी प्रकार लिखा है, इसी प्रकार महालय और युगादि श्राद्धमें भी जानना चाहिये, वार्षिक श्राद्ध तो रजोदर्शनमें भी उसीदिन करना चाहिये कारण कि, माधवीयमें लौगाक्षिस्मृतिका कथन है कि, यदि स्त्री रजस्वला होय तो परदेशमें स्थितभी अनग्नि ब्राह्मण अन्नसेही वार्षिक श्राद्ध करै कभी सुवर्ण वा आमान्नसे न करै ॥ मरीचिकाभी कथन है कि, जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह अनाग्नि और परदेशमें स्थित ब्राह्मण क्षयाहको त्यागकर आमश्राद्ध करै, कार्ष्णाजिनिका कथन है कि, आपत्तिमें प्राप्त हुआ भी मनुष्य वार्षिक श्राद्धको कभी भी आमान्नसे न करै, अमावस्य कृष्णपक्षकी एकादशी इनमें वह करना, प्रयोगपारिजातमें कहा है कि, भार्याके रजस्वला होनेपर जो क्षयाहको छोडता है

मासिकानि सपिण्डं च अमावास्या तथाब्दिकम्। अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ॥ २ ॥' देवयाज्ञिकनिबन्धेपि-" भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेह्नि कुर्याद्भार्या रजस्वला। पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीत मृताहनि शुचिर्यतः ॥ " कालादर्शेपि-"रजस्वलाङ्गनोऽनग्निर्विदेशस्थोथ वाब्दिके । दर्शादाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ॥ " अन्यत्रापि-" विदेशको वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम्। श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हेम्ना न तु पञ्चमेह्नि ॥ " एवं मासिकेपि ॥ यत्तु मरीचिः-" आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला। पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत् कुर्यान्मृतेहनि ॥ " माधवीये-" श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेहनि' इत्युत्तरार्द्धं तदपुत्रकर्तृकश्राद्धविषयम् ॥ "अपुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेहनि " इति श्लोकगौतमोक्तेः ॥ ' दैवे कर्मणि पित्र्ये वा पञ्चमेहनि शुद्ध्यति' इति प्रभासखण्डाच्च ॥ नन्वशुचित्वादेव तत्र पञ्चमेहन्यर्थात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम् ॥ मैवम् "गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी वाप्यरोगिणी । यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् " इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः ॥ अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च

वह प्रलयपर्यंत नरकमें निवास करता है, जिसकी स्त्री रजस्वला हो उसे मासिक सपिंडी आमश्राद्ध और वार्षिक ये अन्नसेही करने ॥ देवयाज्ञिकनिबंधमें भी कहा है कि, रजस्वला स्त्री पांचवें दिन पतिका श्राद्ध करै, कारण कि, पुत्रभी मातापिताका श्राद्ध क्षयाहदिनमें करता है, कालादर्शमेंभी कहा है कि, जिसकी स्त्री रजस्वला हो वा जो अग्निहोत्री न हो वा जो विदेशमें हो वह वार्षिक श्राद्ध अमावस्याके तुल्य आम अन्नसे न करै, किन्तु पक्वान्नसेही करै, और स्थानमेंभी लिखा है कि, परदेशमें हो वा अनग्नि हो वा जिसकी स्त्री रजस्वला हो वह क्षयाह श्राद्ध पाकसे करै आमान्नसे न करै और न पांचवें दिन करै, ऐसेही मासिक श्राद्धमें जानना जो तो मरीचिने यह लिखा है कि, वार्षिक श्राद्धके आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला होय वह पांचवें दिन श्राद्ध करै, मरणदिनमें न करै ॥ माधवीयमें कहा है कि, पिछला आधा श्लोक यह है कि, तब श्राद्ध न करै पांचवें दिन करै वह पुत्रहीन स्त्री जिसे करै उस श्राद्धके विषयमें है कारण कि, श्लोकगौतमने यह लिखा है कि, जब पुत्रहीन स्त्रीके स्वामीका वार्षिक आन पडै और रजस्वला होय तो पांचवें दिन करै और प्रभासखण्डमेंभी यही लिखा है कि, दैव और पितृकर्ममें पांचवें दिन श्राद्ध होना प्राप्त है इससे वाक्य व्यर्थ है, ऐसे मत कहो कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, गर्भवती सूतिका आदि और कुमारी रोगिणी ये जब अपवित्र हों तब औरसे प्रयत्नपूर्वक श्राद्धको करावें ॥ जिनका यज्ञोपवीत न हुआ हो स्त्री वा शूद्र जो हों वे ऋत्विजसे श्राद्ध करावें, वा

श्राद्धमृत्विजा वा कारयेयुः ॥ 'स्वयं वाऽमन्त्रकं कुर्युः' इति स्मृत्यर्थसारा-च्चान्यद्वारा करणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तदिशा आशौचानन्तरं श्राद्धकर्तव्यता-ऽऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च ॥ अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेहनीति युक्तम् ॥ यत्तु–'सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने' इति तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबन्धसिद्धान्तः ॥ हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारा-त्तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृत्तेरेकभार्येण पञ्चमेहनि कार्यं प्रागुक्तमरीच्युक्तेः, भार्या-न्तरसत्त्वे तु पुष्पवत्स्वपीतिवचनात्तद्दिने एवेत्याह ॥ दीपिकापि–'भार्यर्तौ सति पञ्चमे च दिवसे स्याद्वार्षिकं मासिकं पक्वान्नैर्बहुभार्यकस्त्वपि कृते पत्न्यन्तरे तिष्ठ-ति । कुर्यात्तद्द्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति तच्चिन्त्यम् ॥ सहाधिकारः–सहत्वश्रुत्या वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा ॥ नाद्यः । तदभावात् । 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात् ॥ आब्दिकस्य च निरग्नेरपि पाके-नैवोक्तेः ॥ स्मार्ताग्निसाध्यत्वानियमात् 'तामपरुध्य' इति पूर्वोक्तवचनासत्त्वाच्च ॥ कथं च भार्यान्तरसत्त्वेधिकारः । ज्येष्ठया न विनेतरा, इति नियमात् ॥ ज्येष्ठाप-रत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात् ॥ न द्वितीयः ॥ अविभक्तभ्रातॄणामेकस्याऽशुचि-

-मन्त्रोंको त्यागकर स्वयं करे, यह स्मृत्यर्थसारमें कहा है, वह औरसे करवानेकी निवृत्तिके निमित्त है वह उक्त प्रकारसे अशौचके उपरान्त श्राद्ध करनेके समान वाक्य व्यर्थ हो जायगा इससे पत्नी पांचवें दिन करै यह युक्त है । जो यह कहा है कि, सात दिनमें पितर देवता इनके व्रत और पूजाके योग्य होती है वह रजकी निवृत्तिके विषयमें है, यह हेमाद्रिसे भिन्न सबहीका सिद्धान्त है, हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि, श्राद्ध आदिमें स्त्रीके संगही अधिकार है, और वह जब रजसे दुष्ट है उसकी निवृत्ति होनेपर एक स्त्रीवाला मनुष्य पांचवेंदिन श्राद्ध करै कारण कि, पूर्वोक्त मरीचिका कथन है, यदि और भार्या होय तो स्त्री पुष्पवाली होनेपर भी इस वाक्यसे उस दिनही करै ॥ दीपिकाकामी कथन है कि, भार्याको ऋतु होय तो पांचवें दिन पक्वान्नसे वार्षिक वा मासिक होते हैं, जिसके बहुत स्त्री हों वह तो और स्त्रीको बैठाकर उन दोनोंको मुख्य दिनमेंही करले, सो उचित नहीं, कारण कि, संग अधिकार, संग सुननेसे है वा एकफलभागिनी होनेसे, वा पाक बनानेसे है, प्रथम पक्ष तो नहीं कारण कि, उस सहका अभाव कहा है विवाहसे सहत्व कर्मोंमें कहोगे वह वाक्य उन कर्मोंमें लिखा है जो अग्निसे सिद्ध हों, और वार्षिक श्राद्ध निराग्निसे भी पाक-सेही लिखा है यह नियम नहीं कि, वह स्मार्त अग्निसे साध्य है, उसको रोककर इसके समान पुष्पवती यह पूर्वोक्त कथन है ॥ और दूसरी भार्याके होनेपर कैसे अधिकार है कारण कि, ज्येष्ठापत्नीके विना अन्य स्त्री अधिकारिणी नहीं है, इस नियमसे ज्येष्ठाके विषयमें मानोगे तो उससेही सिद्ध था यह कथन व्यर्थ हो जायगा, दूसरा पक्ष भी नहीं है कारण कि, इकठे

त्वेन्यस्याधिकारापत्तेः ॥ न तृतीयः ॥ प्रवासनिर्देशसूतिकारोगिण्यादिष्वव्यक-रणापत्तेः ॥ 'आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः' इति देवलोक्तावात्मने-पदात्स्वस्य बान्धवानां च पाककर्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च॥ 'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी' इति पाद्मादिलिङ्गात् प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते ॥ न तत् कस्याप्यनिष्टम् ॥ तेनैतद्वचनं युक्त्याद्यभावात् पूर्वोक्तवचोविरोधाच्च यत्किंचिदेव ॥ यदपि–" श्राद्धीयाऽहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेऽहनि" इति श्लोकगौतमपाठोन्यथा दर्शितः ॥ माधवीये च तद्वशात् पक्षा-न्तरमुक्तम् ॥ तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः ॥ यस्य प्रेतस्येत्यर्थात् ॥ तेनात्र हेमाद्रि-र्भ्रामेति बहु वक्तव्येपि नोच्यते ॥ अथान्वारोहणे निर्णयः । लौगाक्षिः–" मृता-हनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक् ॥ नवश्राद्धं च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु ॥ " समासेन तु तन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवद्द्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च ॥ पिण्डशब्दः श्राद्धपरः ॥ नवश्राद्धं पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ ॥ अत्र मृताहनीत्येक-त्वात् ॥ दिनभेदे दिनैक्ये वा मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं

भाइयोंमें एकके अशुद्ध होनेपर औरका अधिकार न होगा, तीसरा: पक्ष भी उचित नहीं कारण कि, प्रवास विदेश सूतिका रोगिणी आदि होनेपर भी न करना होगा, और अपने बान्धवोंद्वारा नहीं ये पात्रोंसे अन्नका प्रारम्भ करे, इस देवलके कथनमें 'आरमेत' यह आत्मनेपदका प्रयोग है, इससे अपनेको और अपने बान्धवोंको पाक करना लिखा है, उसका विरोध आवेगा, यदि कोई फिर उन्हें जनकनन्दिनी सीताने शीघ्र पकाया इस पद्म-पुराणके वाक्यसे स्त्रीका किया पाकही श्रेष्ठ है, सो कुछ नहीं कारण कि, वह किसीको भी अनिष्ट नहीं ॥ और इस वाक्यसे उक्ति आदिके अभावसे और पूर्वोक्त कथनके विरोधसे यह यथार्थ नहीं और जो श्राद्धका दिन आनेपर जिसकी स्त्री रजस्वला हो वहां, श्राद्ध न करना, किंतु पांचवें दिन करना इस श्लोकगौतमका पाठ अन्यथा कर दिखलाया है, और माधवीयमें उसके बलसे दूसरा पक्ष लिखा है, उसमें भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, कारण कि, यह उसका अर्थ है कि, जिस मृतकका तिससे, यहां हेमाद्रिको भ्रम हो गया, यहां बहुत भी कहना था पर नहीं कथन करते ॥ अब अन्वारोहणका निर्णय कथन करते हैं । लौगाक्षिका कथन है कि, क्षयाहके दिन एक तन्त्रसे स्त्री और पुरुषके निमित्त पृथक् २ पिण्डदान नवश्राद्ध करै इसको अन्वारोहण कहते है, दो पितरोंके श्राद्धकी तुल्य दोनोंका एक पिंड और एकही ब्राह्मण हो, यहां ब्राह्मणपदसे श्राद्धका ग्रहण करना, नवश्राद्ध पृथक् करना, यह हेमाद्रि और पृथ्वी-चन्द्र कहते हैं, यहां 'मृताहनि' इस एक वाक्यसे दिनभेद और दिनके एक होनेपर मरणकी तिथि एक हो, समय एक हो, कर्ता एक हो, पाक भी एक होता है, जब स्त्री पुरुष एकही

च ॥ " एकचित्यधिरोहे तु तिथिरेकैव जायते । एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृह्णीत नामनी " इति स्मृत्यन्तराच्च ॥ अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम्- "अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया । पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ॥ नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥ २ ॥ " इति ॥ तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव ॥ तथा वार्षिके समासविधानादन्यत्र सर्वत्र पृथक्त्वे प्राप्ते नवश्राद्धमेव पृथगिति परिसंख्ययान्यत्र पृथगुक्तेष्वपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसपिण्डान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मदनपारिजातनिर्णयामृतादयः ॥ अतः समासविधिबलात् ज्येष्ठपुत्रस्य कर्तृत्वे सपत्नमातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्वार्षिकादिकमविभक्तः सापत्नपुत्र एव ज्येष्ठः कुर्यात्, न औरसः ॥ वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव मातुः पृथक्कुर्यात् ॥ एवं बह्वीष्वपि मातृषु ज्ञेयम् ॥ त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणैरप्येवमुक्तम् ॥ यत्तु गार्ग्यः-" एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं गतौ । पृथक्श्राद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक् पृथक् ॥ ओदनं पिण्डः ॥ तन्नवश्राद्धविषयम् ॥ यत्तु भृगुः-" या समारोहणं कुर्याद्भर्तुश्चित्यां पतिव्रता । तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिंडे नियोजयेत् ॥ प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत्तु समा-

---

चितामें चढैं तब एकही तिथि होती है, एक पाक और एक पिंडमें दोनोंके नाम लेले यह किसी और स्मृतिका भी कथन है ॥ अन्त्येष्टिपद्धतिमें भट्टोंने भी लिखा है कि, स्त्रियोंके अन्वारोहमें पतिको जलदान पिंडदान एकतंत्रसे और वार्षिक श्राद्ध नवश्राद्ध आदि सब और सपिंडी भिन्न २ होती है, और एकही वृषोत्सर्ग और एकही गोदान होता है, इस वाक्यसे तिथिभेदमें भी वार्षिक पृथक्ही होता है, तैसेही वार्षिकमें समास (तन्त्र) के विधानसे और सब स्थानमें पृथक् पाया, नवश्राद्धही पृथक् करै, इस (गिनती) से और श्राद्धोंमें पृथक् होनेपर भी वार्षिक षोडश श्राद्ध तीर्थे सपिंडी अन्वष्टकाआदिमें इकट्ठा यह मदनपारिजात निर्णयामृत आदिका मत है, इसीसे तन्त्रविधिके बलसे जहां ज्येठा पुत्र कर्ता है वहां सपत्नी माताके अन्वारोहणमें उसका पुत्र होय तो, भी उस सपत्नी माताके वार्षिक आदिको वह सपत्नीका पुत्रही करै, जो पृथक् न हो औरस न करै, आगे कहने योग्य पृथ्वीचन्द्र आदिके मतमें तो औरसही माताका वार्षिक पृथक् करै, इसी प्रकार बहुत माताओंमें भी जानना उचित है ॥ त्रिस्थलीसेतुमें हमारे पितामहजीने भी ऐसेही लिखा है, जो गार्ग्यने यह लिखा है कि, मरेहुए स्त्री पुरुष एक चितामें दग्ध हुए होंय तो उनका श्राद्ध और ओदन (पिंड) पृथक् करै, वह नव श्राद्धके विषयमें कहा है, जो भृगुका कथन है कि, जो पतिव्रता स्त्री पतिकी चितामें आरोहण करै, उसको मरनेके दिन आनेपर पृथक् पिंड दे, और वार्षिक वा नवश्रा-

चरेत् ॥'' तच्चेषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम्॥ 'प्रत्यब्दं च मृताहनि ' इत्यन्वयः ॥ नवश्राद्धं युगपदिति दर्शं वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगित्यर्थमाह हेमाद्रिः ॥ 'एतन्मृततिथिभेदविषयम्' इति पृथ्वीचन्द्रनिर्णयामृताद्याः॥ देवयाज्ञिकोप्येवम् ॥ पराशरमाधवस्तु—'गार्ग्यभृग्वादिवचनाल्लौगाक्षिवाक्ये समासेन पाकादि तंत्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत् पृथक्श्राद्धं कुर्यात् नवश्राद्धं च तथा' इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु—'द्वयोरेकपिण्डदानं लौगाक्षिवचनं चापद्विषयम् ॥ पृथक्पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः ॥' तदाह वृद्धपराशरः—''आरुह्य भर्तुश्चितिमङ्गना या प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्त्वयुक्ता । एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक् स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥ एकत्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्योः । ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्त्वघातान्नरकाधिवासम् ॥ भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती । श्राद्धं पृथक् पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः ॥ पृथगेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् ॥ यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥ विश्वादर्शेपि—'मातुर्गयाष्टकावृद्धिमृताहेषु महालये । श्राद्धं कुर्यात् पृथग्दैवं तन्त्रं वानुगतावपि ॥ एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकवर्हिषि । पित्रोः पिण्डान् पृथग्दद्यात्

दको एकवारही पूर्ण करै, वह उनके विषयमें है जिनका वार्षिक एकोद्दिष्ट कहा है, यहां प्रतिवर्ष क्षयदिनमें नवश्राद्ध ऐसा अर्थ है अमावस्याको स्थानके समान पृथक् श्राद्ध और नवश्राद्ध भी ऐसे होते हैं, यह अर्थ हेमाद्रिने लिखा है, यह मरनेकी तिथिके भेदमें है, यह पृथ्वीचन्द्रोदय निर्णयामृत आदिका कथन है, देवयाज्ञिकभी ऐसेही कहते हैं ॥ पाराशरमाधव तो यह लिखते हैं कि, गार्ग्य भृगु आदिके वाक्यसे लौगाक्षिके वाक्यमें संक्षेपसे पाक आदि तन्त्रकी एकतासे अमावास्यामें दो वर्गके समान पृथक्ही श्राद्ध, नवश्राद्ध होते हैं, पृथ्वीचन्द्र चन्द्रिका आदि तो यह कहते हैं कि, दोनोंको एक पिण्डदान होता है लौगाक्षिका वाक्य आपत्तिके विषयमें है, पृथक् पिण्ड देना तो मुख्य पक्ष है ॥ सोई वृहत्पराशरने लिखा है कि जो सत्ययुक्त स्त्री पतिकी चितामें आरूढ होकर मृत्युको प्राप्त होती है एकादशाहके दिन उसके श्राद्ध पृथक् करै, जो मतिसे हीन पुरुष एकादशाहके दिन एकता चाहतेहैं वे स्वर्गमार्गको नष्ट करके स्त्रीके सत्त्वका नाश, और नरकमें वास करते हैं, जो स्वर्गकी इच्छा करती हुई पतिके संग मरी हो वह श्राद्ध और पिंड पृथक् चाहती हैं, उनकी एकता नहीं कही है, एकादशाह आदि श्राद्ध पृथक्ही करने जो सब श्राद्ध हैं वे पृथक् २ ही वर्णन किये हैं ॥ विश्वादर्शमें भी कहा है कि, माताके अन्वारोहणमें भी गया अष्टका वृद्धि क्षयाह महालय यह श्राद्ध भिन्न भिन्न करै, और देवश्राद्ध तन्त्रसे करै, एक चितामें आरूढ होकर जो मृत्युको प्राप्त हुएके पिण्ड पृथक् २ दे पिण्ड तो आपत्तिमें पुत्र दे

पिण्डं स्वापत्सु तत्सुतः ॥ २ ॥" इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः ॥ यत्तु षट्त्रिंशन्मते-"एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके । न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात्पत्नीषु विद्यते" इति, तद्दर्शादिपरम् ॥ चन्द्रप्रकाशेपि-"एकचित्यां समारूढौ दंपती प्रमितौ यदि । पृथक्श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव क्षयेहनि ॥ मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना सह । पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षयेहनि । तृतीयस्य ततः कुर्यात्संनिपातेऽन्वयं क्रमः ॥ ३ ॥" इति ॥ सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थमेकपाक इत्याह मदनरत्ने प्रचेताः-"एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समापयेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ अत्र भर्तुराशौचमध्येऽन्यदिने स्त्रीमरणे पतिमरणदिनगणनयाशौचपिण्डदानैकादशाहादि कार्यम्, नात्र पक्षिणीवृद्धिः-"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥ २ ॥" इति षडशीतिमतात् । "यदा नारी विशेदग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि" इति लघुहारीतोक्तेश्च ॥ भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्यहमा-

---

यह अग्निकी स्मृतिमें लिखा है, और जो षट्त्रिंशन्मतमें लिखा है कि, सती स्त्री पतिके संग पिण्डगोत्र सूतकमें एक होगई उससे पत्नियोंको पृथक् पिण्डदान नहीं है, वह अमावस्याके श्राद्धमें जानना चन्द्रप्रकाशमेंभी लिखाहै, यदि मरेहुये स्त्रीपुरुष एकचितामें आरूढ हुए होंय तो पतिका मृत्युदिनमें पृथक् श्राद्ध करै मरेहूए भृत्योंका भार्याओंका भी श्राद्ध पतिके साथ स्वामीकी मरणातिथिमें एकस्थानमें पाक बनाकर करै, पहिले प्रथम मरेको फिर द्वितीयको फिर तृतीयको पिंड दे, यहीं इकट्ठोंमें क्रम कहाहै संग मरणमें सर्वत्र श्राद्धके निमित्त एक पाक होताहै मदनरत्नमें प्रचेताका कथन है कि, यदि स्त्रीपुरुष एक चितामें स्थित होकर मरजाँय तो एकस्थानमें पाक करै और पिंड पृथक् २ दे ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी ऐसेही लिखाहै, यहां पतिके अशौच दिनोंके मध्यमें और दिनमें अनुगमनसे स्त्री मरे तो पतिके मरणदिनकी गिनतीसे आशौच पिण्डदान एकादशाह आदिको करना, यहां पक्षिणी (दो दिन एकरात) की वृद्धि नहीं होती, कारण कि, षडशीतिका यह कथन है कि, मरेहुए पतिके अनुगमनसे जो पत्नी अग्निमें सती हुई हो वहां पक्षिणी न करै पिताके अशौच बीतनेपरही शुद्धि होतीहै, पुत्र वा और जो उसको अग्निका देनेवाला है वहभी तबतकही पवित्र है, उनके नव श्राद्ध सपिंडी संग करै, और लघुहारीतनेभी लिखाहै कि, अपने पतिके प्यारकी इच्छासे यदि नारी अग्निमें प्रवेश करै, तो पतिके अशौच क्रमसेही अशौच करै, यदि पतिके अशौचके अनन्तर अन्वारोहण करै तो तीन दिन अशौच

शौचम् ॥ "ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी। त्र्यहाशौचे तु निवृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शाश्वतः" इति ब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रापरार्कौ एतदन्वारोहणे एव, न त्वेकचितौ ॥ ऋग्वेदवादः—'इमा नारीरविधवा' इत्यादि ॥ एतत्सवर्णापरमित्यन्ये ॥ स्मार्तगौडास्तु—'देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्' इत्युपक्रम्य, ब्राह्मे—'त्र्यहाशौचे तु निवृत्ते' इत्युक्ते भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्र्यहः, सहगमने तु पूर्णं दशाहादि। पिण्डास्तु दशापि सहैव।' तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः—"संस्थितं पतिमालिंग्य प्रविशेद्या हुताशनम्। तस्याः पिण्डादिकं ज्ञेयं क्रमशः पतिपिण्डवत् ॥ अन्विता पिंडदानं तु यथा भर्तुर्दिनेदिने। तदर्थारोहिणी यस्मात्तस्मात्सा नात्मघातिनी ॥" इति विष्णूक्तेश्च ॥ पृथक्चितौ तु भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा सत्यां त्र्यहेण दशपिण्डाः—"अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डास्त्र्यहेण तु। स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते ॥" इति तत्रैव पैठीनसिस्मृतेः ॥ भर्त्राशौचोत्तरं मृतौ तु चतुर्थेऽह्नि श्राद्धम् ॥ शूलपाणिना त्विदमाग्निपुराणीयत्वेनोक्तम्—'युद्धहतस्य सद्यः शौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम्। एकचितौ तु संस्थितप-

---

लगताहै, यह ब्रह्मपुराणमें लिखाहै, ऋग्वेदके विवादसे साध्वी स्त्री आत्मघात न करे, तीन दिनके अशौचकी निवृत्ति होनेपर शास्त्रोक्त श्राद्धको प्राप्त होतीहै, यह पृथ्वीचन्द्रोदय और अपरार्क कहतेहैं यह भी अन्वारोहणमें ही जानना. एकचितामें ऋग्वेद वाद नहीं कि, यह नारी अविधवा है इत्यादि, कोई यह कहतेहैं कि, यह असवर्ण स्त्रीके विषय है ॥ स्मार्त गौड तो यह लिखते हैं कि, देशान्तरमें पति मरजाय तो साध्वी स्त्री उसकी दोनों खडाऊं लेकर भस्म होजाय, इस प्रकरणमें अशौचके तीन दिन बीतनेपर इस ब्रह्मपुराणके वाक्यसे पतिके अशौचके पीछे अन्वारोहण होय तो तीन दिन और साथ गमनमें पूरे दशदिननका अशौच होताहै, पिण्ड तो दश संगही होते हैं, यही जनक शूलपाणि शुद्धितत्त्वमें व्यासका कथन है कि, मरेहुये पतिका स्पर्श करके जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करतीहै, उसके सब पिंड आदि पतिके पिंडकी समान देने, विष्णुकाभी वाक्य है कि, अनुगमन करनेवाली स्त्री दिन २ पतिके समान पिंडदानको प्राप्त होतीहै उसीके निमित्तही वह अन्वारोहिणी है, आत्महत्यारी नहीं यदि एक चिता न होय तो स्वामीके अशौचके मध्यमें अथवा उसके उपरान्त सती होय तो तीन दिनमें दश पिण्ड देने, कारण कि, वहांही पैठीनसि स्मृतिमें लिखा है कि, पीछे गई स्त्रीको तीन दिनमें दश पिण्ड देने, और स्वामीके अशौच बीतनेपर उसको श्राद्ध देना स्वामीके अशौच उपरान्त मरी हो तो चौथे दिन श्राद्ध करे ॥ शूलपाणिने तो यह वाक्य अग्निपुराणका लिखा है, युद्धमें मरे स्वामीका जब सद्यःशौच है तब अन्वारोह-

तिम्' इति प्रागुक्तव्यासोक्तेः सद्यः शौचमित्याहुः, अन्यसपिण्डाशौचमध्ये विदेशमृतान्वारोहणं त्वनाशक्यमेव ॥ शुचिताया अङ्गत्वात् ॥ अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्च गमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः ॥ अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः ॥ तन्मूलवचनं विना चिन्त्यमेव ॥ स्मृत्यर्थसारेपि–'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं कर्त्रैक्यं च' इति ॥ या तु पतिमुद्दिश्याऽन्यकालेन्यतिथावन्वारूढा, तस्याः श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्यम् । न भर्तृतिथौ–"पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता' इति स्कान्दात् 'तिथिरेकैव जायते' इत्यादिवचनाच्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्रादयः ॥ अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात् । "सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं प्रदातव्यं पृथक् पत्युः क्षयेहनि ॥" इति स्मृत्यन्तरात् ॥ "अग्रतः पृष्ठतो वापि तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेहनि ॥" इति पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे–"माता मङ्गलसूत्रेण म्रियते यदि तद्दिने । तद्दिश्य विप्रपंक्तौ तां भोजयेच्च सुवासिनीम् ॥" अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः । अत्र पित्रो-

---

हणमें तीन रात्रिका अशौच होता है, कारण कि, पूर्वोक्त व्यासका कथन है कि, एक चितामें मृतक हुये पतिके साथ जो सती होय तो सद्यःशौच लगता है अन्य सपिंडोंके अशौचके बीचमें तो अन्वारोहणकी शंकाही नहीं होसक्ती, कारण कि, अशौच वहां अंगमात्र है और तो यह कहतेहैं कि, रजस्वला और सूतिका हुई स्त्रीको सती होनेका निषेध है इससे इतरके अशौचका निषेध है, नहीं तो प्रत्यक्ष स्वामीके मरणमें क्या गति होगी, सो मूलवाक्यके विना विचारणीय है, अर्थात् उचित नहीं ॥ स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि; सती होनेमें सर्वत्र–श्राद्ध पिण्ड आदिमें एक पाक, एक काल, एक कर्ता होता है; जो तो पतिके निमित्तसे और काल और तिथिमें अन्वारूढ हुई है, उसका श्राद्ध उसही मरणतिथिमें करना, पतिकी मरणतिथिमें न करना, कारण कि, पार्वण और मरणमें मनुष्योंकी वही तिथि लेनी जो उस समय वर्तमान हो, तिथि एकही होती है, इत्यादि स्कन्दपुराणका कथन है, यह मदनरत्नपारिजात पृथ्वीचन्द्र आदि लिखते हैं ॥ और तो कहते हैं कि, वह पतिके मरनेसे मृतककेही समान है, संगसे पहिले पतिकी प्रीतिसे यदि मृतक होजाय तो उसका पृथक् श्राद्ध पतिकी मृत्युके दिन करना, यह स्मृत्यन्तरमें कहाहै, पुराणसमुच्चयका भी कथन है कि, आगे वा पीछे पतिकी प्रीतिसे मरजाय तो पुत्र उसका श्राद्ध पतिकी क्षयीके दिन करै, इससे स्वामीकी तिथिकोही होताहै, इसमें मूल नहीं है, यहां विशेष हेमाद्रिमें जानना, स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि, माता मंगलसूत्रको धारण करके पिताके दिन मृतक होजाय तो पिताके दिन ब्राह्मणपंक्तिमें एक सौभाग्यवती स्त्रीको भोजन करादे ॥ अब श्राद्धके संपातमें निर्णय लिखतेहैं, वहां जो माता-

मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्शे वर्गद्वयवत्तन्त्रेण श्राद्धं कुर्यात् ॥ पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वकं कुर्यादिति हेमाद्रिः ॥ माधवादयस्तु-"पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेपि वा । पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासति योगतः ॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ सर्वत्र पितृपूर्वं भिन्नप्रयोगमाहुः ॥ पार्वणैकोद्दिष्टयोः संप्राप्ते माधवीये जाबालिः-"यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥" युगपन्मरणे निर्णयः । गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः "एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥ २ ॥ " ऋष्यशृंगः-"भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा ॥ सम्बंधासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ गारुडे-"एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेऽत्र हि । विकिरं त्वेकता कुर्यात्पिण्डान् दद्यात्पृथक् पृथक् ॥ " अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ विशेषं वक्ष्यामः । अत्रिः-" बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा पृथक् श्राद्धानि कारयेत् ॥" पुलस्त्यः-" महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥ " इदं च पृथक्पाकेन

पिताके मरनेका दिन एक हो मरणके क्रमसे अमावस्याको वर्गद्वयके समान: तन्त्रसे श्राद्ध करे जो पूर्वापर विदित न होय तो पितृक्रमसे करै, हेमाद्रिमाधवआदि तो यह लिखतेहैं कि, पिताका श्राद्ध नया वा पुराना प्राप्त हुआ होय तो पुत्रको पितृक्रमसे करना चाहिये और अन्यत्र पृथक् २ करै, इस कार्ष्णाजिनकी स्मृतिसे सर्वत्र पितृक्रमसे भिन्न २ प्रयोग पाया जाता है, पार्वण एकोद्दिष्टका संपात होय तो माधवीयमें जाबालिका कथन है कि, यदि एकवार एकोद्दिष्ट और पार्वण प्राप्त होय तो पार्वण करकेही एकोद्दिष्ट करै ॥ गृहदाह आदिसे एकवार मरनेमें तो भृगुका कथन है कि, एककालमें बहुत अथवा दो मृत्युको प्राप्त होजाँय तो तन्त्रसे पाक करके पृथक् २ श्राद्ध करै, पहले मरेको प्रथम, फिर दूसरेको फिर तीसरेको पिंड दे, यही सन्निपातमें क्रम है ऋष्यशृंगने कहा है कि, सपिंडोंका एकवार मरण होजाय तो सम्बन्धकी निकटताके अनुसार क्रमसे श्राद्ध करना चाहिये ॥ गरुडपुराणमें लिखा है कि, पाकसे ऐसे विषयमें श्राद्ध करते हैं, उस स्थलमें विकिर एक करै और पिंड पृथक् २ प्रदान करै, यहां अनुगमनका विशेष दाह सपिंडन आदिमें लिखेंगे. अत्रिका कथन है कि, दोका बहुतका श्राद्ध एक दिनमें होय तो तंत्रोंसे पाक करके भिन्न भिन्न श्राद्ध करै ॥ पुलस्त्यने लिखा है कि, महालय और गयाश्राद्धमें मरे हुओंके क्षयोंके दिन तंत्रसे पाक करके पृथक् २ श्राद्ध करै यहभी तब है जब पृथक् पाकसे भिन्न करनेकी शक्ति न होय, पृथक् पाकसे श्राद्धका भेद

भिन्नश्राद्धशिंक्तौ ॥ पृथक्पाकेन सम्बन्धासत्त्यां श्राद्धभेदस्तु मुख्यः पक्षः ॥ 'एकस्मिन्नेव दिने श्राद्धं द्वयं प्राप्तं यदा तदा । चरेदेव पुरा वर्षान्तिपितुर्मातुश्च यत्सुतः ॥ एकस्मिन् यः करोत्यह्नि द्वयोः श्राद्धं यदा द्विजः । तदा पूर्व-मृतस्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ पश्चात् पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पाकैः समाचरेत् । नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचित् द्विजः ॥ एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते त्वन्यो भ्राता समाचरेत् । भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽह्नि समाचरेत् ॥ अन्य-था श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् ॥ ९ ॥" इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वी-चन्द्रः ॥ कात्यायनः—" द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥ " जाबालिः—" श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने । नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ॥ " कालादर्शे-"नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भं मासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगादेश्च दार्शिकालभ्य-योगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः । प्रसंगादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत् ॥ १ ॥ " अस्य देवताभेदेऽपवादमाह स एव—" नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि ॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि । युगाद्याब्दिकयोश्चैव मन्वाद्या-

---

जानना तो मुख्य पक्ष है कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, जब एक दिन दो श्राद्ध आजांय पुत्र प्रथम पिता माताका श्राद्ध करे, जब द्विज एकदिन दो श्राद्ध करता है तब प्रथम मृतकका श्राद्ध प्रथम करके यथाविधि स्नान करके फिर पीछे मृतकका श्राद्ध पृथक् पाक बनाकर करना चाहिये, और एक दिन एकही मनुष्य तीन मृतकोंका श्राद्ध न करै, यदि ऐसा आपडै तो दूसरा भ्राता करले, भ्राता न होय तो उस श्राद्धको दूसरे दिन करना चाहिये, ऐसे न करनेसे श्राद्धका नाशक और श्राद्धके संकरका कर्ता होता है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है॥कात्यायनने लिखा है कि, दो वा बहुतसे निमित्त एक दिन आपडै तो नैमित्तिक कार्य उसी क्रमसे करै, जिस क्रमसे निमित्त उत्पन्न हुये हों, जाबालिका कथन है कि, एक मनुष्यको श्राद्ध करके उस दिन फिर श्राद्ध न करना चाहिये,निमित्तके क्रमसे नैमित्तिक श्राद्धको तो करलेना चाहिये॥ कालादर्शमें कहा है कि, नित्य श्राद्ध और अमावस्याका श्राद्ध जलका घडा (उदकुंभ) और मासिक श्राद्ध अमावस्या और युगादि श्राद्ध अमावस्या और अलभ्ययोग श्राद्ध अमावस्या और मन्वादि श्राद्ध यह श्राद्ध एक साथ आपडैं तो प्रसंगसे एकको करके दूसरा श्राद्ध करै, देवताके भेदमें इसकी सिद्धिसे उत्तर श्राद्धका अपवाद कालादर्शमें लिखा है, नित्य और जलघट, नित्य और मासिक, दर्श और उदकुंभ, दर्श और मासिक, नित्य और आब्दिक, अमावस्या और वार्षिक, युगादि और वार्षिक, मन्वादि और वार्षिक, प्रतिवार्षिक

ब्दिकयोस्तथा ॥ प्रत्याब्दिकस्य चालभ्ययोगेषु विहितस्य च । संपाते देवता-भेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् ॥ निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् ॥ पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि ॥ ४ ॥ माधवीये स्मृतिसंग्रहे-' काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्ध्यति ' ॥ अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् । पारिजाते पृथ्वीचन्द्रोदये च गर्गः-" पूर्वं तिलोदकं कृत्वा ह्यामश्राद्धं तु कारयेत् । प्रत्याब्दं न भवेत् पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धं हिरण्येन अनुव्रज्य तिलोदकम् ॥" न च नित्यतर्पणस्यायं परेद्युरुत्कर्षः ॥ न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्तीति वाच्यम् ॥ " यस्तर्पयति तान् विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेहनि । पितरस्तेन तृप्यन्ति न चेत्कुप्यन्ति वै भृशम् ॥ " इति गार्ग्येण फलनिन्दार्थवादाभ्यामङ्गत्वेनोक्तेः ॥ श्राद्धप्रक्रमाद्वार्षिकम् ॥ बृहन्नारदीयेप्याब्दिकं प्रक्रम्य-"परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन् । तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि ॥ " पितृशब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः ॥ तेन तर्पणस्य पशुपुरोडाशयागवत् प्रस्तरप्रहरणवच्चेष्टदेवतासंस्कारकता । तेनाब्दिके दिने नित्यं स्वपित्रादितर्पणं कार्यमेव ॥ श्राद्धाङ्गभूतस्यैव परेद्युरुक्तेः ॥ तदुक्तं-" प्रत्यब्दाङ्गं तिलं दद्यान्निषिद्धेपि परेहनि । वर्गैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत् ॥ " कंचिद्विशेषमाह गर्गः-"कृष्णे

और अलभ्य योग यह एकसाथ आपडै तो देवताके भेदसे दो श्राद्धोंको करना चाहिये, इसमें निमित्तका नियम नहीं है, पहले श्राद्धका करना कारण है, मातापिताके श्राद्धमें तो सब श्राद्धोंमें पिताका श्राद्ध प्रथम होता है, माधवीयमें स्मृतिसंग्रहका कथन है कि, काम श्राद्धके तन्त्रसे नित्यश्राद्धका तन्त्र सिद्ध होता है ॥ अब श्राद्धके अंग तर्पणको लिखते हैं, पारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें गर्गका कथन है कि, पहले तिल जल दान करके आमश्राद्ध करै, वार्षिकमें पहले वा दूसरे दिन तिलांजलि देनी चाहिये, यदि कोई कहै कि, नित्यके तर्पणकाही प्रथम दिन यह उत्कर्ष लिखा है श्राद्धके अंगतर्पणका नहीं है, सो यथार्थ नहीं है, कारण कि, इस गर्गके कथनसे फलकी निन्दा और अर्थवादसे अंग लिखा है कि जो ब्राह्मण श्राद्धसे पितरोंको दूसरे दिन तृप्त करता है, उसके पितर तृप्ति पाते हैं, और कभी क्रोधित नहीं होते श्राद्धके प्रकरणसे वार्षिक लेनी चाहिये ॥ बृहन्नारदीयमें भी वार्षिकके प्रकरणमें यह कहा है कि, श्राद्धका करनेवाला जो मनुष्य दूसरे दिन पितरोंको तर्पण नहीं करता, वे पितर उसको क्रोधसे शाप देकर चले जाते हैं, इस वाक्यमें पितृशब्द श्राद्धमें पूजने योग्योंके वर्गका बोधक है, तिससे तर्पण पशु पुरोडाश यज्ञ और प्रस्तर प्रहरणके तुल्य देवताओंका संस्कार है, इससे वार्षिकके दिन अपने पिता आदिका तर्पण सदा करना, श्राद्धका अंगही तर्पण दूसरे दिन लिखा है, यही कहा है कि, प्रतिवर्ष निषिद्ध तिथि पहले दिन श्राद्धके अंग तिल उनको दे, जो एक कुलमें हों, औरोंको त्याग देना ॥ किसी स्थलमें

भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेपि तर्पणम् ॥" तर्पणं तिलतर्पणम् ॥ निषिद्धाहेपीत्युक्तेः ॥ 'सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥' अत्र सप्तमीनिर्देशात् आङ्गिता स्फुटैव तत्र जयान् जुहुयात् ॥ मन्द्रं प्रायणीयायां मन्द्रं प्रातःसवने इत्यादिवत् ॥ अस्यापवादो बृहन्नारदीये-"वृद्धिश्राद्धे सपिंड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके । संवत्सरविमोके च कुर्यात्तु तिलतर्पणम् ॥" तदयमर्थः-दर्शे विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यतर्पणम् ॥ नव श्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वा सिद्धिः ॥ ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यम् ॥ पित्रोर्वार्षिके नित्यतर्पणं तिलवर्ज्यं कार्यम् ॥ "नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणम् । श्राद्धं कृत्वापराह्ने च तर्पणं तु तिलैः सह ॥" इति वचनात् ॥ "सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोर्मृतेहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः॥" इति स्मृतिरत्नावल्यां वृद्धमनूक्तेश्च ॥ अत्र नित्यतिलतर्पणे तिलमात्रनिषेधो न तु तर्पणस्य , तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । यत्तु कातीयम्-"उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे । निषिद्धेपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत्" इति ॥ तत् परेद्युः श्राद्धाङ्गतर्पणविषयमिति केचित् ॥

तो गर्गने विशेष लिखा है कि, भाद्रपदमासके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होता है, उसमें प्रतिदिन पितरोंका तर्पण निषिद्ध दिनमें भी करना चाहिये, यहाँ निषिद्ध दिनमें भी कहनेसे तर्पण तिलोंसे लेना चाहिये, महालयमें तर्पण एकवार अगले दिन, और अष्टकाओंमें पीछेमें होता है, यहां सप्तमीके निर्देशसे अंगता प्रत्यक्ष है, वहां जयोंका होम (प्रातःसवन) में करना, इसकेही समान तर्पण करै ॥ इसका अपवाद बृहन्नारदीयमें कहा है कि, वृद्धिश्राद्ध सपिंडी प्रेतश्राद्ध मासिक, वर्षका अंत, इनमें तिलसे तर्पण करै, इस कारण यह अर्थ है कि, अमावस्याको ब्राह्मणोंके निमंत्रण वा पाकके प्रारम्भके उपरान्त श्राद्धका आरम्भ होता है, इससे ब्रह्मयज्ञके उपरान्त नित्यके तर्पणसेही श्राद्धका अंगतर्पणभी तंत्रसे वा प्रसंगसे सिद्ध हो सकता है, इससे प्रथम और विश्वेदेवाओंके उपरान्त ब्रह्मयज्ञ करनेमें तो श्राद्धका अंग तर्पण पृथक् करना चाहिये, मातापिताके वार्षिकमें तो नित्य तर्पण तिलोंके विना उचित है कारण कि, यह कथन है कि, श्राद्धके दिन तिलोंसे पितृतर्पण न करना चाहिये, श्राद्ध करनेके उपरान्त अपराह्णमें तिलोंसे तर्पण करै ॥ स्मृतिरत्नावलीमें वृद्धमनुकाभी कथन है कि, सप्तमी रविवार, मातापिताके मरणदिनमें जो तिलोंसे पितृतर्पण करता है वह पितृघातक कहाता है, यहां नित्यतर्पणमें तिलोंका निषेध लिखा है, तर्पणका नहीं, नहीं तो ' तिलैः ' यह पद व्यर्थ हो जायगा जो कातीयने लिखाहै कि, ग्रहण पिताका श्राद्ध व्यतीपात अमावस्या संक्रांति इनमें निषिद्ध समय हो तोभी तिलोंसेही तर्पण करै, वह पहले दिन श्राद्धके

श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति युक्तम् ॥ युक्तं महालये परेद्युस्तर्पणम् ॥ अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य ॥ अन्वष्टक्ये तु मातृवर्गस्यापि, तीर्थश्राद्धे दर्शवत् । माघाद्यादिष्वष्टकावदन्ते अनेकश्राद्धसंपाते तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् । तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यत्वे आदावन्ते वा विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति ॥ तस्माच्छ्राद्धाङ्गतर्पणं सिद्धम् ॥ तद्विधिः संग्रहे—"स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने । संतर्पयेत्पितॄन्सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥" तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः ॥ "अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले। नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत् ॥" अत्र वस्वादिरूपतोक्ता स्मृत्यर्थसारे—'वसुरुद्रादितिसुतान् श्राद्धार्थे तर्पयेत्पितॄन् ॥' तत्र बह्वृचानां दक्षिणेनैव ॥ "अनादेशे दक्षिणं प्रतीयात्' इति सूत्रात् ॥ अत्र प्रत्यञ्जलि मन्त्रावृत्तिः ॥ निर्वापवत्तत्संध्यार्घ्यदानवच्च द्रव्यभेदात् ॥ अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वान्न मन्त्रावृत्तिः । केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्सकृदिच्छन्ति । तन्न ॥ तत्रापूपद्रव्यैक्यात् परवी-

---

अंगतर्पणके विषयमें है यह कोई कथन करते हैं, यह तो युक्त है कि, जो श्राद्ध करनेमें सामर्थ्य न हो तो उसके तर्पणमें यह कथन है, महालयमें एकवार अगले दिन तर्पण करै, अष्टका सप्तमी और अष्टमीके श्राद्धमें श्राद्ध किये उपरान्त दोनों वर्गोंका तर्पण करै, अन्वष्टकामें तो मातृवर्गकाभी तर्पण तीर्थश्राद्धमें दर्शके समान करना चाहिये, माघकी पूर्णिमा वर्षाआदिमें तो अष्टकाके समान अन्तमें करै, जहां अनेक श्राद्ध एकसाथ आपडैं वहां यदि प्रसंगसे सिद्धि होय तो उसी श्राद्धका तर्पण करै, तंत्र होय और श्राद्धोंकी संख्या तुल्य होय तो आदिमें वा अन्तमें करै, संख्या विषम होय तो बहुतोंसे अनुरोधसे करै, इससे श्राद्धका अंग तर्पण सिद्ध हुआ ॥ उसकी विधि. संग्रहमें इस प्रकार है कि, स्नान करके किनारेपर आकर और कुशासनपर बैठकर सब पितरोंको तृप्त करै, और तर्पणके उपरान्त नित्य स्नान करके वस्त्रोंको पहरे, फिर अपसव्य होकर और बायें घुटनेको भूमिपर नवायकर नामगोत्र स्वधाकार कहकर द्वितीयांत (पितर) उच्चारण कर तर्पण करै, यहां वसु आदि रूपता स्मृत्यर्थसारमें लिखी है, वसुरूप रुद्ररूप आदित्यरूप पितरोंको श्राद्धके अर्थ तृप्त करै, वह तर्पण बह्वृचोंको दक्षिणसे करै, कारण कि, जहां कहीं आज्ञा न हो वहां दक्षिण ओरसे करै यह सूत्र है ॥ यहां प्रतिअंजलि मंत्र पढै, निर्वाप और संध्याके अर्घ्यदानके समान द्रव्योंसे भेद होताहै, अवघात (कूटना) वेदीप्रोक्षण आदिमें एक द्रव्य होनेसे मन्त्रोंकी आवृत्ति नहीं होती, कोई तो 'परिव्याण' मंत्रके सदृश क्रियमाण, कर्मका अनुवाद होनेसे करणत्वका अभाव कहतेहैं एकवारही मंत्र पढना चाहते हैं, सो उचित नहीं कारण

रसीतिकरणीभूतमन्त्रांतरसत्त्वादन्यतरेण व्यवधानापत्त्योभयोः कारणत्वायोगात् कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्वम् ॥ न त्वत्र तथेति बौधायनादिवचनात् करणत्वमेव ॥ तेनावृत्तिरेव युक्ता ॥ एवं नित्येपि ॥ यत्तु संग्रहनाम्ना पठन्ति-" पित्रोः क्षयाहे संप्राप्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् । मृताहे नैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत् ॥ २ ॥ " तत्समूलत्वे सति फलविषयम् ॥ यच्च पठन्ति-कपिलः-" मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च । पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम् ॥ अर्धोदये गजच्छाये षष्ठीषु च महालये । भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः ॥ २ ॥ " शौनकः-" मातापित्रोर्मृताहे च परेहनि तिलोदकम् । कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम् ॥ " एतन्निर्मूलम् ॥ अथ तिलतर्पणनिषेधः । गार्ग्यः-" भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " स्मृत्यर्थसारे-'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।' अर्धं तदेव ।' वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम् ॥' हेमाद्रौ मरीचिः-" सप्तम्यां रविवारे च ग्रहे जन्मदिने तथा । निशासंध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" यत्तु

कि, वहां यूपद्रव्यको एकतासे ' परवीरसि' इस कारणभूत (रूप) मन्त्रान्तरके होनेसे किसीसे व्यवधानकी आपत्तिसे दोनोंको कारणताका अयोग है, और कर्ताके भेदसे विकल्पकाभी अयोग है, इससे होनेवाले कर्मका अपवाद है यहां वैसा नहीं जानना तिससे बौधायन आदिके कथनसे करणत्वही है, इससे आवृत्तिही करनी युक्त है, इसी प्रकार नित्यमेंभी जानना॥ जो तो संग्रहके नामसे पढते हैं कि, माताके मरणदिनमें जो नित्य तर्पण करता है वह श्राद्ध आसुर और वह जल रुधिररूप होता है, ब्रह्मयज्ञके उपरांत सदा तर्पण करै, क्षयाहके दिन न करै, तो फलहीन होता है, यह प्रमाण सहित होय तो तिलविषयक जानना, जो पढते हैं कि, कपिलका कथन है कि, मन्वादि युगादि अमावस्या संक्रांति पूर्णिमा व्यतीपात इनमें पहले तिल जल दे, अर्धोदय गजच्छाया षष्ठी महालय भरणी मघा श्राद्ध इनमें श्राद्धके पीछे तर्पण कथन करते हैं, शौनकने कहा है कि, मातापिताके मरण दिनमें अगले दिन तिलाञ्जली दे, करुणाके श्राद्धमें तो उसी समय तिलजल देना, यह वाक्य निर्मूल है ॥ अब तिलतर्पणका निषेध लिखते हैं, गार्ग्यने कहा है कि, आदित्यवार मंगलकी त्रयोदशी भृगुवार नन्दा और मघामें पिंडदान मिट्टीसे स्नान तिलतर्पण न करना चाहिये, स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, विवाह व्रत चूडाकर्म वर्ष आधावर्ष चौथाई वर्ष और वृद्धि तथा मासिक इनमें तिलतर्पण न करै, हेमाद्रिमें मरीचिने लिखा है कि, आदित्यवार सातैं, ग्रहण, जन्मका दिन, रात्रि, संध्या इनमें पुत्रकी इच्छावाले मनुष्यको तिलोंसे तर्पण न करना चाहिये॥जो संग्रहमें लिखा है

संग्रहे-" नंदायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च। भरण्यां भानुवारे च गजच्छा-याद्वये तथा॥ अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ॥ पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ २ ॥ " इति तच्चिन्त्यम् ॥ ' पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ' इत्यादिविरोधात् ॥ अत्रापवादः पृथ्वीचन्द्रो-दये-" तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥ " स्मृत्यर्थसारेपि-' तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा ' इति ॥ गोभिलः-" तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् । तदभावे निषिंचेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः ॥ " पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः । अथ वृद्धि-श्राद्धम् । तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-"जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितॄन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ देवव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च । नवान्न-भोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजा-भिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्याद्याश्रमं गच्छन्पूर्वेद्युः सद्य एव वा । पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत् कर्मसिद्धये ॥४॥" विष्णुपुराणे-"यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥ पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥ "तत्रैव-'नाम-

---

कि, शुक्रवार, नन्दा, कृत्तिका, मघा, भरणी, रविवार, गजच्छाया इसी प्रकार दोनों अयन मन्वादि युगादि इनमें पिंडदान मिट्टीसे स्नान तिलतर्पण न करना सो चिन्त्य है, कारण कि, सावधान होकर जो मनुष्य श्राद्धमें तिल मिला जल भी देता है इत्यादि वचनोंसे विरोध है॥ इसका अपवाद पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, कि, तीर्थ, विशेष तिथि, गया, प्रेतपक्ष इनमें निषिद्ध दिनमें भी तिलतर्पण करना, स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, उत्तमतीर्थ और उत्तमतिथि और प्रेत-कर्ममें, सदा तर्पण करे, गोभिलका कथन है कि, तिल न होंय तो निषिद्ध दिनमें भी सुवर्ण चांदीसे वे न होंय तो कुशा वा मंत्रोंसे तर्पण करना चाहिये। पतितका तिलोदक वर्णन करेंगे ॥ अब वृद्धिश्राद्ध वर्णन करते हैं, उसका निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, जन्म, यज्ञोपवीत, पुत्रका विवाह, इनमें नान्दीमुख श्राद्ध करै, पितरोंको विधिसे तृप्त करै, और वेदके व्रत, आधान, पुंसवन, नवान्न भोजन, स्नान, विवाही स्त्रीकी प्रथम ऋतु, देव, बाग, सरोवरकी प्रतिष्ठा, उत्सव, राजाका अभिषेक, बालकके अन्नप्राशन, वानप्रस्थ और संन्यासके निमित्त गमन, ये वृद्धि हैं इनमें प्रथम दिन वा शीघ्र उसी दिन कर्मकी सिद्धिके निमित्त पूर्वोक्त विधिसे तर्पण करना चाहिये ॥ विष्णुपुराणमें यह कहा है कि, यज्ञ विवाह प्रतिष्ठा मेखलाका बंधन और त्याग, पुत्रजन्म वृषोत्सर्गमे वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये, इसमें

---

१ जो शीघ्र जलमें स्नान करके पितरोंका तिलकुशासे तर्पण करता है उसकी परम गति होती है, मन्वादियुगादिमें जो तिलजल देते हैं उनके पितरोंकी सहस्रवार्षिक तृप्ति होती है।

कर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ' इत्युक्तेर्निष्क्रमणान्नप्राशनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः । पूर्वोक्तविरोधात् ॥ ' नानिष्ट्वा ' इति विरोधात् ॥ ' सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके तथा' इति राजमार्तण्डाच्च ॥ यत्तु छन्दोगपरिशिष्टं—'सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते' इति, तत्तेषामेवेति कल्पतरुः ॥ बहृचकारिकायां—'स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्वेषु कर्मसु । पुंसः सवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहे चानलाधेयप्रभृति श्रौतकर्मणि ॥ इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् ॥ अन्यैः षोडशसंस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्या द्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तकम् ॥ २ ॥ " वोपदेवकालादर्शौ—' सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्नानाधानविवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुतास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकदयितावृतौ च नान्दीमुखम् ॥ ' यत्तु कामधेनौ—" जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु । वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत्" इति ॥ तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधः न तु कर्माङ्गस्येति केचित् ॥ अन्ये त्वस्य निर्मूलतामाहुः ॥ श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये—" अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके

मैथिल यह कहते हैं कि, बालकके नामकरण और मुंडनमें करै, इस कथनसे निष्क्रमण और अन्नप्राशनमें श्राद्ध न करै, सो यथार्थ नहीं कारण कि, पूर्वोक्त वाक्योंका विरोध है और 'नानिष्ट्वा ' यह निषेध है, और राजमार्तण्डका भी कथन है कि, पुत्रजन्म और अन्नप्राशनमें श्राद्ध होता है ॥ जो छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, सूर्य और चन्द्रमाके जो कर्म हैं उनमें श्राद्ध नहीं है वह उन छंदोगोंके निमित्त है, यह कल्पतरु लिखतेहैं, बहृचकारिकामें कहा है कि, वृद्धिसे पूर्व जो पुंसवन, सीमन्त, मुण्डन, यज्ञोपवीत इनमें वृद्धिश्राद्ध होताहै और विवाह और अग्न्याधान आदि वेदोक्त कर्ममें वृद्धिनिमित्तक आभ्युदयिक श्राद्ध होतेहैं, और षोडश संस्कार और श्रावणी आदिमें भी इष्ट है, और बावडी आदिके उद्यापन आदिमें पूर्त कर्मके निमित्त करते हैं ॥ वोपदेव और कालादर्शका कथन है कि, सीमंतोन्नयन यज्ञोपवीत मुण्डन नामकरण अन्नप्राशन स्नान अग्न्याधान विवाह यज्ञ पुत्रजन्म प्रतिष्ठा पुंसवन गृहप्रवेश पुत्रमुखदर्शन आश्रमका स्वीकार राज्याभिषेक स्त्रीकी प्रथम ऋतु इनमें नांदीमुख श्राद्ध किया जाता है, जो कामधेनुमें कहा है कि, जलाशयकी प्रतिष्ठा वृषोत्सर्ग आदि कर्म वर्षके भीतर माता पिताका वृषोत्सर्ग इनमें वृद्धिश्राद्ध न करै, इसके सिवाय अन्यत्र करै, यह वाक्य जलाशयमें वृद्धिश्राद्धका निषेधक है, कर्मांगका निषेधक नहीं है, यह कोई कहते हैं और तो इस वाक्यको निर्मूल कहते हैं ॥ श्राद्धकौमुदी और निर्णयामृतमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, अन्नप्राशन सीमंत पुत्रकी उत्पत्ति पुंसवन गर्भाधान नये गृहमें प्रवेश और देव जल वृक्ष

च नवे वेश्मप्रवेशने ॥ देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः । तीर्थयात्रावृषो-त्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥" इदं चावश्यकम् ॥ ".वृद्धौ न तर्पिता ये तु पितरो गृहमेधिभिः । तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः ॥" इति शाता-तपोक्तेः ॥ अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह–" मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्त-रम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " तत्कालमाह पृथ्वी-चन्द्रोदये गार्ग्यः–" मातृश्राद्धं तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम् । मातामहं चोत्त-रेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ " अत्राप्यशक्तौ स एव–" पृथक्दिनेष्वशक्तश्चेदे-कस्मिन् पूर्ववासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम् " इति ॥ वृद्ध-मनुरपि–" अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम् ॥ " अत्र–' महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु ' इति गृह्यपरिशिष्टाद्व्यवस्था ज्ञेया । तच्च प्रातरेव ॥ 'पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ' इति शाताता-पोक्तेः । अत्र प्रातःशब्दः सार्धप्रहरपरः ॥ ' प्रहरोऽप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभि-धीयते ' इति गार्ग्योक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ इदं च पुत्रजन्मातिरिक्तविषयम् ॥ तदाहात्रिः–" पूर्वाह्णे वै भवेद्वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् । पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः ॥" इति ॥ एतदनियतनिमित्तपरम् ॥" नियतेषु निमि-

---

आदिकी प्रतिष्ठामें, विशेषकर तीर्थयात्रा वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है, और यह आवश्यक है, कारण कि, शातातपका कथन है कि, जिन गृहस्थियोंने वृद्धिमें पितरोंको तृप्त नहीं किया उसका हीनफल जानना, वह विधि राक्षस है, वृद्धिमें तीन श्राद्ध उसनेही लिखेहैं कि, पहले मातृश्राद्ध फिर पितृश्राद्ध फिर मातामहोंका श्राद्ध, उसका काल पृथ्वीचन्द्रोदयमें गार्ग्यने लिखाहै कि, पूर्वाह्णमें मातृश्राद्ध मध्याह्नमें पितृश्राद्ध अपराह्णमें मातामहश्राद्ध हुआ करताहै, इसमें भी अशक्ति होय तो वृद्धशातातपने लिखाहै कि, पूर्वोक्त तीनोंके एक दिनमें अशक्त होय तो भिन्न २ दिनोंमें तीन श्राद्ध करै, और विश्वेदेवा तंत्रसे करै ॥ वृद्धमनुकाभी कथन है कि, पृथक्समय न मिले तो पहले दिन बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वाह्णमें मातृपूर्वक करै, यहां बहुतोंके मतमें पहले दिन और अल्पोंके मतमें उसी दिन करै, इस गृह्यपरिशिष्टके कथनसे व्यवस्था जाननी उचित है, वह प्रातःकाल होताहै, कारण कि, शातातपने कहाहै कि, पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालमें होताहै, यहां प्रातःकालसे डेढपहर १॥ लेना कारण कि, गार्ग्यने कहाहै कि, आधेसे युक्त प्रहरको प्रातःकाल कहतेहैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखाहै, यह पुत्र जन्मसे पृथक्के विषयमें है ॥ वहीं अत्रिने लिखाहै कि, जन्मनिमित्तकको त्यागकर वृद्धिश्राद्ध पूर्वाह्णमें होता है, पुत्रजन्ममें तो बुद्धिमान् मनुष्य उसी समय श्राद्ध करै, यह वाक्य उन निमि-त्तोंमें है जिनका नियम नहीं है, कारण कि, लौगाक्षिकी स्मृतिमें लिखा है कि नियत निमि-

तसु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्। तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यमिष्यते " इति लौगाक्षिस्मृतेः॥ आधानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह्ण एव॥ " आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः। पार्वणं वाऽपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्निकम्॥" इति निर्णयामृते गालवोक्तेः॥ ' नान्दीमुखाह्वयं प्रातराह्निकं त्वपराह्णतः ' इति विष्णूक्तेश्च॥ इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम्॥ तत्र-' मातामहाः सपत्नीकाः वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम् ' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे गद्यरूपेण पाठात्॥ हेमाद्रौ शङ्खः-' नान्दीमुखे सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके॥ ' वृद्धपराशरः-" नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम्। पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः॥ " यत्तु वृद्धवसिष्ठः-"नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम्। नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्॥ " यच्च स्मृत्यर्थसारे-' वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते ' इति॥ यच्च गारुडे-'व्युत्क्रमप्रतिपादनं' तच्च शाखान्तरविषयम्॥ 'पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः' इति बह्वृचपरिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्याम्नानात्॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम्॥ यत्तु केचिद्वृद्धिपदं पित्रादिषु प्रयुञ्जते, तन्न॥ "अनस्म-

---

तोंमें प्रातःकाल और अनियत निमित्तोंमें क्रमसे वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये, आधानका अंग तो नान्दीमुख अपराह्णमें होता है कारण कि, निर्णयामृतमें गालवका कथन है कि, आमान्नसे श्राद्ध पूर्वाह्णमें सिद्धान्नसे मध्याह्नमें पार्वण अपराह्णमें और वृद्धिश्राद्धभी साग्निकको अपराह्णमें होता है, नान्दीमुख प्रभातमें और आह्निक अपराह्णमें करै यह विष्णुने कहाहै इस श्राद्धमें माता पिता मातामह आदि नौ (९) देवता करने उनमें मातामह आदि तीन सपत्नीक करने कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें गरुडका संस्कृतरूप वाक्य लिखाहै कि, वृद्धिमें सपत्नीक मातामहोंको देना॥ हेमाद्रिमें शंखका कथन है कि, नान्दीमुखमें सत्यवसु विश्वेदेवा कहने चाहिये वृद्धपराशरने लिखाहै कि, नांदीमुख श्राद्ध देवताओंको प्रदक्षिणा क्रमसे कुशासन दे, प्रधान पितरवाले देवताओंको भी इसी प्रकार प्रदक्षिण क्रमसे आसन देना, यह स्मृति है, जो वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि, नांदीमुख और विवाहमें प्रपितामहसे लेकर और दूसरे कर्मोंमें पितासे लेकर बुद्धिमान् मनुष्य नामोंका उच्चारण करै, और जो स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, वृद्धिश्राद्धमें वृद्ध मुख्य पितर भोजन करते हैं॥ और जो गारुडमें इसके विपरीत लिखा है, वह शाखांतरके विषयमें जानना कारण कि, बह्वृचपरिशिष्ट और कात्यायनने यह अनुलोम लिखा है कि, पितर, पितामह और प्रपितामहोंके निमित्त स्वधा है पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसीप्रकार कहा है, जो कोई पिताआदिकोंमें वृद्धपद लगाते हैं सो उचित नहीं कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका कथन है कि, जिनमें वृद्धिशब्द नहीं और जिनका रूप गोत्र नाम नहीं उनका तिल आदिके

वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् । अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं तु सव्यवत्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः ॥ न च निषेधादेव विधिः कल्प्यत इति वाच्यम् । प्रोष्ठपदीश्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नान्दीश्राद्धत्वसाम्येनेहापि तत्प्राप्तौ निषेधात् ॥ गोत्रनामादिनिषेधस्तु-'शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत्' इत्युपक्रम्य 'अनस्मद्वृद्धशब्दानाम्' इत्युक्तेः संकल्पश्राद्धपरः ॥ 'सपिण्डके तु सर्वं भवति' इति प्रयोगपारिजातः ॥ 'गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत्' इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात् ॥ यत्तु ब्राह्मे-"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।: त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते ॥ २ ॥" इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणे-'ये स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः' इति तज्जीवत्पित्रादित्रिककर्तृकवृद्धिश्राद्धविषयम् ॥ तेन तस्येदमावश्यकम् ॥ यत्तु विष्णुः-'पितरि पितामहे च जीवति नैव कुर्यात्' इति, तदर्शादिविषयम् । इति कल्पतरुः ॥ मदनपारिजातेप्येवम् ॥ हेमाद्रिस्तु-"नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥" इति-प्रोष्ठपदीश्राद्धैकवाक्यत्वात्तत्रैव पूर्वेषां देवतात्व-

---

बिना सव्य होकर नांदीमुख श्राद्ध करै, यदि कोई कहै कि, निषेधसेही विधिकी कल्पना करेंगे सो यथार्थ नहीं. प्रोष्ठपदीके श्राद्धमें प्रपितामहसे अगले वृद्धप्रपितामह आदिको देवता होनेसे नांदीश्राद्धकी समता है, इससे यहां भी उसकी प्राप्तिका निषेध कहा है ॥ गोत्रनाम- आदिका निषेध तो संकल्प श्राद्धके विषयमें है, कारण कि, यह वाक्य है कि, शुभार्थी प्रथमांत पदसे वृद्धिमें संकल्प करै, इस प्रकरणमें यह भी लिखा है कि, जिसमें अस्मद्वृद्ध शब्द न हो, सपिंडोंमें तो सब होता है यह प्रयोगपारिजातमें कहा है कारण कि, छन्दोग- परिशिष्टमें सपिंडोंका यह विधान है कि, गोत्र और नामको कहकर पितरोंको अर्घ्य देना, जो ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, पिता पितामह प्रपितामह यह तीन पितर अश्रुमुख लिखे हैं, और उनमें पहले जो प्रजा और सुखवाले हैं वे पितर नांदीमुख कहाते हैं, कारण कि, नांदी नाम समृद्धिका है, जो मार्कण्डेय पुराणमें कहा है कि, जो पितामहसे ऊपरके हैं वे नांदीमुख लिखे हैं, ये दोनों वाक्य उस वृद्धिश्राद्धके विषयमें हैं, जिसको जीवत्पिता आदि करते हैं, यह कल्पतरुका मत है, तिससे उसके निमित्त यह आवश्यक है, यहां विष्णुका कथन है और पारिजातमें भी ऐसेही लिखा है ॥ हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि. कन्याके सूर्यमें पूर्णिमाको नांदीमुख पितरोंका श्राद्ध वराहपुराणके कथनानुसार करै, इस कथनसे भादोंकी पूर्णिमासी श्राद्धकी एकवाक्यतासे उसी स्थानमें पूर्वपितर देवता हैं, यहां सत्य

मित्याह ॥ अत्र सत्यवसू विश्वेदेवावित्युक्तं प्राग्वत् ॥ यत्तु शातातपः-'मातुः श्राद्धं तु युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक्' इति, तद्भिन्नप्रयोगमातृश्राद्धपरम् ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणे-' विश्वेदेवविहीनं तु केचिदिच्छन्ति मानवाः' इति । तद्भिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेवविकल्पार्थम् ॥ प्रयोगैक्ये तु तदेव नियमः । इति हेमाद्रिः ॥ एतच्च मातृपूजापूर्वकं कार्यम् ॥ " अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् । तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः " इति शातातपोक्तेः ॥ कौर्मेपि-" पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि । पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः" इति ॥ छन्दोगपरिशिष्टे-"कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु । अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥ कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु । कारयेत् पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥ षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥४॥" अत्र सर्वेष्विति ग्रहणात् ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धम् ॥ 'नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धे कर्म किंचित्समाचरेत्'इति शातातपोक्तेश्च ॥

वसु विश्वेदेवा पूर्वाभिमुख होते हैं, यह पहले कथन कर आये. जो शातातपने लिखा है कि मातृश्राद्ध विश्वेदेवाओंसे हीन दो ब्राह्मणोंसे पितासे भिन्न २ होता है, यह उस मातृश्राद्धके विषयमें है जो पितासे भिन्न किया जाता है. जो मार्कण्डेयने लिखा है कि, कोई मनुष्य विश्वेदेवाओंमे हीनकी इच्छा करते हैं, यह वाक्य भी पृथक् २ किये मातृश्राद्ध आदि दो श्राद्धोंमें विश्वेदेवाओंके विकल्पकेही निमित्त है, एक प्रयोगमें तो विश्वेदेवाओंका नियम है यह हेमाद्रिने कहा है, यह मातृपूजापूर्वक करना चाहिये, कारण कि, शातातपका कथन है कि, मातृकाओंकी अर्चा किये विना जो श्राद्धमें परोसता है, तो रोषमें भरकर मातृका उसकी हिंसा करनेकी इच्छा करती है ॥ कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि, फूल, धूप, नैवेद्य, गंध, भूषण आदिसे मातृकाओंकी अर्चा करके बुद्धिमान् मनुष्यको तीनों श्राद्ध करने चाहिये, छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, सब कर्मोंमें गणेशसहित मातृकोंको प्रयत्नसे पूजना चाहिये कारण कि, जो उनकी पूजा करता है उसकी वे करती हैं, शुद्ध प्रतिमामें वा कपडेपर लिखकर वा अक्षतोंके समूहोंमें भिन्न २ नैवेद्योंसे पूजा करै, दीवालपर लगाकर घीसे सात वा पांच 'वसोर्धारा' करै, वे न बहुत नीची न बहुत ऊंची करनी और आयु देनेवाले मंत्र सावधानीसे जपकर पीछेसे छः पितरोंके श्राद्धको प्रारम्भ करै, यहां 'सर्वेषु' इस पदके ग्रहणसे ग्रहयज्ञ और उसके विकारोंमें भी श्राद्ध नित्य जानना कारण कि, शातातपने लिखा है कि, श्राद्धमें पितरोंकी पूजा किये विना कुछभी कर्म न करै ॥

इयं च वसोर्धारा तच्छाखीयानां नियता । अन्येषां त्वनियता ॥ ' बहल्पं वा स्वगृह्योक्तम्' इत्युक्तेः ॥ करणे त्वभ्युदयः ॥ 'यन्नाम्नातं स्वशाखायाम्' इत्युक्तेः । आयुष्याणि 'आनो भद्राः' इत्यादीनि ॥ षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ छन्दोगानां षड्दैवत्यमन्येषां नवदैवत्य मित्याशार्कः ॥ मम तु मतं कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रा सहैव मातामहश्राद्ध-करणात् तद्विषयमिदं षड्भ्य इति ॥ मातरस्तत्रैवोक्ताः ॥ ' गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ '' इति सर्वविशेषणं तेन चतुर्दशत्वम् । यदा षोडशेति पाठस्तदा देवतान्तरम् ॥ चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या उक्ताः–" तिस्रः पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा । इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसाष्टमी ॥ '' आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् ॥ मृतानां त्वक्षतपुञ्जेषु इति हेमाद्रि ॥ " ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् । वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान् पितॄन् ॥ मातृपूर्वान् पितॄन् पूज्य ततो मातामहानपि । मातामहीस्ततः केचिद्युग्मा भोज्या

यह वसोर्धारा उनकी शाखावालोंको नियमसे जाननी और दूसरोंको नहीं कारण कि, यह लिखा है कि, थोडा वा बहुत जो अपने गृह्यसूत्रमें लिखाहै उसे करै, और दूसरी शाखाके करै तो अभ्युदय होताहै कारण कि, जो अपनी शाखामें नहीं कहा उसको भी करे और आयुष्य मन्त्र ' आनोभद्रा ' इत्यादि जपे और 'षड्भ्यः' यह माता आदि तीनका उपलक्षण है, यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं, छन्दोगोंके श्राद्धमें छः देवता और दूसरेकेमें नौ देवता होतेहैं यह आशार्क लिखतेहैं. मेरे मतमें तो कोकिलमतके अनुसारियोंमें माता मातामह प्रमातामह यह माताके संगही मातामहोंका श्राद्ध करनेसे उनके विषे षड्भ्यः यह पूर्वोक्त कथन लिखा है ॥ मातरभी वहांही लिखी है कि, गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, आत्मदेवता, गणेश, अधिकके सहित चौदह लोककी माता मातर हैं, इस श्लोकमें 'मातरः लोकमातरः ये दोनों पद सबके विशेषण हैं, इससे चौदह यथार्थ है, जब षोडश यह पाठ है, तब 'मातरः' और 'लोकमातरः' येभी भिन्न देवता हैं , चन्द्रिकामें तो चतुर्विंशतिके कथनसे अन्य मातर लिखी हैं कि, तीन पिता पक्षमें और तीन मातामह पक्षमें इन पिता आदिकी छः स्त्रियोंको और दो पिता और माताकी भगिनियोंको मातर लिखते हैं, जीती हुई इनका प्रत्यक्ष पूजन और मरी हुइयोंका अक्षत समूहपर पूजन करै, यह हेमाद्रिका कथन है ॥ ब्रह्माणी आदि सात दुर्गा, क्षेत्रपाल, गणेश इनका वृद्धि आदिमें पूजन करके पश्चात् नान्दीमुख पितरोंका और मातृपूर्वक पितरोंका और मातामहपूर्वक पितरोंका पूजन करके मातामही आदि तीनका अर्चन करै यह कोई लिखतेहैं, और इसमें युग्म ब्राह्मणभोजन करावै, यहां

द्विजातयः ॥ २ ॥ " इति ॥ अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचाराद्व्यवस्था ॥ ब्रह्माण्याद्याः-" ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः " इत्यपरार्के उक्ताः ॥ अत्र चौलादीनां यौगपद्ये तन्त्रतोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे-' गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥" मातृभ्यः इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ गणशः एकानेकपुत्राणां संस्कारेष्वेकादिने एकदेशकालकर्त्रैक्यादित्यर्थः ॥ तथा-" असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः। प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः सगणाधिपाः॥" कर्मावृत्तावपि कुत्र श्राद्धं कार्यं कच नेत्युक्तं तत्रैव ॥ " आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पूर्णमासे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥ " एतेषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किंत्वादौ ॥ एतद्भिन्ने सोमयागादौ प्रतिप्रयोगमावर्तते एव ॥ श्राद्धमित्यर्थः ॥ क्वचिदादावपि निषेधमाह स एव "नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ॥ विवाहादिःकर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुमो यस्य चान्ते ॥ विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धंनादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥ " सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः 'सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य' इत्युक्तं कर्म ॥

द्वादश देवतावाले श्राद्धको देशाचारसे व्यवस्था जाननी, ब्रह्माणी आदि सात मातर अपरार्कमें ये लिखीहैं- ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, यहां मुण्डन, आदि एक वार आनपडे तो छंदोगपरिशिष्टमें उनकी (कर्तव्यता एकवार करनी) कहीहै, जो कर्म समूहसे किये जांय उनमें मातृओंका अर्चन और वृद्धिश्राद्ध एकवार होताहै, भिन्न २ नहीं, इसका यह अर्थहै कि, एक अनेक पुत्रवालोंके संस्कारोंमें एक दिन एक देश एक काल एक कर्ता होता है ॥ इस प्रकार वाक्य है कि, कर्मोंके कर्ता जिन कर्मोंको भिन्न २ करतेहैं उनमें कर्मके प्रति गणेश और मातृका नहीं होतीहैं, अर्थात् एकवारही हुआ करतीहैं, कर्मकी आवृत्तिमें भी किस कर्ममें श्राद्ध करना चाहिये और किसमें नहीं लिखा यहभी वहांही लिखाहै, अग्न्याधान, होम, विश्वदेवा, बलिकर्म, अमावस्या, पूर्णिमा, नवयज्ञ इनमें यज्ञके जाननेवाले बुद्धिमान् इस प्रकार लिखतेहैं, कि, एकही श्राद्ध होताहै भिन्न २ नहीं अर्थात् इनमें प्रयोग २ के प्रति श्राद्धकी कर्तव्यता नहीं किन्तु प्रथममें होतीहै, यदि इनसे भिन्न सोमयाग होय तो प्रत्येक प्रयोगमें श्राद्धकी आवृत्ति होतीहै ॥ कहीं आदिमभी निषेध उसीने लिखाहै कि, अष्टका और श्राद्ध और प्रसव करनेवालीका जातकर्म और परदेशसे आनेके कर्म इनमें श्राद्ध नहीं होता है, विवाह आदि कर्मोंका जो समूह लिखाहै और गर्भाधान जो श्रवण कियाहै उसके अन्तमें और विवाहके प्रथममें एकही श्राद्ध होताहै, प्रत्येकका आदिमें नहीं, सोष्यन्ती उसे कहतेहैं जिसे प्रसव होनेवाला हो, वह कर्म यह है कि, सोष्यंतीका अभ्युक्षण करके श्राद्ध

कात्यायनोक्तस्य श्राद्धस्य पाकस्य प्राधान्यात्तस्य च ॥ 'जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि ' इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशाङ्कः॥ आमान्नेन वा कार्यमित्यपि तेनैवोक्तम्॥ गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः॥ पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव । 'जन्मन्यथोपनयने' इत्युक्तेः । "नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम्। पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्म समं नरैः॥"इति मार्कण्डेयपुराणेत्याहुः॥ हारलतायां श्राद्धविवेके चैवम् ॥ एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्धनिषेधो न पुत्रजन्मदिने इति वाचस्पतिमतं परास्तम् ॥ अथ ' निषेककाले' इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः ॥ " निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम्॥" इति पारस्करः ॥ प्रोषितेति–'प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपति' इति विहितं कर्म विवाहादिगर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण ॥ तत्रापि प्रतिकर्म नेत्यर्थः । अन्येपि हलाभियोगादयो अपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः॥ त इहाप्रचारान्नोच्यन्ते ॥ अथजातश्राद्धाधिकारिणः । अथात्राधिकारिणः ॥ विष्णुपुराणे–" जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः । पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युदयात्म-

---

करना चाहिये ॥ कात्यायनके कहे हुए श्राद्धमें पाकही प्रधानहैं उसका इस वाक्यसे निषेधही लिखा है कि. जातश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पक्वान्न न देना चाहिये, इससे जातकर्ममें नान्दीश्राद्ध न करना, आमान्नसे तो करना यह आशाङ्का कथन है, गौड तो यह मानते हैं कि, जातकर्ममें हैं निषेध है, पुत्रजन्मके निमित्तक तो अवश्यही करना चाहिये कारण कि, जन्ममें और यज्ञोपवीतमें करे मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है : कि, नैमित्तिक आभ्युदयश्राद्धको कहताहूं पुत्रजन्ममें. जातकर्मके संग उसे मनुष्योंको करना चाहिये ॥ हारलता और श्राद्धविवेकमें भी इसीप्रकार लिखा है, इससे यह वाचस्पतिका मत परास्त होगया 'निषेककाले ' इस वचनसे गर्भाधानमेंभी निषेध नहीं है, पारस्कर कहते हैं कि, निषेककाल सोम सीमन्तोन्नयन: और पुंसवनमें, श्राद्ध विधिपूर्वक किया हुआ कर्मांग होता है, जातकर्ममें कालांतरमें श्राद्धका निषेध कहाहै, जन्मदिनमें नहीं, यहां निषेक समयमें करे, इस कथनसे गर्भाधानमें निषेध नहीं है, 'प्रोषितागतकर्म' यह है कि, परदेशसे घरमें आकर जो पितरोंकी पूजा करता है वह पितरोंके जपको पाता है, इससे जो कहा विवाह आदि गर्भाधान पर्यंत गृहप्रवेश धृतिहोम चतुर्थी कर्म आदि कर्मसमूह जो सूत्रकारने लिखे हैं, वहांही कर्म १ में श्राद्ध न करना, और भी हलके अभियोग आदि निषेधके विषय वहांही जान लेने, उनका प्रचार नहीं है इस कारण नहीं लिखते ॥ अब अधिकारियोंको लिखते हैं विष्णुपुराणमें कहा है कि, उत्पन्न हुये पुत्रके जातकर्म आदि सम्पूर्ण कर्मको

कम् ॥" अत्र केचित् जीवत्पितुः साग्नेरेव वृद्धिश्राद्धेऽधिकारः नतु निरग्नेः । "न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः ॥ पितामहेप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः । साग्निकोपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ॥ " इति चन्द्रिकायां सुमन्तूक्तेरित्याहुः ॥ प्रयोगपारिजातेप्यनाहिताग्निर्न कुर्यादिति यद्व्याख्यातम् तन्न । " अनग्निकोपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवोद्दिश्य तर्पयेत् ॥ " इति हारीतोक्तेः ॥ सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धपरमित्युक्तं मदनरत्ने ॥ श्राद्धपदं पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ निर्णयामृते तु हारीतीयेऽनग्निकोनाहिताग्निरभिप्रेतः ॥ पूर्ववचने तु साग्निकः श्रौताग्निः स्मार्ताग्निश्चोच्यते ॥ तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तम्, तन्न । पूर्वोक्तदिशा गतिसम्भवेऽनग्निपदस्य स्मार्ताग्निपरत्वे मानाभावात् ॥ वक्ष्यमाणनित्यानित्यसंयोगविरोधात् ॥ "पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान् ॥ " इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमवचोविरोधाच्च ॥ अपरार्केपि-' समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्'

और आभ्युदय श्राद्ध पिताको करना चाहिये, जहां कोई, यह कहते हैं कि, जिसका पिता जीताहो उस अग्निहोत्रीकोही अधिकार है, निरग्निको नहीं है.कारण कि, चंद्रिकामें सुमंतुका कथन है कि, अग्निहोत्रीसे भिन्न जीवत्पितृक द्विजको श्राद्ध न करना चाहिये, और पिता जिनको श्राद्ध देताहो साग्निक तो उनकोही दे, और पितामहके जीते हुये अग्निहोत्री इसीप्रकार करे, और प्रपितामहके जीवते साग्निकोभी न करना चाहिये, प्रयोगपारिजातमें भी लिखा है कि, जो अग्निहोत्री न हो वह श्राद्ध न करे, सो उचित नहीं कारण कि, हारीतने लिखा है कि, अनाग्नि भी उनकेही निमित्त श्राद्ध और तर्पण करे, जिनको जन्म आदिके वृद्धिश्राद्धमें पिता देता है ॥ सुमंतुका मत तो वृद्धिश्राद्धसे पृथक् २ श्राद्धके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखा है, पिंडपितृयज्ञके विषयमें लिखा है यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं निर्णयामृतमें तो यह लिखा है कि, हारीतके कथनमें अनग्निसे वह लिया है जिसने अग्न्याधान न लियक हो और पूर्वोक्त वचनमें साग्निसे वह लिया है जो स्मार्ताग्नि हो तिससे जो. दोनों अग्निके रहित हों वह न करै सो उचित नहीं कारण कि, पूर्वोक्त रीतिसे जब गतिका संभव है अनग्निपदको स्मार्ताग्निबोधक माननेमें कोई प्रमाण नहीं है आगे कहे हुए नित्य अनित्यके संयोगका विरोध है,और पृथ्वीचन्द्रोदयमें इस यमवाक्यकाभी विरोध लिखा है कि,जहांतक पितरोंकी पिता अर्चा करता है वहांतक सावधान होकर पुत्रहीको करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी अर्चा करै ॥ अपरार्कमें भी लिखाहै कि, समावर्तनमें ब्रह्मचारी स्वयं

इत्याह ॥ अतः पूर्वमेव साधु ॥ वोपदेवोप्येवमाह ॥ यत्तु मतं जीवत्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धम् । हारीतीये जन्मादावित्यादिशब्देन तत्प्राप्तावपि—" उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः " इति मैत्रपरिशिष्टे–' उद्वाह एव तस्योपसंहारात् ॥ एवं यत्र तु संस्कारादिपदं तदप्युद्वाहादिपरमेव' इति तन्न ॥ उद्वाहपदस्य स्वविवाहपरत्वस्यापि संभवात् ॥ पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात् ॥ ' नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ' इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वावगतौ नित्यानित्यसंयोगविरोधाच्च ॥ अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसंग्रहः ॥ तथा कात्यायनः—"स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ " ' सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं पिण्डदांशहरश्चैषाम्'इति दर्शनादौद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तं दद्यात् ॥ विवाहश्च प्रथमः । "नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम् ॥" इति स्मृतेः ॥ तस्य पितुरभावे तत् क्रमात्–'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ' इति–यः कर्तृक्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादि-

---

नान्दीमुख श्राद्ध करे, इससे पूर्वोक्तही अच्छा है. बोपदेवने भी ऐसेही लिखाहै, जो यह मत है कि, जीवत्पितांको पुत्रके नामकर्मसे प्रथम वृद्धिश्राद्ध न करना चाहिये, हारीतके ' जन्मादौ ' इस आदि पदसे उसकी प्राप्तिभी थी तो भी विवाह पुत्रजन्म पितरोंका पूजन, सोमयज्ञ तीर्थमें ब्राह्मणका आगमन ये छः जीवत्पितृके श्राद्धकालीन हैं, इस मैत्रपारेशिष्टमें विवाहमें उसकी पूर्णता लिखी है, इसी भाँति जहां पुत्रसंस्कार आदि, वाक्य है वेभी विवाह आदि परत्व हैं, सो उचित नहीं, विवाह पदको अपने विवाहके भी बोधककी सम्भावनासे पुत्रविवाहके बोधकमें मानका अभाव है और बालोंके नामकर्म और चूडादिकमोंमें, इत्यादि वाक्योंसे नित्यश्राद्धको चौलाद्यंगता निश्चित होनेसे नित्यानित्यसंयोगका विरोध है इससे जन्मादौ इस पदसे सब संस्कारोंका संग्रह कहा है ॥ यही कात्यायनने लिखा है कि, पुत्रके संस्कार कर्मोंमें पिता अपने पितरोंको दे, पुत्रोंका विवाह होनेपर पिताके अभावमें उसी क्रमसे पुत्रको पिंड देना चाहिये, इसका यह आशय है कि, पिता पुत्रोंके मुण्डन आदि संस्कारोंमें विवाह पर्यन्त पिंड देवे कारण कि, पितरोंको पिण्डका दाता और उनके अंशका भागी बेटा होता है. विवाह पहले लेना कारण कि, यह स्मृतिमें लिखा है कि, पहले विवाहमें नान्दीश्राद्ध पिता करे, और इसके उपरांत पुत्र स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करे, और उस पिताके अभावमें इस कर्ताके क्रमसे कि, जिनका संस्कार नहीं हुआ है उनका संस्कार वे भ्राता करें, जिनका संस्कार पूर्व होचुका हो. इस क्रमसे बडे भाई आदि हैं यह नान्दिकादिक

दद्यादिति चन्द्रिकादयः ॥ हेमाद्रिस्तु तस्य पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्कुर्यात्स तत्क्रमात्संस्कार्यपितृक्रमाद्दद्यान्नतु स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ ॥ समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात् पितैव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् ॥ तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिभिः ॥ तदभावे स्वयमेव कुर्यात् ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् ॥ एवमाद्यविवाहेपीति पृथ्वीचन्द्रोदयचन्द्रिकादयः ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते पतिते वा धर्मार्थं तत्पुत्रमन्यः संस्कुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादिभ्यो दद्यात् ॥ "पितरो जनकस्येज्या यावद्व्रतमनाहितम् । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान्" इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमोक्तेः ॥ जीवत्पितृकस्य विशेषमाह कात्यायनः "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति ॥ यत्तु बह्वृचपरिशिष्टे–'जीवत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात् ॥ तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैवेति, तत्तच्छाखीयानामेवेति दिक् ॥' स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु तु जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात् 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदकं द्विजः' इति कात्यायनोक्तेः । "जीवे तस्मिन्सुताः कुर्युः पितामह्याः सदैव तु । तस्यां चैव तु

लिखते हैं ॥ हेमाद्रिने यह व्याख्या लिखी है कि, उस पिताके अभावमें जो पितृव्य मामा आदिक संस्कार करै, वह संस्कार करने योग्यके पितृक्रमसे प्रदान करै, अपने पितृक्रमसे नहीं करै. समावर्तनमी विवाहसे प्रथम पुत्रका संस्कार है उसमें भी पिताहीका नान्दीमुख श्राद्ध करना उचित है, उसके अभावमें बडा भाई और उसके अभावमें स्वयं करै, कारण कि, यज्ञोपवीत होनेसे कर्मका अधिकार होगया, इसी भांति प्रथम विवाहमेंभी स्वयं करै यह पृथ्वीचन्द्र और चन्द्रिका आदि लिखते हैं ॥ मदरत्नमें भी यही है, यदि पिता संन्यासी होगयाहो, परदेशमें हो, पतित हो और उसके पुत्रका धर्मार्थ कोई और संस्कार करै, तो पितृ पितामह आदिका श्राद्ध करै कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमने लिखा है कि, जितनी पितृ पितरोंकी पूजा करता है, उतनीही सावधान होकर पुत्रको करनी चाहिये, और पीछे अपने पितामहोंकी करै, जीवत्पितृकके निमित्त विशेष कात्यायनने लिखा है कि, वृद्धिश्राद्ध, तीर्थश्राद्धको, पिता संन्यासी होगया हो वा पतित होगया हो तो जिनको पिता श्राद्ध दे, उनकोही पुत्र स्वयं दे ॥ जो बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, जीवत्पिता पुत्रके संस्कारमें माता और मातामहका श्राद्ध करै, माता जीती होय तो, मातामहका ही श्राद्ध करै, वह बह्वृच शाखावालोंके ही निमित्त है यह कुछ कहा है. स्मृतितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह लिखा है कि, जीवन्मातृक पितामही आदिको वृद्धिमें दे कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, द्विजको जीवतीहुईको वा मृतकको अन्नोदक देना चाहिये, उस पातिके जीवते

जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः' इति हारीतोक्तेश्चेत्युक्तम्॥ तास्मिन् भर्तरि दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषयत्वात् ॥ 'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति वचनाच्चद्वर्गस्य लोप एवेत्याहुः ॥ यत्तु चन्द्रिकायां पारस्करः-"निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवच्च तत् ॥" इति। तत्र गर्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादावुक्तं तु वृद्धिश्राद्धं पृथगेव विधिवदित्युक्तेः ॥ गौडनिबन्धे मात्स्ये-"अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके। पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ वेदव्रतजलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च। तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥" अत्र भूतनिमित्तानां वृद्धित्वम्, भाविनिमित्तानामङ्गत्वम् ॥ वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थं इति गौडाः ॥ अन्येतु निषेकादौ कर्मांगवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः ॥ नान्दीश्राद्धसंज्ञा तूभयानुगता ॥ श्राद्धेतिकर्तव्यनिर्णयः। अथेतिकर्तव्यता ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः-'मालत्याः शतपत्राया मल्लिकाकुब्जयोरपि। केतक्याः पाटलाया वा देया माला न लोहिता ॥' श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः ॥ तथा-"सुवेषभूषणैस्तत्र सालंकारैस्तथा नरैः ॥ कुंकुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥" हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-

---

हुये पितामहीके संग पुत्र करे, वह भी जीती होय तो उसकी सासू करै, यह हारीतका कथन है कि, 'तास्मिन् भर्तरि' और दाक्षिणात्य तो पूर्वोक्त सपिंडीकरणादिके विषयसे कहते हैं यदि वर्गका प्रथम जीता होय तो उसको त्याग दे, इस वाक्यसे उसका लोपही है ॥ जो चंद्रिकामें पारस्करने लिखा है कि, गर्भाधान, सोमयज्ञ, सीमंत, पुंसवनमें श्राद्ध कर्मका अंग जानना और वृद्धिश्राद्ध भिन्नही है, कारण कि, वहां वृद्धिके समान लिखा है. गौडनिबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रजन्म, पुंसवन, गर्भाधान, नये घरमें प्रवेश, वेदका व्रत, जल आदिकी प्रतिष्टा, तीर्थयात्रा, वृषोत्सर्ग इनमें वृद्धिश्राद्ध लिखा है, इनमें जिनका निमित्त होचुका है उनमें वृद्धि और जिनका निमित्त होनेयोग्य है उनमें अंग है. वृद्धिशब्द तो वृद्धिके धर्मोंके अतिदेश (बताने) के निमित्त है, यह गौड लिखते हैं, और तो निषेक आदिमें कर्मांग और वृद्धिश्राद्धकी एकत्रता कहते हैं. नांदीश्राद्ध यह संज्ञा तो दोनोंमें मिली है ॥ अब श्राद्धकी इतिकर्तव्यता लिखतेहैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपराशरका वाक्यहै कि, मालती, कमल, चमेली, कुब्ज, केतकी, पाटला, माला श्राद्धमें दे, और लालमाला न दे. श्राद्धमें मालाके निषेधका यह अपवाद है. इसी प्रकार लिखाहै कि, सुन्दर वेष भूषण अलंकार सहित और कुंकुम आदि अंगको लगाये हुये मनुष्य श्राद्धमें ब्राह्मणोंके सहित रहें, और स्त्री भी इसी प्रकार गीत नृत्य आदिसे प्रसन्न रहैं हेमाद्रिमें ब्रह्मा-

' कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये । ' कुशा अपि वक्ष्यन्ते ॥ छन्दोगपरिशिष्टे-" प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा ॥ ' उभयतः दैवे पित्र्ये च ॥ वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ द्वाविति षिप्पातिः ॥ त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः ॥ अत्र विप्रालाभे स्त्रियोपि भोज्या इत्याहाशार्के वृद्धवसिष्ठः-" मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ॥"मातृत्रिके चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति हेमाद्रिः॥ अत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा विप्राः पाद्ये पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन्तः ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-' विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत् । ' छन्दोगपरिशिष्टे-"गोत्र-नामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् । नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थ-मिष्यते ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् । कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ " पित्रादेर्द्वौद्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ संयोज्य प्रथमोपवेशितविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः ॥ बह्वृचकारिकायां तु-" दत्तार्घ्योदकदेशः स्यादर्घ्यदानं प्रतिद्विजम् । आवृत्तिरपि मन्त्रस्य प्रतिब्रा-ह्मणमिष्यते ॥ प्रतिद्विजं पृथक्कुर्यान्निवीत्यर्घ्यानुमन्त्रणम् ॥ " इत्युक्तम् ॥ "मधु

डपुराणका कथन है कि, मंगलकी वृद्धिके निमित्त कुशाओंके स्थानमें दूर्वा होतीहै, कुशाभी लिखेंगे ॥ छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, प्रातःकाल न्योता दिये युग्म ब्राह्मणोंको देव पितृश्राद्धमें बैठावे विश्वेदेवाओंके दो ब्राह्मण और पिता आदि एक २ के दो दो ब्राह्मण, इससे वीस ब्राह्मण वा एक २ त्रिकमें दो दो इससे आठ ब्राह्मणोंका भोजन करावै. यहां ब्राह्मण न मिले तो स्त्रियोंका भी भोजन कराना, यह आशार्कमें वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, मातृश्राद्धमें ब्राह्मण न मिलें तो पतिपुत्रयुक्त और सुन्दर कुलीन आठ स्त्रियोंको भोजन करावे और पूजा करै, चार माताके त्रिकमें, और चार मातामहीके त्रिकमें ये आठ हुईं, हेमाद्रिने कहाहै कि, यहां पितृश्राद्धमें प्राङ्मुख ब्राह्मण होतेहैं, पाद्यके निमित्त पितृपक्षमें चौकोर मंडल होताहै यह जयंत लिखतेहैं ॥ हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि,ब्राह्मणोंको प्रदक्षिण क्रमसे पूर्वाभिमुख बैठावै छन्दोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, गोत्र नाम लेकर पितरोंको अर्घ्य दे,न यहां अपसव्य करना है और न पितृतीर्थ है, उत्तरके बडे करवाले दो करके अग्रसे पवित्री रखकर अर्घ तन्त्रसे दे, एक २ को यहां अर्घ नहीं दिया जाता यहां यह सिद्धान्त है कि, पिता आदिके दो २ ब्राह्मण उनके दक्षिण हाथ मिलाकर प्रथम बैठे हुये ब्राह्मणके हाथके ऊपर तंत्रसे दोनोंको अर्घ्य दे ॥ बह्वृचकारिकामें तो लिखाहै कि, दिये हुये अर्घ्यका एकभाग प्रति ब्राह्म-णको दे, और प्रत्येक ब्राह्मणको मन्त्र पढना चाहिये, और प्रत्येक ब्राह्मण निवीती अर्थात् (अपसव्य) होकर अर्घ्यका अनुमन्त्रण करै, और जब भोजन करनेकी इच्छा करै तब मधु इ

मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपेशितुमिच्छताम् । गायत्र्यानन्तरं स्तोत्रं मधुमन्त्रविवर्जितम् ॥ न चाश्नंस्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तम् ॥ " तथा-"संपन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते । सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ अक्षय्योदकानं च अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नियतं कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥ " चन्द्रोदये ब्राह्मे-" पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा ॥ नान्दीमुखान्पितॄन्भक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ॥ " तथा-"शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवास्तथा । मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पिण्डाञ्छ्रीफलसंनिभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् । द्राक्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा ॥ " तत्रैव चतुर्विंशतिमते-" द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनिःक्षिपेत् । एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक् ॥ " वसिष्ठः-"प्राङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधोमुखम् ॥ " नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः ॥ अत्र पिण्डाः कृताकृता इत्युक्तम् ॥ तत्रैव भविष्ये-" पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥ " छागलेयः-"अग्नौकरणमर्घ्यं वावाहनं चावनेजनम् । पिण्डश्राद्धे प्रकुर्वीत पिण्डहीने निवर्तते ॥ "

ये तीन वार कहे, गायत्रीके उपरान्त मधु मन्त्रको त्यागकर स्तोत्रको पढे और भोजन करनेके समय कभीभी पितृसूक्तको न जपे, इसी प्रकार सम्पन्न हुआ, तृप्त हुए: यह पूछे जब ब्राह्मण सुसम्पन्न कहदे, तब शेष बचा अन्न उनको निवेदन करे, अक्षय्य जलका दानभी अर्घदानके तुल्य है उसमेंभी नियमसे षष्ठी विभक्ति करे, चतुर्थी कभी न करे ॥ चन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखाहै कि, शकुनिसूक्त और स्वस्तिसूक्त जपे, कर जोडकर नान्दीमुख पितरोंको बुलावे, ऐसेही वाक्य हैं कि, चावळ दही मधु बेर जौ इनको मिलाकर बेलफलके तुल्य पिंडोंको नान्दीमुख पितरोंके निमित्त विधिसे दे मुनक्का आमला मूली जौकोभी प्रदान करे और इन्हींको दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको दें ॥ वहांही चतुर्विंशतिमतमें लिखाहै कि, अभ्युदयमें एक २ को दो दो पिंड दे, उन दोनोंमें एक नाम लेकर दूसरा मौन हो दे इसी प्रकार भिन्न २ पिंड देने वसिष्ठका कथन है कि,पूर्वाभिमुख देवतीर्थसे पूर्वको मुखवाली कुशाओंपर बैठा हुआ यजमान पिंडके पात्रको अधोमुख न करे, वृत्तिग्रन्थमें पिंडदानका यह मंत्र कहा है कि, नान्दीमुख पितरोंको स्वाहा उच्चारण करे वहां पिंड करने वा न करने यह वहांही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे महाबाहो ! वृद्धिश्राद्धमें कुलधर्मको देखकर पिंड करै वा न करै॥ छागलेयका कथन है कि, अग्नौकरण अर्घ आवाहन अवनेजन ये पिंडश्राद्धमें करै, और जिसमें पिंड न हो वहां न करे तिससे यहां भोजनही प्रधान है. यदि भोजन करते समय ब्राह्मणको

तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विप्रस्य वमनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्ति-रिति सिद्धम् ॥ अत्र सांकल्पे विशेषः प्रयोगपारिजाते संग्रहे । " शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् ॥ न षष्ठ्या यदि वा कुर्यान्महादोषोभिजायते"नाम-गोत्रादिनिषेधोप्यत्रैव न तु सपिण्डकश्राद्धे इति स एव ॥ अत्रायं क्रमः । 'नान्दी-श्राद्धे दैवे क्षणःक्रियताम्'इति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ओंतथेतिविप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां, भवन्तौ प्राप्नुवाव, इति वैश्वदेववत् पित्र्ये च द्विवचनान्तेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात्॥ आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे-" योग्नौ तु विद्यमानेपि वृद्धौ पिण्डान्न निर्वपेत् । पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते ।" बह्वृचपरिशिष्टे-'द्वौ दर्भौ पवित्रे पवित्राणि चत्वारि ॥ शन्नोदेवीत्यनुमन्त्रिताषु यवानावपति ॥' " यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा " इति स्वाहार्घ्या इति पृच्छति ॥ विश्वेदेवा इदं वो अर्घ्यं नान्दीमुखाः पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विर्द्विः ॥ पाणौ होमोग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेत्यतो देवा अवंतुनो इत्यङ्गुष्ठग्रहणम् ॥ ' पावमानीः शंवतीरैन्द्रीमप्रतिरथं च श्रावयेन्मधुवाता ऋचः

उलटी होजाय तो फिर उसी पार्वणको फिर करै यह सिद्ध हुआ. यहां संकल्पमें विशेष प्रयोगविधि पारिजातमें संग्रहके वाक्यसे लिखा है कि, शुभार्थी मनुष्य वृद्धिश्राद्धमें प्रथमांत पदसे संकल्प करै, षष्ठीविभक्तिसे न करै, करै तो वडा दोष होता है नामगोत्रका निषेध भी इसमेंही लिखा है सपिंडक श्राद्धमें नहीं यहभी उसनेही लिखा है, यहां यह क्रम है कि, नान्दीश्राद्धमें यह कहकर दो ब्राह्मणोंको एक वार ऐसे निमंत्रण देकर कि, दैवश्राद्धमें समय राखियो जब दोनों ब्राह्मण इसको (ॐ) ऐसा स्वीकार करैं तब कहदे कि, तुम प्राप्त हो, इस प्रकार ऐसे कहनेके उपरान्त ब्राह्मण हम आवैंगे कहै, विश्वेदेवाओंकी तुल्य पितरोंके दो ब्राह्मणोंमेंभी द्विवचनांत पदसे प्रयोग करै ॥ आहिताग्निके निमित्त तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जो अग्निके विद्यमान होते हुए वृद्धिमें पिंड नहीं देता है उसके पितर नरकमें पचते हैं बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, दो कुशा दो पवित्रे और चार पवित्रों शन्नोदेवी० इस मंत्रसे अनुमंत्रित करै, इस मंत्रसे (यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नांदीमुखान् पितॄन् इमान् लोकान् प्रीणयाहिनः स्वाहा) जौ वखेरै, फिर स्वाहार्घ्या यह प्रश्न करै कि, हे विश्वेदेवाओ यह अर्घ तुमको है हे नान्दीमुख पितरो ! यह अर्घ्य तुमको है, यह कहकर नामके अनुसार अर्घ्य दे, फिर गंध आदि दे, फिर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते नमः० ' इन मंत्रोंसे दो २ बार हाथमें हवन करै, फिर हे देव ! रक्षा करो यह कहकर ब्राह्मणोंका अंगूठा पकडे, फिर पावमानी ऋचा, पुनः शंवती, फिर ऐंद्री अप-

स्थाने उपास्मै गायतेति पश्च मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदंतेति च षष्ठीं भुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्' इति ॥ चन्द्रिकायां वृद्धवसिष्ठः—" पितृप्रश्ने तु संपन्नं दैवे रुचितमित्यपि । दधिकर्कन्धुमिश्राश्च पिण्डाः कार्या यथाक्रमम्॥" कात्यायनः—' त्यमूषुवाजिनम् ' इति विप्रांश्च विसर्जयेत् । ' नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् ' इत्यक्षय्यस्थाने स्वधां वाचयिष्य इत्यस्य स्थाने ' नान्दीमुखान्पितॄन् वाचयिष्ये ' इति ॥ न स्वधां प्रयुञ्जीतेति ॥ अत्र साग्निरनग्निर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात् । "आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे ॥ एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥ " इत्याशार्के सांख्यायनपरिशिष्टात् ॥ हेमाद्रौ तु—"शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियां ततः । श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्" इति चतुर्विंशतिमतान्नान्दीश्राद्धेऽप्यन्ते वैश्वदेव उक्तः ॥ बह्वृचानामपि वृत्त्यालोचनात्तथैव ॥ पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयम् ॥ अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं वेत्युक्तं प्राक् ॥ इति निर्णयसिन्धौ वृद्धिश्राद्धम् ॥ अथ जीवत्पितृकश्राद्धनिर्णयः । अथ जीवत्पितृकश्राद्धम् ॥ तत्रानेकपक्षा दृश्यन्ते ॥

फिरथ पांच मधुमती और अक्षन्नमीमदन्त इस छठी ऋचाको सुनावै, और मधुवाता ऋचाके स्थानमें उपास्मैगायता० इस ऋचाको पढै, और भोजनके बचे अन्नसे एक २ को दो २ पिंड दे ॥ चन्द्रिकामें वृद्धवसिष्ठका कथन है कि, तृप्तिके प्रश्नमें सम्पन्न और दैवश्राद्धमें रुचित पूछे, और दही बेर मिलाकर क्रमसे पिंड दे कात्यायनका कथन है कि, 'त्यमूषुवाजिनं' यह कहकर ब्राह्मणोंका विसर्जन करे, नान्दीमुख पितर प्रसन्न हो, इस अक्षय्य जलके स्थानमें और 'स्वधां वाचयिष्ये' इसके स्थानमें 'नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये ' यह उच्चारण करे, स्वधा शब्दका प्रयोग न करे यहां साग्नि हो वा निरग्नि हो पहले वैश्वदेव करे कारण कि, आशार्कमें सांख्यायन परिशिष्टका वाक्य है कि, वृद्धिश्राद्धके आदिमें, क्षयके अन्तमें, पार्वणके बीचमें और एकोद्दिष्टकी निवृत्ति होनेपर वैश्वदेव करना चाहिये ॥ हेमाद्रिमें तो लिखा है कि, शेष बचा अन्न ब्राह्मणोंकी आज्ञासे लेकर वैश्वदेव क्रियाको संपादन करे, श्राद्धके दिन श्राद्धके शेष अन्नमेंसे वैश्वदेव करै, यह चतुर्विंशतिका मत है, नान्दीश्राद्धकेभी अन्तमें वैश्वदेव लिखा है, बह्वृचोंकीभी वृत्ति देखनेसे इसी प्रकार प्रतीत होता है, पूर्वोक्त कथन तो जिनका परिशिष्ट हो उनके विषयमें है वा किसी औरके विषयमें है, यह जानना चाहिये, इसमें श्राद्धका अंग तर्पण नहीं होता यह पहले कह आये हैं ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वृद्धिश्राद्धप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥ अब जीवत्पितृक श्राद्धको लिखते हैं, उसमें अनेक पक्ष हैं कि, जीते पिताको भोजन कराके पिछले दोनोंका श्राद्ध करै,

---

१ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ऋ० । १।६। १८ ।

१ उपास्मैगायतानरः पवमानायेन्दवे । अभिदेवांइयक्षते ॥ ऋ० ६ । ७ । ३६ ।

जीवन्तं पितरं भोजयित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः ॥ होमान्तमेव कुर्यादित्यन्यः ॥ "होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः । पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निपृणुयात् परौ" इति यज्ञपार्श्वोक्तेः ॥ 'यदि जीवत्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ 'जीवतां पिण्डानग्नौ हुत्वा परेभ्यो देयम्' इत्यपरः ॥ 'जुहुयाज्जीवेभ्यः' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीतरः ॥ 'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः' इति निगमात् ॥ 'तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद्द्वाभ्यामेव न संशयः' इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः॥ एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः॥ "प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत् । पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदयभविष्योक्तेः चन्द्रिकाप्येवम् । तस्मात् पितरि जीवति श्राद्धानारंभ एवेत्येकः पक्षः 'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते' इति कात्यायनोक्तेः ॥ 'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्' इति हारीतोक्तेश्च ॥ पितुः पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः ॥ म्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्' इति मनूक्तेः ॥ 'पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अयं बहुसंमतः पक्षः ॥ अन्ये शाखाभेदेन ज्ञेयाः ॥ एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम् ॥ "मातामहाना-

---

यह एक मत है, होमान्तही करे वह दूसरा मत है, कारण कि, यज्ञपार्श्वका कथन है कि, होमके अन्ततक पितृयज्ञ होताहै यदि पिता जीवते होंय तो परले दोको पिण्डप्रदान करे, और आपस्तम्बने भी यह लिखा है कि, यदि पिता जीवै तो न दे, किन्तु होमपर्यन्त कर्मको करके पूरा करे, आश्वलायनने लिखा है कि, जीतेहुओंके पिंड अग्निमें होम कर पिछलोंको दे: यह दूसरा पक्ष है, जीते हुएके पिंडोंका अग्निमें होम करै, जीवतोंको और मृतकोंको पिंड दे यह तीसरा पक्ष है, कारण कि, ऐसा शास्त्रमें लिखा है कि, जीते हुये और मृतक हुओंको अवश्य दे, यह हिरण्यकेतुका कथन है इससे जीवत्पिता दोके निमित्त करै, इसमें संशय नहीं इस भविष्यपुराणके वाक्यसे दोकोंही दे, यह और पक्ष है, ये सब पक्ष कलियुगमें वर्जित हैं. पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यका यह वचन है कि, मनुने श्राद्धमें प्रत्यक्ष पूजनको वर्जित किया है और उनको पिंडोंका देना भी महापातकके समान है ॥ चंद्रिकामें भी ऐसेही लिखा है, तिससे पिताके जीवते श्राद्धका प्रारम्भही नहीं होता यह एक पक्ष है कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, पिता सहितको पितृकर्ममें अधिकार नहीं है, हारीतका कथन है कि, जिसका पिता जीता हो वह पुत्र श्राद्धकालको त्याग दे यह सिद्धांत है, पिता आदिको दे, कारण कि मनुका कथन है कि, पिता जीवित होय तो पहलोंको पिंड दे, और कात्यायनने यह और श्रुति लिखी है कि, पितासहित पुत्र पिताके पितरोंको दे, यह पक्ष बहुतोंको सम्मत है ॥ और पक्ष शाखाभेदोंसे जान लेने, इसी प्रकार मातामहके जीवित रहते भी ऊहसे श्राद्ध

मप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् " इति विष्णूक्तेः॥ ' एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके' इति पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणाच्च ॥ ' पितरि जीवति तु स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमातामहयोः कुर्यात्॥ ' 'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति वक्ष्यमाणवचनात्, इति पितामहचरणाः॥ मदनरत्ने तु 'जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात्' इत्युक्तम्॥ कालादर्शेप्येवम्॥ 'मृते तु पितरि जीवन्मातृकः पितामह्यादिभ्यो वृद्धौ दद्यात् ' इति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः॥दाक्षिणात्यास्तु- "पितृवर्गं मातृवर्गं तथा मातामहस्य च । जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्"इति वचनात्तद्वर्गत्याग एवेत्याहुः॥एवं पतितसंन्यस्तपितृकादेरपि ज्ञेयम् ॥. "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥" इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥ संन्यस्ते जीवतीत्यर्थः । मृते तु संन्यस्ते तदाद्ये एव देयम् ॥ मृतेपि परेभ्य एवेति गौडाः ॥ कात्यायनोपि-"ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ " अयं च संन्यस्तपित्रादेरपि शेषात्सर्वश्राद्धेधिकारः ॥

करना, कारण कि विष्णुका कथन है कि, बुद्धिमान् मनुष्य मातामहोंका भी इसी प्रकार मन्त्रोंके ऊहसे यथायोग्य प्रीतिसे श्राद्ध करै, शेषोंका श्राद्ध मंत्रहीन करै, इसी प्रकार माता आदिकोंका भी श्राद्ध करै, कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका कथन है कि, इसी. प्रकार मातामहादिवर्गमें है, पिता जीता होय और माताकी मृत्यु होगई होय तो पिताकी माता और मातामहका श्राद्ध करै, कारण कि, यह वाक्य लिखेंगे कि, जिनको पिता दे उनको पुत्र दे, यह हमारे पितामह लिखते हैं, ॥ मदनरत्नमें तो यह लिखा है, कि, जिसका पिता जीवित हो वह अपनी माता और मातामहको दे, कालादर्शमें भी इसी प्रकार लिखा है. पिता मरगया होय और माता, जीवित होय तो वृद्धिश्राद्धमें पितामही आदिको दे, यह स्मृतितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें लिखा है. दाक्षिणात्योंका तो यह मत है कि, पितृवर्ग मातृवर्ग और मातामहवर्गमें जिस वर्गमें आदिका जीवित होय तो उस वर्गको त्याग दे, इस वाक्यसे उस वर्गका निषेधही है, इसी प्रकार जिसका पिता पतित व संन्यासी होय उसको भी जानना चाहिये, कारण कि, यह षट्त्रिंशत्का मत है कि, वृद्धिश्राद्ध तीर्थश्राद्धमें और पिता संन्यासी होगया हो वा पतित हो तो जिनको पिता दे उनको स्वयं पुत्र दे, संन्यासी जीता होय तो पिछलोंको दे, और मरगया होय तो संन्यासी आदि तीनोंको प्रदान करै, मरनेपर भी दूसरोंकोही दे यह गौडोंका मत है ॥ कात्यायनने कहा है कि, पिता ब्राह्मण आदिसे मराहो, पतित हो, संन्यासी हो, वा क्रमसे मृत्युको प्राप्त हुआ होय तो पुत्र उनको पिंड दे, जिनको पिता देता था यह संपूर्ण श्राद्धोंमें अधिकार अविशेषसे उसके

एतत्रिदण्डिपरम् ॥ एकादशाहे पार्वणवार्षिकाद्यपि तस्यैव ॥ 'अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधिःप्रते' इत्युक्त्वा–'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते' इत्युशनसा विशेषोक्तेः ॥ 'ब्राह्मणादिहते' इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः ॥ अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौड-ग्रन्थाः ॥ इदमेव तु युक्तम् ॥ यत्तु हेमाद्रौ कौण्डिन्यः–"दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम्। न जीवात्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च" इति तत्संन्यस्तपि-त्राद्यतिरिक्तविषयम् ॥ मैत्रायणीयपरिशिष्टे–"उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे ॥ तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥" तत्रैव–"महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते। जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवित् ॥" गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम् ॥ "अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यत्र मृतेऽहनि। मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति" इति तत्रैवोक्तेः ॥ गयाप्राप्तौ प्रासङ्गिक्यात् ॥ 'गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समाचरेत्' इति वचनात् ॥ तेन मृतमातृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात् ॥ तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्शस्मृतिदर्पणादयः ॥ अन्ये तु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्राद्धं भवत्येव गयायामित्याहुः ॥

निमित्त है जिसका पिता संन्यासी हो यह भी त्रिदण्डीके विषयमें कहा है, एकादशाहमें पार्वण और वार्षिक आदिभी उसकेही होते हैं, कारण कि कथन है कि, ग्यारहवें दिन संन्यासीका पार्वण करै, उशनाने यह विशेष लिखा है कि, त्रिदंडके ग्रहणसेही वह प्रेत नहीं होता, ब्राह्मण आदिसे मरेका न करै, यह निषेध तो एक दंडीके विषयमें है, इससे परमहंसोंका वार्षिक श्राद्ध आदि भी न करै यह शूलपाणि श्राद्धतत्त्व आदि: गौडग्रन्थोंमें लिखा है यही तो युक्त है ॥ जो हेमाद्रिमें कौण्डिन्यका कथन है कि, दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध और महालयश्राद्ध तिलोंसे तर्पण इनको जीवत्पितृक न करै, वह संन्यासीसे पृथक् पिताके विषयमें है, मैत्रायणीय परिशिष्टमें कहा है कि, विवाह पुत्रजन्म पितरोंका पूजन तीर्थ ब्राह्मणका आवाहन ये छः जीवत्पितृकको श्राद्धके काल हैं. वहांही कथन है कि, संपूर्ण महानदी तीर्थ गयामें मरण इनमें जीवत्पिता भी पार्वण विधिसे श्राद्ध करै. गयामरण मातासे भिन्नका लेना कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, अन्वष्टका गया इनमें क्षयाहके दिन माताका श्राद्ध माताके जीवते भी पुत्र करै. गयाकी प्राप्ति भी प्रसंगसे लेनी कारण कि, ऐसा कथन है कि, प्रसंगसे गयामें जाकर माताका श्राद्ध करै, तिससे जिसकी माता मृत हुई हो वह गयामें उसीका पार्वणश्राद्ध करै ॥ वह जीती होय तो तीर्थ-श्राद्ध भी न करै, यह कालादर्श और स्मृतिदर्पण आदिमें लिखाहै और तो यह लिखतेहैं कि, जाकर श्राद्ध न करै, साधारणसे प्राप्त तीर्थश्राद्ध गयामें तो होताहीहै, जब पिताका प्रतिनिधि

यदा तु पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्येवं श्राद्धम् ॥ तत्र मातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यादिति त्रिस्थलीसेतौ ॥ 'तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेति केचित् ॥ आद्यन्ते एवेत्यन्ये ॥ मध्यमान्ते इत्यपरे ॥ संकोचे हेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीत्युक्तं प्रतिभाति ॥ यत्तु मदनपारिजाते-"न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः" इति सुमन्तूक्तेः ॥ साग्नेरेव जीवत्पितृकस्य तीर्थादिश्राद्धमुक्तम् । साग्नेरपि मैत्रायणीयशाखीयस्यैव नान्येषाम् । 'षडेते जीवतः पितः' इति तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावलीदिवोदासाद्यास्तदयुक्तम् ॥ सौमन्तवं पिण्डपितृयज्ञविषयं संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं वेति पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः ॥ वृद्धौ तीर्थे चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वाच्च ॥ तथा निरग्नेरपि नान्दीश्राद्धमुक्तं प्राक् ॥ एवं पितामहजीवनेपि ज्ञेयम् ॥ विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः ॥ अथ पितामहे जीवति मृते च पितरि यद्यपि 'पितामहो वा तच्छ्राद्धे भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः'

होकर पुत्र गयाको गमन करै, तब यजमानके पिता पितामह प्रपितामहोंका श्राद्ध करै, और माताका पिताकी पत्नीरूपसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करके अपनी मातृरूपसे फिर पार्वणश्राद्ध करै; यह त्रिस्थलीसेतुमें कहाहै, वहभी फल्गु विष्णुपद अक्षयवटमेंही करना यह किन्हींका कथन है, आदि अन्तमें करना यह कोई लिखतेहैं, मध्य और अन्तमें करना यह दूसरे कहते हैं; हमें तो यह उचित प्रतीत होताहै कि, संकोचमें कोई कारण नहीं इससे गयाका सब श्राद्ध माताके निमित्त करना चाहिये ॥ जो मदनपारिजातमें यह कहाहै कि, जीवत्पितृक द्विजको अग्निके विना श्राद्ध न करना चाहिये, और साग्निभी उसकोही लिखाहै कि, जिसकी शाखा मैत्रायणीय होय औरको नहीं; कारण कि, परिशिष्टमें यह लिखा है कि, ये छः (६) जीवत्पितृकको करने यह रत्नावली दिवोदास आदिका कथन है सो अनुचित है, कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयने यह लिखाहै कि, सुमन्तुका कथन पिंडपितृयज्ञमें है, वा संन्यासी पितासे पृथक् विषयमें है और वृद्धि तिथिकी प्राप्ति इत्यादि वाक्यको साधारण होनेसे औरको भी मानने योग्य है, इसी प्रकार निरग्निको नान्दीमुख श्राद्ध पहले लिखा है, ऐसेही पितामहके जीवनमें जानो विशेष तो हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें स्पष्टरूपसे देखलेना चाहिये ॥ अब उसका निर्णय कहते हैं, जिसका पितामह जीवित हो और पिता मृतक होगया हो, यद्यपि मनुने वा पितामह उस श्राद्धको भोजन करै इससे जीते हुये पितामहको भोजन कराना लिखाहै, तथापि प्रत्यक्ष पूजनका पूर्वमें निषेध कह आये हैं इससे पितामहको छोडकर पिता प्रपितामह वृद्धप्रपितामहोंको ही जानना चाहिये कारण कि, मनुका कथन है जिसका पिता

इति मनुना जीवतः पितामहस्य भोजनमुक्तम्. तथापि प्रत्यक्षार्चनस्य पूर्वं निषिद्धत्वात् पितामहं विहाय पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यो देयम् । "पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्" इति मनूक्तेः ॥ अयमेव सर्वसंमतः पक्षः ॥ यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे—"पितामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत् ॥ पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रपितामहः" इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणमाह, तत्तीर्थपितृयज्ञपरम् ॥ वृद्धौ पूर्वोक्तमेव ॥ एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमात्रे मृते परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम् ॥ 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽह हेमाद्रौ विष्णुः—पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात् ॥ यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् ॥ यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां दद्यात् ॥ यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात् ॥ यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहप्रपितामहाय दद्यात् ॥ "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्र-

---

मृतक होगया हो, और पितामह जीवित होय वह पिताका नाम लेकर प्रपितामहका ले, यही पक्ष सबको सम्मत है ॥ जो छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, पितामह जीता होय तो मरे हुये पिताको पिण्डदान करै उसका भी पिता मरगया होय और प्रपितामह जीता होय तो एक पुरुष वा दो पुरुषका पार्वण करै, वह तीर्थपर पितृयज्ञके विषयमें हो, वृद्धिश्राद्धमें तो पूर्वोक्त ही उचित है, इसी प्रकार पहले दोनों मृतक हुये हों और प्रपितामह जीता पिता मृतक होगया होय और अगले दोनों जीते होय तो वृद्धप्रपितामहादिको जानना, कारण कि, कात्यायनका कथन है कि, ब्राह्मण जीते हुएको वा मरे हुएको जलदान करै वा पिताके पितरोंको वह दान करै जो जीवत्पितृक हो यहभी अपर श्रुति है ॥ इस सबको विचार करके हेमाद्रिमें विष्णुका कथन है कि, पिताके जीते जो श्राद्ध करै, वह उनका करै जिनका पिता करता हो, पिता पितामह प्रपितामहके जीते न करै, जिसका पिता मृतक हुआ हो वह पिताके निमित्त पिण्ड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे जिसके पिता प्रपितामह दोनों मृत्युको प्राप्त हुये होय वह पितृके निमित्त पिण्ड रखकर पितामहसे परे दोनोंको दे जिसके पिता पितामह मृत्युको प्राप्त हुए होंय वह उन दोनोंके पिण्डको देकर पितामहको दे, मातामहोंका भी श्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार मंत्रके ऊहसे न्यायके अनुसार करै, और शेषोंका मंत्रसे भिन्न करै. यहां पिताके

वर्जितम्" इति अत्र पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रादिभ्यः यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथात्रापीत्यादि सर्वमतिदेश्यम्॥ एवं मातृजीवनेपीति शूलपाणिकालादर्शौ । तन्न ॥ येभ्य एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसङ्गादिति दिक् ॥ उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक् ॥ यत्त्वत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं पित्रे पिण्डं निधायेति पितुरेकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात ॥ तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञेयम् ॥ 'व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना ' इति वचनात् ॥ दर्शादौ तु पितुरेकोद्दिष्टमेव कार्यम् ॥ ' न जीवन्तमतिददाति इति " श्रुतेः॥ "जीवत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत । पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः " इति यज्ञपार्श्वोक्तः ॥ 'पितामहे जीवति वै पितर्येव समापयेत्' इति हारीतोक्तेश्च॥शिष्टास्तु–"व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता॥ यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः ॥ " इति माधवीये स्कान्दोक्तव्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः ॥ एष विधिनिषेधरूपः ॥ त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह–'त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्' इति तद्दर्शादिविषयम् । नान्दीश्राद्धं तु परेभ्यस्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पतरुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु–

मातामहके जीवते उसके पिता आदिको दे जैसे वहां तीनके जीवते न करै तैसेही यहांभी न करै, यह सब अतिदेश करै इसी प्रकार माताके जीवनमें भी समझना चाहिये यह शूलपाणि कालादर्शमें लिखा है सो उचित नहीं ॥ कारण कि, 'येभ्य एव' इत्यादि यत् शब्द आदि व्यक्तिविशेषके कथन करनेवाले हैं इससे प्राप्तिका प्रसंगही नहीं है, यह संक्षेपसे कहा है उत्तरके आधे श्लोकका पहिले अर्थ होचुका, जो यहां विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, पिताको पिंड देकर, पिताका एकोद्दिष्टविधिसे श्राद्ध करके प्रपितामह आदिका पार्वणश्राद्ध करै, वह व्युत्क्रमसे मृतक हुएके सपिंडी न करनेके पक्षमें है वही सपिंडीके स्थानमें जानना व्युत्क्रमसे जो मरे उनकी सपिंडी न करनी चाहिये, यह कथन है अमावस्या आदिमें तो पिताका एकोद्दिष्टही करै, कारण कि यह श्रुति है कि, जीवतेको न दे, जिसका दादा जीता हो और पिता मरगया हो वह एक पिताकोही दे ऐसा बुद्धिमानोंका कथन है यह यज्ञपार्श्व लिखते हैं ॥ और हारीतने भी कहा है कि पितामह जीता होय तो पितापर ही श्राद्धको पूर्ण कर दे, शिष्ट तो कहते हैं कि, व्युत्क्रमसे मरोंकी सपिण्डी न करै, यदि माता पिता भर्ता जीताहो तो यह विधि नहीं है ऐसा माधवीयमें स्कंदके कथनसे व्युत्क्रमसे मरेको सपिंडीका अभाव पितृव्य आदिके विषयमें लिखा है, यह कहते हैं (एष) इसी विधिसे त्यागरूप लेना, तीन जीते होय तो विष्णुने यह लिखा है कि तीन जीवित हों तो न करै यह अमावस्याके विषयमें है, नान्दीश्राद्ध तो पिछले तीनोंका होताही है यह कल्पतरुने लिखा है ॥ पृथ्वीचन्द्रो-

'दद्यात्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेत्रितयं यदि' इति मनूक्तेः सर्वत्र विकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इत्याहुः ॥ सुदर्शनभाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवत्पित्रादिना व्युत्क्रममृतपित्रादिना च कार्यमेवेत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने क्रतुः—'अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । चन्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोगतः ॥ जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं तथाखिलम् ॥" अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ च ज्ञेयाः ॥ इति निर्णयसिन्धौ जीवत्पितृकादिश्राद्धम् ॥ अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—'बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥' ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः ॥ तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितसंस्कारत्वात्सर्वैः कार्याः एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् ॥ मिताक्षरायां नारदः—"भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक् ॥' बृहस्पतिरपि—"एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् । एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥ अत्र यद्यप्यविशेषश्रवणात् ब्रह्मयज्ञसंध्यादिष्वप्यविभक्तानां पृथङ्निषेधः प्राप्नोति, तथापि द्रव्यसा-

दय तो, तीन जीते होंय तो परले तीनोंको दे इस मनुके वाक्यसे सर्वत्र विकल्प होता है उसके देशाचारसे व्यवस्था जानना ऐसा कहते हैं सुदर्शनभाष्यमें तो लिखा है कि, मासिक श्राद्ध व्युत्क्रमसे मरे पिता आदिका उसको न करना चाहिये, जिसका पिता जीताहो उसे मदनरत्नमें क्रतुका कथन है कि, अष्टका आदि संक्रान्ति मन्वादि, युगादि, चन्द्रसूर्य ग्रहण, व्यतीपात, इनमें अपनी इच्छासे यथायोग्य अर्चन करके जीवत्पिता सम्पूर्ण काम्य श्राद्ध न करै, और विशेष हमारे पिताके रचे जीवत्पितृक निर्णयमें और भट्टकृत त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है वहां विस्तारपूर्वक देखलेना चाहिये ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ जीवत्पितृकश्राद्धम् । अब विभक्त और अविभक्तका निर्णय लिखते हैं । पृथ्वीचन्द्रोदयमें मरीचिने लिखा है कि, यदि पिताके बहुत पुत्र एकत्र रहते हों तो सबका मत जानकर बडे भ्राताकोही करना चाहिये, कारण कि, इकट्ठे द्रव्यसे एकने किया वह सबने किया जानना चाहिये, जेठा भी करै, तोभी उसके फलभागी सबही होते हैं, इससे जो ब्रह्मचर्य आदि नियम कहे हैं वे संस्कारके अंग होनेसे सबको करने चाहिये इसी प्रकार बराबर होनेसे संसृष्टियोंको भी जानना चाहिये, मिताक्षरामें नारदका कथन है कि, अविभक्त भाइयोंका धर्म एकही प्रवृत्त होता है, और विभाग होनेपर उनका धर्मभी भिन्न २ होजाता है ॥ बृहस्पतिने भी कहा है कि, एकपाकसे बसते हुऐ भाइयोंका पितृ देव ब्राह्मण इनका अर्चन एक होता है, और भिन्नोंका तो वही घर २ में होजाता है यहां यद्यपि विशेषके अभावसे ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या आदिकाभी अविभक्तोंको भिन्न २ निषेध पाता है, तोभी, द्रव्यसे, साध्य

ध्यश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव सः । द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् ॥ यानि तु द्रव्यसाध्यानि मन्त्रजपोपवाससंध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवाधिकारः, द्रव्यव्ययाभावेनुमत्यनपेक्षणात् ॥ 'द्रव्येण वा विभक्तेन ' इत्यस्याविषयत्वात् ॥ ' पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्तथा ' इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च ॥ अग्निहोत्रशब्दोग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः । तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् ॥ पितृश्राद्धादिषु तुल्यफलेषु नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः "एकोपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम् । आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः ।" इति वचनात् ॥ धर्मार्थेऽवश्यकर्तव्ये पितृश्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः ॥ केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्पाकत्वे देशान्तरे च दार्शिकाब्दिकयोः पृथक्त्वमाहुः । "भ्रातृणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि । वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक् पृथक्" इति हारीतोक्तेः ॥ "अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि । देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च" इति यमोक्तेश्चेति ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तदयमर्थः ॥ पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृम-

---

श्राद्ध वैश्वदेव आदिमेंही निषेध कहा है, कारण कि, द्रव्यके स्वामी अनेक हैं, इससे एकको व्यय करनेका अधिकार नहीं है, और जो देहसे साध्य मन्त्र, जप, व्रत, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, पारायण आदि नित्य, नैमित्तिक, वा काम्य कर्म हैं उनमें तो भिन्न २ ही अधिकार है, कारण कि इनमें द्रव्यका व्यय नहीं इस कारण उनकी अनुमतिकी अपेक्षासे " द्रव्येण चाविभक्तेन " इस पूर्वोक्त वाक्यका विषयही नहीं है ॥ प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने लिखा है कि, एक पाकवाले द्विज भ्राताओंके भी ब्रह्मयज्ञ अग्निहोत्र देवपूजा, संध्या भिन्न २ होती है अग्निहोत्र शब्दसे अग्निसे साध्य वेद और स्मृतिसे कहे नित्य कर्मका ग्रहण करना, उनमें भी औरकी अनुमतिसेही न्यायकी साम्यतासे अधिकार है, और समान फलवाले पितृश्राद्ध आदि नित्य कर्मोंमें तो अनुमति विना भी एकका अधिकार है, कारण कि ऐसा कथन है कि, एक भी भाई आपत्कालमें कुटुम्बके निमित्त और विशेषकर धर्मके निमित्त स्थावर धनका दान गिरवी और विक्रय करै ॥ विज्ञानेश्वरने "धर्मार्थे " इसका यह अर्थ कहा है कि, अवश्य करने योग्य पिता आदिके श्राद्धके निमित्त कोई तो यह कथन करते हैं कि, अविभक्त भाइयोंके भिन्न २ पाक होनेपर और देशान्तरमें अमावस्याका और वार्षिक श्राद्ध भिन्न २ होते हैं, कारण हारीतका कथन है कि, अविभक्त भाइयोंका पृथक् पाक होय तो वे वैश्वदेव आदि श्राद्ध भिन्न २ करैं, और यमका भी कथन है कि, अविभक्त पुत्र पिताके क्षयाह दिनमें और अमावस्याके देशान्तरमें भिन्न २ श्राद्ध करै उसमें मूल नहीं है इससे यह अर्थ है कि, पञ्चमहायज्ञके मध्यमें देवभूतपितृमनुष्यके यज्ञोंको अन्य भ्राताओंकी अनुमतिसे

नुष्ठयज्ञान्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् ॥ "होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम्" इति व्यासोक्तेश्च ॥ यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेन्नं सिद्ध्येत्तेन तूष्णीमग्नौ किंचित् क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् ॥ यस्य त्वेषामग्रतोन्नं सिद्ध्येत्स नियुक्तमग्नौ कृत्वाग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः । आश्वलायनस्तु पाकपार्थक्ये पृथक्त्वं तदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह—"वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः । एकस्तु चतुरो यज्ञान्कुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकम्॥अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः । कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान्भोजनात्प्राग्दिने दिने" इति ॥ ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव ॥ देवपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथग्वा ॥ दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव ॥ तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्य । भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् ॥ गयाश्राद्धेप्येवम् । "एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषां तु समवेतानां यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां गतिम्" इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः ॥ काम्येपि दानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिकारः ॥ द्रव्यासाध्यजपादौ तां विनापि ॥ अपरार्के पैठीनसिः—विभक्तैस्तु पृथक्

ज्येष्ठही भ्राता करै, और व्यासका भी कथन है कि, होम अग्निदानको त्यागकर अविभक्त और साझी भ्राताओंमें कभी भी पदार्थको एक भाई न भोगे ॥ और जहां जेठने वैश्वदेव न किया हो वहां कनिष्ठ भ्राता अग्निमें मौन हो कुछ अन्नको फेंककर भोजन करै, और जिसका सब भाइयोंकी अग्निसे अन्न सिद्ध हो वह आज्ञासे अग्निमें अन्न डालकर और ब्राह्मणको देकर फिर भोजन करै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयके अविभक्ताधिकारमें गोभिलने कहा है. आश्वलायनने तो यह लिखा है, कि पाक पृथक् होय तो भिन्न २ एक होय तो एकही वैश्वदेव आदि होते हैं, कारण कि, यह कथन है कि, विभक्त भाई यदि एकपाकसे होते होंय तो ब्रह्मयज्ञ आदि चार यज्ञोंको एकही करै, अविभक्त वा विभक्त द्विजाति यदि भिन्न पाकवाले होंय तो भोजनसे प्रथम प्रतिदिन भिन्न २ यज्ञ करैं ॥ ब्रह्मयज्ञ, स्नान, संध्या, तर्पण आदि तो पूर्व कहे हेतुसे भिन्न २ होते हैं, देवपूजा तो ऊपर कहे वाक्योंसे एकत्र वा भिन्न २ करनी अमावस्या ग्रहण श्राद्ध आदि तो एकको और तैसेही तीर्थश्राद्ध आदि भी एकवार सबको करने चाहिये भेदसे भिन्न २ प्राप्त होय तो पृथक् २ करने. गयाश्राद्धमें भी इसी प्रकार जानना हेमाद्रिमें कौर्मका कथन है कि, बहुतसे शीलवान् और गुणवान् पुत्रोंकी इच्छा करनी, यदि इकट्ठे रहते हुये उनमें एक भी गयाको गमन करै, तो उसने पितर तारदिये और वह परमगतिको प्राप्त होता है, काम्यकर्मके दान होम आदिमें भी औरकी अनुमतिसे और जिनमें द्रव्य न लगै ऐसे जप आदिमें तो अनुमतिके बिना भी अधिकार है ॥ अपरार्कमें पैठीनसिका कथन

कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृतं सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥ " सांवत्सरात्पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव । तदाह लघुहारीतः—"सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ " सापिण्डनं मासिकोपलक्षणम् ॥ "अर्वाक्संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात्समेत्य तु । ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक् ॥" इति व्यासोक्तेः ॥ उशनाः " नवश्राद्धं सापिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥" मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं प्राक् ॥ यत्तु वृद्धवसिष्ठः—"मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं तथा । ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा" इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ बह्वृचपरिशिष्टे 'नवश्राद्धं सह दद्युः' ॥ अथ तीर्थश्राद्धनिर्णयः । अथ तीर्थश्राद्धम् ॥ तत्र यद्यप्यस्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुरेव जागर्ति, तथापि किंचिदुच्यते ॥ तत्र यात्रायां—"सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः । प्रायश्चित्ती व्रती तीर्थं पत्नीविरहितोपि वा ॥ यज्ञेष्वनधिकारी वा यश्च वा मन्त्रसाधकः ॥ " इति कौर्मादिवचनात्साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः ॥ भारते—" ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम । न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः ॥ " स्कान्दे विधवाधर्मेषु—" स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं मुहुः । एतत्पुत्राद्यनुमत्यैव ॥

है कि, विभक्त भाई वार्षिक श्राद्ध भिन्न२ करैं, और अविभक्तोंमें तो एकने जो किया वह सबका किया होता है, वर्षदिनसे पहले मासिक तो एकत्र होते हैं, सोई लघुहारीतने लिखाहै कि, सपिंडीकरण पर्यन्त जो षोडश श्राद्ध है, उनको विभक्त भाई भी भिन्न २ करैं, इस वाक्यसे सपिंड मासिकका उपलक्षण कहा है व्यासका कथन है कि, वर्षदिनसे प्रथम सबै श्राद्धोंको बडा भाई एकत्र करै, और सपिंडोंके पीछे सब भाई भिन्न २ करैं ॥ उशनाका कथन है कि, नव श्राद्ध सपिंडी और अन्य षोडश श्राद्धोंको विभक्त भाइयोंमें एकही करै, मघा त्रयोदशीके श्राद्धको तो अविभक्त भ्राताभी भिन्न करैं, यह पहले कथन कर आये जो वृद्धवसिष्ठका कथन है कि, मासिक वृषोत्सर्ग सपिंडी प्रथम वार्षिकको ज्येष्ठ भाईही करै, सो निर्मूल है, कारण कि, बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, नव श्राद्धको एकत्र ही देना चाहिये ॥ अब तीर्थश्राद्धको लिखते हैं । उसमें यद्यपि हमारे पितामहके रचे त्रिस्थलीसेतुमें पूर्ण निर्णय है तथापि कुछ कहते हैं, वहां इन कूर्मपुराणोंके वाक्यसे अग्नि और पत्नीसहितकाही अधिकार है कि, अग्नि और पत्नीसहित इन्द्रियोंको रोककर तीर्थयात्रा करै, जो स्त्रीके विना तीर्थको गमन करता है, वहभी प्रायश्चित्तका भागी है भारतमें कहा है कि, हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षत्री वा वैश्य वा शूद्र तीर्थमें स्नान करनेसे ये महात्मा निन्दित योनिमें जन्म नहीं लेते स्कन्दपुराणके विधवाधर्ममें कहा है कि, स्नान दान तीर्थयात्रा विष्णुके नामका जप वारंवार

सधवायाः पत्या सहैवेति प्रागुक्तम् ॥ काशीखण्डे–' मातुः पितुः क्षेप्तुमनास्त-थास्थि सुतस्तु कुर्यात्खलु तीर्थयात्राम् ' तद्विधिः स्कान्दे–"तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे । गणेशं च पितॄन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च ॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः । आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफल-भाग्भवेत् ॥" उपवासात् प्राग् मुण्डनं च कार्यम् ॥ "प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः । कचानां वपनं कुर्याद्यथा न विकचो भवेत् ॥" इति वि-ष्णूक्तेः ॥ प्रायश्चित्तार्थयात्रायां गयायां चैतदित्येके ॥ केचित्तु हेमाद्रौ भारते– "केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न च शस्यते । अतो न कार्यं वपनं गयाश्राद्धार्थिना सदा ॥ ये भारतेऽस्मिन् पितृकर्मतत्पराः संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः । ऋण-क्षयार्थं पितृतीर्थमागतास्तेषामृणं संक्षयमेष्यति ध्रुवम् ॥" इति निषेधात् ॥ गयायात्राङ्गं वपनं कार्यमित्याहुः ॥ वस्तुतस्तु–गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः । न तु यात्राङ्गस्य 'श्राद्धार्थिना' इत्युक्तेः ॥ ' विशालां विरजां गयाम् ' इत्यने-नकवाक्यत्वाच्च ॥ श्राद्धं च षण्णवद्वादशदैवतं वा घृतेन कार्यम् ॥ ' गच्छे-द्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा ' इति विष्णुपुराणात् ॥ यात्राङ्गश्राद्धे-

---

करे, यह भी पुत्रकी अनुमतिसे जानना चाहिये, और सुहागिनी तो पतिके संगही गमन करे ॥ काशीखण्डमें कहा है कि, जब पुत्रके मनमें माता पिताके अस्थि डालनेकी अभिलाषा हो तब तीर्थयात्रा करे उसकी विधि स्कंदपुराणमें यह कही है कि, तीर्थयात्राको गमन करता हुआ मनुष्य व्रत करे गणेश पितर ब्राह्मण साधु इनकी यथाशक्तिसे पूजा करके पारणाके अनन्तर नियमोंको धारण कर;फिर आकर पितरोंकी अर्चा करनेसे यथोक्तफलभागी होता है व्रतमें प्रथम मुण्डनभी करना चाहिये, कारण कि, विष्णुका कथन है कि प्रयाग-तीर्थकी यात्रा पितामाताका मरण इनमें केशोंका मुण्डन करावे, वृथा केशोंसहित न हो किन्हींका कथन है कि; प्रायश्चित्तके निमित्त यात्रामें और:गयामेंभी मुण्डन करावे ॥ कोई तो हेमाद्रिमें महाभारतका यह वाक्य कहते हैं कि, बाल नख श्मश्रुका मुण्डन. अच्छा नहीं, इसमें गयाश्राद्धकी इच्छावाले मुंडन न करावें, जो इस भारतखण्डमें पितृकर्ममें तत्पर हैं, अत्यन्त भक्तिसे वे केशोंको धारकर पितरोंके ऋण दूर करनेके निमित्त पितृतीर्थ (गया) में आये हैं उनका ऋण निश्चयसे नष्ट होगा इन निषेधोंसे गया यात्राका अंग मुंडन न करना चाहिये सिद्धान्त तो यह है कि, गयाधिकारके अंगका यह निषेध है, यात्राके अंग मुंडनका नहीं है, कारण कि, श्लोकमें 'श्राद्धार्थिना' लिखा है और इसके संग एकवाक्य-ताभी है, विशाला विरजा और गया इनमें मुण्डन करै, छः नौ द्वादश देवताक श्राद्धभी घीसे करना चाहिये, कारण कि, विष्णुपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य देशान्तरको गमन

श्राद्धोक्तेश्च ॥ श्राद्धं च पारणादिन एव ॥ " उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च । गणेशं ब्राह्मणांस्तथा भुक्त्वा प्रस्थितवान् सुधीः ॥ " इति स्कान्दाल्लिङ्गात् ॥ गौडनिबन्धे गौतमः–" तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेऽपि च । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिःसमन्वितम् ॥ " वृद्धिपदं तद्धर्मार्थं श्राद्धोत्तरं यात्रासंकल्प इति भट्टाः । वायवीये–"उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं गत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ॥ " घृतस्य भोजनं, तच्च क्रोशमध्ये, श्राद्धोत्तरं क्रोशगमननिषेधात् ॥ "ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः । ' गयायामेव तन्नान्यत्रेति केचित् ॥ हेमाद्रिस्तु–गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानम् । तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिन इत्याहुः ॥ प्रभासखण्डे-" यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः । स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥ " यात्रामध्ये आशौचे रजसि वा शुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत् ॥ मार्गवैषम्ये त्वदोषः ॥ यात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादि कार्यमेव वाणिज्याद्यर्थं गतेन तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति प्रयागसेतौ भट्टाः ॥ वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम् ॥ 'अर्धं तीर्थफलं

करै, वह घीसे श्राद्ध करै, इससे भी यात्राका अंग वृद्धि लिखा है, और श्राद्धभी पारणाके दिन करना चाहिये। कारण कि, स्कन्दपुराणका प्रमाण है कि, एकरात्र उपवास और प्रातः कालको श्राद्ध करके गणेश और ब्राह्मणको नमस्कार कर भोजनके अनन्तर बुद्धिमान् मनुष्य गमन करै ॥ गौडनिबन्धमें गौतमका कथन है कि, तीर्थयात्राके प्रारम्भ और तीर्थयात्रासे लौटनेमें बहुत घीसे वृद्धिश्राद्ध करै, वृद्धिपद वृद्धिके धर्मोंके निमित्त है. भट्ट तो यह लिखते हैं कि, श्राद्धके अनन्तर यात्राका संकल्प करै. वायवीयपुराणमें लिखा है कि, गया जानेको उद्यत मनुष्य विधिसे श्राद्ध करके और कर्पटके वेषको धारण कर ग्रामकी परिक्रमा करै. फिर ग्रामान्तरमें गमन कर श्राद्धके शेष घृतका भोजन करै, वह भोजन भी क्रोशके मध्यमें करै :कारण कि, श्राद्धके अनन्तर क्रोशसे उत्तर (अधिक) जानेका निषेध है, फिर प्रतिग्रहको छोडकर प्रतिदिन गमन करै, गयामें ही सब नियम हैं और स्थानमें नहीं यह कोई लिखते हैं ॥ हेमाद्रि तो यह लिखते हैं कि, गयामें तो श्राद्धके दिन ही गमन करै अन्य तीर्थमें तो श्राद्धसे अगले दिन. प्रभासखण्डमें कहा है कि, हे राजन् ! जो मनुष्य अपने द्रव्य और सवारीसे दूसरेको तीर्थयात्रा कराता है उसको चौगुना पुण्य होता है, यात्राके मध्यमें आशौच वा रजोधर्म होनेपर शुद्धिपर्य्यन्त ठहरकर उसके पीछे गमन करै. यदि विषम मार्ग हो तो दोष नहीं यात्राके मध्यमें कोई तीर्थ आजाय तो वहां भी श्राद्ध आदि करै, व्यापार आदिके निमित्त गयामें गया होय तो मुण्डन व्रत आदि न करने यह प्रयागसेतुमें भट्टोंने लिखाहै, सिद्धान्तसे तो वहां भी मुण्डन व्रत आदि करने, कारण कि,

गच्छति ' इति ब्रह्मोक्तेः ॥ तस्य यः प्रसङ्गेन स्कान्दे-" द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरेत्तीर्थफलस्य च । वाणिज्यं त्रींस्तथाभागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः ॥ " यानं धर्मचतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च ' इत्युत्तरार्धपाठान्तरम् ॥ अत्र नदीषु विशेषः-"मार्गेन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः । अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥ " यत्तु-"पितॄन्त्संतर्पयित्वा तु नदीस्तरति यो नरः । तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिताः " इति तत्सरस्वतीपरम् ॥ शंखः-"तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् । स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं नतु ॥ " स एष-'न स्रवन्तीमतिक्रामेत् ॥ ' अनवासिच्य तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखण्डे-"यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः । लुठित्वा लोठनी तत्र कृत्वा कार्पटिकाकृतिम् ॥ " कृत्वेति गृहान्निर्गमसमये करणे इदम् ॥ "प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि । अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः ॥ " मन्त्रश्च प्रभासखण्डे-"नमोस्तु देवदेवाय शितिकण्ठाय दंडिने । रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी । सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी ॥" इति मन्त्रवत्स्नानं च वपनोत्तरं कार्यम् ॥ " पूर्वमावाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् ॥ ततः स्नानादिकं कुर्यात्

ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जो प्रसंगसे गमन करता है: उसको भी तीर्थका आधा पुण्य प्राप्त होता है ॥ स्कंदपुराणका कथन है कि, दूसरीवार भोजन तीर्थफलके तीसरे भागको, व्यापार और स्त्री एक २ भागको, और प्रतिग्रह सम्पूर्ण फलको नष्ट करतेहैं, यहां नदीमें यह विशेष लिखाहै कि, यदि मार्गमें नदी आजाय: तो स्नान आदिको पार उतरकर करना चाहिये, और सरस्वतीके तो इधरपारही करै, यह मार्गके गमनकी विधि है. जो यह कथन है कि, जो मनुष्य पितरोंको तृप्त करके नदीको पार तरताहै तो अत्यन्त दुःखित हुये पितर उससे रक्तपानकी इच्छा करतेहैं, यह वाक्य सरस्वतीके विषयमें है, शंखका कथनहै कि, प्रसंगसे तीर्थमें जाकर जो तीर्थस्नान करता है वह स्नानके फलको प्राप्त होता है, तीर्थयात्राके फलको प्राप्त नहीं होता, स्नान किये बिना नदीका अवलंबन न करै ॥ तीर्थपर प्राप्त होनेपर तो प्रभासखंडमें यह कहाहै कि, यानोंको त्यागकर मनुष्य चरणोंसे चले, रेतमें लोटकर कर्पूरके वेशको धारण करै, यदि घरसे चलते समय (सवारी) न होतो प्रथम ॐकारसे तीर्थके शुद्धजलको हिलावै, फिर हाथको जलसे विलोडकर और मंत्रको पढकर यथायोग्य स्नान करै, मन्त्र तो प्रभासखंडमें यह लिखाहै कि, देवोंके देव शितिकंठ दंडधारी रुद्र धनुष और चक्रको हाथमें लिये वेधा (ब्रह्मा) रूप आपको प्रणाम है, सरस्वती और वेदोंकी माता सावित्री इस तीर्थमें पापोंके :नाश करनेवाली प्राप्त हो मंत्रसहित स्नान मुण्डनके अन्तमें करनी चाहिये कारण कि, यह कथन है कि तीर्थमें प्रथम आवाहन फिरमुण्डन और उसके पीछे स्नान

पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् " इत्युक्तेः ॥ यत्तु–' गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम् ' इति तन्मुसलस्नानपरम् ॥ काशीखण्डे–' तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ॥ ' उपवासे तत्रैवोक्तम् ॥ " यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे । उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेह्नि श्राद्धदो भवेत् ॥ " अत्र–'उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः' इति प्राप्तिदिनेष्पवासोक्तेर्विकल्पः । मुण्डने तु स्कान्ददेवलौ–"मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम् ॥ " विरजं लोणारप्रसिद्धम् । महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ॥ अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे–"ऊर्ध्वमब्दाद्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि । मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत् । तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज " इति वा पाठः ॥ " प्रयागे प्रतियात्रं तु योजनत्रय इष्यते ॥ क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते ॥ " तथा च बृहस्पतिः -"क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेथ तीर्थके ॥ " अपरार्के स्कान्दे–"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् " ॥ इदं प्रयागे सधवानामपि समूलं भवतीति भट्टाः ॥ युक्तं तु 'सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदंगुलिद्वयम् । एवमेव हि नारीणां शस्यते वपन-

आदि कर फिर श्राद्ध करै,जो कि, यह कथन है कि, जाकर स्नान करै, फिर मुण्डन करै यह वाक्य मुशलस्नानके निमित्त है ॥ तीर्थका उपवास काशीखंडमें कहा है कि, तीर्थमें जाकर स्नान और मुण्डन करना व्रतभी वहीं कहाहै, जिस दिन तीर्थकी प्राप्ति हो उससे प्रथम दिन व्रत करना, जिस दिन तीर्थ प्राप्त हो उस दिन श्राद्ध करै, यहां: उस वाक्यसे विकल्प कहा है, सुव्रत मनुष्य उसी प्राप्तिके दिन व्रत करै, मुण्डनमें तो स्कन्द और देवलका कथन है कि, मुण्डन व्रत सब तीर्थोंकी विधि है, कुरुक्षेत्र विशाला, विरजा (लोंडार) गया इनको त्यागकर, सर्वतीर्थ शब्दसे प्रसिद्ध बडे २ तीर्थ ग्रहण करने ॥ यहां विशेष स्मृत्यंतरमें कहाहै कि, दो महीने कम वर्षदिनसे प्रथम फिर तीर्थको. जाय तो मुण्डन. उपवास यत्नसे करै. अथवा यह लिखाहै कि, हे ब्राह्मण ! प्रायश्चित्तके विना तो वे दोनों (मुण्डन और उपवास) श्रेष्ठ नहीं कहेहैं प्रयागमें तो यात्रा २ में बारह कोशपर्यन्त यह मुण्डन कहाहै क्षौर कराकर विधिसे त्रिवेणीमें स्नान करे यह बृहस्पति कहतेहैं कि, निषेध होनेपर भी क्षौर और नैमित्तिक कर्म करना, पित्रादिकी मृत्युदीक्षा प्रायश्चित्त और तीर्थमें मुण्डन करै, अपरार्कमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, उत्तरको वा पूर्वको मुख करके बुद्धिमान् मनुष्य मुण्डन करावै, और केश श्मश्रु नख ये पहले उत्तरकेही मुँडवावै यह मुण्डन प्रयागमें सुहागिनोंका भी मूलसे होता है, यह भट्ट लिखते हैं ॥ यथार्थ तो यह है कि, सब केशोंको उभार कर ऊपरसे दो २ अंगुल छेदन करै, इसी प्रकार स्त्रियोंका मुण्डन कराना उचित है, वह मुण्डन उनका न करना

क्रिया " इति ॥ तच्चाकृतचूडानां न कार्यमिति केचित् ॥ तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात् पित्रादिमृतवत् कार्यमेवेति ॥ तदपि प्रयागे नित्यम् ॥ नान्यत्र ॥ तच्च यतिभिस्तीर्थेपि ऋतुसंधिष्वेव कार्यं नान्यदा ॥ 'कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत्' इति स्मृतेः ॥ इदं जीवत्पितृकेणापि तीर्थे कार्यम् ॥ नच 'मुण्डनं पिण्डदानं च' इतिदक्षवचनेन निषेधः ॥ "विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृतिं विना । यो वापयति लोमानि स पुत्रः पितृघातकः " इति स्मृत्या तत्संकोचात् ॥ तदपि प्रयागे प्रतियात्रम् । अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः॥ततः स्नानम् ॥ परार्थे तु मार्कण्डेयपुराणे-"मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् । यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः ॥ " पैठीनसिः-"प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् ॥ मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्टभागफलं लभेत् ॥ " ततस्तर्पणश्राद्धे पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्मदेवीपुराणकाशीखण्डादिषु ॥ " अकालेप्यथ वा काले तीर्थश्राद्धं च तर्पणम् । अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥" मात्स्ये-'पितॄणां चैव तर्पणम्' इति तुर्यपादः ॥ तत्र देवता महालये प्रागुक्ताः॥ शंखदेवलौ-"तीर्थद्रव्योपपत्तौ च न कालमवधारयेत् । पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य

चाहिये जिनका चौल संस्कार न हुआ होय यह किन्हींका मत है. सिद्धान्त तो यह है कि, निमित्तसे मुण्डनके होनेसे पिता आदेके मरनेके तुल्य करना उचित है, वह भी प्रयागमें ही नित्य है और स्थानमें नहीं और वह भी यति तीर्थमें भी ऋतु ऋतुकी संधिमें ही करै, अन्य कालमें नहीं, कारण कि, यह स्मृति है कि, बगल उपस्थ शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधिमें मुण्डवावे, इसको जीवत्पितृक भी तीर्थमें करै. यदि कोई शंका करै कि, मुण्डन पिंडदान न करै, इस दक्षवाक्यसे निषेध है सो उचित नहीं, कारण कि, इस स्मृतिसे उस उस स्मृतिका संकोच कहा है कि, तीर्थ यज्ञ माता पिताका मरण इनको त्यागकर जो मुण्डन करता है वह पुत्र पितृघातक है, वह भी प्रयागमें यात्रा २ में और दूसरे तीर्थमें प्रथम यात्रामें करना, यह श्रेष्ठोंका सम्मत है, फिर स्नान करै ॥ दूसरेके निमित्त स्नानमें तो मार्कण्डेयपुराणमें यह कहा है कि, माता पिता स्त्री भाई मित्र गुरु इनमें जिसके निमित्त स्नान करै वह आठवें अंशका भागी होता है. पैठीनसिका कथन है कि, कुशाकी मूर्त्ति जिसकी बनाकर तीर्थमें अपने संग स्नान करावे उसको आठवां भाग प्राप्त होता है, फिर तर्पण और श्राद्ध करै. पृथ्वीचन्द्रोदय और ब्रह्मदेवीपुराण काशीखंड आदिमें कहा है कि, समय हो या न हो तीर्थमें श्राद्ध और तर्पण अवश्य करै, और विलम्ब और विघ्न न करै. मत्स्यपुराणका कथन है कि, पितरोंका तर्पण करै, यह चौथापाद पूर्वश्लोकका है उसके देवता महालयनिर्णयमें पहले कथन कर आये हैं. शंख और देवलका कथन है कि, तीर्थ और द्रव्यकी प्राप्ति और सुपात्र ब्राह्मणकी प्राप्ति होनेपर सम-

द्धः श्राद्धं समाचरेत् ॥" हारीतः-"दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो वोपोषितोपि वा । न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥" भारते-"भुक्तो वाप्यथ वाभुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा । पर्वकालेऽथ वा काले शुचिर्वाप्यथ वाशुचिः ॥ यदैव दृश्यते तत्र नदी च त्रिपथा प्रिय ॥ प्रमाणदर्शनं तस्मान्न कालस्तत्र कारणम् ॥" आशौचेपि कार्यम् "विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि ॥ न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत्" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ तदानीमकरणे त्वाशौचान्ते एव कुर्यात् ॥ प्रभासखण्डे-"न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् । यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥" मलमासेपि कार्यम् । "नित्ये नैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलिम्लुचे । तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च" इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥ एतच्चाशौचे प्रकृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावामहेमश्राद्धविषयं ग्रहणादिवत् ॥ नतु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या ॥ मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चन्द्रिकायां देवीपुराणे-'श्राद्धं च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥' हेमाद्रौ-अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्ज-

---

यका विचार न करे शीघ्रही श्राद्ध कर दे ॥ हारीतका. कथन है कि, नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको प्राप्त होकर भोजनके अनन्तर व्रतमें दिन वा रातमें श्राद्धका नियम नहीं है. भारतमें लिखा है कि, भुक्त वा अभुक्त दिन या रात पर्वकालमें वा अकालमें पवित्रतामें वा अपवित्रतामें अर्थात् समय हो वा न हो शुद्ध हो, वा अशुद्ध हो, जब गंगाजीका: दर्शन हो उसी समय प्रणाम करके कर्म करे, उसमें, काल अनिमित्त नहीं है. अशौचमें भी तीर्थश्राद्ध करना ; चाहिये, क्योंकि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, विवाह, कठिनमार्ग, यात्रा, तीर्थकर्म इनमें सूतक नहीं है इससे सब कर्म काल करै, उस :समय न करै तो अशौचके अन्तमें करै ॥ प्रभासखण्डमें कहा है कि, वार नक्षत्र उसमें कारण नहीं है जब तीर्थका दर्शन हो तभी सहस्र पर्व हैं, मलमासमें करै, कारण कि, बृहस्पतिकी स्मृति है, मलमासमें नित्य और नैमित्तिक कर्म तीर्थश्राद्ध गजच्छाया प्रेतश्राद्ध इन सबको करनेका दोष नहींहै, यह वाक्य उस मनुष्यके निमित्त आमश्राद्ध और सुवर्ण श्राद्धके विषयमें ग्रहणके तुल्य है, जिसने अशौचमें भोजन करलिया हो और उसको रात्रिमें स्नान श्राद्ध आदि कर्म करने हों और अकस्मात् तीर्थपर गया हो और जानकर तो अशौचमें तीर्थआदिमें कदाचित् न जाय, मलमासमें तो दोनों मासोंमें तीर्थश्राद्ध करना चाहिये । चन्द्रिकामें देवीपुराणका कथन है कि, वहां अर्घ और आवाहनको त्यागकर तीर्थश्राद्ध करना ॥ हेमाद्रिमें कहा है कि, अर्घ आवाहन ब्राह्मणोंके अन्नपर अंगुष्ठका लगाना तृप्तिका पूछना

वेत् ॥ " भविष्ये-"आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र; तेषां न विद्यते ।. आवाहनं न तीर्थे स्यान्नार्घ्यदानं तथा भवेत्॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्घ्याः संति वै यतः॥ अग्नौकरणं च नेति रत्नावल्याम् ॥ अत्र षड्दैवते श्राद्धेपि मात्रादीनां पिण्डमात्रं ज्ञेयम् । "हविःशेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः । क्रमशः पितृपत्नीनां पिण्ड-निर्वपणं चरेत् ॥" इति तीर्थोपक्रमे देवलोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ततः सामान्यपिण्डं दद्यात् ॥ "ततः पिण्डमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च । ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत्" इति तेनैवोक्तेः ॥ पाद्मे-"तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः । आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥" पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च "सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा ।" पिण्डानां तीर्थप्रक्षेप एव नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् ॥ एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यम् । न सपुत्रयेत्युक्तं प्राक् 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन' इति स्मृतेश्च । अनुपनीतेनापि कार्यम् । 'एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु' इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः ॥ एतच्च जीवत्पितृकेणापि कार्यमित्युक्तं प्राक् । " न कुर्यात्सूतके भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम् । त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमा-

---

विकिर इनको तीर्थश्राद्धमें त्याग दे, भविष्यका वाक्य है कि, आवाहन और विसर्जन न करै अर्घ न दे, क्योंकि तीर्थमें बुलायेहुये पितरोंको अर्घ दियाहुआही है. रत्नावलीमें कहा है कि, अग्नौकरण भी न करै यहां श्राद्धके छः देवता होनेपरभी माताआदिको पिंडमात्र दे कारण कि, तीर्थके प्रकरणमें देवलका यह कथन है कि, हविका शेष एक २ मुट्ठी लेकर आदरसे पिताआदिकी पत्नियोंको क्रमसे पिंड दे, यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं, फिर सामान्यपिंड दे, कारण कि, देवलने ही लिखाहै कि, फिर संस्कृतहविके पिंडको लेकर अपने सम्पूर्ण जातिसमूहके निमित्त एक सामान्य पिंड दे पद्मपुराणका कथन है कि, विशेषकर तीर्थश्राद्ध पक्वान्नसे करै, अथवा आमान्न सुवर्ण कन्द मूल फलोंसे करै, देवीपुराणमें पिण्डके द्रव्य कथन किये हैं, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सत्तू मोहनभोग खीरखल गुडसे पिंड करने, पिंडोंको तीर्थमें डाल दे, और कोई युक्ति नहीं है यह प्रथम कथन करचुके हैं, इसको उस विधवाको भी करना चाहिये, जिसके पुत्र न हो और सुहागिनीको न करना चाहिये, यह प्रथम कहआये हैं यह स्मृति भी है कि, पुत्रवाली स्त्री पतिका श्राद्ध कभी न करै यज्ञोपवीतहीन भी इसको करै, कारण कि, पद्मपुराणमें तीर्थश्राद्धके प्रकरणमें लिखाहै कि, अनुपनीत भी सब पर्वोंमें तीर्थश्राद्ध करै, इसको जीवत्पितावाला भी करै, यह पहले कथन कर आये हैं, संन्यासीको तो इसे न करना चाहिये, कारण कि, यह स्मृति है कि, संन्यासी सूतक, श्राद्ध, पिंड जलदान और संन्यासके योगसे त्यागे गृहस्थधर्म, व्रत, गोत्र ऋण, धन, पिता माताका कुल यह सब वह त्याग कर-

धकुलं धनम् ॥ " इति स्मृतेः ॥ गयायां तूक्तं वायवीये-" दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः । दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते । गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वटे तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते ॥ " कृत्यरत्ने प्रभासखण्डे-"तीर्थे चेत् प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः॥ दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन्न हीयते" इति ॥ विशेषान्तराणि भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ ज्ञेयानीति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

अशौचप्रकरणम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथाशौचप्रकरणं प्रारभ्यते ॥ नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णस्य सूनुना ॥ कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेऽधुना ॥ १ ॥ मरीचिः-"आचतुर्थात् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम् । पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम् ॥"जननाशौचनिर्णयः । अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां ज्ञेयम् । अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुवादः ॥ रजस्वलात्वेनैव तत्सिद्धेः । यद्यप्यनेन

चुका इससे इनको न करै ॥ गयामें संन्यासी जाए तो वायुपुराणमें यह कहा है कि, गयामें जाकर संन्यासी दण्डको दर्शन करादे, पिंडदान कर विष्णुपदमें दंडको छूकर पितरोंके संग मुक्त होता है. गयामें मुण्ड पृष्ठ कूप यूप वटमें दण्डको दिखाता हुआ संन्यासी पितरोंके संग मुक्त होता है, कृत्यरत्नके प्रभासखण्डमें भी कहा है कि, जीविका सहित ब्राह्मण तीर्थमें प्रतिग्रह लेय तो उसमेंसे दशांश दान करनेसे प्रायश्चित्तका भागी नहीं होता है, इससे अधिक देखना हो तो भट्टरचित त्रिस्थलीसेतुमें देखलेना यहां थोडासा लिखा है । इति तीर्थश्राद्धविधिः । इति श्रीमिश्रोपाह्वश्रुतिपण्डितसुखानन्दपुत्रपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतायां निर्णयसिंधुभाषाटीकायां तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥

अब अशौचनिर्णय लिखते हैं कि, नारायणभट्टके पुत्र श्रीमान् रामकृष्ण, उनके पुत्र कमलाकर भट्ट अब अशौचका निर्णय लिखते हैं ॥ मरीचिने कहा है कि, चार महीनेतक गर्भके नाशको स्राव और पांचवें छठे महीनेतक गर्भपात और इससे आगे तो प्रसूति कहाती है इसमें भी दशदिनका सूतक होता है, स्रावमें माताको तीनरात सूतक लगता है और सपिंडोंको नहीं लगता, पातमें माताको उतने दिनतक अशौच होता है, जितने महीनेका गर्भपात हुआ हो, सपिण्डोंको तो तीन दिन अशौच लगता है ॥ इन सबका मूल मिताक्षरादिमें देखलेना यहां तीन रातका अशौच अनुवाद है, कारण कि, रजस्वलापनेसे ही तीन दिनका अशौच सिद्ध था, यद्यपि इस रीतिसे चौथे महीनेमेंभी तीन रातका अनुवाद

चतुर्थमासेपि त्रिरात्रं प्राप्नोति तथापि-" षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते" इत्यादिपुराणात्। 'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति' इति मनूक्तेः॥ 'गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्र्यः' इति मरीच्युक्तेश्चतूरात्रं ज्ञेयम्॥ अचिरे त्रिमासमध्ये॥ उत्तमे ब्राह्मणे॥ अत्र सपिण्डानां स्नानम्॥ 'सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति' इति तत्रैवोक्तेः॥ एतदाचतुर्थमासात्पाते त्रिदिनस्योक्तेः॥ अकारणायाः शुद्धेरसंभवात्सद्यःपदं स्नानपरम्॥ एवमग्रेपि॥ 'गर्भस्रावे स्नानमात्रं पुरुषस्य' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः॥ पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणम्॥ पूर्वोक्तवचनात्॥ आचतुर्थमासं सपिण्डानां न स्नानं किंतु पुंस एव॥ पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम्॥ गुणवतस्तु-"अजाते दन्ते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा। सपिण्डानां तु सर्वेषामेकरात्रमशौचकम्" इति यमोक्तेरेकाह इति मदनपारिजातः॥ सप्तममासादि दशाहम्॥ एतत्सर्ववर्णविषयम्॥ 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रोक्तेः॥ पराशरः-"जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो

पाया जाता है, तथापि छः महीनेके मध्यमें गर्भका स्राव हो जाय तो महीनोंके तुल्य दिनोंसे स्त्रियोंकी शुद्धि इष्ट है, यह आदिपुराणसे जाना जाता है और महीनोंके समान रात्रियोंसे गर्भस्रावमें पवित्रता होती है यह मनुने कहा है, और गर्भस्रावमें महीनेके अनुसार अशौच लगता है, जो गर्भ थोडे समयका हो ब्राह्मणके यहां तो तीन दिनमें शुद्धि होती है, इस मरीचिके वाक्यसे चार रात्रका अशौच जानना, यहां सपिंड स्नान करै, कारण कि, उसी स्थलमें कहा है कि, गर्भके पातमें सपिंडोंको तुरत शौच होता है, यह भी चौथे महीनेतक लेना कारण कि, पातमें तीन दिनका अशौच सपिंडोंको लिख आये हैं और विनाकारण पवित्रता नहीं होती, और सद्यःपद स्नानका कथन करनेवाला है, इसी प्रकार आगे भी जानना, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने लिखा है कि, गर्भस्रावमें पुरुषको स्नानमात्र करना उचित है, यहां पुरुषपद पूर्वोक्त कथनोंसे सपिंडोंको उपलक्षण करता है, चार महीनेतक सपिंडोंको स्नान नहीं किन्तु पतिकोही करना कहा है, पातमें तीन दिनका अशौच निर्गुणोंको लिखा है, गुणवानोंको तो इस यमके कथनसे एक दिनका अशौच है, मदनपारिजातमें कहा है कि, ऐसा बालक मृतक होजाय कि, जिसके दांत न निकले हों और गर्भसे बालकका पात हो जाय तो सब सपिंडोंको एकदिनका अशौच लगता है, और सातवें महीने आदिमें तो दश-दिनका अशौच लगता है, ये सब वर्णोंके विषयमें है, कारण कि, व्याघ्रने लिखा है कि, अवस्थाका और अतिक्रांत अशौच सबको समान लगता है॥ पराशरने लिखा है कि, जन्मसूतकमें ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है,

मासेन शुद्धयति॥ " संवर्तः-"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । माता शुद्धयेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ " पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ न पितुः स्नानमिति हारलतायाम् ॥ तन्न । पुत्रपदस्य 'पौत्री मातामहस्तेन' इति कन्यायामपि प्रयोगात् ॥ यच्च तत्रैवोक्तम्-" सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः । कृत्वा सचैलं स्नानं तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्" इत्यादिपुराणान्मुखदर्शनोत्तरमेव पितुः स्नानमिति ॥ तन्न ॥ विदेशे मुखदर्शनाव्यस्पृश्यतापत्तेः ॥ मुखदर्शनोत्तरं पुनः स्नानार्थमिदमिति स्मार्तगौडाः ॥ तन्न ॥ मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात् । इदं सर्ववर्णसमम्॥"सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेन शुद्धयति । ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं विधिः" इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः ॥ यत्तु ब्राह्मे-"ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः ॥ गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभिरेव च " इति ॥ प्रयोगपारिजाते पारस्करः-"द्विजातेः सूतिका या स्यात्सा दशाहेन शुद्धयति ' त्रयोदशेऽह्नि संप्राप्ते शूद्रा शुद्धयत्यसंशयः" इति तदस्पृश्यत्वपरम् ॥ अङ्गिराः-"सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति

संवर्तने कहा है कि पुत्रके जन्ममें पिताको सवस्त्र स्नान कथन किया है, माता दश दिनमें शुद्ध होती है और पिताके स्नान कर लेनेसे छूनेका दोष नहीं लगता । इस वाक्यसे पुत्रीके जन्ममें पिताको स्नान नहीं करना, यह हारलतामें कहा है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, पुत्रपदका कन्यामें भी प्रयोग आया है कि, नाना पुत्रीके पुत्रसे पौत्रवाला होता है, जो उसी स्थलमें यह लिखा है कि, उत्पन्न हुये पुत्रके सूतकमें मुखको देखकर और सवस्त्र स्नान करके उसी समयमें शुद्ध होता है, इस आदिपुराणके कथनसे पुत्रके मुखको अवलोकन करकेही पिता स्नान करै, सो उचित नहीं कारण कि, विदेशमें पुत्रका मुख दर्शन नहीं करसकता तो कदाचित् स्नानके योग्य नहीं होगा. गौड तो यह लिखते हैं कि, मुखदर्शनके उपरांत फिर स्नान करनेके निमित्त यह कथन है, सोभी सत्य नहीं कारण कि, मूलकी एकतासे पुत्रके ज्ञानमात्रका निषेध करनेवाला यह वाक्य है यह सब वर्णोंके निमित्त तुल्य है, कारण कि, हारलतामें प्रचेताका वाक्य लिखा है कि, सूतिका सब वर्णोंमें दश दिनमें पवित्र होती है, ऋतुमें भी पृथक् २ अशौच नहीं होता, यह सब वर्णोंकी विधि है ॥ जो ब्रह्मपुराणका कथन है कि, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या ये प्रसूता दशदिनमें और शूद्रा तेरह दिनमें पवित्र होती है, प्रयोगपारिजातमें पारस्करका वाक्य लिखा है कि, द्विजातियोंकी सूतिका दशदिनमें और शूद्राकी सूतिकाकी तेरह दिनमें शुद्धि होती है, ये वाक्य असत् शूद्राके विषयमें जानना. अंगिराने लिखा है कि, सूतकमें सूतिकासे भिन्नके छूनेका निषेध नहीं है और सूतिकाके छूनेमें स्नान करना कहा है, सूतकमें संसर्ग न करै तो पुरुषको दोष

रजस्तत्राशुचिं ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते॥" संसर्गो मैथुनम् ॥ स्पर्श इत्यन्ते॥मातुरेव सूतकम् । तां स्पृशतश्चेति हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति ॥ तन्न ॥ 'संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते' इति स्नानमात्रोक्तेः सौमन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् ॥ एवकारो बालस्पृश्यत्वार्थः ॥ माधवस्तु—'यस्तैः सह सपिण्डोपि प्रकुर्याच्छयनाशनम् । बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति " इति बृहस्पतिस्मृतेः शयनासनादिरूपं संसर्गमाह ॥ पराशरः—"यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमृच्छति । सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥ " पितृवत्सापत्नमातुः प्राक्स्नानादस्पृश्यत्वम् । सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचम् 'अन्याश्च मातरस्तद्वत्तद्गृहं न व्रजन्ति च ' इति ब्राह्मोक्तेरिति शुद्धितत्त्वादयः ॥ तन्न ॥ तद्गृहं गत्वा सूतिकां यदि न स्पृशति, तदा स्पृश्याः अन्यथा नेति । तस्यार्थः ॥ कर्मानधिकारमाह पैठीनसिः—'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम् ' ॥ इदमाशौचोत्तरम् ॥ अन्यथा शूद्रायाः सपिण्डानामाशौचे तदभावः स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च ॥ एतच्च सोमयागादि श्रौतभिन्नपरम् ॥ ' प्रजातायाश्च दशरात्रादूर्ध्वं स्नानात् ' इति कात्यायनोक्तेः ॥ व्यासः—"प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रज-

---

नहीं लगता, सूतकमें रजको अशुद्ध जानना चाहिये, और वह रज पुरुषमें नहा होता, संसर्ग नाम मैथुनका है, और कोई तो छूनेको कहते हैं हारलतामें सुमंतुका कथन है कि, माताको और उसके छूनेवालेको सूतक है, सो उचित नहीं है, यहां केवल स्नानमात्र कहा है सो उचित नहीं है तो विधि दिखाचुके हैं. सुमंतुके वचनका स्नानपर्यन्त अस्पृश्यमात्रका बोध होनेसे एवकार बालकके छूनेमात्रका बोधक है ॥ माधव तो कहते हैं सपिंडभी जिनके साथ शयन भोजन करै वह बन्धु वा दूसरा कोई हो दशदिनमें शुद्ध होता है, यह बृहस्पतिस्मृतिमें कहा है. शयन आसनादिरूपका पराशरने संसर्ग कहा है. यदि प्रसूतापत्नीका सम्पर्क ब्राह्मण करै जो षडंगका ज्ञाता ब्राह्मण हो तो उसको सूतक लगता है, पिताकी समान सपत्नमाताके प्रथम स्नानसे अस्पृश्यत्व है सूतिकाके स्पर्शमें तो तबतक आशौच है और मातायें जबतक उस घरमें जाये, वह ब्रह्मपुराणका कथन शुद्धितत्त्वादि कहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि उसके घर जाकर यदि सूतिकाको न छुए तो सूतक नहीं है अर्थात् वे स्पर्शयोग्य है, कर्मोंका अधिकार पैठीनसिस्मृतिमें लिखा है, पुत्रवाली सूतिकाको बीस दिनमें कामका अधिकार दे, कन्याजननीको महीनेमें यह आशौचके उत्तर जानना, अन्यथा शूद्रासपिण्डाके आशौचमें उसका अभाव होकर विधिअनुवादका विरोध होगा यह सोमयागादि श्रौतसे भिन्नमें जानना कारण कि, प्रसूताका दशरातसे परे स्नान होताहै, यह कात्यायनने कहाहै ॥ व्यासजी कहते हैं पहले छठे दशवें दिन सदा पुत्रजन्ममें सूतक नहीं लगता यहां पुत्रशब्द अपत्यमात्रपर जानना,

न्मनि ॥" पुत्रशब्दोऽपत्यमात्रपरः ॥ ब्राह्मे-"देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा ॥" जनने विशेषः प्रागुक्तः ॥ अत्र प्रयोगपारिजातः-पुंप्रसवे दशाहः । स्त्र्यपत्ये तु त्र्यहः । "पुंजन्मनि सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते । त्र्यहादेकोदकानां च एकाहं सूतकं क्वचित् । स्त्रीजन्मनि सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः । स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं सपिण्डत्वं द्विजोत्तमाः" इत्यग्निस्मृतेरित्याह ॥ मेधातिथिरपि-'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठमुक्त्वा 'आशौचे एवैतत्' विवाहे तु अवधिर्दर्शित एव इत्याह ॥ अन्ये तु त्रिपुरुषसापिण्ड्यस्य कानीनकन्यापरत्वमाहुः ॥ "अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः" इति कौर्मविरोधाच्च ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ 'पञ्चमात्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वहेद्द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः' इत्यादिविरोधात्त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम् ॥ वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः॥तेन कन्याप्रसवेपि साप्तपौरुषं दशरात्रमेव ॥ नच कन्यापुत्रकृतं प्रसवे बलाबलं क्वाप्युक्तम् ॥ अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीता वेति सर्वसिद्धान्तः ॥ अन्यथा त्रिपुरुषं सपिण्डानामष्टमादिसोदकानां

ब्राह्मपुराणमें लिखा है द्विजातिके पुत्र होनेमें देवता पितर छठीके दिन आतेहैं इससे वह पवित्र दिन है, जननमें विशेष पहले कहचुके हैं यहां प्रयोगपारिजातका कथन है कि, पुरुषप्रसवमें दशदिन, कन्याप्रसवमें तीन दिन, अर्थात् पुत्रसपिण्डमें दशदिनकी शुद्धि: होती है, एकोदकोंकी तीन दिनमें कहीं एकही दिनमें शुद्धि होतीहै और स्त्रीजन्ममें सपिण्ड समानोदक तीन दिनमें शुद्ध होते हैं, हे द्विजोत्तमो ! स्त्रियोंमें तीन पुरुषतक सापिंडत्व जानै ऐसी. अग्निस्मृति है ॥ मेधातिथि भी कहते हैं अप्रत्तस्त्रियोंकी त्रिपुरुषी कहीहै यह वासिष्ठका कथन कहकर आशौचमें है, विवाहमें तो अवधि देखने तक है ऐसा कहा है, और तो यह लिखतेहैं कि, तीन पुरुषतक सपिंड कानीन कन्याओंके होतेहैं, इस वचनसे कूर्मपुराणका विरोध भी है कि, विना विवाही कन्याओंको सापिंड्य सात पुरुषतक होताहै, और विवाही कन्याओंको सापिंड्य भर्ताके होतेहैं, यह देवप्रजापतिने लिखाहै. यहां यह तत्त्व है कि, पांचवीं और सातवीं पीढीसे इधरकी कन्याको जो ब्राह्मण विवाहताहै वह गुरुशय्यागामी जानना इत्यादि वाक्योंके विरोधसे त्रिपुरुषतक सापिंड्य प्रकरणके बलसे मरण अशौचमें लिखेहैं ॥ वसिष्ठके कथनमें उसके आगे जलदान करना है तिससे कन्याके जन्ममें भी दशरात्रितक अशौच है, और कन्या और पुत्रके प्रसवमें कहीं भी बल. अबल नहीं कहा है, पूर्वोक्त अग्निकी स्मृति तो अनुकल्प है, वा असंगत है यह सबका सिद्धान्त है, ऐसा न हो तो तीन पुरुष तक सपिंडोंका और अष्टम आदि समानोंका तीन दिन सूतककी;साम्यताका योग नहीं

च ऽपहं साम्याद्योगात् चतुर्थादिसप्तमान्तानां च किमपि न स्यात् ॥ तेन कन्याप्रसवे दशाह एव ॥ किंच-स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं तेषां च त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् ॥ वाक्यभेदापत्तेः ॥ नच चतुर्थादीनां सोदकत्वं क्वापि सिद्धम् ॥ तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादीनां स्त्रीजन्मनि सोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यसंवादार्थाग्निस्मृतिर्हेया मृताशौचनिर्णयः । अथ मृताशौचम् ॥ हारीतः-'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्' इति स्वाशौचपरम् ॥ जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम् । "यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते" इति जैमिन्युक्तेः 'नाड्यां छिन्नायामाशौचम् ' इति हारीतोक्तेश्च ॥ नाडीच्छेदात्प्राक् मातुः स्पर्शेपि न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता ॥ नाडीच्छेदात्प्राक्मृतौ तु बृहन्मनुः-"जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम् ॥" इदं च प्रसवाशौचमेव । शावनिमित्तं स्नानमात्रम्

है, चौथेसे सातवेंतकमें किंचित्‌भी नहीं होगा, इससे कन्याजन्ममें दश दिनही है और स्त्रीजन्मके निमित्त तीन पुरुषतक सपिंडता और उनको वाक्य तीन रात्रिका अशौच वाक्यभेदकी आपत्तिसे किस प्रकार होगा और चतुर्थ आदि सोदक कहीं भी नहीं किये इससे चतुर्थ आदिकोंकी स्त्रीके जन्ममें सन्मानी लिखकर फिर उन्हें तीन रात्रिके अशौचकी विधि मानोगे तो विधि और अनुवादका विरोध हो जायगा, दो वाक्यभेद होंगे इससे असंवद्ध अर्थवाली स्मृतिके ऐसे वचनवाली अग्निस्मृतिका इसमें त्याग करना चाहिये ॥ अब मरणाशौचको लिखते हैं हारीतने लिखाहै कि, उत्पन्न होकर मृतक होजाय, मृतक उत्पन्न होय तो सपिण्डोंको दश दिन अशौच लगताहै, और दश दिन भी अपने अशौचका कथन करताहै अर्थात् जिस जातिको जितना हो उतनाही होताहै, होतेही मरनेमें भी नालछेदनसे उपरान्त लेना कारण जैमिनीने लिखाहै कि, जबतक नालछेदन नहीं होता तबतक सूतक नहीं लगता नालछेदनसे पीछे लगताहै, हारीतने यह लिखाहै कि, नाडीछेदनके पीछे अशौच होताहै यह भी मरणाशौचमें जानना, जन्मसूतक तो नालछेदनके बढनेपर भी जन्मसे ही लगता है और मरा हुआ बालक जब उत्पन्न होताहै, वहां नालछेदनका अभावही है, और नालछेदनसे वृद्धि मानोगे तो षष्ठीपूजाकी भी वृद्धि आजायगी इससे नाडीछेदनसे प्रथम माताके छूनेमें दोष नहीं है यह शुद्धितत्त्वका वाक्य खंडन हुआ ॥ नाडीछेदनसे पहले बालक मृतक होजाय तो बृहन्मनुका कथन है कि, जीता उत्पन्न हुआ हो और मरगया हो और मराहुआ होय तो माताको सम्पूर्ण और पिता आदिको तीनरात सूतक लगता है, यह प्रसवाशौचके विषयमें है कारण कि, शंखने लिखा है कि, मरणके

'प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्' इति शंखोक्तेः ॥ अत्र कश्चिदाह–'नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम्'॥'आशौचव्यपगमे नामधेयम्' इति विष्णूक्तेः'आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते' इति मनूक्तेश्च नाम्नो नियतकालत्वात् ॥ नच–"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि कारयेत्॥पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते"इति मनूक्तेरनियतकालत्वम् । दशम्यामतीतायां विप्रः । द्वादश्यामतीतायां क्षत्रियः । वैश्यःषोडशे । शूद्र एकत्रिंशेइत्यपिज्ञेयम् । पुण्य इत्याद्यनुकल्पः॥तेन नाम्नः कालोपलक्षणम्॥एवं दन्तजननेपि'दन्तजन्म सप्तमे मासि'इत्युपनिषदि नियतकालत्वात्। चौले तु न कालोपलक्षणम् 'प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्'इति मनूक्तेः ॥ " ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात्" इति यमोक्तेश्च तस्यानियतकालत्वात् इति ॥ तन्मन्दम् ॥ 'चौलवन्नामदन्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वोपपत्तेस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात् ' सप्तममासादर्वाग्दन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्च ॥ यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्यात्स नूनं'शतायुःपुरुषः'इति श्रुतेरवाक्पितृमरणे तदन्त्यकर्मापि त्यजेत्॥

निमित्त स्नानमात्र और नाम करणसे पहले तत्काल शौच होता है, यहां कोई यह लिखते कि, नामकरण अशौचान्त कालका उपलक्षण होताहै कारण कि, विष्णुका कथन है कि, अशौचके बीतनेपर नामकर्म करे, नामका समय नियत है ॥ यदि कोई शंका करे कि दशमी वा द्वादशीको नामकरण करे, पुण्यतिथि मुहूर्त वा गुणोंसे युक्त नक्षत्रोंमें नाम रक्खे इस मनुके कहे वाक्यसे कालका नियम नहीं, सो उचित नहीं दशदिन बीतने उपरान्त ब्राह्मण, बारह दिन बीतने उपरान्त क्षत्री, सोलह दिन बीतने उपरान्त वैश्य, इकीस दिन बीतनेपर शूद्र करे, यह समय जानना चाहिये, पुण्य यह अनुकल्प है, इससे नामकालका उपलक्षण होताहै इसी प्रकार दांत निकलनेमें भी नियत समय है कारण यह उपनिषद्में है कि, सातवें महीनेमें दांत निकलतेहैं मुण्डनमें तो समयका उपलक्षण नहीं है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, श्रुतिकी आज्ञासे तीसरे वा पहले वर्षमें मुण्डन करना चाहिये यह यमने भी लिखाहै कि, पूर्ण वर्ष होनेपर वा दूसरे तीसरे वर्षमें मुण्डन करे, कारण कि, स्मृतियोंमें ऐसा ही लिखा है इससे मुण्डनका भी समय नियत नहीं यह जो यम कहते हैं सो वह कथन मन्द है ॥ कारण कि, मुण्डनके समान नामकर्म और दांत निकलना भी स्वरूपसे निमित्त है इनसे विशिष्ट समयका अनुवाद मानोगे तो वाक्यभेद होगा, और सात महीनेसे प्रथम दांत निकल आवेंगे तो उस समयके अभावका प्रसंग होजायगा, जो पूर्वोक्त उपनिषद्को देखकर, निर्णय करेंगे, वह अवश्य सौ वर्षका पुरुष होता है, इस श्रुतिके बलसे सौ वर्षसे पहले उस पिताके मरणमें उसके अन्तके कर्मको भी त्यागेंगे यदि कोई सन्देह करे कि, समयको

ननु कालानुपलक्षणे नामोत्कर्षे तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात् ॥ ततः किम् । अस्तु ॥ अत एवोक्तम् 'आदंतजन्मनः सद्यः ' इति ॥ सा च विष्णुवचनाद्दाहाभावविषयेति वक्ष्यामः ॥ त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेत् न ॥ दाहदन्तादिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् ॥ तदुक्तम्–' पूर्वाबाधेन नोत्पत्तिरुत्तस्य हि सिध्यति' इति जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे च इति पारिशिष्टे " द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथापरे । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः"इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च॥ नच प्राथम्याद्दशरात्रेऽतीते इति मुख्यः कालः, अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् ॥ चौलेपि तथापत्तेः ॥ नच दन्तजननकालानुपलक्षणे सदन्तजातमृतस्य दाहैकाहमसङ्गः ॥ दशाहेन बाधात् ॥ नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः ॥ "दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते" इति बृहन्मनूक्तेश्च ॥ आशौचं दाहोपलक्षणम् ॥ 'सूतकवत्' इति पारस्करोक्तेः ॥ यत्तु विष्णुः–"अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया " इति–तदपि प्रेताशौच-

---

उपलक्षण न मानकर नामकी वृद्धि स्वीकार करोगे वा न करोगे तो स्नानमात्रसे शुद्धि होजायगी, फिर क्या होगा इसीसे लिखा है कि, दांत निकलेसे पहले शीघ्र शुद्धि होती है वह शुद्धि विष्णुके कथनसे दाहके विना अभावमें जानना, यह कहेंगे, तीन वर्ष आदिमें भी शुद्धि होजायगी, सो यथार्थ नहीं कारण कि, दाह दंत आदि निमित्तके जो विशेष अशौच हैं वे प्रथम अशौचके बाधक हैं, यदि कहाहै कि, पहलेके बाधसे उत्तरकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती. पारिशिष्टमें कहा है कि, जन्मसे दशरात्र वा सौरात्र वा वर्ष नामकरण करै, इनसे और इस भविष्यपुराणके लिखे वाक्यसे नामके समयका नियम नहीं कि, कोई बारह दिनमें कोई पूरे महीनेमें और कोई बुद्धिमान् अठारहवें दिन नामकरण लिखते हैं. यह भविष्यमें नामका काल नियत होनेसे यदि कोई शंका करै कि, दशदिन वीतने पर मुख्य समय है और दूसरे गौण हैं सो ठीक नहीं कारण कि, चालमें भी ऐसाही होजायगा, यदि कोई शंका करै कि, दंत निकलनेके समयको उपलक्षण न मानोगे तो जो बालक दांतोंसहित उत्पन्न होकर मृतक हो गयाहै वहां दाहके एक दिनके अशौचका प्रसंग आजायगा सो उचित नहीं कारण कि, दशाहका अशौच बाधक है नामकरणके उपरान्तही दाहकी प्रवृत्ति होती है, बृहन्मनुने लिखा है कि, दशादिनके भीतर बालक मृतक होजाय तो उसके बांधव मरणका अशौच न करै, जन्म अशौच माने, यहां अशौच दाहका उपलक्षण है, पारस्करने भी लिखा है, सूतकके समान, अशौच होताहै ॥ जो विष्णुने लिखाहै कि, दशादिन बीतनेसे प्रथम यदि बालक मरजाय तो शीघ्रही शुद्धि होती है प्रेत पिंड जलदान नहीं होता है

निषेधार्थं न तु सद्यस्त्वपरम् ॥ वाक्यभेदात् ॥ किंच । नामकालात्प्राङ्मृतस्य स्नानम् । तदुत्तरं त्वेकाहादि, नामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात् ॥ अथ शङ्खवचने ल्यब्लोपे पञ्चमी, तदा प्रागिति नोपपद्यते ॥ 'नाम्नि वापि कृते सति ' इति मन्वादिविरोधात् ॥ कृतनाम्न इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं कापीति दिक् ॥ दन्तोत्पत्तेः प्रागाशौचनिर्णयः । नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहे सत्यहः ॥ 'अदन्तजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम् '' इति यमोक्तेः ॥ दाहाभावे तु स्नानमात्रम् ॥ 'अदन्तजाते प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारः' इति विष्णुना दाहाभावे तदुक्तेः ॥ 'आ दन्तजन्मनः सद्यः' इति याज्ञवल्कीयाच्च ॥ दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः—"तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च । सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥'' अन्यत्राकृतचूडे । अत्र चूडाकरणं तृतीयवर्षरूपकालोपलक्षणार्थमिति मेधातिथिहरदत्तौ ॥ मनुरपि 'न त्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति॥''इति उदकं दाहोपलक्षणम्॥दन्तोत्पत्त्यनन्तरमाशौचनिर्णयः । दन्तोत्पत्त्यनन्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽह्नः ॥ 'दन्तजातेऽप्य-

---

यह वाक्य भी प्रेताशौचके निषेध निमित्त है, सद्यःशौच पर नहीं है कारण कि, वाक्यभेद होजायगा, और नामकालमें प्रथम मरे तो स्नानमात्र और पीछे एक दिन आदि अशौच लगता है, नामकालमें मरै तो ग्यारहवें दिन मृतकका कोई कर्म न होगा यदि कोई कहै कि, शंखके वाक्यमें ल्यब्लोपमें पञ्चमी है अर्थात् नामकरणको छोडकर सद्यःशौच है सो यथार्थ नहीं मानोगे तो प्रथमभी अशौच न होगा. और नाम किये पीछे भी अशौच लगता है इस मन्वादिके विरोधसे जिनका नामकरण होगयाहो इस माधव और मिताक्षरा आदिके विरोधसे कहीं भी समय उपलक्षण नहीं यह संक्षिप्त कहा है ॥ नामकरणसे पीछे दंतजन्मसे प्रथम दाह होय तो एक दिन अशौच लगता है, कारण कि, यमका कथन है कि दांत निकलनेसे प्रथम पुत्र मरजाय वा गर्भसे पतित होजाय तो सब सपिंडोंको दिनरात अशौच लगता है, दाह न हुआ होय तो स्नानमात्र करै, दांत निकलनेसे पहले मरजाय तो सद्यः शुद्धि होती है, इसको अग्निका संस्कार नहीं होता इस विष्णुके वाक्यसे दाह लिखा प्राप्त है. याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम मृतक होनेमें शीघ्रही पवित्रता होती है, दाहका विकल्प लौगाक्षिने लिखा है कि, जिनका मुण्डन होगया हो वा न हो चुका हो उन सबको जलदान और संस्कार ये मौनतासे करै, यहां मेधातिथि और हरदत्तने यह लिखा है कि, चूडाकर्म तीसरे वर्षमें रूपकालका उपलक्षण है मनुने भी लिखा है कि, तीनवर्षका न हुआ हो उसके बांधव जल दान न करैं, दांत निकलनेपर वा नामकरनेपर करैं, यहां जलदान दाहका उपलक्षण है ॥ दांत निकलनेके उपरान्त तीन वर्षसे प्रथम मरनेमें एक दिन अशौच

कृतचूडे स्वहोरात्रेण शुद्धिः' इति विष्णूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडेऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात् त्र्यहः ॥ "यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः। तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्" इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वं दाहादि नियतम् ॥ 'नात्रिवर्षस्य' इति वचनात् ॥ कृतायां वर्षत्रयात्प्रागपि तन्नियतं तूष्णीमेव ॥ अत्र जातदन्तत्वमुद्देश्य विशेषणत्वादविवक्षितं दाहयित्वेत्यप्यनुवादः ॥ उभयविधौ वाक्यभेदात् ॥ त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने त्र्यहस्तदभावे विष्णूक्तेरेकाह इति माधवः ॥ यत्तु कश्चिदाह—अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धिः ॥ विज्ञानेश्वरोक्तं च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चिन्त्यम् ॥ जातदन्तपदवैयर्थ्यादिति तत्तुच्छम् ॥ दाहस्याविधेयत्वात् ॥ नृणामकृतचूडानां न शुद्धिर्नैशिकी स्मृता' इति मनूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् त्र्यहासिद्धेः ॥ त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्यस्य साम्यात्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन ॥ प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदा त्र्यहः 'निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इति मनूक्तेः ॥ एतत्सर्वं प्रागुक्तं सपिण्डानाम् ॥ मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम् ॥

कहा है, कारण कि, विष्णुने लिखा है कि दांत निकलनेपर वा मुंडनसे प्रथम मरनेमें दिनरातसे शुद्धि होती है, तीन वर्षसे पीछे मुंडन हुआ वा न हुआ मृतक होजाय तो तीन दिनका अशौच होता है, कारण कि, अंगिराने लिखा है कि, मुंडन न हुआ हो और दांत निकल आये हों यदि वह मृत्युको प्राप्त हुआ होय तो उसको दाह कराकर तीन दिन अशौच करै यहां जातदंत उद्देश्यका विशेषण होनेसे विवक्षा नहीं है और दाह कराकर यह, अनुवाद जानना चाहिये, दोनोंके विधानमें वाक्यका भेद हो जायगा, तीनवर्षसे प्रथम मुण्डनके न होनेपर अग्निके दाहमें तीन दिन, और दाह न होनेपर विष्णुका लिखा एकदिन अशौच होता है यह माधव लिखते हैं, जो किसीने लिखाहै कि, तीन वर्षपर्यन्तका विषय अर्थात् तीन वर्षसे आगेही उसकी शुद्धि होती है ॥ जो विज्ञानेश्वरने यह लिखाहै इससेही, तीनवर्षके उपरांत जिसका मुण्डन न हुआहो उसके विषयमें इसको मानना चिन्त्य है, कारण कि, दाहविधेय वाक्य नहीं है जिन कुमारोंका चूडाकर्म नहीं हुआ उनकी अशुद्धि एकरात्रिकी लिखी है इस मनुके वाक्यसे तीन वर्षके उपरांत अर्थात् एक दिन आजायगा तीन दिन अशौच सिद्ध नहीं है, तुम भी आगे वही मानोगे इससे पदका व्यर्थत्व तुल्य है, और वाक्यसे अर्थका ज्ञान नहीं है इससे मिताक्षराके अर्थको न विचार दूषण देनेसे दूषण देना वृथा है, प्रथम वर्ष आदिमें मुण्डन होनेपर सदा तीन दिन और जिनका मुंडन न हुआ हो उनकी शुद्धि तीन रातसे होती है, इस मनुके कथनमें तीन रात है, पूर्व कथित अशौच सपिंडोंकोहै मातापिताका तो दश दिनसे पीछे मरनेमें सब स्थानमें तीन रात होता है कारण कि, कश्य-

बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः' इति कश्यपोक्तेः॥ 'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्' इतिमनूक्तेश्च ॥ शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—"अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते । दन्तजाते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ" इति कौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम्॥ 'अनूढानां तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम्' इति त्र्यहानुवृत्तौ शंखोक्तेः॥ त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रे षण्मासेपि शिशौ मृते' इति मात्स्यसूक्ताच्च ॥ दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः ॥ यथाहाङ्गिराः—"शूद्रे त्रिवर्षान्न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संम्रियते यदि । मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम्" इति ॥ यत्तु 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु' इति शंखोक्तं मासाशौचं तत्सगुणशूद्रपरम्॥ निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं मासः ॥ षडब्दात् प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः ॥ एतत् 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति विरोधाच्छिष्टविगर्हितत्वान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः॥ दाक्षिणात्यानां तथैव अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः एवं कन्यास्वपि॥ तास्वप्यजातदन्तासु मृतासु पित्रोरेकरात्रमिति माधवः ॥

पजीने लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम बालकके मरनेमें तीनरात्रिमें शुद्धि होती है, मनुका भी कथन है कि, बीजके संबन्धसे तीन दिन पापनिरोध किये हैं ॥ शुद्धितत्व आदि गौड ग्रंथोंमें तो यह लिखा है कि, बालकके मरनेमें, माताको एक दिन और दांतयुक्तके मृतक होनेमें तीन रात्र अशुद्धि होती है. यदि माता पिता निर्गुण हों तो इस कूर्मके कथनसे कश्यपजीका यह कथन शूद्रके निमित्त है, और विना विवाही कन्या और शूद्रको तीन दिन अशौच लिखा है,और छः मासके भी बालकके मृत्यु होनेमें तीन रात .इस मत्स्यके वाक्यसे और दांतयुक्त मरजाय तो शूद्रको पांच दिन है । सोई अंगिराने लिखा है कि, तीन वर्षसे न्यूनका बालक मृतक हो जाय तो पांच दिनमें और इससे ऊपर मृतक हो तो बारह दिनमें शूद्रकी शुद्धि होती है, छः वर्षसे पीछे शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो एक महीनेका अशौच होता है, यह अंगिराने लिखा है. जो यह कथन है कि, विवाहमे प्रथम शूद्र मृतक हो जाय इस कथनसे शंखने जो अशौच लिखा है. वह गुणयुक्त शूद्रके विषय है, निर्गुणके विषय तो तीन वर्षसे पश्चात् द्वादशाह है, छः वर्षका मरे तो पंद्रह दिन छः वर्षतक विवाह होनेपर मृतक होय तो एक महीने अशौच होता है यह शुद्धितत्व आदि गौडोंका कहना आदर करनेके योग्य नहीं है यह विज्ञानेश्वर आदिका *कथन है कारण कि पूर्वमें कहे इस वाक्यका विरोध है कि, अवस्था निमित्तक अशौच सबको* बराबर है और शिष्टोंकोभी यह निंदित है, दक्षिणीभी इसी प्रकार कहते हैं और देशका अशौच प्रथम कथन कर आये हैं, यह गौडोंने कहा है, इसी प्रकार कन्याओंमें भी जानना चाहिये, कन्याभी दांत निकलनेसे प्रथम मरजाय तो माता पिताको एक रात्र अशौच होताह

यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्—'ऊनाद्विवर्षे उभयोः सूतकं मातुरेव हि' इति याज्ञवल्क्योक्तेर्गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं जाते उभयोः कृतनाम्नि सोदराणां चेति पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति तन्नेदानीं प्रचरति ॥ अत एव स्मृत्यर्थसारे तन्नादृतम् ॥ कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम् ॥ 'अचूडायां तु कन्यायां सद्यःशौचं विधीयते' इत्यापस्तम्बोक्तेः इदं त्रिपुरुषमध्ये ॥ 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ इदं वाग्दानोत्तरम् इति गौडाः ॥ तन्न ॥ 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' इति वचनात् ॥ चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः ॥ "अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते" इत्यङ्गिरसा त्रिरात्रविषयेऽह्नोविधानात् ॥ अप्रत्तानां विवाहितानां त्रिपुरुषी पितृपितामहप्रपितामहैः सकन्यायाः चतुर्थ्याः सपिण्डचम् एवं च कन्यापेक्षया पंचमे वृद्धप्रपितामाहे सापिण्ड्यं निवर्तते इति तत्संतानेन्यस्मिन्नविवाह्यत्वाशौचादिधर्मा न भवन्तीत्यर्थः इति गोविन्दार्णवे संस्कारवीचौ ॥ स्त्रीणां तु पितृपक्षे पंचावधिकं सपिण्डत्वम् अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषमित्यादि संस्कारवीचौ प्रपंचितम् अतश्च कन्याया वृद्धप्रपितामहं

यह माधवने कहा है ॥ जो विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, दो वर्षसे प्रथम मरजाय तो माताहीको सूतक लगता है, गर्भमें स्थित बालक मरजाय तो माताको दशदिन और जन्म होनेपर मरै तो दोनोंको, और नाम धरनेपर मरै तो सगे भाइयोंको दश दिन अशौच लगता है. इस पैंगके कथनसे पिता माता सगे भाई ये दशदिनतक स्पर्श करने योग्य नहीं है. इसका इस समय प्रचार नहीं है, इसीसे स्मृत्यर्थसारमें इसका सत्कार नहीं किया है. मुण्डनसे प्रथम कन्या मरजाय तो स्नानमात्र करै; कारण कि, आपस्तम्बमें लिखा है, मुण्डनसे पहले कन्याओंके मरनेमें तत्काल शौच लिखा है, यह भी तीन पीढियोंमें है, कारण कि, वसिष्ठने कहा है कि, विना विवाही कन्याओंका अशौच तीन पुरुषतक माना गया है ॥ गौड तो ये लिखते हैं कि, यह वाग्दानके उपरान्त है, कारण कि, यह वाक्य है कि, विना विवाही कन्याओंका सापिंड्य सातपुरुषतक है सो ठीक नहीं. मुण्डनसे पीछे वाग्दानसे प्रथम कन्या मरै तो एक दिन अशौच लगता है, कारण कि, इसी अंगिराके कथनसे तीन रातके विषयमें एक दिन लिखा है, संस्कार करनेसे प्रथम सब वर्णोंमें तीन रात और कन्याओंकी मृत्युमें एक दिन अशौच लिखा है, विना विवाही कन्याओंका सापिंड्य पिता पितामह प्रपितामह और चौथी कन्या इन चारमें होता है, इससे कन्याकी अपेक्षा पांचवें वृद्ध प्रपितामहमें सापिंड्य निवृत्त होजाता है, इससे उसकी सन्तानमें विवाहका अभाव और अशौचआदि धर्म नहीं होते हैं, यह गोविंदार्णव और संस्कारवीचिमें कहा है. कन्याओंका पितृपक्षमें पांच पीढीतक सापिंड्य कहा है और विवाहसे प्रथम तीन पुरुषतक इत्यादि सब संस्कार

संतत्या सह सापिंड्याभावात् कन्यामरणे सपिण्डोक्तमाशौचं नास्तीति शुद्धिवीचौ गोविन्दार्णवे ॥ अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् ॥ विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपरार्काद्याः ॥ शूद्रे निर्गुणे तु त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे पूर्णाशौचं वक्ष्यते ॥ तदुत्तरं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् ॥ "अवारिपूर्वं प्रत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम्" इति मरीच्युक्तेः ॥ रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शंखः—"पितृवेश्मनि या नारी रजः पश्यत्यसंस्कृता । तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति॥"यावज्जीवमाशौचमितिवाचस्पतिमिश्राः ॥ अथानुपनीते किंचिदुच्यते॥नाम्नः पूर्वं खननमेव ॥ तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्पूर्वं चौलाभावेऽग्न्युदकदानविकल्पः "नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥" इति मनूक्तेः ॥ उदकक्रियासाहचर्याद्दाहोपलक्षणम् ॥ खनने तु नान्यदौर्ध्वदैहिकम् ॥ 'ऊनद्विवर्षं निखनेन्न

वीचमें कहे हैं, इससे वृद्ध प्रपितामहकी सन्तातिके संग कन्याका सापिंड्य न होनेसे कन्याके मरणमें सपिण्डोंका अशौच नहीं होता है, यह शुद्धिवीचि और गोविन्दार्णवने लिखा है ॥ इससे शूद्रके यज्ञोपवीत रूप विवाहसे प्रथम तीन रात्र अशौच होता है, विवाहसे परे सोलह वर्षके मध्यमें भी तीन राततक होता है, यह अपरार्क आदिका मत है, निर्गुण शूद्रको तीन वर्षसे प्रथम पांच दिन अशौच लगता है, और छः वर्षसे पीछे विवाह न हुआ होय तो बारहदिन, यह गौड लिखते ह,गुणवालोंको तो, सोलह वर्षसे पीछे विवाह न हुआ होय तो पूरा अशौच लिखेंगे, और उसके आगे पति और पिताके वंशमें सात पुरुषतक तीन रात अशौच लगता है, कारण कि, मरीचिने लिखा है कि, जिसका जलसे संकल्पपूर्वक विवाह न हुआ हो और वाग्दान होगया हो वह कन्या असंस्कृत जाननी चाहिये, उसके मरनेका अशौच दोनों कुलमें तीन रात होता हैं ॥ रत्नाकर और शुद्धितत्वमें शंखने लिखा है कि, जो विना विवाहो पिताके घर रज देखले, तो उसके मरनेका अशौच कभी भी दूर नहीं होता अर्थात् जबतक जीवित रहै, तबतक नहीं जाता यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है. अब यज्ञोपवीतरहित विषयमें कुछ लिखते हैं, नामकरणसे प्रथम बालकके मरनेमें गाडना लिखा है, और उसके पीछे तीनवर्षसे प्रथम यदि मुण्डन न हुआ होय तो उसको अग्नि और जलदानका विकल्प लिखा है, अर्थात् अग्निदाह आदि करै, चाहै न करै, कारण कि, मनुने लिखा है कि,, तीन वर्षके बालककी क्रियाको बांधव न करैं, अथवा जिसके दांत निकल आये हों वा नामकर्म होगया होय तो करै. जल क्रिया साहचर्यसे दाहकाभी उपलक्षण है, गाडनेमें तो अन्य और्ध्वदैहिक कर्म नहीं होता कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखा है

कुर्यादुदकं ततः ।' इतियाज्ञवल्क्योक्तेः । उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः ॥ यमः–"ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥'' माधवीये ब्राह्मेपि–"स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथ वा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः षड्भिर्गतैर्बहिः ॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्तं तु काष्ठवत् ॥ खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते ॥'' अलंकरणमपि वक्ष्यते ॥ कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं चाग्न्युदकदानं नियतम् ॥ यत्तु वसिष्ठः 'ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम्' इति तत्प्रथमाब्दचूडापरम् ॥ वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् ॥ वर्षत्रयोर्ध्वमुपनयनात्पूर्वं च तूष्णीमग्न्युदकदानम् ॥ 'तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च' इति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः, पिण्डदानमपि कार्यम् ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ 'उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य' इति गौतमोक्तेः ॥ उदकग्रहणमौर्ध्वदैहिकपरमिति हरदत्तः ॥ "द्वादशाद्वत्सरादर्वाक् पौगण्डे मरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोद्दिष्टानि कारयेत्'' इति हरदत्तधृतदेवलोक्तेश्च ॥ मरीचिरपि–'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम्' इत्येतद-

---

कि, दोवर्षसे न्यून गाडदे जलदान न करै, उदक अन्त्यकर्मपर है, अपरार्क कहते हैं ॥ यमका वचन है कि, दो वर्षसे न्यून प्रेतको घी लगाकर, यमगाथा और यमसूक्तको गाता हुआ गाड दे, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, स्त्रियोंका गर्भपात हुआ हो या उत्पन्न होतेही मरगया हो वा दांत जमनेसे प्रथम छः महीनेसे अधिकका मराहो तो उसको वस्त्र आदिसे भूषित करके काष्ठके तुल्य भूमिपर, डालदे वा शनैः २ भूमिमें खोदकर गाडदे तो उसी समय शौच लिखा है, भूषणभी कहेंगे, मुण्डन हुए उपरान्त तीन वर्षसे पहले वा पीछे जलदानका नियम है ॥ जो तो यह वसिष्ठने लिखा है कि, दो वर्षसे न्यून मृतक होजाय वा गर्भपात होजाय तो सपिंडोंको तीन रात अशौच लगता है, यह वाक्य प्रथम वर्षके मुण्डनमें है, कारण कि, तीन वर्षके उपरान्त मुण्डन न हुआ होय और उपनयनसे प्रथम अग्नि और जलदानका नियम है, कारण कि, पूर्वोक्त लौगाक्षिकी स्मृति है कि, जलदान और संस्कार मौन हो करै, पिंडदानभी करै, कारण कि, प्रचेताका कथन है कि, संस्कार होनेको भूमिपर और संस्कृतोंको कुशापर पिंड दे. गौतमने लिखा है कि, मुंडन हो गया होय तो सपिंड जलदान करै, यहां जलग्रहण और्ध्वदैहिक कर्मका बोधक है, यह हरदत्तने कहा है. और हरदत्तहीका लिखा यह देवलका भी कथन. है कि, बारह वर्षसे प्रथम पौगंड मृतक हो जाय तो सपिंडीकरण और एकोद्दिष्ट न करै ॥ मरीचिकाभी कथन है कि, कुश और मन्त्रोंके विना ग्रामसे बाहिर प्रेतको पिंड देना, यह यज्ञोपवीत-

नुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः ॥ अत्र चूडैव पूर्वावधिः ॥ पूर्ववाक्ये तु तद्ग्रहणात् ॥ उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वादाहः ॥ पूर्वावधिरिति केचित् ॥ द्वादशाद्वत्सरादित्यनुपनीतद्विजानूढशूद्रविषयम् ॥ त्र्यहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः–"प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः" इति ॥ अत्र देवयाज्ञिकनिबन्धे विशेषः–"शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखः । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥ आपञ्चवर्षात्कौमारं पौगण्डो नवहायनः ।" तथा–"गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना ॥" तथा–"यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते । किंचित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुखभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥" तथा–"भूमिनिक्षेपणं बाले आवर्षद्वयमाशिखम् । ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि" ॥ अचूडेप्यूर्ध्वं खनननिवृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति ॥ प्रागपि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति ॥ तथा–"चूडा-

---

रहितके निमित्त है यह विज्ञानेश्वरने लिखाहै, यहां मुंडनही पहली अवधि है, कारण कि, पहले वाक्योंमें उसका स्वीकार है, उदक ग्रहणको उपलक्षण होनेसे पहला दिन अवधि है यह किन्हीका मत है, बारह वर्षसे प्रथम अवधि है, यह अनुपनीत ब्राह्मण और विना विवाहे शूद्रके विषयमें लिखा है, तीन दिनके अशौचमें पिंडदानकी विधि पारस्करने लिखी है कि, प्रथम दिन सावधान होकर तीनपिंड, दूसरे दिन चार पिंड, और अस्थिसंचयन और तीसरे दिन तीन पिंड दान करै और फिर कपडोंको धोवै यहां देवयाज्ञिक निबन्धमें विशेष लिखा है कि, दांत निकलनेसे प्रथम शिशु, शिखाधारनतक बालक, यज्ञोपवीत होनेतक कुमार सब शास्त्रोंमें लिखा है, पांच वर्षतक कौमार नौवर्षक पौगंड होता है, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि, गर्भ नष्ट होनेपर कोई कर्म नहीं है, शिशुके मरनेपर दूध दे, और बालकके मरनेपर खीर और दूध दे एकादशाह और द्वादशाह विधिको न करै ऐसेही बालकवाक्य है कि, जहां बालक मृतक होजाय वहां उसकी अवस्थाके बालकको विधिसे पक्वान्न बनाकर जिमावै, भक्ष्य भोज्य और सुखभक्षिका (खीर) दे, और उसके वस्त्र और उपानह भी बालकोंको देवे कुमार और बालकोंको भोजन वस्त्र देने चाहिये, जिस २ वस्तुको बालक भोगताहो वह २ वस्तु ब्राह्मणको दे ॥ ऐसेही वाक्य हैं कि, दो वर्षसे प्रथम शिखा रखनेतक भूमिमें दावै, हे गरुड ! इसके उपरान्त विधिसे देहका दाह करै, जिसका मुण्डन न हुआ हो उसको दाबनेकी निवृत्तिके निमित्त दो वर्षपर्यन्त वाक्यमें लिखा है और जिसका मुंडन हो गया हो उसको भी

कर्माणि संजाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् । सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्योत्सर्जनं था ॥ तत्र दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम् । श्राद्धानि षोडशापि स्युःसपिण्डीकरणं विना॥" इदं पञ्चवर्षोत्तरम् "जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुंक्ते दत्तमसंस्कृतम् । पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते । वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकं ततः । अहन्यहनि संप्राप्ते कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गुडेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम् । उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च ॥ दीपदानानि यत्किंचित्पञ्चवर्षाधिके सदा । कर्तव्यं तु खगश्रेष्ठ व्रतार्वाक् प्रेततृप्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोद्दिष्टानि षोडश । ऋजुदर्भैस्तिलैः शुक्लैः प्राचीनवीतिना तथा" इति तत्रैवोक्तेः॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ वार्षिकादि तु न भवत्येव । सपिण्डनाभावे पितृत्वायोगाद्वचनाभावाच्च ॥ दिवोदासीये—"अव्रते निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत् । क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डीकरणं विना ॥उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते" इति ॥ स्त्रीणां तूद्वाहात्प्रागुदकपिण्डदानविकल्पः ॥ "स्त्रीणां चैके प्रत्तानाम्' इति गौतमोक्तेः ॥ स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः' इतिवचनात् शूद्रेष्वेवम् ॥ एतद्द्वयोनिमित्ताशौचं सर्ववर्णसमम् । 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रपादोक्तेः ॥ यानि तु—'निर्वृत्तचूडके विप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इति ।"निर्वृत्ते

प्रथम कर्मनिवृत्तिके निमित्त शिखा धारनेतक लिखा है, ऐसाही वाक्य है कि, मुण्डनके उपरान्त मरण हो जाय तो सूतकके अन्तमें वृषोत्सर्ग करना चाहिये, वहां दाह और जलदान करै, और सपिंडीके विना सोलह श्राद्ध होते हैं, यह पांच वर्षके पीछे जानना, जन्मसे पांच वर्षतक असंस्कृत अन्नको खाता है, पांच वर्षसे अधिकका बालक मृतक हो जाय तो वृषोत्सर्ग आदि कर्म और जलदान करै, और प्रतिदिन सोलह श्राद्ध करै, खीर वा गुडसे पिण्ड क्रमसे दान करै, जलका घडा, पददान, दीपदान आदि जो हैं, वे सब पांच वर्षसे अधिकमें करने. हे गरुड ! श्रेष्ठ व्रत जनेऊसे प्रथम प्रेततृप्तिके निमित्त करने, और स्वाहाकारसें षोडश १६ एकोद्दिष्ट करने और ऋजु कुशा और शुक्ल तिलोंसे अपसव्य होकर करै यह सब उसी स्थलमें कहा है ॥ इसमें मूल नहीं है, दिवोदासीयमें कहा है कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह मरजाय तो ब्राह्मण आदि जातियोंमें भी सपिंडके विना सब क्रिया शूद्र जातिके तुल्य करनी लिखी है, जल और पिंडदान मुण्डनके पीछे लिखे हैं. कन्याओंको तो दाहसे प्रथम जल और पिंडदान दे वा न दे, कारण कि, गौतमका कथन है कि, कोई आचार्य्य विवाही हुई कन्याकोही जलदान लिखते हैं, स्त्री शूद्रोंका एक धर्म है, इससे शूद्रोंमें भी इसीप्रकार जानना. इन दोनोंको निमित्तसे अशौच सब वर्णोंमें तुल्य है, कारण कि, व्याघ्रपादका कथन है कि, सब वर्णोंमें अवस्थाके बीतनेपर समान अशौच लिखा है ॥ जो ये सुमन्तु अंगिरस आदिके लिखे हैं कि, मुण्डनके पीछे ब्राह्मण मरे तो तीन रातमें, क्षत्रिय

क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते। शूद्रे त्रिवर्षे न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः॥ अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते। षड्वर्षान्तमतीते तु शूद्रे मासमशौचकम्॥" इत्याङ्गिरसादीनि। तानि विशिष्टविगानादनादर्तव्यानीति विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः॥ तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रागुक्ता हेयैव॥ 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम्॥ अन्यदेशे कौर्मोक्ता व्यवस्थेति शुद्धितत्त्वे॥ अथ जात्याशौचम्,तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्तते "त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम्। क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पंचदशैव तु॥ त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः" इति याज्ञवल्क्योक्तेः॥ यत्तु स एव-'त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते' इत्याह-तत्रदशाहे त्रिरात्रमस्पृश्यत्वम्॥ एकदिनोत्पन्ने आशौचद्वये दशाहमस्पृश्यत्वम् "मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन कथंचन। अस्पृश्यं तु भवेद्गोत्रं सर्वमेव सबान्धवम्" इत्याङ्गिरसोक्तेः। दशाहाशौचपरत्वे 'दशरात्रमतःपरम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवेकादयः॥तन्न स्मृतिभेदात्त्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च॥ यस्तु पुत्राणां वेदानध्याप्य वृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः-'द्वादशरात्रं

मृतक हो तो छः रातमें, वैश्य मरे तो नौरातमें, तीन वर्षसे कमका शूद्र मृत्युको प्राप्त हो तो पांच रातमें शुद्धि होती है, इससे अधिकका शूद्र मरे तो बारह दिन और छः वर्षसे ऊपरका मरे तो एक महीनेका अशौच होता है, यह सब वाक्य शिष्टोंके निंदित करनेके कारण आदर करने योग्य नहीं हैं, यह विज्ञानेश्वर मदनपारिजात आदिका मत है, इससे इस कथनके बदले पूर्वोक्त जो शूद्रोंकी व्यवस्था है वह त्यागनेही योग्य है. अवस्थाका अशौच सबको समान है, यह दाक्षिणात्योंके निमित्त है अन्य देशके निमित्त तो वही व्यवस्था उचित है, सो कूर्मपुराणमें लिखा है, यह शुद्धितत्त्वमें वर्णन किया है॥ अब जातिके अशौचको लिखते हैं, वह अशौच द्विजोंमें बालकोंके यज्ञोपवीतके उपरान्त प्रवृत्त होताहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम तीन रात और उससे पीछे दश रात, क्षत्रियके बारह दिन, वैश्यके पंद्रह दिन, और शूद्रको तीस दिन, और जो शूद्र न्यायसे युक्त हो उसको पन्द्रह दिन अशौच लगता है, जो उसकाही कथन है कि, तीन वा दशरात मरनेका अशौच लगता है, वह इस कारण है कि, दश दिनमें तीन दिनतक स्पर्श न करे, यदि एक दिन दो अशौच प्राप्त होजाय तो दश दिनतक अशौच न करे, कारण कि, आंगेराका कथन है कि, यदि मरनेमें अन्यका मरण होजाय तो सब गोत्र बांधवोंसहित स्पर्श करने योग्य नहीं होता. दशाहके अशौचका कथन करनेवाला मानोगे तो इससे आगे दश रातका अशौच होता है इसके संग पुनरुक्तिदोष हो जायगा, यह शुद्धिविवेक आदिने कहा है, सो यथार्थ नहीं, कारण कि, स्मृतियोंका भेद है, और तीन रात वा दश रात अशौच होता है, इस विकल्पका योग है॥ जो पुत्रोंको वेद पढाकर जीविका करनेकी इच्छा

महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन्' इति॥अत्र यावदुक्तनिषेधो वा स्पर्शत्यागमात्रं वा न तु कर्मानधिकारः । एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः । 'एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते' इति ॥ शुद्धितत्त्वे तु–'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः । पित्रादयो महागुरवः । भर्ताप्युक्तो रामायणे– 'पतिबन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ॥' शातातपः–'पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥' एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थम् ॥ सोदकानां त्रिरात्रम् 'त्र्यहात्तूदकदायिनः' इति मनूक्तेः ॥ अग्निपुराणे–"सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ समानोदकभावस्तु निवर्तेत चतुर्दशे ॥ जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्परं गोत्रमुच्यते ॥" बृहस्पतिः "दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥–"स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् ॥ 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः' इत्युक्तेः ॥ 'दत्तानां भर्तुरेव हि' ॥ 'स्वजात्युक्तमाशौचं स्यान्मृतके जातके तथा' इति माधवीये ब्राह्माच्च ॥ शूद्रस्य विवाहाभावेपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः ॥ "अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ॥

करता है वहां आश्वलायनने लिखा है कि, बारह राततक महागुरुसे दान और अध्ययनको त्याग दे, यहां बारह दिन पर्यन्त पूर्वोक्त निषेध है, वा स्पर्शका त्याग है, कुछ कर्मका अनधिकार नहीं है, कारण कि, एकादशाहके अन्तमें आश्वलायननेही लिखा है कि, एकादशाहको त्यागकर अन्तमें बलिवैश्वदेव करै, शुद्धितत्त्वमें तो कहा है कि, माता, पिता, आचार्य यह तीन पुरुषके महागुरु होते हैं. इस विष्णुके कथनमें माता पिता महागुरु कहे हैं, और रामायणमें स्वामी भी महागुरु हैं, बन्धु गति देवता गुरु स्त्रियोंका पतिही है ॥ शातातपने कहा है कि, स्त्रियोंका गुरु एक पतिही है, और सबका गुरु अभ्यागत होता है, ये वाक्य पिता माताको गुरुनिषेधके निमित्त हैं, सोदकोंको तीन रात अशौच होता है, कारण कि, मनुका कथन है कि, जलके दाता तीन दिनमें पवित्र होते हैं. अग्निपुराणमें लिखा है कि, सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होती है, और चौदह पीढीतक समानोदक होतेहैं जहांतक बडे पुरुषके नामका ज्ञान हो, उससे परे गोत्र कहाता है. बृहस्पतिका कथन है कि, प्रेत सूतकमें सपिंड दश दिनमें, सवंश तीन रातमें और सगोत्री स्नान करनेसे शुद्ध होतेहैं, स्त्री और शूद्रको तो विवाहके उपरान्त जातिका अशौच लगता है कारण कि, यह वाक्य है कि, स्त्रियोंका विवाहही यज्ञोपवीत कहाताहै, विवाही हुई कन्याओंका स्वामीके कुलका अशौच लगता है, कारण कि, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जन्म और मरणमें अपनी जातिका अशौच होता है, शूद्रका विवाह न होय तो भी एक महीनेका अशौच लगताहै, कारण कि, अपरार्कमें शंखका कथन है कि, जिसका विवाह न हुआ हो वह

शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा" इत्यपरार्के शंखोक्तेः॥ निर्णयामृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम्। हारीतः-"आमौञ्जीबन्धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात्। आप्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात्।" धनुःप्रतोदावष्टमेऽब्दे द्वादशे वस्त्रद्वयमिति॥ मेधातिथिस्तु-'त्रिरात्रमाव्रतादेशात्' इत्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम्। स च कालः स्वकीयः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः। तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेऽप्यष्टमादूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम्। तत्रापि-'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं संपूर्णमर्वाक्त्रिरात्रम्। येपि "आषोडशाद्भवेद्बालः" इत्याहुः। तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव "ऊर्ध्वमष्टभ्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी" इति वचनादित्याह॥ हारलताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम् 'अनुपनीतो विप्रः' इत्युक्त्वा-"म्रियते यत्र तत्र स्यादाशौचं त्र्यहमेव हि। द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिकः" इत्यादिपुराणोक्तेरुपनयनं कालोपलक्षणम्॥ षडब्दपदं मासत्रयाधिकपरम्॥ 'गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे' इत्युक्तेः। यत्तु जाबालिः-"व्रतचूडा द्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम्। दशाहत्र्यहएकाहैः शुद्ध्यन्त्यपि हि निर्गुणाः" इति। द्विजा दन्ताः। इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः पश्चा-

शूद्र सोलह वर्षसे पीछे मृतक होजाय तो उसके बांधव एक महीनेमें पवित्र होतेहैं. इसमें विचार नहीं करना॥ निर्णयामृतपारिजात आदिमें तो और प्रकार कहाहै, हारीतका कथन है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम ब्राह्मण, धनुष ग्रहण करनेसे प्रथम क्षत्री, और प्रतोद (कोडा) के ग्रहण करनेसे प्रथम वैश्य, और दो वस्त्रोंके ग्रहण करनेसे प्रथम शूद्रको अशौच लगता है, धनुष और कोडा आठवें वर्षमें और दो वस्त्र बारहवें वर्षमें कहेहैं, मेधातिथिने तो यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम तीन रात अशौच लगता है, यहां यज्ञोपवीत शब्द कालके उपलक्षण निमित्त है, वह काल अपना २ लेना, वा सबका अष्टमवर्षरूप होताहै इससे चतुर्णां (चारों) वर्णोंका यज्ञोपवीत अभावमें भी आठ वर्षके उपरान्त पूर्ण अशौच होता है वहांभी अष्टमसे प्रथम शिशु कहातेहैं इस दूसरी स्मृतिके कथनसे आठसे उपरान्त पूर्ण और पहले त्रिरात्र होताहै, जैसे सोलहसे प्रथम बालक कहातेहैं, उनकेभी मतमें आठ वर्षसे उपरान्त शूद्रके यहां महीनेकी शुद्धि है, यह कहाहै, कि, आठ वर्षके आगे शूद्रको महीनेकी शुद्धि है॥ हारलता शुद्धितत्व आदि गौड ग्रन्थोंमें भी ऐसेही लिखाहै यज्ञोपवीतहीन विप्र यह कहकर जो आदिपुराणका कथन है कि, जहां मरे वहां तीन दिनका अशौच लगता है यह तीनों ब्राह्मणोंका छः वर्षतकका समय है वह उपनयनके समयका उपलक्षण है. षडब्द (छः वर्ष) पद तीन महीनोंसे अधिकका बोधक है, कारण कि, यह कथन है कि, गर्भसे वा जन्मसे आठवेंमें करै, और जो जाबालिने लिखाहै कि, यज्ञोपवीत मुण्डन तथा द्विज (दांत) के प्रत्यक्ष होनेपर निर्गुण भी दश दिन तीन दिन एक दिनमें तीनों द्विज क्रमसे

न्दोपनीतपरमिति ॥ तदेतन्नाद्रियन्ते वृद्धाः ॥ यानि तु पराशरः—"एकाहाद्ब्राह्मणः शुद्धयेद्योऽग्निवेदसमन्वितः। त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥" केवलवेदः केवलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणम् ॥ अयं संकोचो होमाध्ययनपर एव नतु संध्यादाविति हारलतायाम् ॥ अङ्गिराः—"सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा' दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" देवलः—"आशौचं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः। निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम् ॥" अत्यन्तोत्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरम् ॥ शूद्रे दशरात्रमिति हारलतायाम् ॥ दक्षः—"सद्यःशौचं तथैकाहस्त्र्यहश्चतुरहस्तथा। षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ मरणान्तं तथा चान्यद्दशपक्षास्तु सूतके ॥" मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे-"चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे। षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त्वहरेव तु ॥" इत्यादीनि तान्यापदनापद्गुणवदगुणवद्विषयाणि देशान्तरभेदाद्वा ज्ञेयानि। सद्यःशौचादिषडहान्ताः पक्षा यायावरादिपराः। अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भिन्नम् ॥ 'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु' इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपश्वालम्भवत् शिष्टविगानान्नादर्तव्यमिति विज्ञानेश्वरः ॥ "अस्नात्वा

पवित्र होतेहैं. यहां प्रतीति (प्रत्यक्ष) कहनेसे उसके विषयमें है, जिसका यज्ञोपवीत पांच वर्षकी अवस्थामें हुआहो, इसको वृद्ध नहीं मानते ॥ जो वाक्य पराशरने लिखेहैं कि, जो अग्नि और वेद दोनोंसे युक्त है, वह ब्राह्मण एक दिनमें, और केवल वेदपाठी तीन दिनमें और उससे भी हीन दश दिनमें पवित्र होताहै यहां केवल वेदशब्द, केवल श्रौताग्निकार्म उपलक्षण है, और यह संकोच होम और पढानेके विषयमें है, संध्या आदिमें नहीं यह हारलतामें वर्णन कियाहै, अंगिराने लिखाहै कि, सब वर्णोंकी सूतक और मृतकमें दशदिनमें पवित्रता होती है, यह शातातपने लिखाहै, कि, मरण और जन्ममें कर्मका क्षय देखतेहुए और ऋषि सब वर्णोंको दश दिनका अशौच लिखतेहैं जो शूद्र अति श्रेष्ठ हैं और कर्मकी हानिमें दुःख मानतेहैं ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर रहतेहैं उनको दश रातका अशौच, हारलतामें लिखाहै ॥ दक्षने कहाहै कि, सूतकमें ये दश पक्ष हैं, कि, सद्यःशौच, एक दिन, तीन दिन, चार दिन, छः दिन, दश दिन, बारह दिन, पक्ष, महीना, मरणपर्यन्त, मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, चौथे पीढीमें दश रात, पांचवींमें छः दिन, छठीमें चार दिन सातवींमें एक दिनमें पवित्रता होती है, इत्यादि वाक्य आपत्तिमें और अनापत्तिमें और गुणवान् और निर्गुणके विषयमें हैं, वा देशाचारके भेदसे जानने, और सद्यःशौचसे छः दिनतकके सूतक यायावरों (उंछवृत्ति) आदिके विषयमें हैं, यहां मरणांत अशौच जन्म आदि निमित्तसे पृथक् है, विज्ञानेश्वर तो यह लिखते हैं कि, शिष्टोंमें निन्दित होनेसे पूर्वोक्त वाक्य सत्कार करनेके योग्य नहीं है, स्नान होम और दान किये विना जो ब्राह्मण

चाप्यहुत्वा च अदत्त्वाश्नंस्तथा द्विजः। एवंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं भवेत्" इति दक्षोक्ते "अन्यपूर्वा यस्य गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः। आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा" इति ब्राह्मादिवशाद्व्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः। माधवस्तु-'वृत्तस्वाध्ययासापेक्षमघसंकोचनं तथा' इति कलिवर्ज्येषूक्तेः-"दशाह एव विप्रस्य सपिण्डे मरणे सति। कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्विषी" इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपक्षा युगान्तरविषयाः। मरणान्तादिपक्षास्तु निन्दार्थवादः। अन्यथा-"नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत्" इति विरोधः स्यादित्याह॥ यत्तु देवलः-"दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात्। अङ्गस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः" इति पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह। यच्चानुपनीतातिक्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तं-'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः' इति। तदपि युगान्तरेषु॥ 'अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च' इति माधवीये कलौ तन्निषेधात्॥

भोजन करता है ऐसे उस द्विजको सदैव सूतक लगता है, इस दक्षके कथनसे और जिसके घरमें ऐसी स्त्री हो जिसका दूसरा पति हो चुका हो, उस ब्राह्मणके यहां सब कार्योंमें देहमें निरन्तर अशौच रहता है, इन ब्रह्मपुराण आदिके वाक्योंसे व्यवस्था जाननी चाहिये यह अपरार्क मदनपारिजात आदि लिखते हैं॥ माधवने कहा है कि, आचार और वेदपाठकी अपेक्षासे पापका संकोच होता है, यह कलियुगमें निषेध है, और सपिण्डकी मृत्युमें ब्राह्मणको दश दिनकाही अशौच लगता है और पक्षोंको जो मानता है वह कलियुगमें पापका भागी होता है, इस हारीतके कथनसे न्यून अशौचके पक्ष युगान्तरोंके विषयमें हैं, मरणांत अशौचके पक्ष तो निन्दासे अर्थवाद लिखे हैं. अन्यथा इस वाक्यका विरोध होगा, कि, नामधारक ब्राह्मणको दश दिनका सूतक प्राप्त होता है॥ जो देवलने यह लिखा है कि, दशाह आदि तीन भागसे अस्थिसंचयन करै, पश्चात् वर्णोंके स्पर्शकी इच्छा तत्त्वके देखनेवाले करते हैं, इस कथनसे पूर्ण अशौचमें ही स्पर्श करै, और जो अनुपनीत और अतिक्रान्ताशौचमें तीन रात आदि उसनेही लिखे हैं कि, अपने अशौचके समयके तीसरे भागमें स्पर्श करै यहभी और युगोंमें है. कारण कि, अस्थिसंचयनके उपरान्त अंगका स्पर्श करै, माधवीयके इस कथनसे कलियुगमें उनका निषेध है॥ जो हारलतामें लिखा है कि, चौथे

---

१ जो बात कलिमें वर्जित कीहै इसका विशेष अभिप्राय यह है कि, सतयुगादिमें जप तप संयम नियमसे मनुष्योंमें पूर्ण सामर्थ्य थी उनको दोष नहीं लगता था सब विधान कर सकते थे कलियुगमें जप तप सामर्थ्यकी हीनतासे निषेध कियाहै इससे 'न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि' यही वाक्य सिद्ध है।

यत्तु हारलतायाम्-'चतुर्थेऽहनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणेन तु' इति प्रचेतसोक्तेस्त्र्यहैकाहाशौचेपि चतुर्थाह एवाङ्गस्पर्श इति तन्न देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात्॥ ये तु वर्णसंकरजा मूर्धावसिक्ताद्यास्तेषामाशौचे विशेषःकलौ नोपयुक्त इति नोच्यते॥ प्रतिलोमजानां नाशौचम् ॥ मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः ॥ माधवस्तु-'शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवर्णस्य संकराः' इति ब्राह्मोक्तेः शूद्रवदाह ॥ हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अहीनवर्णगासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेपि प्रसवे मरणे च पूर्वापरपित्रोर्भर्तुश्च त्रिरात्रमेव न दशाहादि । "अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च" इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णूक्तेः ॥ सपिण्डानां त्वेकाहः । "परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डतः" इति माधवीये हारीतोक्तेः "सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः" इति मरीच्युक्तेश्च ॥ शंखः-"अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥" परपूर्वा पुनर्भूः ॥ इदं सवर्णासु ॥

दिन ब्राह्मणके अंगका स्पर्श करै, इस प्रचेताके कथनसे तीन दिन और एक दिनकी अपवित्रतामें भी चौथे दिनही अंगस्पर्श करै, सो उचित नहीं कारण कि, देवलआदिके अनुरोधसे यह वाक्यभी दशाह आदि अशौचके विषयमें है, जो किसीने यह लिखाहै कि, वर्णसंकरोंसे उत्पन्न हुये मूर्द्धावसिक्त आदिकोंका अशौच विशेष कलियुगमें उपयोगी नहीं है, इससे उसको नहीं लिखते, प्रतिलोमजोंको अशौच नहीं लगता, मल दूर करनेके निमित्त स्नानमात्र होताहै, यह विज्ञानेश्वरका मत है ॥ माधव तो शौच और अशौचको वर्णसंकर शूद्रके तुल्य करें इस ब्रह्मपुराणके कथनसे शूद्रके समान अशौच लिखतेहैं, हारलतामें भी इसी प्रकार लिखाहै दत्तक, क्रीत, कृत्रिम आदि पुत्रोंसे और हीन (ऊंचे) वर्णकी स्त्रियोंमे सपिंड होय तो भी जन्म और मरणसे प्रथम और पिछले माता पिताको और पतिको तीनरातका अशौच लगता है, दशदिन आदिका नहीं, कारण कि, विष्णुने लिखाहै कि, औरससे भिन्न पुत्रोंको जन्म और मरणमें और पर पूर्वास्त्रियोंके प्रसूत (जन्म) और मरणमें तीन रातका अशौच लगता है, और सपिंडोंको तो एक दिन लगता, है, कारण कि, माधवीयमें हारीतका कथन है कि, परपातिवाली स्त्री और किये हुये पुत्रोंके मरने आदिमें पति और मातापिताको तीन रात और सपिंडोंको एक दिनका अशौच लगता है, और मरीचिने भी लिखाहै कि, पहले और पिछले मातापिताका सूतक और मरणमें तीन रात और सपिंडोंका एक दिन अशौच लगताहै ॥ शंखने यह लिखा है कि, औरससे भिन्न पुत्रोंमें और अन्यमें आसक्त और भार्या और पुनर्भूभार्यामें तीन रातमें शुद्धि मानी है, यहभी सवर्णाओंमें जानना उचित है, हीन-

हीनवर्णासु तु शंखलिखितौ—"परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकक्रिया ॥ " ब्राह्मेपि 'आशौचं तु त्रिरात्रं स्यात्समवर्णेषु निश्चितम् ॥' यत्तु षडशीतौ—"अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते । तास्वेवानन्यपूर्वासु पञ्चाहेभिविंशुद्ध्यति ॥ ", तत्र पञ्चाहे मूलं चिन्त्यम् ॥ यत्तु याज्ञवल्क्यः—"अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च' इत्येकाहमाह तदसंनिधौ ज्ञेयम् । यदा पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम् ॥ "अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च । गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता" इति प्रजापत्युक्तेः ॥ पितेति वोढुरुपलक्षणम् ॥ तथोपक्रमात् ॥ यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्न त्रिरात्रम् ॥ पूर्वसंबन्धानिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित् ॥ तन्न ॥जनकेपि—'बैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्' इति वाचनिकाशौचस्यानिवार्यत्वात् ॥ पितृमरणेपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् ॥ शुचित्वे ब्राह्मे—'दत्तकश्च स्वयं दत्तः कृत्रिमक्रीत एव च ' इत्युपक्रम्य ' सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः ' इत्युक्तेः ॥ स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने

वर्णाओंमें तो शंख और लिखितका कथन है कि, पुनर्भूस्त्री और कियेहुये पुत्रोंके मरनेमें न उसे अनध्याय न अशौच और न जलदान होता है. ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, समानवर्णोंमें तीन रात अशौच निश्चयसे होता है. जो षडशीतिमें लिखा है कि, पुनर्भू और अवरुद्धा (करीहुयी) स्त्रियोंमें तीनसे शुद्धि इष्ट है, वा उनमें और अन्य पूर्वाओंमें भिन्नोंमें पांच दिनमें शुद्धि होती है उनमें पांच दिनकी शुद्धिमें मूल कहीं नहीं मिलताहै ॥ जो याज्ञवल्क्यने एक दिन लिखाहै कि, औरससे भिन्नपुत्रोंमें और अन्यमें अनुरक्तभार्यामें एक दिन अशौच लगताहै, वह निकटमें न होय तो जानना, जब पिताको एक दिन है तब सपिंडोंको स्नानमात्र लगता है, कारण कि, प्रजापतिका कथन है कि, अन्यके आश्रय स्त्री और परपत्नियोंमें सगोत्री स्नानमात्रसे, और उनके पिता तीन रातमें पवित्र होते हैं, यहां पितापद उनके वरका भी उपलक्षण है, कारण कि प्रकरण है जो किसीने लिखा है कि, दत्तकमें पुत्रभाव रखनेवालेका किया है, इससे प्रथम पिताको तीन रात नहीं, और पहले संबन्धकी निवृत्तिसे दश दिन आदिका भी अशौच नहीं कथन करसक्ते, सो उचित नहीं कारण कि, जनक पितामें भी बीजके संबन्धसे तीन दिन पापका अनुरोध करै, इस कथनसे सिद्ध अशौचको निवारण नहीं करसक्ते, पिताके मरनेमें भी दत्तक आदिको तीन रातका अशौच लगता है ॥ शुद्धितत्वमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दत्तक, स्वयंदत्त, कृत्रिम, क्रीत इनके प्रकरणमें लिखा है कि, ये सूतक और मृतकमें तीन दिन अशौचके भागी होते हैं, यह कहा है, स्मृतिकौमुदी और हारलतामें भी ऐसेही कहा है, दत्तकके पुत्रपौत्रोंके जन्म और मरणमें सपिंडोंको

मरणे वा सपिण्डानामेकाहः ॥ बीजिनश्चेति गौतमेन सप्तपौरुषसापिण्ड्योक्तेः ॥ सपिण्डानां चैकाहस्योक्तत्वात् सपिण्डं तु पुत्रीकृते सपिण्डदत्तौरसयोर्भ्रात्रोस्तत्पुत्रयोर्दशाह एव । तत्राकाङ्क्षाभावात्सपिण्डत्वेन दशाहप्राबल्याच्च ॥ पूर्वापरयोर्भर्तुरुत्पन्नयोः पुत्रयोस्त्वाह ॥ माधवीये मरीचिः—"मातुरैक्याद्विपितृकौ भ्रातरावन्यगोत्रजौ । एकाहं सूतकं तत्र त्रिरात्रं मृतके तयोः" इति दिक् ॥ ऊढकन्यानामाशौचम् । ऊढकन्यानां तु विष्णुराह—'संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च ' इति ॥ प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेश्वरापरार्कौ ॥ माधवस्तु—'प्रसवेपि त्रिरात्रं पित्रोः ' एकरात्रं भ्रात्रादिबन्धुवर्गस्य । " दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयेताथ म्रियेत वा । तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः" इति ब्राह्मोक्तिरित्याह ॥ यत्तु कश्चिदाह—पक्षपदेन भ्रातरो गृह्यन्ते ॥ वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम् । तदभावे तद्विरोधाच्च । भ्रातुः प्रसवे एकाहः । मृतौ त्रिरात्रमिति केचित् ॥ युक्ता तु पक्षिणी । 'परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् ' इति ब्राह्मात् ॥ भ्रातृभिन्नानामेकाहः । वर्गोक्तेः । 'इतरेषां तु यथाविधि ' इति वक्ष्य-

एक दिनका अशौच होता है, कारण कि, 'बीजिनश्च' इस वाक्यसे गौतमने सातपुरुषतक सपिंड लिखे हैं और सपिंडोंका एक दिनका अशौच लिख आये हैं, यदि सपिण्डही पुत्र किया होय तो सपिण्ड दत्तक औरस दोनों भाइयोंको और उनके पुत्रोंको दश दिनकाही होता है कारण कि, वहां आकांक्षा नहीं है और दश दिनका अशौच बलिष्ठ है, पूर्व और पिछले भर्तासे उत्पन्नहुये पुत्रोंको तो माधवीयमें मरीचिने लिखा है कि, एकमातासे दो पिता जिनके ऐसे भिन्नगोत्री भाई होंय तो वहां एक दिन सूतक होता है और उनके ही मरनेमें तीनरात अशौच होता है, यह संक्षेपसे लिखा है ॥ विवाहीहुई कन्यामें तो विष्णुने यह लिखा है कि, विवाही स्त्रियोंका अशौच पितृपक्षमें नहीं होता, यदि उनका प्रसव और मृत्यु पिताके यहांही होय तो एक दिन तीन अशौच होता है। प्रसवमें एक रात मरणमें त्रिरात्र यह विज्ञानेश्वर और अपरार्क लिखते हैं, माधवने तो प्रसवमें भी तीन रात, माता पिता और भाई बन्धुओंको एक दिनका कहा है, कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, यदि दान किई हुई कन्याके सुतजन्म और मृत्यु पिता घर होंय तो उसके बन्धुओंको एक दिन और मातापिताको तीन दिन अशौच लगता है, जो किसीने यह लिखा है कि, पक्षपदसे भ्राता लेते हैं, कारण कि, वाक्यान्तरमें बहनकी मृत्युमें तीन रात अशौचके कहे है, सो ठीक नहीं उसका अभाव है, और इस वाक्यका विरोध है, भ्राताको तो प्रसवमें एक दिन है, और मृत्युमें तीन दिन यह कोई लिखते हैं, और युक्त तो पक्षिणी है कारण कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, भाई और भगिनीके मरनेमें परस्पर पक्षिणीका अशौच लगता है

माणवचनाच्च ॥ यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातुस्त्र्यहं इति कश्चित् स निर्मूलत्वात् ' नाशौचं पितृपक्षे ' इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः ॥ " दत्ता नारी पितुर्गेहे प्रधाने सूयते यदा ॥ म्रियते वा तदा तस्याः पिता शुध्येत्त्रिभिर्दिनैः॥ " इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च ॥ पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति॥ मृते पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव ॥ "प्रत्ताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च । माता पित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥" 'अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्' इति माधवीये शंखकार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ ' वैजिकादभिसंबन्धात्' इत्युक्तेश्च ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागेकरात्रं पित्रोः । " सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । प्रदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत् " इति पुलस्त्योक्तेः । अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः पक्षिणीत्याह । षडशीतावपि–" पितृगेहाद्यतोन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते । पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः ॥ " इति । ग्रामान्तरे इयमिति

भ्रातासे भिन्नोंको एक दिन होता है, कारण कि, पीछे वाक्यमें वर्गपद पढा है और यह वाक्य आगे भी कहेंगे कि, औरको यथाविधि अशौच होता है, जो कोई यह कहते हैं कि प्रधानघरमें मृत्यु होय तो मातापिताको पूर्ण और भ्राताको तीन दिन अशौच लगता है, वह इससे भ्रांत है, प्रथम तो यह वाक्यही निर्मूल है दूसरे पितृपक्षमें अशौच नहीं लगता इस पूर्वोक्त वाक्यसे विरोध है ॥ कल्पतरु और शुद्धितत्वमें कहा है कि, विवाही हुई नारी पिताके यहां प्रधान करके प्रसूता होय वा मरजाय तो उसका पिता तीन दिनमें शुद्ध होता है, पतिके घरमें जन्म होय तो पिता आदिकोंको अशौच नहीं है, मरणमें तो माता पिताको भी तीन रात अशुद्धि लगतीही है, कारण कि, यह कथन है कि दी वा नहीं दी विवाही वा विना विवाही कन्याओंके मरनेमें मातापिताको तीन रात और दूसरोंको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अशौच लगता है, और जिनका वाग्दान नहीं हुआ उनके मरनेमें तो मातापिताको एक दिनका होता है कारण कि, माधवीयमें शंख और कार्ष्णाजिनकी स्मृति है, और पीछे भी वजिके सम्बन्धसे लिख आये हैं ॥ स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसेही लिखा है, माधव तो यह लिखते हैं यह त्रिरात्र दांत निकलनेके विषयमें है, दांतोंकी उत्पत्तिसे प्रथम मातापिताको एक रात और विना विवाही कन्याओंमें सद्यः और प्रौढोंमें एक दिनमें शुद्धि होती है, और विना विवाहीमें तीन रातमें और दत्तामें पक्षिणीका अशौच कहा है, इस पुलस्त्यके वाक्यसे अन्यत्र कन्या मरे तो मातापिताको पक्षिणी अशौच लगताहै, षडशीतिमें भी कहाहै कि, पिताके घरसे और जगह यदि कन्याका प्रसव होय तो वहां मातापिताको पक्षिणी (दो दिन एक रात्र) अशौच लगताहै, और औरोंको नहीं लगता यह निश्चय है, और ग्राममें मरनेके विषयमें यह वाक्यहै, यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है, माताके

स्मृत्यर्थसारे ॥ भ्रातुस्तु पक्षिणी ॥ "श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले । पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम् " इति वृद्धबृहस्पतिस्मृतेः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मे–'आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥ पित्रोर्मृतौ स्त्रीणामाशौचनिर्णयः । पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रम् "पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत् ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः' इति माधवीये वृद्धमनूक्तेः ॥ इदं दशाहान्तः॥ ऊर्ध्वं तु पक्षिणी॥ भ्रातृभगिनीगृहे तस्या वा तद्गृहे मृतौ त्रिरात्रम् अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् ॥ ब्राह्मेपि–"परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् । मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यते" इति ॥ शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः ॥ त्रिंशच्छ्लोक्याम्–" प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियार्त्विक्सयाज्यस्वस्रीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र । पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिबन्धुत्रयान्तेवासिश्वश्रूसुमित्रश्वशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे ॥ मातामह्यां च पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्राम

भी दो दिन एक रात अशौच लगताहै कारण कि बृहस्पति स्मृतिमें कहाहै कि, सास ससुर भगिनी भ्राता मामा बुआ मौसी इनके मरणमें पक्षिणी होतीहै, शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, दांत जमनेतक सहोदर भाईके मरणमें उसीसमय चूडातक मृत्यु होजाय तो एक रात और विवाहके उपरान्त तीन रात और इससे पीछे दश रात अशौच लगताहै ॥ पिता माताके मरणमें स्त्रियोंको तीन रात अशौच लगताहै, कारण कि, माधवीयमें वृद्धमनुका वाक्य है कि, पितामाताके मरणमें विवाहीहुई स्त्रियोंको कैसे अशौच होताहै, तीन रातमें शुद्धि प्राप्त होती है यह भगवान् यमका कथन है यहभी दश दिनके भीतर है और पश्चात् पक्षिणी अशौच होताहै, भगिनीके घर भ्राता और भ्राताके घर भगिनीके मरणमें दोनोंको त्रिरात्र होताहै और स्थानमें मरे तो पक्षिणी होतीहै यह षडशीतिमें लिखाहै. ब्रह्मपुराणमें भी कहाहै कि, भ्राता और भगिनीके मरणमें आपसमें पक्षिणी अशौच प्राप्त होताहै और मामाके अशौचके तुल्य चाचाका अशौच कन्याको होताहै, शिष्ट तो यह कथन करतेहैं कि, इस वाक्यको निर्मूल होनेसे चाचाके मरणमें स्नान होताहै ॥ त्रिंशच्छ्लोकीमें कहाहै कि, आचार्य मातामह दुहिताका पुत्र श्रोत्रिय अपना. यजमान भानजा इनके मरणमें तीन रात अशौच लगताहै, और सोदक तीन दिनमें पवित्र होताहै और ऋत्विक् दुहिताका पुत्र सहपाठी और तीन बन्धुओंतक शिष्य, सास, मित्र, ससुर, भगिनी और भानजा इनके मरणमें दोनों कुलोंमें पक्षिणी अशौच लगताहै, मातामही पिता माताकी बहन, मातुल, मामी इनके मरणमें पक्षिणी अशौच लगताहै, अपने देशका राजा और गांवका स्वामी के मर

नाथे च नष्टे । शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम् । रात्रिं सब्रह्मचारिण्ययं तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम्" इति ॥ अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम् ॥ दौहित्रभागिनेययोर्निर्णयः । दौहित्रभागिनेययोस्त्रिरात्रम्॥ अनुपनीतयोः पक्षिणी ॥ "संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः" इति वृद्धमनूक्तेः॥ संस्कृते दाहेन ॥ तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः ॥ तन्न ॥ विशेषवैयर्थ्यात् ॥ मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था॥ मनुः-"त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति। तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः॥" श्रोत्रिये स्वगृहे मृते निर्णयः । श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इति स्मृतेरिति माधवः ॥ एकग्रामीणे त्वेकाहः ॥ ऋत्विग्विषये । ऋत्विक्षु बहुल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये ॥ यद्यपि कर्म कुर्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्विक्त्वमुक्तं तथापि कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैत-

---

होजाय तो सूर्यके अस्तहोनेतक अशौच लगता है, शिष्य उपाध्याय तीन बन्धु गुरु पुत्र आचार्य स्त्री सगोत्र और सबसे श्रेष्ठ सगोत्री और अपने स्थानमें मातुल मरै तो एक रात अशौच लगताहै, सब ब्रह्मचारियोंके मरणमें एक रातही अशौच लगताहै और किसी प्रकार थोडे संबंधसे युक्तके मरनेमें सवस्त्र स्नान होताहै, यह सम्पूर्ण अशौच सब वर्णोंमें बराबर है, इसका मूल मिताक्षरा आदिमें स्पष्ट लिखा है ॥ दौहित्र भानजा उपनीत होय तो तीन रात और यज्ञोपवीत न होय तो पक्षिणी अशौच लगताहै, कारण कि, वृद्धमनुने लिखा है कि; दौहित्र, और भगिनीके पुत्र मृतक होजाय तो पक्षिणी और संस्कृत मरै तो तीन रात होताहै यह धर्मकी व्यवस्था है, संस्कृतनाम जिसका दाह हुआहो तिससे दाहमें तीन रात होताहै और भांति नहीं यह गौड लिखतेहैं सो उचित नहीं कारण कि, संस्कृतका विशेष अर्थ करना यथार्थ नहीं विदित आदि निकट मरे होंय तो पक्षिणी, और विशेषमें मरे होंय तो एक दिन लगताहै यह व्यवस्था है । मनुने कहाहै कि, आचार्यके मरनेमें तीन दिन और उसके पुत्र और पत्नीके मरनेमें दिनरातका अशौच लगताहै, यह मर्यादा है ॥ वेदपाठी अपने घर मरै तो तीन रात अशौच होताहै, कारण कि, यह स्मृति है कि, श्रोत्रिय निकटमें मरै तो तीन रात अशुद्धि होतीहै यह माधव लिखते हैं, एक ग्रामका होय तो एक दिन और ऋत्विक् बहुतकालसे वेद और धर्मशास्त्रोक्त यज्ञ कराता होय तो तीन रात और थोडे कालसे कराता होय तो एक दिन अशौच जानना । यद्यपि कर्म करानेवालेका वाचक ऋत्विक्शब्द है, इससे कर्मके समयहीमें ऋत्विक् लिखा है तथापि कर्ममें अशौचके निषेधसे उसके उत्तरहीमें निषेध जानना

ज्ञेयम् ॥ गौडास्तु-"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा" इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः ॥ शिष्ये स्वोपनीते त्र्यहः ॥ 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति माधवीये बौधायनोक्तेः ॥ अन्यत्र तु मनुः-'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च' इति ॥ बन्धुत्रयम्-आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः पितुःपितृष्वसृमातुष्वसृमातुलपुत्राः ॥ मातुः पितृष्वसृमातुष्वसृमातुलपुत्राश्चेति विज्ञानेश्वरः॥ पितृष्वस्रादिकन्यानाम् ॥ 'अत्र पक्षिणी । पितृष्वस्रादिकानामूढानां त्वेकाहः ॥ तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मात् । यत्तु षडशीत्याम्-"एवं पित्रोर्भगिन्यो ये ये पितामहयोस्तथा । ये मातामहयोश्चैव भगिन्यो तत्प्रजाश्च याः॥मातुलाः स्वस्य पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः ॥ भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे त्र्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपादि स्मृतम् ॥" यच्च यमः-"जामातरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता ॥ पक्षिणीं शालकानां स्यादिति शातातपोऽब्रवीत्" इति निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम् ॥ मदनपारिजाते विष्णुः-'असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम् ॥ अत्र हरदत्तः-'अन्तः शवे च' इत्यापस्तम्बसूत्र-

---

चाहिये, गौड तो यह लिखते हैं कि, माताके बन्धु गुरु मित्र देशका राजा मृतक होनेमें समानोदकोंको तीन दिन सगोत्रोंको एक दिन लिखा है, इस जाबालके वाक्यसे मातृबन्धुका अशौच एक दिनका लिखा है, उपनीतशिष्यके मृतक होनेमें तीन रात अशौच लगता है, कारण कि, माधवीयमें बौधायनका कथन है कि, शिष्य सतीर्थ सब्रह्मचारी इनके मृतक होनेमें क्रमसे त्रिरात्र एक दिनका अशौच लगता है, औरके मरनेमें तो मनुने लिखा कि, मातुलके मरनेमें पक्षिणी शिष्य ऋत्विज बांधवोंके मरनेमें एकरात होता है, बांधव तीन होतेहैं, अपनी फूफी मौसी और मामाके पुत्र और पिताकी फूफी और मौसी मामाके पुत्र, और माताकी फूफी मौसी और मामाके पुत्र यह विज्ञानेश्वरका मत है ॥ यहां फूफी आदि विवाही होयँ तो पक्षिणी और उसके बन्धुसमूहमें एक दिनका अशौच पूर्वोक्त ब्रह्मपुराणके वाक्यसे विदित होता है, जो षडशीतिमें कहा है कि, जो पिताकी पितामह और मातामहकी बहन है, और अपने और माता पिताके माता और उनकी स्त्री संतान और उनके जो पिता इन सबके मृतक होनेमें पक्षिणी अशौच लगता है इसी प्रकार श्वशुर और जामाता और दौहित्रके मरनेमें जानना चाहिये, जो यमने लिखा है कि, जमाईके मरनेमें दोनोंकी शुद्धि तीन दिनमें और शालेके मरनेमें पक्षिणी अशौच लगता है, यह शातातपने लिखा है सो निर्मूल होनेसे और मिताक्षरा आदिके विरोधसे त्यागने योग्य है ॥ मदनपारिजातमें विष्णुने लिखा है कि, सपिंड अपने घरमें मृतक होजाय तो एक दिन अशौच लगता है, यह हरदत्तने तो "अन्तःशवे च"

मन्तःशवे ग्रामे धनुःशतादर्वागन्नमभोज्यम् । दीपमुदकुम्भं चोपनिधाय तु भुञ्जीत यदि समानवंशं न गृहमेवं सूतिकायामित्याह ॥ प्रधानगृहमृतौ तु—"गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन । तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः" इत्याङ्गिरसोक्तमिति माधवः ॥ एतेन 'त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च' इति कौर्मं व्याख्यातम् ॥ शुद्धितत्त्वे बृहन्मनुः—"श्व शूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद्विजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ॥ दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः ॥ द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात् ॥ अत्यन्ते वर्जयेद्गृहमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥" अन्त्यो म्लेच्छः । अत्यन्तः श्वपाक इति वाचस्पतिः ॥ तत्रैव यमः—'द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात् ॥' संवर्तः—"गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदूषिते । प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेद्बुधः ॥ ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः ॥ सर्वमभ्युक्षयेद्वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम् ॥" बृहद्विष्णुः -"ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामि-

---

इस आपस्तम्बके सूत्रमें लिखा है कि, ग्राममें शव (मृतक) होय तो सौ धनुषके मध्यतक भोजन न करै. करै तो दीपक और जलका घडा रखकर करै, यदि घर अपने कुलका न हो तो सूतिकामें इसी प्रकार जानना, प्रधान घरमें मृतक हो तो यह आंगिरसका कहा मानना यह माधव लिखते हैं कि, जिसके घरमें कोई असपिंड किसी प्रकार मृतक होजाय तो उसको भी तीन रात अशौच लगता है, इसमें संदेह नहीं । इसमें यह कूर्मका कथन भी व्याख्यात हुआ कि, असपिंड अपने घर मृतक होजाय तो तीन दिनतक अशौच लगता है ॥ शुद्धितत्वमें बृहन्मनुका वाक्य है कि, कुत्ता शूद्र पतित अंत्यज ये, ब्राह्मणोंके मन्दिरमें मृतक हो जांय तो वहां मनुके कथनके अनुसार, अशौच कहताहूँ कुत्तेके मरनेमें दश रात, शूद्रके मरनेमें एक महीने; पतितके मरनेमें दो महीने, और चाण्डालके मरनेमें चार महीनेमें शुद्धि होती है. ऐसे मनुने लिखा है, और अंत्यज मरा होय तो उस घरको सदाके निमित्त त्याग दे, अन्त्यनाम म्लेच्छका है, वाचस्पतिने कुत्तेके पकानेवालेको अत्यन्त्य कहा है, वहांही यमका कथन है कि, द्विजके मरनेमें घर तीनदिनमें पवित्र होता है, संवर्तमें लिखा है कि, मध्यमें मरे मृतकसे दूषित सिद्धिको लिखता हूं, मृत्तिकाके पात्र और सिद्ध अन्नको फेंककर गोवरसे लीपकर बुद्धिमान् मनुष्य बकरीसे सुंघावै, और ब्राह्मणके द्वारा मन्त्रसे पवित्र सुवर्ण और कुशाके जलसे सब घरको छिडके फिर वह घर शुद्ध होता है इसमें संदेह नहीं ॥ बृहद्विष्णुने लिखा है कि, ग्रामके मध्यमें जबतक मृतक रहै तबतक ग्रामको अशौच है, जब ग्रामसे बाहर निकलजाय तब ग्राम शुद्ध होता है, गृहपशु आदिके मृतक होनेमें भी इसी प्रकारका जानो जो

यात्'' ॥ गृहे पश्वादौ मृतेप्येवम् ॥ यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्रादिषु त्रिरात्रमुक्तम् । "मातृष्वसा मातुलयोः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः। मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति'' इति । गुरुराचार्यः । ऋत्विक्कुलागतः ॥ तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयम् ॥ श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि संनिधौ त्रिरात्रम् ॥ असंनिधौ पक्षिणी ॥ देशान्तरे एकरात्रम् ॥ वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः ॥ अन्यत्र तु मातृष्वस्रादिषु पक्षिणी ॥ 'पित्रोः स्वसरि तद्वच पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्' इति वृद्धमनूक्तेः॥ यत्तु वृद्धमनुः-"भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति'' इति ॥ तद्भ्रातृदौहित्रादौ देशान्तरे शालकसुतजामात्रोः स्वदेशे ज्ञेयम् शालके तु एकाहः आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुलश्वशुरश्वश्रूश्वशुर्यसहाध्यायिशिष्येष्वेकरात्रम् '' इति माधवीये विष्णूक्तेः ॥ हरदत्तीये दशश्लोक्यामप्येवम् ॥ श्वशुर्यः शालकः ॥ देशान्तरे स्नानम् ॥ श्वशुरयोर्देशान्तरे एकाहः ॥ जाबालिः-"एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । सर्वत्र मूल्यभावेपि क्रियाकर्तुर्दशाहतः ॥ गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् । प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति''

माधवीयमें प्रचेताने माताकी भगिनी आदिके मृतक होनेमें तीन दिन लिखा है, माता वहन मामाकी सास और श्वशुर गुरु ऋत्विज यजमानके मरनेमें तीन दिनमें शुद्धि होती है, गुरुसे आचार्य और ऋत्विग् वह लेना जो कुलपरंपरासे चला आयाहो, वह घरके मरनेमें जानना, सास और श्वशुर और कहीं मरेहुए तो निकटमें तीन दिन और दूरमें पक्षिणी, और देशान्तरमें एक दिन अशौच मानना कारण कि, विष्णुने आगे ऐसा लिखा है कि, यह माधव गौड आदि लिखते हैं माताकी वहन आदि और स्थानमें मरेहोंय तो पक्षिणी अशौच लगता है, कारण कि, वृद्धमनुने लिखा है कि, पिताकी वहनके मरनेमें पक्षिणी रात्रिको अशौचमें वितावे ॥ जो वृद्धमनुने यह लिखा है कि, विवाही वहन और सस्कृतभ्राता मित्र जमाई धेवता (मानजा) शाला उसका पुत्र ये और स्थानमें मरजांय तो स्नान करनेसे तत्काल शुद्धि होती है, वहां जानना जहां भाई और धेवता देशान्तरमें हो, और शालेका पुत्र और जमाई अपने देशमें हो कारण कि, माधवीयमें विष्णुने लिखा है कि, शाला, अपने देशमें होय तो एक दिन आचार्यकी स्त्री और पुत्र उपाध्याय मामा श्वशुर शाला सहपाठी शिष्य इनके मरनेमें एक दिन अशौच लगता है, हरदत्तकी दशश्लोकीमें भी ऐसेही लिखा है देशान्तरमें मरे तो स्नान मात्र और सास श्वशुर देशांतरमें मरें तो एक दिन अशौच लगता है । जाबालिने कहा है कि, समानोदकोंको तीन दिन, और सगोत्रियोंको एक दिन अशौच लगता है, सब स्थानमें प्रमाण न होय तो भी क्रिया करनेवालेको दश दिनका अशौच लगता है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, मरेहुये गुरुका यदि शिष्य पितृमेध (क्रिया) करै, तो वह और कांधीवाले

इति मनूक्तेः॥ शिष्य इत्युपलक्षणम्॥ "निरन्वये सपिण्डे तु मृते सति दयान्वितः। तदशौचं पुरा चीर्त्वा कुर्यात्तु पितृवत्क्रियाम्" इति माधवीये ब्राह्मोक्तेः॥ दिवोदासीये—"सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः। सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्ध्येच्च दशमेहनि॥" यत्रैकविषये पक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं तत्र सन्निधिविदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था॥ त्रिंशच्छ्लोक्याम्—'वानप्रस्थे यतौ चोपरमति कुलजे षण्ढके वा प्लवः स्याद्योपिद्गोविप्रगुप्त्यै मृतवति तु दिनं युद्धविद्धे च सद्यः॥' अत्र मूलमाकरे स्पष्टम्। युद्धे मृतस्य निर्णयः। युद्धेमूर्ध्नि मृतस्य स्नानम्॥ "उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च। सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः" इति मनूक्तेः॥ यज्ञोन्त्यकर्म॥ सर्वं तदैवेत्यर्थः॥ यत्तु भारते राजधर्मेषु—"अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते। न ह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौचकम्" इति॥ श्राद्धादिनिषेधः स पुत्राद्यभावपरः॥ अतएव तत्र कर्णादीनां श्राद्धमुक्तम्॥ अन्ये तु दशपिण्डानिषेधमाहुर्यतिवत्॥ यत्तु पराशरः—"आहवेपि हतानां च एकरात्रमशौचकम्" इति तद्यद्धक्षते न कालान्तरमृतेर्ज्ञेयम्॥ 'असन्निधौ स्नानम्' इति माधवः॥ शुद्धितत्त्वे अग्निपुराणे—"दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता म्लेच्छैश्च

दश दिनमें पवित्र होते हैं: शिष्यपद औरका भी उपलक्षण है यदि अपने कुलसे. भिन्न का सपिंड मृतक होजाय तो दयावान् मनुष्य उसके अशौचको मानकरके पिताकी समान क्रिया करे, यह माधवीयमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा है॥ दिवोदासीयमें कथन है कि, जो सगोत्री वा असगोत्री अपने मित्रको अग्नि दे वह भी नवश्राद्ध करे, और दशवें दिन शुद्ध होता है, यहां एकही विषयमें पक्षिणी और एकही दिन आदि अशौच लिखे हैं, वहां सन्निधि और विदेशसे वा मैत्री आदिसे व्यवस्था जाननी उचित है, त्रिंशत्श्लोकीमें कहा है कि, वानप्रस्थ संन्यासी और वंशका नपुंसक मृतक होजाय तो स्नानसे, स्त्री, गौ, ब्राह्मण, इनकी रक्षाके निमित्त मरे तो एक दिन, युद्धसे मृतक हो तो उसी समय पवित्रता होती है इसमें प्रमाण आकरमें स्पष्ट लिखा है. युद्धमे प्रधान मरनेमें स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, कारण कि, मनुने कहा है कि, संग्राममें उठाये हुए शस्त्रसे जो क्षत्रियोंके धर्मसे मृतक होता है, उसका अन्त्येष्टिकर्म और अशौच उसी कालमें होजाता है, यह मर्यादा है, और जो महाभारतके राजधर्ममें कहा है कि, शूरवीरके मृतक होनेका अशौच नहीं करना वह स्वर्गलोकमें गमन करता है, उसको अन्न और जलका दान स्नान अशौच नहीं होते, यह श्राद्ध आदिकों निषेध तब जानना जब उसके पुत्र न हों, इसी निमित्त भारतमें कर्ण आदिका श्राद्ध लिखाहै, और तो संन्यासीके तुल्य श्राद्धका निषेध कहते हैं, जो पराशरने लिखा है कि, युद्धमें मरोंका एक रात अशौच लगताहै वहभी तब है जब युद्धमें घाव लगकर कालान्तरमें मृत्यु हो, निकटमें न होय तो स्नानसे शुद्ध है, यह माधव लिखते हैं॥शुद्धितत्त्वमें अग्निपुराणका वाक्य है कि, दाढ

तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन्स्वर्गं न संशयः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥" यत्तु बृहस्पतिः"डिम्बाहवे विद्युता च राज्ञा गोविप्रपालने । सद्यः शौचं मृतस्याहुस्त्र्यहं चान्ये महर्षयः ॥ तच्छस्त्रं विना पराङ्मुखहते च त्रिरात्रम् ॥ राज्ञा वध्ये हते सद्यः शौचमन्यत्र त्रिरात्रम् ॥ तथैव व्याघ्रः— "क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद्द्विधा । आसप्ताहात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥ शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित्प्रमीयते । अशौचं प्राकृतं तस्य सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥" शस्त्राघाते क्षतं विना शवस्पर्शे तु हारीतः—'शवस्पृशो ग्रामं न प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात् रात्रौ चेदादित्यस्य ॥'. यत्तु मनुः—"अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः । शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहात्तूदकदायिनः ॥" इति । अह्ना रात्र्या चेत्यहोरात्रमित्युक्तम् । त्रिभिस्त्रिरात्रैरिति नवरात्रमेवं, दशरात्रमित्यर्थः। तत्तदन्नाशने तद्गृहवासेनापदि च ज्ञेयम् ॥ अङ्गिराः—"आशौचं यस्य संसर्गादापतेद्गृहमेधिनः । क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥ निर्हाराद्याशौचनिर्णयः अथ निर्हाराद्याशौचम् ॥ स्नेहेन सवर्णनिर्हारे तदन्नाशने

और सींगवाले म्लेच्छ और तस्करोंमें जो मृतक हुएहैं और जो स्वामीके निमित्त मरे हैं हे राजन् ! ये सब वर्ण, और विशेषकर क्षत्री ये सब स्वर्गमें गमन करते हैं, जो बृहस्पतिने लिखाहै कि, डिम संग्राममें और बिजलीसे मृतक हुये हैं राजा गौ ब्राह्मणकी पालनाके निमित्त जो मरे हैं, उनको शीघ्र शौच और कोई महर्षि तीन दिनका अशौच लिखते हैं, शस्त्रके विना पराङ्मुख होकर जो मृतक हुआहो उसका तीन दिन अशौच होताहै, राजाने जिसे माराहो उसका तत्काल शौच है और अन्यत्र तीन दिन होता है वहांही व्याघ्रका कथन है कि, घाव होकर जो मरे उसका दो प्रकार अशौच लगता है कि, सात दिनतक तीन दिन और उसके आगे दश दिन होता है घाव लगकर तीन दिन पीछे कोई मर जाय उसका सब वर्णोंमें सदा प्राकृतही शौच है ॥ शस्त्रके लगनेसे घावसे रहित मृतकके स्पर्शमें है हारीतका यह वाक्य है कि, मृतकके स्पर्श करनेवाले नक्षत्रोंके दर्शनतक और रात्रि होय तो सूर्यके दर्शनतक ग्राममें न आवै, जो मनुने यह लिखा है कि, शवके स्पर्श करनेवाले दिनरात वा नवरात वा दशरातसे पवित्र होते हैं, और जल देनेवाले तीन रातमें पवित्र होते हैं वह उनके अन्नभक्षण और उनके घरमें निवास और आपत्तिमें जानना, कारण कि मनुने यह लिखा है कि, उनके अन्नको न खाय, और उनके घरमें न रहे तो एकदिनमें पवित्र होता है, अंगिराने लिखा है कि, जिस गृहस्थीको सम्बन्धसे अशौच लगे उसके कर्मोंका लोप नहीं होता, और वह अशौच गृहस्थके कर्मोंमें नहीं होता ऐसा जानना ॥ अब मृतकको श्मशानमें लेजानेका अशौच वर्णन करते हैं, प्रेमसे

तद्गृहवासे च दशाहः ॥ तदन्नानशने तद्गृहवासे त्र्यहः गृहावासेन्नाभक्षणे चैकाहः ॥ भृतिग्रहणेन निर्हारे दाहे च तज्जात्याशौचम् "यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥ दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेन भूमिपः ॥ मासार्धेन तु वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति" इति कौर्मोक्तेः ॥ विजातीयनिर्हारे तु शवजातीयमाशौचम् ॥ अत्र भृतिग्रहे द्विगुणम् "अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाप्यवरं यदि । वहेच्छवं तदाशौचं द्रव्यार्थे द्विगुणं भवेत्" इति व्याघ्रोक्तेः ॥ कौर्ममेतदिति गौडाः ॥ दाहेऽप्येवम् ॥ यत्तु ब्राह्मे—"योऽसवर्णं तु मूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः । आशौचं तु भवेत्तस्य प्रेतजातिसमं नृप" इति तदापदि ज्ञेयम् ॥ सोदकनिर्हारे तु दशाह इति माधवः ॥ अलंकरणे तु शङ्खः—"कृच्छ्रपादो सपिण्डस्य प्रेतालंकरणे कृते । अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते ॥" धमार्थमनाथसवर्णहरणे क्रियाकरणे च द्विजस्यानन्तयज्ञफलम् 'स्नानं प्राणायामोऽग्निस्पर्शश्चेति माधवीये' । अग्निदेऽप्येवम् ॥ "प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो नैव दुष्यति । वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति" इत्यपरार्के वृद्धपराशरोक्तेः ॥

अपने सवर्णको लेजाय, और उसके अन्नको भोजन करै और उसके घरमें रहै तो दश दिनका अशौच लगता है; उसके अन्नको न खाय और उसके घरमें रहै तो तीन दिनका और घरमें न रहै और अन्न न खाय तो एक दिनका है वेतन लेकर लेजाय और दाह करै तो जातिका अशौच लगताहै, कारण कि, कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, लोभमें मनकरके प्रेतको लेजाय तो ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें, शूद्र एक मासमें शुद्ध होतेहैं विजातीयप्रेतको लेजाय तो शवकी जातिका अशौच लगताहै और भृति लेकर करै तो दूना अशौच लगताहै. कारण कि, व्याघ्रने लिखाहै कि, छोटा वर्ण बडे वर्णको और बडा वर्ण छोटे वर्णको द्रव्य लेकर लेजाय तो अशौच दूना लगताहै, यह वाक्य कूर्मपुराणमें लिखाहै यह गौड कहतेहैं, दाहमेंभी इसी प्रकार जानो ॥ जो ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, जो मनुष्य सवर्ण प्रेतको द्रव्यके निमित्त श्मशानमें लेजाकर दाह करै हे राजन् ! उसको प्रेतजातिके तुल्य अशौच लगता है, यह आपत्कालमें जानना. समानोदकको लेजाय तो दश दिन अशौच लगता यह माधवका कथन है, शवके अलंकार करनेमें तो शंखने यह लिखाहै कि, प्रेतके अलंकार करनेमें चौथाई कृच्छ्र और अज्ञानसे व्रत और अशक्तिमें स्नान करना चाहिये, धर्मके निमित्त अनाथ और सवर्ण प्रेतके लेजाने और क्रिया करनेमें ब्राह्मणको यज्ञका फल प्राप्त होताहै और वह स्नान प्राणायाम और अग्निका स्पर्श करै. यह माधवीयमें कहाहै, जो अग्नि दे उसके निमित्त भी ऐसेही कहाहै, कारण कि, अपरार्कमें वृद्धपराशरका वचन है कि, प्रेतके छूने और संस्कारसे ब्राह्मण दूषित नहीं होता, लेजानेवाला और

मातुलत्वादिसम्बन्धे त्रिरात्रम् । असंबन्धिद्विजान्वहित्वा दहित्वा च सद्यः शौचात् । संबन्धे त्रिरात्रात्, इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ गौतममिताक्षरायां वृद्धात्रिः—"सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥" अत्र पूर्वेणोत्तरानिवृत्तिरित्यर्थः ॥ विष्णुः—"मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेन्न शूद्रं द्विजेन ॥" देवलः—"ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम् ॥ यदि कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥ " याज्ञवल्क्यः—'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती ।' अनुगमने तु सपिंण्डे न दोषः ॥ "विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनिर्हरणादिकम् । तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधिक्यं न विद्यते" इति देवलोक्तेः ॥ 'दोषः स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना' इति हारीतोक्तेश्च ॥ समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः—"अनुगम्य शवं बुद्ध्या स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम् ॥ सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति" इति ॥ 'हीनवर्णे तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रम्, क्षत्रियस्य वैश्येऽहः, शूद्रे पक्षिणी, वैश्यस्य शूद्रेऽहः' इति विज्ञानेश्वरः ॥ माधवस्तु—'विप्रस्य वैश्ये द्व्यहः, क्षत्रस्य शूद्रेप्येवम् । अन्यत्

अग्निका देनेवाला स्नान करके शीघ्र शुद्ध होताहै, मातुल आदिका सम्बन्ध होय तो तीन दिनतक अशौच है, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, असम्बन्धी द्विजको लेजायकर और दाह करके शीघ्र शुद्धि और सम्बधमें तीन दिनके अनन्तर शुद्धि होतीहै ॥ गौतममिताक्षरामें वृद्धात्रिका कथन है कि, सूतकसे दूना मृतकका और शवसे दूना ऋतुका और ऋतुसे दुगुना प्रसवका और प्रसवसे दुगुना मृतकके दाहका अशौच लगताहै, इनमें प्रथम अशौचमें पिछलेकी निवृत्ति नहीं होती. विष्णुने यह लिखाहै कि, मरे द्विजको शूद्रसे और शूद्रको द्विजसे कभी न लिवालेजाय. देवलने लिखाहै कि, ब्रह्मचारीको प्रेतकी दाहक्रिया आदि न करनी चाहिये, यदि करै तो कृच्छ्र और फिर संस्कार करै । याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, आचार्य पिता उपाध्यायको लेजाय तो ब्रह्मचारीको दोष नहीं लगता सपिंडके संग जानेमें दोष नहींहै कारण कि, देवलने कहा है कि सपिंडोंको प्रेत लेजाना चाहिये, जो कोई उसको करताहै उससे अधिक पुण्यात्मा कोई नहीं है, हारीतने कहाहै कि, अनाथकी क्रियाको छोडकर असपिंडको लेजानेमें दोष होताहै ॥ समान और उत्कृष्ट वर्णके लेजानेमें तो माधवीयमें कण्वका वाक्य है कि, जानकर प्रेतके संग जाकर स्नान, अग्निका स्पर्श, घृतका भक्षण और फिर स्नान और प्राणायाम करके पवित्र होताहै, हीनवर्णोंमें तो क्षत्रियके संग जाय तो एक दिन, वैश्यके संग जाय तो पक्षिणी, और शूद्रके संग गमन करै तो तीन दिन अशौच लगताहै, क्षत्रियको वैश्यके संग जानेमें एक दिन शूद्रके संग जानेमें पक्षिणी, वैश्यको शूद्रके संग जानेमें एक दिन, अशौच लगताहै यह विज्ञानेश्वर लिखतेहैं माधवका तो यह कथन है कि, ब्राह्मणको वैश्यके संग जानेमें दो दिन, और इसी प्रकार क्षत्रियको शूद्रके संग जानेमें

'प्राग्वत्' स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानि सर्वत्रेत्याह ॥ हीनवर्णस्य दाहौर्ध्वदैहिककरणे तु ब्राह्मे-"ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ कामाल्लोभात्तथा मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत् ॥" मनुः-"व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च अभीचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥" परेषां सर्ववर्णानां हीनेषु द्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्याद्यूह्यम् ॥ रोदननिर्णयः । अथ रोदने समोत्तमवर्णयोः संचयनात्पूर्वं सचैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम् । हीनवर्णेषु तु संचयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं स्नानमात्रम् ॥ विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये तु ब्राह्मे-"अस्थिसंचयने विप्रो रौति चेत्क्षत्रवैश्ययोः । तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेऽहनि शुद्ध्यति ॥ कृते तु संचये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत् ॥" क्षत्रस्य वैश्येप्येवम् । शूद्रे तु संचयात्प्राक् विप्रस्य त्रिरात्रम् । क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम् । ऊर्ध्वं तु द्विजानामेकाहः । शूद्रस्य शूद्रे स्पर्शं विना संचयात्पूर्वमेकाहः । ऊर्ध्वं सज्योतिरिति माधवीये ज्ञेयम् । शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु-"अस्थिसंचयनादूर्ध्वं मासं यावद्द्विजातयः । दिवसेनैव शुध्यन्ति वाससां क्षालनेन च ॥ सजातेर्दिवसेनैव स्पृहा-

---

दो दिन अशौच लगताहै और पूर्वके समान जानो । स्नान अग्निका स्पर्श और घृतका भक्षण सर्वत्र तुल्य है, हीनवर्णके दाह और और्ध्वदैहिक करनेमें तो ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, ब्राह्मण हीनवर्णका और्ध्वदैहिक न करै, काम, मोह, लोभसे करै तो उसी जातिको प्राप्त होताहै, मनुने कहा है कि, जिनका शास्त्रोक्त समयपर संस्कार न हुआ हो उन नीचोंके यज्ञ कराकर और सब वर्णोंके अन्त्यकर्मको कराकर और तथा अपने सवर्णकी हिंसा वा दुःख देकरके तीन कृच्छ्र व्रतको करके पापसे छूटता है, हीनवर्णके यहां पूर्वोक्त कर्म करै तो दुगुना तिगुना, चौगुना पाप जानना ॥ अब समान और उत्तम वर्णके यहां रोनेका प्रायश्चित्त लिखतेहैं अस्थिसंचयनसे पूर्व सचैल स्नान और पीछे रोवै तो आचमन करै, हीनवर्णके यह अस्थिसंचयनसे प्रथम सचैल स्नान और पीछे स्नानमात्र करै, ब्राह्मणको क्षत्री वैश्यके यहां रोनेमें तो ब्रह्मपुराणमें कहाहै कि, यदि ब्राह्मण क्षत्री वैश्यके यहां अस्थिसंचयनके दिन रुदन करै तो सचैल स्नान करै दूसरे दिन और अस्थिसंचयनसे पश्चात् रुदन करै तो स्नानसेही शुद्ध होताहै, वैश्यके यहां क्षत्रियको भी ऐसेही जानना, शूद्रके यहां अस्थिसंचयनसे प्रथम रुदन करै, तो तीन दिन क्षत्रिय और वैश्यके दो दिन और उससे पीछे रुदन करनेमें द्विजोंको एक दिनका अशौच लगता है, शूद्र शूद्रके यहां रुदन करै, और स्पर्श न करै तो एक दिनका अस्थिसंचयनसे उपरान्त सूर्यास्ततकका अशौच लगताहै यह माधवीयमें लिखाहै ॥ शुद्धितत्त्वमें पारस्करने तो यह लिखाहै कि, अस्थिसंचयनके उपरान्त मासपर्यन्तके रोनेमें द्विजाति एक दिनमें, और वस्त्रोंके धोनेसे शुद्ध होतेहैं

त्क्षत्रियवैश्ययोः'' इत्युक्तम् सपिण्डानां रोदननिर्हारादावदोष इत्युक्तं प्राक् ॥ विज्ञानेश्वरस्तु-''मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकर्म च'' इति पारस्करोक्तेः सर्वत्रैकरात्रमाह ॥ अशौचान्नभक्षणे निर्णयः ॥ अथाशौचान्नभक्षणे विष्णुः-'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् । यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तम्' इति अज्ञाने त्वङ्गिराः- ''अन्तर्दशाहे भुक्त्वान्नं सूतके मृतकेपि वा ॥ अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः ॥'' प्रायश्चित्तं त्वमत्या विप्रस्य वर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपञ्चाहसप्ताहोपवासाः, दश विंशतिः षष्टिः शतं च प्राणायामाः, पञ्चगव्याशनं च । अभ्यासे द्विगुणम् । आपदि तु प्राणायामशतं पंचशतमष्टशतमष्टसहस्रं गायत्रीजपश्च । मत्यापदि तु सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवासः तच्च वैश्याशौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शूद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं गायत्रीजपः । उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम् । मत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सांतपनकृच्छ्रमहासांतपनचान्द्राणि । अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषाण्मासिकानीत्यादि

और सजातीयके यहां एक दिनमें और क्षत्रिय और वैश्यके यहां रोनेसे तीन दिनमें पवित्रता होती है, सपिंडोंके रोने और लेजानेमें दोष नहीं, यह पहले कह आयेहैं, विज्ञानेश्वरने तो सब जगह एक रात लिखाहै, कारण कि, यह पारस्करने लिखाहै कि, बांधवोंके संग प्रेतका शोक करके उस रात दिनमें श्राद्ध और दान आदि कर्मको त्यागदेना चाहिये ॥ अब अशौचके अन्न खानेमें दोष लिखतेहैं विष्णुने कहाहै कि, ब्राह्मण आदिके अशौचमें एक वार जो अन्न भोजन करताहै, उसको तवतक अशौच लगताहै, जवतक उनको होताहै, और अशौचके उपरान्त प्रायश्चित्त लगताहै, अज्ञानसे करै तो अंगिराने कहाहै कि, सूतक वा मृतकमें दश दिनके भीतर खानेसे इतने कालतक उसको अशौच लगताहै, जवतक वह अन्न बाहिर न निकलजाय और विना जाने भोजन करनेका प्रायश्चित्त तो ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे एक, तीन, पांच, सात दिनका व्रत करना तथा दश, वीस, साठ, सौ प्राणायाम और पंचगव्यका भक्षण करै, और वारंवार करनेमें दूना प्रायश्चित्तहै, और आपत्कालमें तो सौ प्राणायाम पांच सौ प्राणायाम और आठ हजार गायत्रीका जप कहाहै, जानकर सवर्णके अशौचमें भोजन करै तो तीन वार अघमर्षण और आठ हजार गायत्रीका जप करे, और क्षत्रियके अशौचमें भोजन करै तो उपवासभी कहाहै, और वैश्यके अशौचमें तीन रातका व्रत है, शूद्रके अशौचमें कृच्छ्रव्रत है. क्षत्रीय और वैश्य उत्तम वर्णके अशौचमें खाय तो पांच सौ और आठ सौ गायत्रीका जप करै, और शूद्रको सर्वत्र स्नानमात्रका प्रायश्चित्त कहा है जानकर और आपत्तिके विना ब्राह्मण तीनों वर्णोंके अशौचमें भोजन करै तो सांतपन, कृच्छ्र, महासांतपन, चान्द्रायण करै, और वारम्वार भोजन करनेमें तो मासिक दो महीने तीन महीने

माधवीयादौ ज्ञेयम् ॥ अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य सपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम् ॥ भक्तदासस्य त्र्यहोर्ध्वम् ॥ 'सद्यः स्पृश्यो गर्भदासोभक्तदासस्त्र्यहाच्छुचिः ' इति स्मृत्यन्तरोक्तेः "मूल्यकर्मकराः शूद्रदासीदासास्तथैव च । स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः" इति शातातपोक्तेश्च ॥ एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे ॥ अन्यत्र मासाद्याशौचमस्त्येव ॥ एवं दास्यामपि । सूतिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि मासमात्रम् "दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या मासस्तु सूतकम्" इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ षडशीतावपि—"स्वामिशौचेन दासाद्याः स्पृश्या मासस्तु कर्मसु । योग्याः स्युर्मासतो दासी सूतौ चेत्स्पृश्यतामियात् ॥ दत्तदासादीनां स्वसपिण्डमरणादौ स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः ॥ "दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शौचेन शुध्यन्ति मृतसूतके" इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥ दासश्चात्र—"गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः । अन्नकाल-

---

कः महीने व्रत आदि माधवीय आदिमें जानने ॥ अब अपनी दासीमें उत्पन्न दासका अशौच लिखतेहैं, अपना सपिंड मृतक होजाय तो स्नान करनेसे स्वामीके कार्यमें छूनेके योग्य होताहै और (और भोजन करनेवाले दासका) तीन दिन अधिक अशौच होता है, कारण कि, अन्यस्मृतिका कथन है कि, गर्भदास शीघ्र स्पर्शसे योग्य है, और भक्तदास तीन दिनमें पवित्र होता है और शातातपने भी लिखाहै कि, मोलसे कार्य करनेवाले शूद्र और दासीके दास जो हैं, वे शरीरका संस्कार स्नान करनेसे घरके काम करनेमें दूषित नहीं है, यह भी उस कार्यमें है जिसको दूसरा न करसके, औरमें दो महीने आदिका अशौच है, इसी प्रकार दासीमें भी समझना चाहिये सूतिका दासीको तो महीनेतक स्पर्श न करे, कारण कि, अंगिरसने कहा है, दासी वा दास जो जिस वर्णका होता है उसको उसी वर्णका अशौच लगता है, दासीको सूतक तो महीनेभरका लगता है. षडशीतिमें भी कहा है कि, दास आदि स्वामीकी शुद्धिके छूनेके योग्य होते हैं, और दासी प्रसूता होय तो एक महीनेमें स्पर्शके योग्य होती है ॥ जो दास दत्त हैं उनके अपने सपिंडके मरण आदिमें स्वामीका अशौच लगता है, और तुल्य संख्याके दिनोंके पीछे महीने आदिके अशौच होनेपर, स्वामीके कार्यमें स्पर्श करनेकी योग्यता होती है, यह हरदत्तने कहा है, कारण कि, बृहस्पतिकी स्मृति है कि, दास अन्तेवासी (शिष्य) भृत्य और एकत्र रहनेवाले शिष्य ये मरण सूतकमें स्वामीके अशौचसे पवित्र होते हैं. यहां दाससे इन पन्द्रह भांतिके दासोंमें भक्तदाससे पृथक् लेना कि, घरमें उत्पन्न हुआ, मोल लिया, मिलगया, दायके क्रमसे आया, अन्नके अकालमें प्राप्त हुआ, स्वामीका बुलाया,

भृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणे जितः ॥ तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः ॥ विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः " इति नारदोक्तेषु गर्भभक्तदासौ विना ज्ञेयाः ॥ वडवा दासी तया हृतस्तामुद्वाह्य दासो जात इत्यर्थः॥अन्तेवास्यपि तेनैवोक्तः "स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदन्ते कृत्वा कालं सुनिश्चितम् ॥ आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहे दत्तभोजनम्" इति ॥ शिष्यस्तत्तुल्यो विद्यार्थी ॥ दासादेः स्वामितत्सपिण्डमरणे तु विष्णुः—'पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम् मृते स्वामिन्यात्मीयम्' इति प्रतिलोमदासानामाशौचाभावः ॥ 'वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ रात्रौ जनने मरणे वा निर्णयः । अथ रात्रौ जनने मरणे वा रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वं दिनम्, अन्त्ये तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ॥ यत्तु प्रागर्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वं दिनमित्युक्तं, तत्र देशाचारतो व्यवस्था॥ सर्वं चाशौचमाहिताग्नेर्दाहं तद्भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम्॥ "अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादिद्विजातिषु । दाहादग्निमतो विन्ध्याद्विदेशस्थे मृते सति" इति पैठीन-

---

बडे ऋणसे छुटाया, युद्धसे प्राप्त और दांवसे जीता हुआ, मैं तुम्हारा हूं यह कहकर आया, संन्यासका त्याग किया हुआ भक्तदास, विवाही हुई दासीमें उत्पन्न (वडवाहृत) अपना बेचनेवाला, यह पन्द्रह जन शास्त्रमें दास लिखे हैं अन्तेवासी भी उसनेही लिखा कि, बान्धवोंकी आज्ञासे शिल्प सीखनेकी इच्छा करताहुआ जो आचार्यके. निकट कालका नियम करके रहे और आचार्य उसको अपने घरसे भोजन देकर उपदेश दे उसे अन्तेवासी कहा है, और शिष्य भी विद्याकी इच्छावाला उसके समान होता है. स्वामी और उसके सपिंडोंके मृतक होनेमें दासीदिकोंके निमित्त विष्णुने यह लिखा है कि, अनुलोम पत्नी और दासोंको स्वामीका अशौच लगता है, और स्वामीके मरनेमें अपनी जातिका अशौच लगता है, और प्रतिलोम दासोंको तो अशौच नहीं लगताहै कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, वर्ण अनुलोमसे दास होते.हैं प्रतिलोमसे नहीं होते ॥ इसके उपरांत जन्म वा मृत्यु होय तो रात्रिके तीन भाग करके पहले दो भागमें होय तो पूर्वदिन, और पिछले भागमें होय तो अगला दिन अशौच लगता है यह मिताक्षरामें कहा है. और जो अर्द्धरात्र और सूर्योदयसे प्रथम पहिला दिन लिखा है वहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये, संपूर्ण अशौच अग्निहोत्रीको दाहसे और दूसरोंको मरणसे जानना चाहिये, कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि, द्विजातियोंमें अग्निहोत्रीसे पृथकके अशौच मृत्युसे और अग्निहोत्रीको दाहसे लगता है, यदि वह विदेशमें मृतक हो तो ऐसा जानना, और वसिष्ठस्मृतिमें यह विशेष लिखा है कि,

नाग्निस्मृतेः ॥ आहिताग्निः साग्निः ॥ 'आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववदाशौचम्' इति वसिष्ठे विशेषोक्तेः ॥ 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः' इति ब्राह्माच्च ॥ यत्तु—'धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम् 'आहिताग्नेरपि मरणादेव दशरात्रं दशाहं शावमाशौचम्' इति मरणनिमित्तत्वात्तस्य । यत्तु दाहादेव तस्याशौचमुक्तं, तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन गृह्याग्नेः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम् । श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं तूभयोर्दशाहम् । दाहात्प्रागपीति ॥ तद्वचनाविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम् ॥ अतिक्रान्ताशौचनिर्णयः । अथातिक्रान्ताशौचम् ॥ तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः ॥ "विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्" इति मनूक्तेः ॥ अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयम् ॥ तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेपि तदाद्येव दशाहादि । "पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥" इत्यस्य सर्वापवादत्वादित्याहुस्तन्न ॥ ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात् 'अनग्निमतउत्क्रान्तेः' इत्यादिविरोधाच्च ॥ स्मृत्यर्थसारेपि—'जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः ।

यदि आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो फिर संस्कार करके सबके तुल्य अशौच माने, और ब्रह्मपुराणका वाक्य भी है कि, जो अग्निहोत्री है उसका अशौच दाहसे जानना ॥ और जो धूर्तस्वामी और रामांडारने लिखा है कि, आहिताग्निको भी मरणसेही दश रात अशौच लगता है, कारण कि, शवका अशौच दश दिन होता है, उसका निमित्त मृत्यु है और जो उसको दाहसेही अशौच लिखा है वह संस्कारके निमित्त अशौच पृथक्ही है, इससे गृह्याग्निहोत्रीको संस्कारका अंग अशौच तीन दिन और श्रौताग्निको दश दिन होता है और मृत्युनिमित्त अशौच तो दोनोंको दाहसे प्रथम भी दश दिनका लगता है, यह सब वाक्यकेहि विरोधसे और पूर्वकी उत्कृष्टतासे और मूलकल्पनाकी लघुतासे करने योग्य हैं ॥ अतिक्रांत अशौचको वर्णन करते हैं. यदि अशौचके बीचमें जन्मादि होजाय तो पूर्व अशौचके शेषसे शुद्धि होती है कारण कि, मनुने लिखा है कि, विदेशमें मृतक हुयेको जो दश दिनके भीतर सुने तो जितने दिन दशमें शेष हों उनसेही पवित्र होता है. यहां कोई लिखते हैं कि, यह पुत्र आदिसे भिन्नके विषयमें है उनके मतमें अशौचके बीचमें सुननेपर भी सुननेके दिनसेही दश दिन आदिका अशौच लगता है, कारण कि, यह वाक्य सबका अपवाद है कि, पिता मृतक हो जाय तो दूरस्थित भी पुत्र जिस दिन सुने उस दिनसे लेकर दश दिन सूतकी होता है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, ज्ञातमें मृत्यु निमित्त है, और अग्निहोत्रीसे पृथक् मरणसे अशौच लगता है, इत्यादि वाक्योंका विरोध आता है ॥ स्मृत्यर्थसारमेंभी लिखा है कि, जन्म वा मरणके पहले दिनसे पीछे ज्ञान होय तो पुत्र आदिकी पवित्रता

इति ॥ षडशीतावपरार्के चैवम् ॥ दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः—"मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा। अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥" जनने त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव 'नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि' इति देवलोक्तेः। पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव "निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः॥" इयि मनूक्तेः॥ तच्चातिक्रान्ताशौचं दशाहादिजात्याशौचविषयम् ॥ न त्वनुपनीतादिनिमित्तत्रिरात्रादौ—'उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम्' इति व्याघ्रोक्तेः ॥ 'निर्दशं ज्ञातिमरणम्' 'अतिक्रान्ते दशाहे तु' इति मनूक्तेश्च ॥ माधवीये देवलस्तु— "आ त्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी ततः। परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुध्यन्ति" इत्याह ॥ तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था। इदं चैकदेशे ॥ देशान्तरे तु स्नानमात्रम् ॥ "देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ। मृते स्नानेन शुध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः॥" इति पराशरोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः ॥ स्नानं वत्सरान्ते "अर्वाक्त्रिपक्षात्त्रिनिशं षण्मासाच्च दिवानिशम्। अहः संवत्सराद-

---

शेषसे होती है, षडशीति और अपरार्कमेंभी ऐसेही लिखा है, दशदिनसे उपरान्त प्रतीत होय तो वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि, तीन महीनेतक सुननेमें त्रिरात्र, छः महीनेतक पक्षिणी, नौ महीनेसे पूर्वतक एक दिन अशौच लगता है और इसके पीछे स्नानसे पवित्रता होती है. जन्ममें तो अतिक्रांत अशौच लगताही नहीं, कारण कि, देवलने लिखा है कि, प्रसवके अशौचमें दिनोंके बीतनेपरे अशुद्धि नहीं होती. पिताके मरनेमें स्नान तो वहांभी होता है कारण कि, मनुने लिखा है, कि, दशदिनके उपरान्त ज्ञातिका मरण और पुत्रजन्मको सुनकर सवस्त्र स्नान करके उसी क्षणमें मनुष्य पवित्र होता है, वह अतिक्रांताशौच दशाह आदि जातिके अशौचविषयमें है. और अनुपनीत आदिके त्रिरात्र इत्यादि अशौचमें नहीं है, कारण कि, व्याघ्रका कथन है कि, यज्ञोपवीतीको तो अतिकालका अशौच पूर्वोक्तसे विषम लगता है. और मनुनेभी दश दिनके पीछे ज्ञातिमरण, और दश दिनके उपरान्त सुने तो स्नानमात्रसे शुद्धि कही है ॥ माधवीयमें देवलका यह कथन है—तीन पखवारेसे सुने तो त्रिरात्र, छः महीनेतक पक्षिणी, फिर वर्षतक एक दिन, इसके अनन्तर स्नानसे पवित्रता होती है. वहां विपत्ति और विना विपत्तिके विषयसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यहभी एक देशमें है देशान्तरमें तो स्नानमात्र कहा है, कारण कि, यह पराशरने लिखा है कि, देशान्तरमें मृतकको सुनकर और नपुंसक वानप्रस्थ संन्यासीका मरण और गर्भके स्रावमें गोत्री स्नानसे पवित्र होते हैं यह विज्ञानेश्वरका मत है. वर्षके पीछे स्नान है, कारण कि, विष्णुने लिखा है कि, तीन पखवारेसे पहले तीन रात, छः महीने तक दिनरात, वर्षसे पहले देशा-

षांगे देशान्तरमृतेष्वपि॥"इति विष्णूक्तेरिति माधवः ॥ इदं सपिण्डानां देशान्तरे स्नानं सोदकानामिति युक्तम् ॥ लक्षणं त्वाह बृहस्पतिः–"महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च" इति ॥ एतत्सर्वं मातापितृभिन्नविषयम् । 'तयोस्तु पितरौ चेत्' इति पूर्वपैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्णमेव दशाहादि ॥ स्मृत्यर्थसारेपि–'मातापितृमरणे दूरदेशेपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति । शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु–"ऊर्ध्वं संवत्सराद्याद्बन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु ॥" इति देवलोक्तेः । पित्रोरब्दमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमेकाहः । बन्धुर्माता पिता भर्ता च । पूर्वोक्तदशाहस्तु कलिङ्गादिदेशपर इत्याहुः ॥ ते बन्धुपदस्य पुत्रादिपरत्वे मानाभावादुपेक्ष्याः । सापत्नमातुस्तु दक्षः–"पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः । संवत्सरे व्यतीतेपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" 'हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवम्' इति

न्तरमें मृतक हुओंका एक दिन अशौच होता है यह माधवका मत है, यह सपिंडोंके निमित्त है देशान्तरमें समानोदकोंको तो स्नान है ॥ उसका लक्षण बृहस्पतिने लिखा है कि, जहां महानदीका अन्तर हो, वा पर्वत बीचमें हो और वाणीका भेद हो उसे देशान्तर कहते हैं, कोई साठ योजन लम्बा, और कोई चालीस योजन, और कोई तीस योजनका देशांतर कहते हैं, यह सब माता पितासे भिन्नके विषयमें जानना उनके माता पिता मृत्यु हुये होंय तो इस पूर्वोक्त पैठीनसिस्मृतिके वाक्यसे पुत्रोंको सदा दशाह आदि अशौच लगता है ॥ स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, मातापिताके मरणमें दूर देश और वर्षके पीछे भी पुत्र दशाह आदि पूर्ण अशौच करे, स्त्री पुरुष और परस्पर सवर्ण और उत्तम वर्णकी पत्नियोंमें भी ऐसेही है. शुद्धितत्त्व आदि गौड तो यह लिखते हैं कि, प्रथम वर्षके उपरांत यदि मृतक हुआ बंधु श्रवण कियाजाय तो एक दिन अशौच. लगता है, और वह संन्यासियोंको नहीं लगता, इस देवलके वाक्यसे पिता माताका अशौच वर्षके बीचमें त्रिरात्र और पीछे एक दिन लगता है, बन्धुपदसे पिता माता भर्ताको जानना, पूर्वोक्त दशादिनका अशौच तो कलिंग आदि देशमें होता है, वे इस निमित्त उपेक्षा करने योग्य हैं कि, बंधुपदको पिता आदिके बोधक होनेमें प्रमाण नहीं है, सपत्नीके अशौचमें तो दक्षका वाक्य है कि हे द्विजश्रेष्ठ ! माताके सिवाय और पिताकी पत्नी मरे तो वर्षदिनके उपरांतमें शुद्धि होती है, मातासे भिन्न हीनवर्णकी सपत्नियोंमें भी ऐसेही लिखा है, स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसेही लिखा है कि, पिताकी

स्मृत्यर्थसारे ॥ केचित् 'पितुः पत्न्यां प्रमीतायामौरसे तनये तथा' इति ब्राह्मोक्तेरौरसेपीदमाहुः ॥ षडशीतावप्येवम् । एतत्सर्ववर्णतुल्यम् 'तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च' इति व्याघ्रोक्तेः ॥ अशौचसंपातनिर्णयः । अथाशौचसंपाते उच्यते ॥ तत्र शावे शावं, सूतके सूतकम् ॥ शावे सूतकं सूतके शावं वा ॥ तत्राप्युत्तरं कालतः पूर्वेण समं न्यूनमधिकं चेति द्वादश भेदाः ॥ यद्येकदिने समं न्यूनमधिकं वाशौचद्वयं तत्र तंत्रेणान्यसिद्धिः ॥ द्वयोरेककालत्वात् । यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावे जननं वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सु पक्षेषु पूर्वशेषेण शुद्धिः ॥ 'अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ अन्तरा ज्ञाते इत्यर्थः ॥ ज्ञातस्यैव जननादेर्निमित्तत्वात् ॥ पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्योत्पन्ने जाते तूत्तरमेव कार्यम् ॥ शुद्धितत्त्वेप्युक्तम्—'पूर्वाशौचान्तरुत्पन्नं समानं लघु वा निमित्तं तत्कालादुपरिश्रुतं स्वाशौचहेतुरेव । अज्ञातं तु न' 'अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन' इत्यस्याशौचसांकर्येपि प्रवृत्तेः । तेनाज्ञानाद्वृषोत्सर्गादौ कृते पश्चाज्ज्ञातेपि नावृत्तिरिति ॥ माधवीये यमोपि—"जनने जननं चेत्स्यान्मरणे मरणं तथा । पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जनम् ॥"

पत्नी मृतक होजाय तो औरसपुत्रको ऐसेही अशौच लगता है, इस ब्राह्मके वाक्यसे कोई और सपुत्रको भी यह त्रिरात्रका अशौच. लिखते हैं, षडशीतिमें भी ऐसेही कहा है, यह सब वर्णोंमें बराबर है, कारण कि, व्याघ्रने कहा है कि, अतिक्रान्ताशौच सब वर्णोंको समान हुआ करते हैं॥ अब अशौचका संपात वर्णन करतेहैं, मृत्युमें मृत्यु, सूतकमें सूतक, मरणमें सूतक, सूतकमें मरण उनमें भी पीछेतक पूर्वके सामन न्यून वा अधिक ये बारह १२ प्रकारके संपात अशौच कहातेहैं. यदि तुल्य न्यून वा अधिक दो अशौच एक दिन होजांय तो दोनों एक समयमें होनेके तन्त्रसे दूसरेकी भी सिद्धि होतीहै, जब द्वितीय आदि दिनोंमें दूसरा अशौच सजातीय होजाय वा मृत्युके दिनही सूतक होजाय वा न्यून समयका दूसरा अशौच होजाय तो इन छहों पक्षोंमें पूर्वके पूर्ण होनेसे शुद्धि होतीहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि,मध्यमें जन्म वा मृत्यु होजाय तो शेषदिनोंमें ही शुद्धि होती है, बीचमें जानलिया हो यह अर्थ है,कारण कि, जन्म आदिका ज्ञान होना अशौचका कारण है पूर्व अशौचके उपरान्त मध्यमें उत्पन्न हुयेका ज्ञान होय तो पीछे अशौच करना चाहिये ॥ शुद्धितत्त्वमें भी लिखाहै कि, पूर्व अशौचके बीचमें हुयेकी तुल्य वा लघु निमित्त अशौच, उसके समयसे पीछे श्रवण किया होय तो वह अपने अशौचका कारण है, और ज्ञान न हो तो हेतु नहीं होता, कारण कि, श्राद्ध आदिमें विना जाने कदाचित् भी दोष नहीं होताहै. इसकी अशौचके सांकर्यमें भी प्रवृत्ति है, इससे अज्ञानसे वृषोत्सर्ग आदि करनेपर पीछे उसके ज्ञान होनेपर भी उसकी आवृत्ति नहीं होती, माधवीयमें यमका लेख है कि, जन्ममें जन्म और मरणमें मरण होजाय तो पहलेके शेषसे शुद्धि होती है, उत्तर अशौच नहीं लगता, यहां कोई

अत्र केचित्-"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम्" इति मनुपराशराद्यैर्दशाहग्रहणात्पूर्णाशौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः । त्र्यहाद्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिरित्याहुः ॥ हरदत्तोप्येवमाह ॥ गौडा अप्येवम् ॥ तन्न ॥ याज्ञवल्क्यादिवशेन दशाहस्य तुल्यकालाशौचोपलक्षणत्वात् । "समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत्॥असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा॥" इति माधवीये शंखोक्तेः ॥ अपरार्कमिताक्षरादिविरोधाच्च ॥ यदा तु सूतके शावं समन्यूनमाधिकं वा तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः । तदाहांगिराः-'सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतके ॥ " षट्त्रिंशन्मते-"शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥" चतुर्विंशतिमतेपि'-'मृतेन शुध्यते जातं न मृतं जातकेन तु ॥' अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि शावं, तदा पूर्वेण शुद्धावपि तन्निमित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव ॥ 'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्' इति कौर्माच्च ॥ गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रिरपि-"सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥ " अत्र

यह लिखते हैं कि, दशदिनके भीतर फिर मरण वा जन्म होजाय तो तितने कालतक ब्राह्मण अशुचि रहता है, इतने उस प्रथमके दश दिन न हों.इन मनु पराशर आदिके वाक्योंमें दशाह पदका ग्रहण किया है, पूर्ण अशौचमें भी पूर्वशेषसे शुद्धि होती है, और तीन दिन आदि अल्प अशौचके सम्पातमें तो पूर्वशेषसे पवित्रता होतीहै ॥ हरदत्तने भी ऐसेही लिखा है, गौड भी ऐसेही कथन करते हैं, सो उचित नहीं कारण कि, याज्ञवल्क्य आदिके वाक्योंसे दशाहपद समान कालके अशौचमें कहा है, और माधवीयमें शंखका कथन है कि, समान अशौचके संपातमें प्रथमसे समाप्त करै, और असमान अशौचको दूसरेसे धर्मराजके वचनानुसार समाप्त करै, और अपरार्क और मिताक्षरा आदिकाभी इससे विरोध है. जब सूतकमें मरणाशौच तुल्य न्यून वा अधिक होजाय तो पहलेकी पूर्तिसे पवित्रता होतीहै, यही अंगिराने लिखा है कि, सूतकमें मृतक और मृतकमें सूतक होजाय तो मृतकसे लेकर सूतक करै, सूतकसे मृतक न करना चाहिये. षड्विंशका कथन है कि, मरणके अशौचमें यदि सूतक होजाय तो मरणके अशौचसे सूतक शुद्ध होताहै, सूतकसे मृतक नहीं ॥ चतुर्विंशतिके मतमें भी कहाहै कि, मरणसे जातक पवित्र होताहै, जातकसे मृतक नहीं, इससे जब जन्म दशाहके मध्यमें वा उसके अन्तमें मरणाशौच होजाय तब पहलेकी पूर्तिसे शुद्धि होनेपर भी उसके निमित्तको अस्पृश्यत्व होता है. कूर्मपुराणमें भी लिखाहै कि, मरण और जन्मके योगमें मरण बडा होता है, गौतमकी व्याख्यामें वृद्ध अत्रिकाभी कथन है कि, सूतकसे दूना मरण अशौच, और मरणसे दूना आर्तव, आर्तवसे दूनी सूती और उससे भी दुगुना मृतकके दाह कर-

पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्पृश्यत्वाधिक्यादित्यर्थः ॥ षडशीतावपि 'स्वभाववहुसूतिस्तु न्यूनशावविशोधिनी ' इति ॥ रात्रिशेषादौ वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्वहुत्वं न स्वभावेन । अतस्तत्र न्यूनशावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावेनेत्युक्तम् ॥ ब्राह्मेपि-"नागन्तुकैरथाहोभिराशौचमपनुद्यते । न च पातनिमित्तेन शावस्यान्यस्य शोधनम्" इति ॥ एवं नव पक्षाः ॥ यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं विजातीयं वा दीर्घकालमुत्तरं, तदाप्युत्तरं पूर्णं कार्यम्, न पूर्वेण शुद्धिः॥ "स्वल्पाशौचस्य मध्येतु दीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुध्यति" इत्युशनसोक्तेः॥तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकेपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्यत्वं च भवत्येव ॥ शुद्धिविवेके तु-'शावेन शुध्यते सूतिः' इति प्रागुक्तेस्तत्राप्युत्तराशौचनिवृत्तिरुक्ता॥ तन्न ॥ उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् ॥ माधवीये यमोपि-"अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्यदि ॥ आशौचं पुनरागच्छेत्तत्समाप्य विशुध्यति ॥" हारीतोपि-'गुरुणा लघु शुध्येत्तु लघुना

नेवालेको होताहै. यहां पूर्वसे उत्तर उत्तरकी निवृत्ति नहीं होती कारण कि, स्पर्शका अभाव अधिक है ॥ षडशीतिमें भी कहा है कि, स्वभावसे अधिक सूति न्यून मरणके अशौचकी विशोधनी होती है, रात्रिशेष आदिमें बडे दो तीन आनेवाले दिनोंसे सूति अधिक होती है,कुछ स्वभावसे नहीं इससे वहां न्यून मृत्युकी भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती, यह कहनेको ' स्वभावेन ' यह पद कहाहै ॥ ब्राह्मका कथन है कि, आनेवाले पापके दिनोंसे अशौच दूर नहीं किया जासकता और पातके कारणसे शाव अशौच दूसरेका शोधक नहीं है, ऐसे नौ ,पक्ष है जब तीन दिन आदि अल्पाशौचके बीचमें सजातीय वा विजातीय दीर्घ अशौच पीछेसे होजाय, तो भी पिछलाही पूर्ण मानना चाहिये, पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती, कारण कि, उशनाने कहा है कि, अल्प अशौचके बीचमें दीर्घाशौच होजाय तो पूर्वाशौचसे शुद्धि नहीं होती, अपने कालसे शुद्धि होती है, इसमें तीन दिन आदि मरणाशौचके मध्यमें दशाह आदि सूतक होनेपर भी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती यह अपरार्कका कथन है, मरण निमित्तका अस्पर्श तो होताही है ॥ शुद्धिविवेकने तो यथार्थ मरणमें सूति पवित्र होती है इस पूर्व कहे उस स्थलमें भी उत्तराशौचकी निवृत्ति लिखी है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, उत्तर अधिक समयका होनेसे बलवान् है, माधवीयमें यमका भी कथन है कि, पापकी वृद्धिवाले अशौचको पिछलेसे समाप्त करै, जैसे त्रिरात्राशौचमें दशाहका प्रवेश होजाय तो फिर अशौच आजाता है, उसको पूर्ण करके शुद्ध होता है, हारीतने भी लिखा है कि, औरके मध्यमें गुरु अशौच होजाय तो लघुसे वह गुरु

नैव तद्गुरु' इति गुरुत्वं लघुत्वं च कालकृतमेव ॥ पूर्वानुरोधात् ॥ एतच्च हरदत्तेन स्पष्टमुक्तम् ॥ मिताक्षरायामप्येवम् ॥ यत्तु "अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसी । मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्" इति हारीतकौर्मादि ॥ तत्रास्पृश्यत्वाभिप्रायं शावस्य गुरुत्वं ज्ञेयम् ॥ क्वचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह देवलः—"परतः परतोऽशुद्धिरघवृद्धौ विधीयते । स्याच्चेत्पञ्चतमादह्नः पूर्वेणैवात्र शिष्यते ॥" अस्यार्थः ॥ अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतः शुद्धिः परमाशौचम् ॥ यदि पूर्वशौचमुत्तरस्य पञ्चमदिनात्परतोऽनुवर्तते तदा पूर्वेणैव शुद्धिः ॥ पूर्वस्योत्तराशौचार्धाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः ॥ यथा षष्ठमासे गर्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिः॥ यथा वा त्र्यहमध्ये स्रावपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित् ॥ तन्न ॥ दशाहावधिपूर्वशेषशुद्धिविवेकेवाक्यविरोधात् ॥ षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमन्त्यरात्रौ तु द्व्यह इत्यनौचित्याच्च ॥ अस्मद्गुरवस्तु पञ्चतमादह्न अशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादि चेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः शिष्यते दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादिपाते त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्व्यहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः । कश्चित्पूर्वशेषेण शुद्धे-

---

सूतक शुद्ध नहीं होता, गुरु और लघु कालसे समझने, कारण कि, पूर्व ऐसेही लिखा है यह हरदत्तने स्पष्ट लिखा है ॥ मिताक्षरामें भी इसी प्रकार लिखा है कि, जो पापोंका मेल एक साथ होजाय तो शुद्धिकोही गुरु न जानना मरण और जन्मके योगमें मरण ही अधिक गुरु होता है, यह हारीत कूर्मपुराण आदिका कथन है, वहां: अस्पर्शके अभिप्रायसे ही मरणाशौचको गुरु जानना, कहीं थोडे कालसे भी दीर्घकालके अशौचकी निवृत्ति देवलने लिखी है कि, पापकी वृद्धि होनेपर पिछले १ से शुद्धि लिखी है, यदि पांच दिनके मध्यमें होय तो पूर्वका ही शेष रहता है इसका अर्थ यह है कि, दीर्घ अशौचमें पिछले। अशौचसे शुद्धि होती है, यदि प्रथम अशौच पिछलेके पांच दिनसे परे तक हो तब पूर्वसे ही शुद्धि होती है, यदि पूर्वका अशौच आगेके अशौचके आधेसे अधिक समयतक व्याप्त होयतो पूर्वके शेषसे शुद्धि होती है जैसे छठे महीनेमें गर्भपातके छः दिनके अशौचमें दशाहका पात होजाय, तो पहलेसे उत्तरकी निवृत्ति होती है, और वो तब, जब तीन दिनके बीचमें गर्भस्राव का पात निमित्त चार वा पांच दिनका आन पडे यह कोई कहते हैं, सो उचित नहीं॥ कारण कि, दशदिनपर्यन्त पूर्व शेषकी शुद्धिसे एक वाक्यका विरोध कहा है, और छः आदि दिनोंमें पूर्ण अशौच और अन्त्यरात्रिमें तो दो दिन, यह उचित नहीं. हमारे गुरु तो यह लिखते हैं कि, पांचवें दिनसे प्रथमतक उससे न्यून तीन दिन आदि अशौच होजाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसेही अशुद्धि शेष रहती है, दशाह आदिके रात्रि शेषमें तीन दिन आदि अशौच

रपवादमाह गौतमः-'रात्रिशेषे इति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति ॥ प्रभातेऽन्त्यामे 'रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्' इति शातातपोक्तेः ॥ इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यम् ॥ अत्र केचित् ॥ रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः ॥ 'अहः शेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः' इति शंखलिखितोक्तेः ॥ 'अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमाद्दिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनोक्तेः ॥ "पुनः पाते दशाहात्प्राक् पूर्वेण सह गच्छति। दशमेऽह्नि पतेद्यस्याद्द्वयात्स विशुध्यति" इति ॥ 'प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः'इति देवलोक्तेश्च ॥ नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यदिनपरौ ॥ तेन क्षत्रियादावपि तथेत्याहुः ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ अन्ये त्वाहुः-"अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्"इति। मनुपराशराद्यैर्दशमादिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोधः स्पष्ट एव ॥ विरोधे च-'यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजम्'इति ।'कलौ पाराशरस्मृतिः'इत्यनेन पूर्ववचसां बाधः॥

होजाय तो ऐसे विषयमें पूर्वसेही अशुद्धि शेष रहती है, दशाह आदिके रात्रिशेषमें तीन दिन आदि लघु अशौचोंका परस्पर रात्रिशेषमें योग होय तो आदिकी शुद्धि नहीं होती कहीं तो पूर्वशेषसे शुद्धिका अपवाद गौतमने लिखा है कि, रात्रिके शेषमें होय तो दो दिनमें, और पिछले प्रहर (प्रभात) में होय तो तीनदिनमें पवित्रता होती है, और शातातपने भी यही लिखा है कि, रात्रिके शेषमें दो दिनसे, और पहरके शेषमें दूसरा अशौच होय तो तीन दिनमें शुद्धि जाननी, यह मरणाशौचके पीछेमें सूतक वा मृत्यु होजाय तो दोनोंके समान है इस स्थलमें कोई रात्रिपदसे दिनरात ग्रहण करते हैं कारण कि, शंखलिखित आदिने यह लिखा है कि, दिनके शेषमें दो दिनमें, और प्रभातकाल होय तो तीन दिनमें शुद्धि होती है ॥ अब यदि दश दिनके बीच नव दिनतक होय तो दश दिन अशौच लगता है, तब बौधायनके इस कथनसे दो दिनसे और प्रभातमें होय तो तीन दिनसे शुद्धि होती है और देवलने भी कहा है कि, दश दिनसे प्रथम दूसरा अशौच आनलगे तो पहलेके संग जाता है जो दशवें दिन होय तो दो दिनमें, और प्रभातमें होय तो तीन दिनमें शुद्धि जाननी यह दश दिनका विधान है. नवम दशम शब्दोंसे अंत्यका निकट दिन और अन्त्य दिन लेना तिससे क्षत्रिय आदिमें भी इसी प्रकार जानो, माधवीयमें भी ऐसेही लिखा है और तो यह लिखते हैं कि, दश दिनके भीतर फिर मरण वा जन्म होजाय तो तबतक ब्राह्मण अशुद्ध रहता है जबतक दश दिन न बीते ॥ इस कथनसे मनु पराशर आदिने दशवे दिनसे पिछलेकी शुद्धि मानीहै इससे विरोध स्पष्ट है, और विरोधमें जो मनुने लिखाहै वह औषधवत् जानना चाहिये और कलियुगमें पराशरकी स्मृति यथार्थ है इससे पहले वाक्योंका

अत एव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम् ॥ साकरत्वेपि जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं वा युगान्तरविषयं वास्तु ॥ तेन गौतमीये रात्रिशब्दो नाहोरात्रपरः॥ 'रात्रिमात्रावशिष्टे' इति मिताक्षरोक्तेश्च ॥ न कुकविकृतिरिवान्यथा व्याख्या युक्ता माधवस्तु 'अनिर्गतदशाहम्'इति पूर्वस्वग्रंथविरोधादुपेक्ष्य इति। अस्मत्पितृचरणास्तु बौधायनीये—'आनवमाद्दिवसात्' इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य दशममेवाहुः। द्व्यहादिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् तस्य च न्यायतो द्वितीयदिनादेव प्रवृत्तेः । अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम् । शंखलिखितोक्तौ देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेह्नि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः । दशम्यां पिता नाम कुर्यादितिवत् । तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो नापि मिताक्षराद्यैरित्याहुः ॥ अपरार्के निर्णयामृतस्वरसोप्येवम् ॥ यत्तु तत्रैव ब्राह्मे—"आद्यं भागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके । द्वितीये पतिते त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ॥ अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः । एवमेव विचार्यं स्यान्मृतके मृतकान्तरे ॥ मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं प्रतिपद्यते । सूतकस्यान्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते ॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः" इति अस्यार्थस्तत्रैवोक्तः, पूर्वाशौचचरमाहोरात्रस्य दिनरूपे

बाधहै, इससे वाचस्पतिने उन कथनोंको बडे २ ग्रन्थोंका नहीं कहाहै और शास्त्रोंके होंय भी तो जातिमात्र ब्राह्मणके विषयमें देशांतरमें वा अन्ययुगोंमें उनकी सफलता होगी तिससे गौतमके कथनमें रात्रिशब्द दिनरातका वाचक नहीं है कारण कि, मिताक्षरामें रात्रिमात्रका शेष कहाहै, सो यह बात कविकी रचनाके तुल्य अन्यथा व्याख्या करने योग्य है ॥ माधव तो जब दशदिन न बीतेहों इस पहले अपने ग्रन्थको विरोधसे वह त्यागके योग्य है ऐसा कहते है, हमारे पिताके तो 'आनवमाद्दिवसात्' इस वाक्यसे दूसरे अशौचका नवम और प्रथमका दशम दिन केतेहैं, कारण कि, दो दिन आदिकी वृद्धि पूर्वशेषका अपवाद है, और न्यायसे उसको प्रवृत्ति दूसरेही दिनसे प्रारम्भ होतीहै, इसके पीछे यह वाक्य दशम रात्रिका बोधक है. शंख लिखित और देवलके कथनोंमें दिनके शेषसे, और दशवें दिन रात्रिशेषमें सूतक लगजायगा, जैसे दशमीको पिता नाम करै, यह इस कथनसे न मनुआदिके सगके विरोध है न मिताक्षरा आदिके संग विरोध है यह कहते हैं ॥ अपरार्कमें निर्णयामृत आदिकाभी आशय ऐसाही है, जो तो वहां ही ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि, प्रथमके दोभागतक सूतकमें सूतक होजाय तो प्रथम सूतकसे पवित्रता जाननी चाहिये, इससे परे दूसरे सूतकसे शुद्धि लिखी है, यही विचार एक मरणमें दूसरेके मरनेका है, मरणके मध्यमें जहां सूतक होजाय वा सूतकके बीचमें मृत्यु होजाय वहां सूतकके उपरान्त सब वर्णोंकी शुद्धि होती है, इसका अर्थ वहांही लिखा है कि, पहले अशौचसे आगे अहोरात्रके दिन

आद्यभागद्वयेऽन्याशौचपाते पूर्वेण शुद्धिः भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीया-त्पूर्वभिन्नात्सूतकान्ताद्द्व्यहादिरूपाच्छुद्धिरिति ॥ अपरार्के त्वाशौचकालं त्रिधा विभज्य निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम् ॥ अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ अतः पूर्वाशौचान्त्यरात्रावन्याशौचेऽहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनद्वय-मिति भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः ॥ एतत्संपूर्णाशौचसंपाते एव ॥ रात्रिशेषे त्रिरा-त्रादिसंपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवा-दाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः ॥ षडशीतौ तु दशाहान्ते ऽप्यहपातेपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता—"रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत् । ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वायामशेषे दिनत्रयम्" इति ॥ अनधिकं समं न्यूनं वा तदुच्छम् ॥ निर्मूलत्वा-दन्ते पाक्षिण्यादिपातेपि द्विरात्रादिवृद्ध्यापत्तेश्च ॥ पूर्वाशौचान्तर्वर्धिताद्वित्रिदि-नमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वादधिकेनैव शुद्धिः ॥ नच वर्धितस्य पूर्वशेषत्वं शंकनीयम् ॥ रात्रिशेषपूर्वशेषशुद्ध्यपवादे नैमित्तिकावृत्तिन्यायोज्जीवनात् ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः ॥ अपवादान्तरमाह शंखः—"मातर्यग्रे प्रमीतायाः-

---

रूप पहले दो भागोंमें और अशौच होजाय तो पूर्वसे शुद्धि होती है, दो भागसे आधी-रातमेंसे आधीरातमें सूतक और दूसरा होजाय तो दूसरेसे शुद्धि है, पूर्वभिन्न सूतकके पीछे दो दिन आदि प्रथमकी अशुद्धि है ॥ अपरार्कमें तो अशौच समयके तीन भाग करके निर्गुणोंके विषयमें यह वाक्य लिखाहै, इस वाक्यको जो अप्रमाण कहै, वह मूर्खका प्रलाप है, इससे पूर्वाशौचकी पिछली रातमें अन्य अशौच होजाय तो दो दिन अधिक अशौच लगताहै, रात्रिके पिछले प्रहरमें होय तो तीन दिन अशौच लगताहै, यह मार्ग भट्टचरणोंने लिखा है, परन्तु तभी जानना जब सम्पूर्ण अशौचके संयोगमेंही हो, और रात्रि शेषमें तीन दिन आदिका संयोग होय तो पूर्व शेषसेही शुद्धि जानो कारण कि, दो २ दिन आदिकी वृद्धिको पहले वाक्योंसे दशदिनके विषयमें होनेसे अपवादका नहीं होसकता है, इससे शेषसे शुद्धि तुल्यताके प्रवृत्तिसे होती है ॥ षडशीतिमें तो दशाहके पीछेमें तीन दिनके अशौचके योगमें भी दो तीन दिनकी वृद्धि लिखी है कि, रात्रिके शेषमें जब पहलेकी तुल्य वा न्यून अशौच लगता है तो पहलेसे दो दिन अधिक और प्रहरके पीछेसे होय तो तीन अधिक अशौच लगताहै, सो कुछ नहीं है कारण कि, वह वाक्य निर्मूल है. और पीछेसे पक्षिणी आदिके योगमें भी दो दिन आदिकी वृद्धि होजायगी, प्रथम अशौचके बीचमें बढे हुये दो तीन दिनके बीचमें बढा और अशौचका योग होजाय तो बढे हुएसे थोडा होनेसे अधिकसे ही पवित्रता होती है, यदि कोई यह शंका करै कि, बढा हुआ पूर्वका शेष है, सो उचित नहीं कारण कि, रात्रिके शेष पूर्व शेषकी शुद्धिका अपवाद है न्यायसे नैमित्तिक अशौचका होनाहै, अपवादके न होनेमें उत्सर्गकी प्राप्ति यहां जाननी चाहिये ॥ अपवादान्तर शंखने कहा है कि, माता प्रथम मरी हो और अशुद्धिमें हो, पिता मृतक हो

मशुद्धौ म्रियते पिता । पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥" पादत्रयं स्पष्टम् । तुर्यस्य त्वयमर्थः पित्राशौचमध्ये मातुर्मृतौ पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यादिति ॥ अत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेः पितुराशौचाभावान्मातृमरणे न पक्षिणी ॥ किंतु पूर्णमेवाशौचम् ॥ इयं च पक्षिणी तृतीयादिदिनपरा ॥ नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादपूर्वशेषापवादत्वादिति पितृचरणाः ॥ सपिण्डाद्याशौचेन मातापित्रोराशौचापगमो नास्त्येव ॥ एवं भर्तुरपि ॥ इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वं मातृमरणे ज्ञेया । दशम्यां रात्रौ तत्प्रभाते वा मातृमरणे त्र्यहरूपहसमुचिता पक्षिणीति कश्चित् ॥ तन्न ॥ संख्यान्तरोपजननापत्त्या त्र्यहादिश्रुतिबाधापत्तेः । अत एवैका देया षड् देया इत्यादौ श्रुतसंख्याबाधापत्तेः समुच्चयो निरस्तो द्वादशे । गुरुणि लघोरन्तर्गतेः–'गुरुणा लघु शुद्ध्येत्' इत्युक्तेश्च ॥ मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणी " यदा नारी विशेदग्निं म्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि" इति पृथ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः ॥ तत्रैव षडशीतिमतेपि–"मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिं-

जाय तो पिताके शेष अशौचसे पवित्रता होती है. माताकी पक्षिणी अशौच करै, इस श्लोकके तीन पाद तो स्पष्ट हैं चौथेका यह अर्थ है, पिताके अशौचमें माताकी मृत्यु हो तो पिताके अशौच उपरान्त माताकी पक्षिणी विशेषरूपसे करै, इस स्थलमें अशुद्धी पद कहनेसे आत्महत्याकारी पिताके अशौचके अभावसे माताके मरनेमें पक्षिणी न करनी किन्तु पूर्ण अशौच करै. यह पक्षिणी तृतीयादि दिनपरत्व जाननी न कि, पहले दो दिनमें निमित्त नहीं नैमित्तिक प्राप्तके न्यायसे उसका अपवाद है, यह हमारे पिताका कथन है सपिण्डादिके अशौचमें मातापिताके अशौचका अभाव नहीं होता, इसी प्रकार पतिकाभी जानना चाहिये, यह पक्षिणी दशमें दिनसे प्रथम न माताके मरणमें जाननी चाहिये. दशमीकी रात वा उसके प्रातःकालमें माताकी मृत्यु होय तो तीन दिनसहित पक्षिणी करनी चाहिये यह किन्हीका मत है, सो ठीक नहीं ॥ कारण कि, दूसरी संख्या उत्पन्न होनेसे तीन दिन आदिकी श्रुतिका बाध प्राप्त होगा, इस कारण एक देनी छः देनी इत्यादि श्रुतिका बाध प्राप्त होनेसे बारहमें उसके समुच्चयका निरास लिखा है, और लघु अशौचमें गुरु अशौच आजाय तो गुरुसे लघु शुद्ध होता है यह भी लिखा है कि, माता पतिके साथ मृतक हो तो पक्षिणी न करै, जो स्त्री पतिके प्रियकी इच्छासे अग्निमें प्रवेश करै तो पतिके अशौच क्रमसे उसका अशौच करना, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें लघुहारीतका कथन है, वहां भी षडशीतिके मतमें भी कहा है जो नारी मृतक पतिके पीछे अग्निमें प्रवेश करै, वहां पक्षिणी न करनी वह पिताके अशौचसे ही शुद्ध होता है, पुत्र वा और कोई जो उसे अग्नि दे उसके पिताके अशौच-

स्तयोः । नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु समापयेत् ॥ " गृहीतांशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे नायं निर्णयः ॥ अतिक्रान्तकालादिद्यमानानिमित्तस्य बलवत्त्वात् ॥ द्वादशवर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये सपिण्डमरणेप्येवम् ॥ यत्तु अपरार्के ब्राह्मे-"ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत्" इति तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्राशौचपरम्, इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेल्पाशौचपरमित्यपरार्कः ॥ शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम् ॥ सहगमने तु संपूर्णम् । युद्धहतस्य सद्यः शौचेन्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वात् ॥ भर्तुरपि त्र्यहेण पिण्डदानम् ॥ एकचितौ तु सद्यः शौचमित्याहुः ॥ अन्यत्राप्युक्तम् ॥ पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम् "पूर्वाशौचेन या शुद्धिः सूतके मृतके च सा । सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि ॥" निर्णयामृते स्मृतिसंग्रहेपि "इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना ॥" इदं मूल्येन दाहकरणे मातुलादिसंबन्धेन । दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक् ॥ वृद्धात्रिः-"सूतका-

तकही अशुद्धता है, नवश्राद्ध और सपिण्डी एकत्र करनी चाहिये, यदि प्राप्त अशौचवाले पुत्र पिताका संस्कार करै, और माता वा सपिण्डका मरण होजाय तो यह निर्णय नहीं जानना कारण कि अतिक्रान्त जिसका समय बीत गया हो उससे निमित्त विद्यमानवाला बलवान् है बारह वर्षके उपरान्त संस्कार अशौचके मरण सपिण्डमरणमेंभी यही अशौच है ॥ जो अपरार्कमें ब्रह्माका कथन है कि, ऋग्वेदके कथनसे साध्वी स्त्री आत्मत्याग न करै, तो तीन दिनके अशौच उपरान्त शास्त्रमें कहे श्राद्धको प्राप्त होती है, वह वाक्य पतिके अशौच उपरान्त चितामें प्राप्त होनेमें तीन दिनके अशौचमें जानना यह पृथ्वीचन्द्रका कथन है. अपरार्क तो यह लिखते हैं कि, ब्राह्मणी आदि क्षत्रिय आदिके अनुगमनके अशौचमें यह वाक्य है शुद्धितत्त्वादिमें गौड तो यह कहते हैं कि, पतिके अशौच उपरान्त अन्वारोहणमें तीन रात और सहगमनमें सम्पूर्ण अशौच लगता है, और युद्धमें मृतक हुएका सद्यः अशौचमें अन्वारोहणमें ब्राह्मणके तीन रात कहनेसे पतिको भी तीन रातमेंही पिण्डदान दे एक चिता होय तो तत्काल शौच होता है और प्रथम कथन कर आये हैं पूर्वशेषसे शुद्धिका अन्यभी अपवाद षडशीतिमें कहा है कि, सूतक वा मृतकमें पहले अशौचसे जो शुद्धि होतीहै वह सूतिका अग्निका देनेवाला और प्रेतके पुत्रोंको त्यागकर है ॥ निर्णयामृत और स्मृतिसंग्रहमें भी कहाहै कि, सूतिका और अग्निके देनेवालेको त्यागकर इस प्रकार शुद्धि लिखीहै, यह मोललेकर दाह करनेमें है मामा आदिरूप संबंधसे दाह करनेमें तो त्रिरात्र होताहै, यह प्रथम कहआयेहैं. वृद्धात्रिने लिखाहै कि, सूतकसे दूनी मृत्यु और मृत्युसे दूनी आर्तव और आर्तवसे दूनी सूतिका उससे भी दूना अशुद्ध शवका अग्निसंस्कार है ऐसे ही अशौचके

द्विगुणं शावं शावाद्द्विगुणमार्तवम् ॥ आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः ॥" तथाशौचसंपातेपि न शावजनननिमित्तकार्यप्रतिबन्धः ॥ "आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ॥ कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति" इति प्रजापतिस्मृतेः॥आशौचं तु द्विविधेपि शातातपः—"अन्तर्दाहे च जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि। प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये जननं भवेत्। तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि ॥" मातुःपक्षिण्यां ॥ मध्ये पितुरेकादशाहं कुर्यात् आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेहनि' इति स्मृतेः॥ केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम्। विप्रादेस्त्वाशौचान्तर एकादशाहश्राद्धं नेत्याहुः ॥ अत एव विज्ञानेश्वरेण—'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्' इति शुचित्वं महैकोद्दिष्टाङ्गविप्रामन्त्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम् ॥ एवं वृषोत्सर्गशय्यादानादावपि। देवयाज्ञिकेन त्वाशौचान्तरेपि भवत्येवेत्युक्तम् ॥ आशौचापवादनिर्णयः। अथाशौचापवादः ॥ स च पञ्चधा ॥ कर्तृतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः विधानाच्च ॥ आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु "नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते" इति कौर्मोक्तेः। तुर्यपादे 'शावे वापि तथैव च' इति देवलपाठः। आशौचमन्त्यक-

---

संपातमें भी मृत्यु और जन्मनिमित्तक कार्योंका प्रतिबंध नहीं होताहै कारण कि, प्रजापतिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, अशौचकी प्राप्तिमें जब पुत्रजन्म होजाय तो कर्मके करनेवालेकी उसी समय शुद्धि होतीहै, और प्रथम अशौचसे शुद्ध होताहै ॥ दो प्रकारके अशौचमें भी शातातपने लिखा है कि, जन्मसे उपरान्त दश दिनके भीतर मृत्यु हो जाय तो प्रेतके निमित्त विधिसे पिण्डदान करै. माताकी पक्षिणीके बीचमें पिताका एकादशाह भी करना कारण कि. ऐसा स्मृतिने कहा है कि, अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहको प्रथम श्राद्ध करै, कोई तो यह लिखते हैं कि, यह क्षत्रिय आदिके विषयमें है, ब्राह्मण आदिको तो और अशौचमें एकादशाह श्राद्ध करनेकी विधि नहीं है, इसीसे विज्ञानेश्वरने दश पिंड देकर रात्रिके शेषसे शुद्ध होताहै, यह शुद्ध होना एकोद्दिष्टके अंग हैं, जो ब्राह्मणके निमंत्रणमें है यह कहकर शुद्धिको अंग कहाहै, इसी प्रकार वृषोत्सर्ग आदिमें भी जानना, देवयाज्ञिकने तो लिखा है कि, अन्य अशौचमें भी यह होताहै सो जानना चाहिये ॥ अब अशौचका अपवाद वर्णन करते हैं, वह पांच प्रकार कहा है कि, कर्तासे, कर्मसे, द्रव्यसे, मृत्युके दोषसे, विधिसे, प्रथमके दो ब्रह्मचारी यति आदिकोंमें है, कारण कि, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी और पतितके मृतक होनेपर महात्माओंने अशौच नहीं लिखाहै, यह कूर्ममें लिखाहै, चौथे पादमें देवलने यह पाठ लिखाहै कि, मरण अशौचमें यहां अशौचसे अन्त्यकर्मका उपलक्षण जानना कारण कि, देवलने कहा है कि, ब्रह्मचारीके मृतककी दाह आदि क्रिया न करनी

र्मोपलक्षणम् । "ब्रह्मचारी न कुर्वीत शवदाहादिकाः क्रियाः । यदि कुर्याच्चरे-त्कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च" इति देवलोक्तेः ॥ एतत्पित्राद्यतिरिक्तविषयम् ॥ "आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥" इति मनूक्तेः ॥ हारीतः-"आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥ मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम् ॥ भवत्यशौचं नैवास्य न चाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिदर्शितम् ॥" संवर्तः-" अन्यगोत्रोपसंबन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समाचरेत् ॥" निर्हरणमन्त्यकर्मपरम् ॥ एवं मातामहस्य-"यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति" इत्यपरार्के भविष्योक्तेः ॥ " मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् ॥ कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्" इति कालादर्शाच्च ॥ तत्रान्त्यकर्मनिमित्तमस्पृश्यत्वं दशाहमस्त्येव ॥ "सगोत्रो वासगोत्रो वा योग्निं दद्यात्सखे नरः । सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धचेत्तु दशमेऽहनि" इति दिवोदासोक्तवचनात् ॥ अत एव 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च' इति गौतमीये व्रतनिवृत्ते-

---

चाहिये, यदि करै तो कृच्छ्रव्रत और फिर संस्कार करै, यह पिता आदिसे भिन्नके विषयमें जानना कारण कि, मनुने लिखा है कि, आचार्य अपना उपाध्याय माता पिता गुरु इनका दाह आदि करके भी ब्रह्मचारी व्रतसे हीन नहीं होताहै ॥ इसी प्रकार नानाका भी करना कारण कि, हारीत कहते हैं आचार्य अपना उपाध्याय माता पिता गुरु इनका दाहादि करके व्रती व्रतसे वियुक्त नहीं होता, माता पिताका जो कहाहै कि, व्रत करनेवाला पुत्र व्रतमें स्थित हुआ भी पिण्डदान और जलक्रिया करै तो इसको अशौच नहीं लगता न अग्नि लुप्त होती है पूर्वकी समान विधिदर्शित स्वाध्याय करै. संवर्त कहतेहैं अन्य गोत्रके संबन्धसे जो प्रेतको अग्नि देताहै पिण्ड और जलदान करताहै वह दशाह करै अपरार्कमें भविष्यपुराणका कथन है कि, जिस प्रकार व्रतमें भी स्थित पुत्र पिताकी क्रिया करै, इसी प्रकार धेवता नानाकी करै, कालादर्शमें कहाहै कि, माता पिता उपाध्याय आचार्य और नानाके और्ध्वदैहिक कर्मको करके ब्रह्मचारी अपने व्रतसे पतित नहीं होता है वहां अंत्यकर्मका किया अस्पर्श तो दश दिनतक होताहीहै, कारण कि, वह वचन दिवोदासका वाक्य है कि, सगोत्री वा असगोत्री जो अग्नि दे, वह भी नवश्राद्ध करै, और दशवें दिन पवित्र होताहै इसीसे मृतकके कर्म करनेवाले ब्रह्मचारीको माता पिता गुरुको त्यागकर व्रतसे निवृत्ति है, इस गौतमके कथनमें व्रत निवृत्तिका निषेध है अशौचका नहीं है ॥ संध्या आदिका लोप तो

रेष पर्युदासो नाशौचस्य ॥ संध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति 'न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ "पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः । सुव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥ तेनाशौचं न कर्तव्यं संध्या चैव न लुप्यते । अग्निकार्यं च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः ॥" इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तिश्च ॥ अत्र कर्मानधिकाररूपाशौचनिषेध एव ॥ अपरार्कमाधवादयस्तु एकाहमाशौचमाहुः "आचार्यं वाप्युपाध्यायं गुरुं वा पितरं च वा ॥ मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥ कृत्वा पतति नो तस्मात् प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत् । अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः सह संवसेत् ॥ एकाहमशुचिर्भूत्वा द्वितीयेऽहनि शुध्यति ॥" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तदन्नभोजने तु प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचं च ॥ दिवोदासादयस्तु ब्राह्मोक्तेः प्रथमेह्नि संध्यादिलोपः "ब्रह्मचारी यदा कुर्यात् पिण्डनिर्वपणं पितुः । तावत्कालमशौचं स्यात् पुनः स्नात्वा विशुद्ध्यति" इति प्रजापतिवचनात् । द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवास्पृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्याहुः ॥ दशाहमस्पृश्यत्वेपि कर्माङ्गस्नानविधानार्थमेतदिति युक्तम् ॥ अन्त्यकर्माकरणे तु ब्रह्मचारिणः पित्रादिमरणेप्याशौचाभाव एव ॥ सोपि ब्रह्मचर्यकाल एव । समा-

---

नहीं लिखाहै, कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखाहै कि, सूतकमें ब्रह्मचारीको अपना कर्म कमी भी त्याग न करना चाहिये, और चंद्रिकामें यह सम्वर्तका भी वाक्य है कि, पिता और गुरुके मृतक होनेमें सुव्रत ब्रह्मचारी भी पुत्र विपत्तिके समयमें भी अग्निदान और जलदान करै, वह अशौच न करै, और सन्ध्या तो करै, और सायंसमय और प्रातःसमय प्रतिदिन अग्निहोत्र कर्म करै, यह कर्मके अनधिकार रूप अशौचका त्यागही है ॥ अपरार्क माधव आदिने तो एक दिनका अशौच माना है, कारण कि, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, आचार्य उपाध्याय गुरु पिता-माताको स्वयं दाह करके व्रतमें स्थित मनुष्य वहां भोजन करके भ्रष्ट होता है इससे प्रेतान्न भोजन न करै, और स्थानमें भोजन करै, और सूतकवालोंके संग न रहै, तो एकदिन अशुद्ध रहकर दूसरे दिन शुद्ध होजाता है, उनके अन्नका भोजन करै तो प्रायश्चित्त करै, फिर उपनयन करना पडता हैं और अशौच लगता है ॥ दिवोदास आदि तो ब्रह्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन सन्ध्या आदिका लोप होता है, यह कहते हैं. जब ब्रह्मचारी पिताका पिंडदान करै, उतने ही समयतक अशुद्ध रहता है, फिर फिर स्नान करके पवित्र होता हैं, इस प्रजापतिके कथनसे द्वितीय आदि दिनोंमें पिंडदानके समयही उसका अस्पर्श मात्र है, फिर नहीं होता, यह कहते हैं यह तो युक्त है कि, दशदिनके अस्पर्शमें भी कर्मका अंग स्नान करनेके निमित्त यह कथन है, अंत्यकर्म न करै तो पिता आदिके मरनेमें भी ब्रह्मचारीको अशौच नहीं है, वहभी ब्रह्मचर्यके समयमें है, समाव-

वर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां ऽप्याशौचं भवत्येव ॥ "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इति मनूक्तेः ॥ तत्रापि विकल्पः "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मे-"सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे । डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजः ॥" उपद्रवेऽत्यन्त-मरके ॥ 'उपसर्गमृते चैव सद्यः शौचं विधीयते' इति पराशरोक्तेः । उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः ॥ याज्ञवल्क्योऽपि-" आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते' इति मरणसमयेऽपि नाशौचम्॥ तथाच शुद्धिरत्नाकरे दक्षः-"स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥" अतः सति वैराग्य संन्यासोऽप्यातुरस्य भवतीति केचित् ॥ कर्मत आशौचनिर्णयः। अथ क्रमतः त्रिंशच्छ्लोक्याम्-"तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपनृपवद्दीक्षितर्त्विक्स्वदेशभ्रंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषक्कारुशिल्पातुराणाम् ॥ संप्रारब्धेषु दानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयनाद्युत्सवेष्वेत-

---

र्तनके उपरान्त तो प्रथम मरोंका तीन दिन अशौच लगताही है, कारण कि, मनुने लिखा है कि, ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तितक जलदान करै और व्रतके उपरान्त तो जल देकर तीन दिन अशुद्ध रहता है. उसमें भी लिखा है, कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टका कथन है कि, ब्रह्मचारियोंको पिता आदिकी मृत्युसे कभी दोष नहीं होता, वा कर्मके पीछेमें तीन दिनका अशौच लगता है, जैसे जीवित मनुष्यके श्राद्धमें कुछ भी अशौच न करना, यह हेमाद्रि लिखते हैं ॥ शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका कथन है कि, दुर्भिक्ष उपद्रव डिम्भ संग्राममें और बिजली राजा द्विजोंसे मृतक हुओंका सद्यः शौच लिखा है और पराशरका कथन है कि, उपसर्ग (युद्ध) में मृतक हुएकाभी सद्यः शौच लिखा है. उपसर्ग और उपद्रव अतिमृत्युको कहते हैं अर्थात् जहां बहुतसे मनुष्य मरजांय, यह शूलपाणि और अनिरुद्ध भट्ट आदिका मत है, मरीचि और याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, अत्यन्त आपत्ति आपडे तो सद्यः शौच करना ऐसे समय मरणकेमेंभी अशौच नहीं लगता, यही शुद्धिरत्नाकरमें दक्षका वाक्य है कि, यह सब सूतक स्वस्थ समयमें जानने आपत्कालमें सबको सूतकमेंही सूतक नहीं लगता इससे वैराग्य होय तो आतुरको संन्यास भी होता है यहभी किन्हीं २ का कथन है ॥ अब कर्मसे अशौचके अपवादको वर्णन करते हैं, त्रिंशत्श्लोकीमें कहा है कि, अन्न यज्ञ करनेवाला, व्रती, राजा, दीक्षित, ऋत्विज, अपने देशका नाश, विपत्ति, अनेक वेदोंका पाठ, वैद्य, कारु, शिल्पी, रोगी, दान, यज्ञोपवीत, यजन, श्राद्ध, युद्ध, प्रतिष्ठा, मुण्डन, तीर्थकी यात्रा,

द्येषु" नाशौचमिति शेषः॥सत्री अन्नसत्रवान्॥मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धेः॥ व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान् ॥ 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेः ॥ प्रचेताः- "कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥" कारवः सूपकाराद्याः । शिल्पिनश्चैलनिर्णेजकाद्याः । आतुरस्य व्याधिनाशार्थं दानादौ तुलादानादेः । प्रारम्भो नान्दीश्राद्धं संकल्पो वा । यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादिः ॥ लघुविष्णुः-"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ॥ आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ पाकस्य परि समंतात्क्रिया ॥ पाकप्रोक्षणमिति शुद्धिप्रदीपस्तन्मन्दम् ॥ रूढेर्योगाद्बलवत्त्वात् ॥ तीर्थेति आशौचे आकस्मिकतीर्थप्राप्तौ "विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत् कर्म यज्ञादि कारयेत्" इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ अत्र विशेषः प्रागुक्तः ॥ जपः पुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठः अविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादिश्च ॥ अत एवोक्तं ब्राह्मे-'गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित्' इति ॥ एवं देवपूजादि ॥ मदनपारिजाते यमोपि-"शिवविष्ण्वर्चनं दीक्षा यस्य चाग्निप-

---

जप, विवाह इनका प्रारम्भ इनके उत्सवोंके उस २ कार्योंमें अशौच नहीं होता, यहां सत्रिपदसे अन्नका सत्र लेना, मुख्य सत्रीका तो दीक्षित पदसे ग्रहण सिद्ध है, व्रती पदसे अनंतव्रती लेना, कारण कि, विष्णुने कहा है कि, व्रतवालोंको व्रतमें अशौच नहीं है ॥ प्रचेताने कहा है कि, कारु, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, राजा, राजाके सेवक इनको तत्काल शौच लिखा है. कारुपदसे रसोइया और शिल्पीपदसे धोबी आदिका ग्रहण है. रोगनाशके निमित्त आतुरको तुलादान आदिमें दोष नहीं है प्रारम्भपदसे नांदीश्राद्ध वा संकल्प करलेना, यजन पदसे सरोवरका उत्सर्ग कोटिहोम आदि लेना. लघुविष्णुका कथन है कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, होम, जप, पूजा, श्राद्धके आरंभ होनेपर सूतक नहीं है, और आरम्भ न हुआ होय तो सूतक है. यज्ञका वरणसे, व्रतसत्रका संकल्पसे, विवाहआदिका नान्दीश्राद्धसे श्राद्धका पाक होनेसे आरंभ जानना. शुद्धिप्रदीपमें तो यह लिखा है कि, पाकको चारोंओरसे छिडकना पाकक्रिया होती है, सो उत्तम नहींहै, कारण कि, योगसे रूढी बलवान् होती है, तीर्थ पदसे अकस्मात् प्राप्तिमें अशौच नहीं है कारण कि, पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखा है कि, विवाह. दुर्ग, यज्ञ, यात्रा, तीर्थ, कर्म इनमें सूतक नहीं, यज्ञ आदिकर्म इससे समस्त करै, यह विशेष प्रथम कहआये, जप करके पुरश्चरण आदि स्तोत्रपाठ अथवा संकल्पपूर्वक हरिवंशका निरन्तर श्रवण लेना ॥ इसीसे ब्रह्माने लिखाहै कि, जो कोई नियमपूर्वक करै उसको सूतक नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार देवपूजा आदिमें जानना. मदनपारिजातमें यमकाभी कथन लिखाहै कि, शिव

रिग्रहः । श्रौतकर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥" गौडशुद्धितत्त्वे मन्त्रमुक्तावल्याम्-"जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः । नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥" राघवभट्टीये नारदः-"अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ॥ यदि कामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥" यत्तु नृसिंहकल्पे-"सदा मन्त्रजपं मुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥" तन्मूत्राद्याशौचपरम् ॥ रामार्चनचन्द्रिकायाम्-" अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ॥" कालनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव ॥ उत्सवो रथयात्रादिः ॥ एषु नाशौचम् ॥ अयं चाशौचाभावोनन्यगतित्वे आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ॥ अत्र दीक्षितस्य अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादि त्वाशौचमस्त्येव ॥ 'तेन वैतानोपासनाः कार्याः' इति वैतानत्वेऽप्यवभृथादि न भवत्येव । अत एवोक्तं माधवीये ब्राह्मे "तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नाने त्ववभृथे यावतावत्तस्य न सूतकम्"॥

और विष्णुकी पूजा, दीक्षा और अग्निका ग्रहण जिसको है उसे वेदोक्त कर्म करना चाहिये, और स्नानसे पवित्र होताहै. गौड शुद्धितत्वमें मंत्रमुक्तावलीका वाक्य है कि, दीक्षावाले मनुष्योंको जप और देव पूजनकी विधि करनी चाहिये. कारण कि, वशीभूत मनवाले पुरुषको पाप और सूतक नहीं लगता, राघवभट्टीयमें नारदका वाक्यहै कि, वेदोक्तसूतकीकी पूजाको लिखतेहैं कि, स्नानके उपरान्त नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर मानसी पूजा और ध्यानयोगसे बाह्यपूजा की समान पूजा करै, सकामहो वा न हो नित्य प्रथमके तुल्य आचरण करै ॥ जो नृसिंहकल्पमें कहाहै कि, जो मनुष्य अशुद्ध होय तो सदाके मंत्रजपको त्यागकर मनमें मंत्रका स्मरणकी करै, उच्चारण न करै, यह मूत्रआदिका अशौच जानना, रामार्चनचन्द्रिकामें कहाहै, कि, अशुद्धहो वा शुद्ध हो चलते, स्थित होते, सोतेसमय बुद्धिमान् मनुष्य मंत्रके स्मरणका मनसेही अभ्यास करै कालका नियम न हो तो स्तोत्र और हरिवंशआदिका पाठ उस समय न करै उत्सवपदसे रथयात्रा आदि लेना, इनमें अशौच नहीं लगताहै; यह अशौचका अभाव उससमय जानना, जब दुसरी गति न हो और रोगयुक्त हो इसका मूल प्रमाणमें स्पष्टहै यहां दीक्षितको यज्ञांतस्नानसे प्रथम ही अशौचकी प्राप्ति है और अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) आदिमें तो हैही, तिससे वैतान (अर्थात् यज्ञविस्तार) उपासना करनी वैतान होनेपरभी अवभृथ आदि नहीं होतेहैं ॥ इसीसे माधवीयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य कहाहै कि, जिसने दीक्षाग्रहण कीहै और जो तीन वेदका पाठ करता है उसको बडे यज्ञमें जितने

इति ॥ वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैव सिद्धेर्ऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं यजमाने स्वयंकर्तृत्वार्थं स्नानप्राप्त्यर्थं चेति विज्ञानेश्वरः ॥ वस्तुतस्तु दीक्षया संस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्राप्त्यर्थं दीक्षितग्रहणम्॥ तेन ततः पूर्वं निषेध एव ॥ यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे' इति तदृत्विक्परम् ॥ तथा च छन्दोगपरिशिष्टे–' न दीक्षिण्याः परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ' इति ॥ शुद्धितत्त्वेप्येवम् ॥ ऋत्विजां च मधुपर्कोत्तरमाशौचाभावः ॥ "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः " इति ब्राह्मात् ॥ अत एव रामाण्डारः–'चतुर्णां वरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य आगमयितव्यः ' इत्याह ॥ एवं स्मार्तेपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो ज्ञेयः ॥ यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे ' इति तत्रापि मधुपर्कान्तं ज्ञेयम् ॥ तेनाधानेष्टिपशुबन्धादौ तदभावादन्ये भवन्तीति सिद्धम् ॥ अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः– ' वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात् ॥ ' तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वयं कर्तृत्वम् ॥ 'श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात्' इति स्मृतेः ॥ त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ " सूतके मृतके चैव अशक्तौ

कालमें अवभृययज्ञान्त स्नान हो उतने समयतक सूतक नहीं लगता, वैतानकी उपासना करनी इससे ही सिद्ध थी. ऋत्विज और दीक्षितोंको नहीं करनी, इसमें फिर दीक्षितपदका ग्रहण कियाहै यह यजमानके स्वयंकर्म करनेमें और स्नानकी प्राप्तिके निमित्त है, यह विज्ञानेश्वरका मत है, सिद्धांत तो यह है कि, दीक्षित अर्थात् (दीक्षा लेनेका) यज्ञसे प्रथम जिसका संस्कार न हुआहो उसको कर्मकी प्राप्तिके निमित्त दीक्षित ग्रहण है, इसमें इससे पहले निषेध जानना, और जो यह वाक्य है कि, यज्ञमें आरम्भ वरण है, सो ऋत्विक्के विषय जानना चाहिये क्योंकि, छंदोगपरिशिष्टमें कहाहै कि, दीक्षिणी इष्टिसे आगे यज्ञमें और छच्छ्रआदि तप करनेमें अशौच नहीं लगता कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, यजमानसे मधुपर्क ग्रहण करने उपरान्त अशौच होय तो ऋत्विजोंको नहीं लगता ॥ इसीसे रामाण्डरने तो यह लिखाहै कि, जब चार ब्राह्मणोंके वरण करनेका पक्ष होय, औरोंको अशौच होय तो दूसरे बुला लेंने. इसी प्रकार स्मार्तकर्ममें भी तुलाकोटिहोम आदिकें विषें मधुपर्क होनेपर दोषका अभाव जानना और जो यह कहाहै कि, यज्ञका प्रारम्भ वरणसे होताहै उसमेंभी मधुपर्कतकही जानना चाहिये, और इससे आधान इष्टि पशुबंध आदिमें मधुपर्कके विनाहीसे सब कार्य होतेहैं यह सिद्ध होताहै, और अपवाद तो याज्ञवल्क्यने लिखेहैं कि, वैतान उपासना, और वेदोक्त कर्म अशौचमें करने, वहां दानमात्र तो स्नानके उपरान्त स्वयं करना, कारण कि, यह स्मृतिमें लिखाहै कि, वेदोक्तकर्ममें स्नान करनेसे तुरंत शुद्धि होतीहै, और दानसे पृथक् वेद और स्मृतिके कर्ममें और कर्ता होताहै, कारण कि, बृहस्पतिने लिखाहै

श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् '' इति बृहस्पत्युक्तेः॥ 'नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्ज्यम् । शालाग्नौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः ' इति पैठीनसिस्मृतेश्चेति विज्ञानेश्वरः॥ एकग्रहणं पूजार्थं तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हारलतायाम् ॥ दाक्षिणत्यास्तु विकल्पमाहुः॥ अपरार्कादिनिबन्धास्तु—'श्रौतं सर्वं स्वयं कार्यं, स्मार्तं तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ त्यागमात्रे तु स्वस्य- 'कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शनात् स्वयम्' इति हारीतोक्तेः॥ 'दर्शं च पूर्णमासं च कर्म वैतानिकं च यत् सूतकेपि त्यजेन्मोहात्प्रायश्चित्ती पतेद्द्विजः'' इति मरीच्युक्तेः। ''जन्महान्योर्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते । शाला ग्रौ केवलो होमः कार्य एवा-न्यगोत्रजैः ॥'' इति जाबालोक्तेश्चेत्याहुः ॥ आपार्केऽप्येवम् ॥ याज्ञिका अप्येवम् । ''सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत्'' इति जातूकर्ण्योक्तेश्च ॥ चरुः स्मार्तस्थालीपाकः ॥ श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः ॥ प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम् ॥ 'न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्यो-प्यशुचिर्भवेत्' इति मनूक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टेपि—''होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा । अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ॥'' अकृतं

कि, सूतक और मरण असामर्थ्य श्राद्ध भोजन प्रवास आदि निमित्त होय तो औरसे होम करादेना स्वयं न करना पैठीनसिकी स्मृतिमें लिखाहै कि, वैतान कर्मके सिवाय और कर्मकी निवृत्ति होती है, कोई यह कहतेहैं कि, शालाग्निमें इन कर्मोंको कोई और करै, यह विज्ञानेश्वरका मत है एकपदका ग्रहण अर्चाके निमित्तहै, इससे स्मार्त कर्मको प्रथमही करलेना चाहिये, यह हारलतामें लिखाहै, दाक्षिणात्य तो विकल्प लिखतेहैं ॥ अपरार्क आदि ग्रन्थोंमें तो लिखाहै कि, वेदोक्त सम्पूर्ण कर्मको स्वयंही करै, और दानके सिवाय स्मार्त कर्मको औरसे करावै कारण कि, हारीतने कहाहै कि, दान और वैतानिककर्मको स्नान और स्पर्श करके स्वयंही करना चाहिये और मरीचिने भी कहा है कि, अमावस्या और पूर्णिमाका श्राद्ध वैतानिककर्म इनको सूतकमें भी जो ब्राह्मण त्यागता है वह प्रायश्चित्तका भागी होता है ॥ जाबालनेभी कहा है कि, जन्म और मरणमें वितानकर्मका त्याग नहीं करना केवल होमको शालाग्निमें दूसरे गोत्रवाले करैं, अपरार्कमें भी इसी प्रकार कहा है जातूकर्ण्यने लिखा है कि, सूतकके होनेपर स्मार्तकर्म कैसे होसकते हैं, पिण्डयज्ञ चरुहोम इनको भिन्न-गोत्रसे करावै, चरुपदसे स्थालीपाकका ग्रहण करते हैं, और विज्ञानेश्वरने तो यह लिखाहै कि, श्रावणीके कर्म आदिका ग्रहण है, प्रारम्भ किये कर्मको तो सपिंडको भी करना चाहिये कारण कि, मनुजीने लिखा है कि, उस कर्मको करता हुआ सगाभाई भी अशुद्ध नहीं होता कि, जिस कर्मका प्रारम्भ होगयाहो ॥ छन्दोगपरिशिष्टमें भी कहा है कि, वेदोक्त-कर्ममें सूखे अन्न वा फलसे हवन करना, और स्मार्तकर्ममें किये वा कृताकृतसे हवन करावे

व्रीह्यादि ॥ कृताकृतं तन्दुलादि ॥ स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः ॥ 'शालाग्नौ चैके' इति प्रागुक्तेः ॥ यदा करणं तदान्यद्वारा ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ येषां बह्वृचादीनां द्वादशरात्रमहोमेपि नाग्निविच्छेदस्तैर्न कार्यम् ॥ तैत्तिरीयाद्यैः कार्यम् ॥ 'त्रिरात्रमहूयमानोग्निर्लौकिकः संपद्यते' इति सुदर्शनभाष्ये वचनात् ॥ समारूढे त्वग्नौ तेनापि न कार्यम् ॥ किंतु पुनराधानमेव ॥ समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च ॥ अन्यथा पुनराधानमपि स्यात् ॥ यत्त्वाश्वलायनः—"तौ चापि सूतके शावपर्वणीष्टिं महापदि । पुष्पवत्यां च भार्यायां न कुर्यात्तौ कदाचन ॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद् द्विजः । श्रौताग्निस्तु सकृद्धुत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत्" इति तदपि समारूढपरम् ॥ तदाह स एव—"स्मार्ताग्निरात्मनोन्येषामभावे सूतकादिषु । समारोप्य तदन्तेषु विहृत्य जुहुयात्स्वयम् ।" इति ॥ तथा च मनुः—'प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः' इति वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेपि वचनान्निवृत्तिः ॥ 'विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः' इति संवर्तोक्तेः ॥ यद्यपि—'पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनोः' इति तेनैवोक्तेः पूर्वनिषेधो व्यर्थः तथाप्यापस्तम्बादीनां वैश्वदेवस्य पञ्चयज्ञभिन्नत्वात् पृथङ्

अकृतपदसे व्रीहि जौ आदि और कृताकृत पदसे चावल आदिका ग्रहण करते हैं, स्मार्तहोम आदिमें तो विकल्प जानना चाहिये. कोई तो यह लिखते हैं कि, शालाग्निमें करै, इस वाक्यसे जब करै तब दूसरों द्वारा करै, यहां यह लिखाहै कि, जिन वह बहृच आदिकोंकी बारह दिनतक होम न होनेपर अग्नि नष्ट न हो वे न करै, और तैत्तिरीय आदि तो करै कारण कि, सुदर्शन भाष्यमें लिखा है कि, चार दिन हवन न होयं तो वह अग्नि लौकिक हो जाती है, स्थापित अग्निमें तो वे भी न करै, किंतु फिर आधान करै, अग्निके स्थापन और प्रत्यवरोहकों आशौचके अभावका अपवाद कहाहै और उसके दूसरा कोई नहीं करता, नहीं तो फिर आधान भी हो जावेगा ॥ जो आश्वलायनने यह लिखाहै कि, समारोप और प्रत्यवरोहको भी सूतक, मरण, पर्व,यज्ञ महा आपत्तिमें स्त्री रजस्वलामें किसी प्रकार न करै, वा स्मार्ताग्निमें सूतक और मृत्युमें ब्राह्मण स्वयं होम न करै, श्रौत अग्निमें तो एक वार हवन करै, वा पूर्तितक स्वयं हवन करै, यह भी समारूढके विषयमें कहाहै सोई उन्होंनेही कहा है कि, सूतक आदिमें अपनेसे दूसरा कोई न होय तो स्मार्ताग्निको स्वयंही स्थापन करके प्रसन्नचित्त होकर स्वयं हवन करे ॥ यही मनुने लिखाहै कि, अग्निमें कर्मका प्रत्यूह न करना वैश्वदेवकर्म तो अग्निसे साध्य भी है, तथापि वाक्यसें उसकी निवृत्ति होती है कारण कि, संवर्तने कहा है कि, ब्राह्मण दश दिनतक वैश्वदेव न करै, यद्यपि पञ्चयज्ञकी विधिको मरण और जन्ममें न करै इस उसकेही कथनसे पूर्वनिषेध व्यर्थ है तो भी आपस्तंब आदिके मतमें वैश्वदेव पञ्चयज्ञसे

निषेधः ॥ हरदत्तस्त्वाशौचेपि बह्वृचैर्वैश्वदेवः कार्यः 'तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माशुचिर्यद्देशः ' इति ब्रह्मयज्ञस्यैवाशौचे विशिष्य निषेधात् ॥ सन्ध्यादीनामप्यपवादमाहापरार्के पुलस्त्यः-"संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके मृतके चैव संध्याकर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायाममृते द्विजः ॥" यत्तु चन्द्रिकायां जाबालः-"संध्या पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च । तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया" इति ॥ यच्च संवर्तः-'सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥' यच्च विष्णुपुराणम् ॥ "सर्वकालमुपास्या तु संध्ययोः पार्थिवेष्यते । अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः" इति तत्पूर्णसंध्यापरम् ॥ 'अर्घ्यान्ता मानसी संध्या कुशवारिविवर्जिता' इति शुद्धिदीपे च्यवनोक्तेः ॥ पैठीनसिस्त्वर्घ्ये मन्त्रोच्चारणमाह ॥ सूतके सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ॥ प्रयोगपारिजाते भारद्वाजोपि-"सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम् । तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥" ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह व्याघ्रः-'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके '

भिन्न कहाहै इससे पृथक् निषेध है. हरदत्तने तो यह कहा है कि, अशौचमें भी बह्वृच वैश्वदेवकर्म करै, उसको दो अनध्याय होते हैं, जो आत्मा और देश अशुचि हो इस प्रकार ब्रह्मयज्ञका अशौचमें विशेष निषेध है ॥ संध्या आदिका अपवाद भी अपरार्कमें पुलस्त्यजीने कहाहै कि, संध्या, यज्ञ, चरु, होमको जीवनपर्यन्त करै, कभी न त्यागै, छोडे तो निकृष्ट गतिको प्राप्त होताहै, सूतक और मृत्युमें द्विजको सन्ध्याकर्म करना चाहिये, प्राणायामके सिवाय मनमें मन्त्रोंको उच्चारण करै, जो चंद्रिकामें जाबालने कहाहै कि, संध्या पंचमहायज्ञ नित्य स्मार्तकर्मको दश दिनके बीचमें त्याग दे और दश दिनसे पीछे करै तो सम्वर्तने कहाहै कि, संध्या आदि कर्मको सूतकमें छोड दे ॥ जो विष्णुपुराणमें लिखा है कि, हे राजन् ! सब कालमें सन्ध्याकी उपासना, सूतक भ्रम रोगभयको त्यागकर करै, यह वाक्य सम्पूर्ण संध्याके विषयमें है, कारण कि, शुद्धिदीपमें च्यवनने लिखा है कि, कुश और जलको त्यागकर अर्घ्यपर्यन्त मानसी संध्या करै, पैठीनसिस्मृतिमें तो अर्घ्यमें मन्त्रका उच्चारण लिखा है कि, सूतकमें गायत्रीसे अञ्जलिजल दे और प्रदक्षिणा करके सूर्यका ध्यान करता हुआ प्रणाम करै, प्रयोगपारिजातमें भरद्वाजका वाक्य है कि, सूतक और मृत्युमें विना मन्त्रके प्राणायाम करै, और मार्जनमन्त्र मनसेही उच्चारण कर मार्जन करै, गायत्रीको भली प्रकार पढकर सूर्यको अर्घ्य देना अथवा मार्जन और सूर्यकी स्तुति करै वा न करै ॥ ग्रहणके श्राद्ध आदिमें अशौचका अपवाद व्याघ्रने लिखा है कि, राहुके सूतकको त्यागकर स्मार्तकर्मका परिनिषेध है. लिंगपुराणमेंभी कहा है कि, राहुके सूतकमें

इति ॥ लैङ्गेपि-"सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥" प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः-'कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन ॥' वृद्धशातातपः "यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः ॥ भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुध्यति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥" इदमविशेषात्सूतकादिपरमपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च ॥ अथ द्रव्यतः शुद्धिनिर्णयः । मरीचिः-लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च । शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च । तिलौषधाजिने चैव पकापक्के स्वयंग्रहः ॥ पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ।" स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न तद्धस्तादित्यर्थः ॥ क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः ॥ पक्वं लड्डुकादि अपक्वं तण्डुलादि ॥ एतदन्नसत्रपरम् ॥ "अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम् । भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् " इत्याङ्गिरसोक्तेः ॥ पक्वान्नमोदनादि नतु भक्ष्यम् ॥ षट्त्रिंशन्मते-"उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं

सूतक या मृत्युमें दोष नहीं, इतनीही शुद्धि होती है, जबतक (ग्रहण) न हो. प्रयोगपारिजातमें बृहस्पतिका वाक्य लिखा है कि, कन्याका विवाह और संक्रान्तिमें कदाचित्भी सूतक नहीं. वृद्धशातातपने कहा है कि, जब भोजनके समयमें द्विज अशुद्ध हो जाय, तो पृथ्वीमें उस ग्रासको फेंक और स्नान करके शुद्ध होता है, उस ग्रासको भक्षण करके अहोरात्रसे और सब अन्नको खाकर तीन रातसे शुद्ध होता है, यह वाक्य पूर्णतासे सूतकआदिमें भी है यह शुद्धितत्त्व और शूलपाणिमें कहा है ॥ अब द्रव्यसे अशौचका अपवाद लिखते हैं मरीचिने लिखा है कि, लवण, मधु, मांस, पुष्प, मूल, फल, शाक, काठ, तृण, जल, दही, घी, दूध, तिल, औषधी, मृगचर्म, पक्वमोदक आदि विना पके तंडुल आदिको ग्रहण करले, और वेचनेकी सब वस्तुओंमें मृत्यु और सूतकमें दोष नहीं है, इन पूर्वोक्त मोदक आदिको स्वामीकी अनुज्ञासे स्वयं ग्रहण करै, उसके हाथसे न के वेचनेमें तो स्वामीके हाथसे भी दोष नहीं है, यह अन्नसत्रमें है, कारण कि आंगिरसने लिखा है कि, जो अन्नसत्र करैं उनका आम अन्न निंदित नहीं है और इससे पके अन्नको भोजन कर तीन दिन व्रत करै, पक्वान्नसे मोदक आदि ग्रहण करने भक्ष्य नहीं ॥ षट्त्रिंशत्के मतमें कहाहै कि, दोनोंको ज्ञान न होय तो सूतकका दोष नहीं लगता, एकको भी ज्ञान होय तो खानेवालेको दोष होता है, विवाह उत्सव यज्ञके मध्यमें मरण और सूतक होजाय तो और पुरुष अन्न दे और ब्राह्मण भोजन करलें, ब्राह्मणोंके भोजन करते हुये मरण वा सूतक होजाय तो और जलसे आचमन करके वे सब पवित्र कहे हैं, बृहस्पतिने कहा है कि, विवाह उत्सव आदिमें

भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ भुंजानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः । सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥"बृहस्पतिः-'विवाहोत्सव' इत्याद्युक्त्वा-'पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥' षडशीतौ-"संसर्गाघस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता । तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित् ॥" शुद्धितत्त्वे-"शुद्ध्येदित्यनुवृत्तौ विष्णुः-'प्रोक्षणेन पुस्तकम्' इति ॥ मृतदोषे निर्णयः । अथ मृतदोषे हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मे च-"व्यापादयेद्य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया ॥" शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव ॥'हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मे-'सद्यः शौचं समाख्यातं शापादिमरणे तथा।' आदिपदादभिचारहते ॥ भविष्ये-"स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । अन्त्यान्त्यजविषोद्बन्धैरात्मना चैव ताडनैः । पाखण्डमाश्रिताश्चैव; महापातकिनस्तथ ॥स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा। न तेषां स्नानसंस्कारो न श्राद्धं न सपिण्डनम् ॥ " गौतमः-"प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति ॥ नाशौचमिति शेषः । अङ्गिराः-"चण्डालदुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति" ॥ षट्त्रिंशन्मतेप्येवम् ॥

पूर्व संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं है, षडशीतिमें कहा है कि, जिसको संसर्गसे अशौच लगताहै वा जिसका समय वीतगया हो उसके पदार्थको कभी दोष नहीं है, शुद्धितत्त्वमें विष्णुका कथन है कि, जल छिडकनेसे पुस्तककी शुद्धि होती है ॥ अब मरणके दोषमें लिखतेहैं, हेमाद्रिमें. षट्त्रिंशन्मत और कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, अग्नि वा जल आदिसे जो अपनी हत्या करै, उसका अशौच नहीं है, और न उसका जलदान करै, जबतक उसका मृतक शरीर न देखे तबतक अशौच हैही, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, राजा गौ ब्राह्मणसे मरे और हत्यारेका अशौच देखनेतक है, शुद्धितत्त्वमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, शाप आदिसे मरनेमें तत्काल शौच कहाहै आदिपदसे अभिचार मारणप्रयोगसे मृत्यु लेनी भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अपनी इच्छासे मरे और ब्राह्मण, पशु दाढवाले, सर्प, अन्त्य, अंत्यज, विष, बन्धन, आत्माकी ताडनासे मरे, पाखंडी, महापातकी व्यभिचारिणी स्त्री, ब्रह्मचर्य आदिसे पतित इनके स्नान संस्कार श्राद्ध सपिंडी नहीं होते हैं ॥ गौतमने कहा है कि, शाप, अनशनव्रत, अग्नि, जल, बन्धन, पतन (गिरने) का भी अशौच नहीं होता है, अंगिराने कहा है कि, चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दाढ़वाले पशुसे पापियोंकी मृत्यु होती है इनको जल, पिण्डदान जो मरनेपर दिया जाता है, वह नहीं प्राप्त होता है, अन्तरिक्षमें ही नष्ट होजाता है, षट्त्रिंशन्मतमें भी ऐसेही लिखा है ॥

ब्राह्मेपि—"श्रृङ्गिदंष्ट्रिनखव्यालविषवह्निक्रियाजलैः ॥" व्यालो गजः ॥ "सुदूरात्परिहर्तव्यः कुर्वन् क्रीडां मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् हतश्चाप्यथ विद्युता निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान् हरन्तश्च द्वेषात्तु पतिभिर्हताः ॥ असमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहात् ॥ कृतवैरैर्निहतास्तद्वच्चण्डालादीन् समाश्रिताः ॥ शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम् ॥ गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्पजीविनो ये च सूनालंकारधारिणः ॥ मुखेभगास्तु ये केचित् क्लीबप्राया नपुंसकाः ॥ ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हताः । महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥ पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः । न चाश्रुपातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः ॥ ततः कृच्छ्रद्वयेनैव तस्य शुद्धिर्नचान्यथा ॥" एतद्बुद्धिपूर्वे ॥ सर्वेषां करणे तु माधवीये वसिष्ठः—"य आत्मत्यागिनां कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः । स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥" अज्ञाने तु—"कृत्वाग्निमुदकं स्नानं संस्पर्शं वहनं कथाम् । रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति" इति

ब्रह्मपुराणमें भी लिखाहै कि, सींग और दाढ नखवाले सर्प (अजगर) विष अग्निकी क्रिया जलसे मरे हुओंको पिंडदान नहीं मिलता, क्रीडा करनेमें जो मरता है, उसे दूरसे त्याग दे नागोंका वैर करनेवाला, और बिजलीसे जो मरा है, और जो राजाने कभी चोरीके दोषमें पकडे हैं, जो पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं, और द्वेषसे उनके पतियोंने उनको मारदिया, है, और अपनेसे अधिक वा न्यून चाण्डाल आदिसे वैर करते हैं, और वैरसे उन्होंने मारदिये हैं, और जो चाण्डालोंके आश्रम हैं, शस्त्र, अग्नि, विषके देनेवाले पाखण्डी और क्रूरबुद्धि जो क्रूर क्रोधसे विष, अग्नि, शस्त्र, बन्धन, जलसे मरे हों और पहाड वृक्षोंसे जो नीचे गिरकर मरे, खोटे शिल्पसे जो जीविकावाले हिंसाके अलंकारको धारण करें, मुखसे निरन्तर भग उच्चारण करनेवाले, अयोनिमें गमन करता, नपुंसक हैं, ब्रह्मदण्ड और ब्राह्मणसे मृतक हुए जो महापातकी हैं, वे पतित कहाते हैं, पतितोंका दाह अन्त्येष्टिकर्म और अस्थिसंचय रोना पिण्डश्राद्ध आदि कर्मभी न करै, जो पतितोंके निमित्त अज्ञानसे श्राद्धादि करता है, उसकी शुद्धि दो तप्त कृच्छ्रव्रतोंसे होती है, अन्यथा नहीं, यह सब जानकर करनेमें है ॥ कारण कि, इन सबकी क्रिया करनेमें माधवीयमें वसिष्ठने लिखा है कि, जो द्विज आत्महत्यारोंकी प्रीतिके निमित्त प्रेतक्रिया करता है वह तप्तकृच्छ्रके सहित चांद्रायणव्रत करै, तो शुद्ध हो, अज्ञानसे करै, तो उस समय यह विधान है कि, अग्नि और जलदान, स्नान और स्पर्श, श्मशानमें लेजाना, तथा रज्जुका छेदन, रुदन इनको करै तो तप्तकृच्छ्रसे पवित्र होता है कि,

ज्ञेयम् ॥ ॥ प्रत्येकं बुद्धिपूर्वं एतदिति मदनपारिजातः ॥ प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायाम्–"तच्छवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि । पूर्वोक्तनामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ॥ एकरात्रं तु नाश्नीयात् त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम्" इति माधवीये उत्तरार्द्धम् । अन्येषु तु संवर्तः–"एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।" अज्ञाने त्वर्धम् ॥ एतदनाहिताग्नेः ॥ आहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति माधवः ॥ मिताक्षरायाम्–" आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया । तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥" आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे । पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि ॥" छन्दोगपरिशिष्टेपि–"महापातकसंयुक्तो दौरात्म्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि । गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् । पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥ " माधवीये पराशरः–"आहिताग्निर्मृतो विप्रश्चण्डालेनात्मघातकः । दहेत ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्र-

---

यदि प्रत्येक जानकर यह मदनपारिजातमें कहा है, इन प्रत्येकका स्पर्श करै, और रोवे, मिताक्षरामें यह कहा है कि, उन सबका केवल स्पर्श करै, वा अश्रुपात करै, और पूर्वोक्त कर्म न करै, तो एकरात उपवास करनेसें शुद्ध होता है. माधवीयमें तो इस श्लोकका पिछला आधा इस प्रकार लिखाहै कि, एकरात भोजन न करै, और जानकर इनका स्पर्श आदि करै तो तीन रात भोजन त्यागने, औरोंको सम्वर्तने यह कहा है कि, इनमेंसे किसी प्रेतको जो शरीरपर लेजाता है वाट (पिंजरी) जल क्रिया करता है वह सान्तपनकृच्छ्र करैं तो शुद्ध हो अज्ञानसे आधा करै, यह भी अनाहिताग्निके निमित्त है, और आहिताग्नि तो छच्छ्रव्रतही करै, यह माधवका मत है ॥ मिताक्षरामें तो यह कहा है कि, आत्माके त्यागी और पतितोंकी क्रिया नहीं होती उनको गंगाजीमें स्थापन करदेनाही उनका हित है, आहिताग्निके निमित्त विशेष तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, वैतान अग्निको जलमें और आवसथ्य अग्निकों चौराहेमें डाल दे, और अग्निहोत्रीके पापी होनेपर उसके यज्ञपात्रोंको फेंकदेना चाहिये, छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, यदि पापी होनेसे अग्निहोत्री महापातकी होजाय तो उसका वे पुत्र उसके शुद्ध होकर अग्निके युक्त होकर अग्निकी पालना करैं, और जो वह पापके प्रायश्चित्त न करैं वा प्रायश्चित्त करता हुआ मृतक होजाय वह उस गृह्य अग्निको बुझादे और श्रौत अग्निको सामग्रीके सहित अग्निमें निर्माण करदे, फिर सामग्रीसहित श्रौतअग्निको जलमें डालदे, उसके पात्रोंको ब्राह्मणको प्रदान करै वा जलमें डालदे वा अग्निमें जलादे। माधवीयमें पराशरने लिखाहै कि, अग्निहोत्री ब्राह्मण चाण्डालसे मृतक हुआहो वा आत्महत्यारा

वर्जितम् ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामानुशासनात् । दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः ॥ स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेनं पुनर्दहेत् ॥ " हेमाद्रौ तु ' दाहयित्वा शवं तेषां शूद्रैरविधिपूर्वकम् ' इत्युक्तम् ॥ एतद्दर्पादिना मरणे ज्ञेयम् ॥ ' तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ' इति, श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः ॥ प्रमादमरणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव । तदाहाङ्गिराः–" अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥ " ब्राह्मेपि–" प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः । चण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः" इति ॥ प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वादयः ॥ दशाहादीति दाक्षिणात्याः ॥ अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये–' प्रमादादिच्छया वापि न कुर्यात्सर्पतो मृते ॥'.नागपूजां विना न कुर्यादित्यर्थः ॥ बौधायनेपि–' बुद्धिपूर्वात्महन्तॄणां क्रियालोपो विधीयते ॥ ' क्रिया अन्त्यकर्म '॥ तत्र–दुर्मरणानिमित्तं दानादि कार्यम् ॥ तच्च विश्वप्रकाशादौ शातातपीये च–"व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् । सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः ॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद्गजैर्हते ।

होय तो उस ब्राह्मणको मन्त्रोंके विना लौकिक अग्निमें दाह करै, फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्यव्रतको करै, दग्ध हुई अस्थिको फिर लेकर दूधमें धोवै, उन अस्थियोंको फिर अपनी अग्निसे मन्त्र पढकर पृथक् जलादे, हेमाद्रिमें यह कहा है कि, उस सबके विना यह विधान है कि, शूद्रोंसे दग्ध करादे, यहभी अभिमान आदिसे मृत्युको प्राप्त होनेमें जानना कारण कि, इस श्रुतिमें आत्महत्यामें ही दोष लिखाहै कि, जो आत्महत्या करनेवाले मनुष्य हैं, वे उन नरकोंमें जातेहैं, प्रमादसे मृतक होनेमें अशौच आदि तो संपूर्ण होतेही हैं ॥ यही अंगिराने लिखाहै कि, जो कोई प्रमादसे अग्निसे वा जलसे मरै उसका अशौच और जलदान करै । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, प्रमादसे भी जो प्रारब्धवश, सींग दाढ नखवाले अजगर विष बिजली जल आदि चाण्डाल वा चोरसे मृतक होजाय तो उसका दाह आदि करना, कारण कि, वह पतित नहीं है, शुद्धितत्त्व आदि गौड ग्रन्थोंमें तो यह कहाहै कि, प्रमादसे मरनेमें तीन रात अशौच लगताहै, और दाक्षिणात्योंमें दश दिनका कहा है. इसका अपवाद हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, प्रमाद वा इच्छासे सर्पसे जो मरे उसकी क्रिया नागपूजाके विना न करै, बौधायनका भी कथन यही है कि, जानकर जिन्होंने अपनी हत्या की है उनकी क्रिया नहीं है किन्तु दुर्मरणके निमित्त दान आदि करना चाहिये ॥ यही विश्वप्रकाश और शातातपीयमें कहाहै कि, व्याघ्रसे जो मृतक हो उसके निमित्त ब्राह्मणकी कन्या विवाह दे, सर्पसे जिसकी मृत्यु हो उसके निमित्त नागबलि और सुवर्णका सर्प देना चाहिये, हाथीसे जिसकी मृत्यु हो उसके निमित्त चार निष्कभर सोनेका हाथी दान करे, राजासे मृत्यु हो तो सोनेका पुरुष दे, चौरसे

राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं हिरण्मयम् ॥ चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या तु काञ्चनम् ॥ शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता। निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥ निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ सूकरेण हतं दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमान्पञ्चखारिकाः ॥ वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन हते दद्याद्धव्यं सोपस्करान्वितम् । भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥ अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः । दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा ॥ शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् । अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं हेमनिर्मिताम् । उद्बन्धनेन च मृते कपिं कनकनिर्मितम् ॥ मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद्विनिष्कजम् । विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्नकवले मृते । कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत् ॥ अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् । शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद्रुद्रं यथोदितम् ॥ विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् । अन्तरिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो मृते । पतिते च मृते कुर्यात्प्राजापत्यांस्तु षोडश ॥

मरनेमें गौ और वैरीसे मृत्यु होनेमें बैल और बैलसे मृत्यु होनेमें यथाशक्ति सुवर्ण देना, शय्यापर मरे तो रुई और निष्कमात्र सोनेकी विष्णुप्रतिमाके सहित शय्या देनी चाहिये, अशुद्ध मरे तो दो निष्कभर सोनेकी प्रतिमा विष्णुकी देनी चाहिये, संस्कारसे हीन मरे तो बालकको दान करै, घोडेसे मरे तो निष्कमात्र सुवर्णका अश्वदे, कुत्तेसे मरे तो अपनी शक्तिसे क्षेत्रपालका स्थापन करना, सूकरसे मृत्यु हो तो दक्षिणासहित भैंसा देना, कृमियोंसे मरे तो खारीभर गोधूम देने, वृक्षसे मृत्यु हो तो वस्त्रसहित सोनेका वृक्ष देना, सींगवाले जीवसे मृत्यु हो तो वस्त्रसहित बैल देना, गाडीसे मरे तो सामग्री सहित हव्य देना, भृगुपातसे मृत्यु हो तो अन्नका पर्वत देना, अग्निसे मृत्यु हो तो यथाशक्ति दान करना, काष्ठसे मृत्यु हो तो गृहमें सभा करै, शस्त्रसे मृत्यु हो तो दक्षिणासहित भैंसा देना, पत्थरसे मृत्यु हो तो सवत्सा गौ देनी, विषसे मृत्यु हो तो सुवर्णकी पृथ्वी देनी, बन्धनमें मृत्यु हो तो सुवर्णका बन्दर देना, जलमें मृत्यु हो तो दो निष्क सुवर्णका वरुण देना, विषूचिकासे मृत्यु हो तो स्वादु अन्नसे सौ ब्राह्मण जिमावै, कंठमें ग्रास अटककर मृत्यु हो तो घीकी गौ देनी, खांसीके रोगसे मृत्यु हो तो आठ कृच्छ्रव्रत करै, अतीसारसे मृत्यु हो तो सावधानीसे लाख गायत्री जपै, शाकिनी आदि ग्रहसे मृत्यु हो तो शास्त्रोक्तरीतिसे रुद्रीका पाठ करना चाहिये, बिजलीसे मृत्यु हो तो विद्यादान करै, अन्तरिक्षमें मृत्यु हो तो वेदपारायण करै, स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे मृत्यु हो तो उत्तम शास्त्रकी पुस्तक देना,

मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत्। एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदेहिकम्॥" तथा वधमरणेपि न दोषः॥ तदाहतुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ—" वृद्धः शौचमृते लुप्तप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः। आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः। तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्॥" इति॥ हेमाद्रौ विष्णुधर्मेपि " नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदात्मनस्तनुम्। असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः॥ अरिष्टैरात्मना ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थितम्। व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णे वायुषि चात्मनः॥ यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम्। तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात्॥ आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च॥" नेति गौडानामपपाठः उत्तरार्धे असंगतः॥ 'क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृते भर्तरि योषितः॥' अपरार्के वृद्धगर्गः— " यो जीवितुं न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः। सोग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्नात्र न दुष्यति॥" अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगाद्युपहतानामधिकारः॥ सोपि जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदेवयाज्ञिकादयः अत एव मिताक्षरादौ

पतित मरे तो सोलह प्राजापत्यव्रत करे, सन्तानहीन मरे तो नब्बे ९० कृच्छ्र करे, इस प्रकार विधिको करके और्ध्वदैहिक कर्म करे, इस प्रकार विधिसे मृत्युका विधान करनेमें दोष नहीं॥ यहां मनु और वृद्धगार्ग्यने कहाहै कि, जो वृद्धमनुष्य शौच न करके और जिसकी वैद्य चिकित्सा न करसके वह अपनेको पहाड अग्नि अनशनव्रत जलसे नष्ट करदे तो उसका तीन रात अशौच है, दूसरे दिन अस्थिसंचयन तीसरे दिन जलदान चौथे दिन श्राद्ध करे, हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका वाक्य लिखाहै कि, व्याधिसे हीन मनुष्य अपने देहको त्याग न करे, कारण कि जो आत्महत्या करनेवाले हैं वे उन लोकोंमें गमन करतेहैं, जिनमें सूर्य नहीं है और जो अन्धकारसे आच्छादित हैं, दुःखसे अपनी मृत्युको निकट जानकर और रोगसे वैद्योंका त्याग और अपनी अवस्थाकी समाप्ति देख युगके अनुसार अपने देहको त्याग करे, उस कालमें देहके त्यागसे यथेच्छ फलको प्राप्त होताहै, अवस्थासे प्रथम ब्राह्मणोंका मरण देखाहै, और नहीं देखा, यह गौडोंका किया पाठ ठीक नहीं, कारण कि, यह पिछला आधा श्लोक असंगत होगा, संग्राममें क्षत्रीके, और स्वामीके मरनेपर स्त्रीका मरण देखागया है॥ अपरार्कमें वृद्धगर्गने लिखाहै कि, जो मनुष्य महाव्याधिकी पीडासे न जीसके उसको वह अग्नि जल और महायात्रा करनेसे दोष नहीं लगता, यहां पूर्व कहे उक्त और वक्ष्यमाण वाक्योंके समूहसे चिकित्साके योग्य न रहनेसे रोगोंसे पीडित मनुष्योंका अधिकार प्रयागसे भिन्न तीर्थके विषयमें है, वह भी जीर्ण वानप्रस्थको ही लिखा गयाहै, इस प्रकार विज्ञानेश्वर देवयाज्ञिक आदि कथन करतेहैं, इसी कारणसे मिताक्ष-

भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम् ॥ मनुरपि—"आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यत मया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥" इति॥ तेनान्यत्रापि तद्विषयतया मूलैक्यादिति केचित् ॥ तन्न ॥ वानप्रस्थमरणे आशौचानिषेधात् ॥ तेन गृहस्थादि परमेवेदम् ॥ तेन यतेर्नाधिकारः ॥ काम्येऽनाधिकाराच्च ॥ नैमित्तिकत्वे त्वकरणे दोषो नित्यता च स्यात् । प्रयागे त्वरोगिणां रोगिणां च ॥ यत्तु—"शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्च तथाधमाः । एते त्यजेयुः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप ॥ पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा भवेत् ॥" इति ॥ तन्निर्मूलमिति भट्टाः ॥ तत्त्वं तु हेमाद्रौ व्रतकाण्डेऽलिखना-न्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव ॥ प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं युक्तम् ॥ ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातमिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च ॥ यत्त्वादित्यपुराणे—"अब्राह्मणो वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया । प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा ॥" इति तत्प्रयागातिरिक्तपरमिति केचित् ॥ हेमाद्रौ त्वेतदग्रे ' प्रयागवटशाखाग्रात् ' इत्युक्तेर्ब्राह्मणस्य प्रयागेपि नेति प्रतीयते ॥ माधवीयेऽपरार्के चादित्यपुराणे—"दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि । प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोत्यनशनं तथा ॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव

रा आदिमें शिलासे गिरना, और अनशन व्रत आदि वानप्रस्थको ही लिखेहैं, मनुनेभी लिखाहै कि, इन महर्षियोंके आचरणोंसे जिसने शरीरको त्याग कियाहै वह ब्राह्मण शोक और भयरहित हो ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै ॥ इसीसे और स्थानमें भी मूलकी एकतासे वानप्रस्थके विषयमें ही है, यह कोई कथन करतेहैं, सो उचित नहीं कारण कि, वानप्रस्थके मरनेमें अशौचका निषेध है, तिससे गृहस्थ आदिके विषयमें यह जानना, इससे संन्यासीको अधिकार नहीं है और उसको काम्यकर्मका निषेधभी कहाहै, नैमित्तिकके न करनेमें दोष और नित्यता प्राप्त होगी, प्रयागमें तो अरोगियोंके निमित्त लिखाहै, और जो यह वाक्य है कि, शूद्र क्षत्रिय वैश्य अन्त्यज अधम ये सब द्विजको छोडकर प्राणोंको त्यागदें और ब्राह्मण पतित होकर ब्राह्मणहत्यारा और आत्महत्यारा होताहै सो वचन निर्मूल है यह भट्टोंका मत है॥ तत्त्व तो यह है कि, हेमाद्रिके व्रतकांडमें लिखा न रहनेसे निर्मूल कहना चिन्त्य है, प्रकरणसे तो (पतित्वा) गिरकर यहां भृगुसे ही पात होना युक्त है और ब्राह्मणको भी इसकी आज्ञा लिखीहै और आगे कहे कथनोंका विरोधभी है, जो तो आदित्यपुराणमें कहाहै कि, ब्राह्मण स्वर्ग आदि महाफलकी इच्छासे अग्निजलमें प्रवेश करै, और अनशन व्रत करै, वह प्रयागसे पृथक् विषयमें कहाहै ऐसा कोई कहते हैं; हेमाद्रिमे तो इससे आगे विदित होताहै कि, प्रयागमें वटकी शाखाके अग्रभागसे गिरे, इस कथनसे ब्राह्मण प्रयागमें भी न गिरै यह विदित होताहै ॥ माधवीय अपरार्कमेंभी आदित्यपुराणका यह वाक्य है कि, चिकित्साके अयोग्य महारोगोंसे पीडित जो पुरुष प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करै वा अनशनव्रत करै, गहरे जलमें गिरै, भृगुसे गिरै, वा

च । गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयागवटशाखाग्राद्देहत्यागं करोति च । स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत् कचित् । महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगान् समश्नुते ॥ एतेषामधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु । नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥ ईदृशं मरणं येषां जीवतां कुत्रचिद्भवेत् । आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा ॥ वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । काष्ठपाषाणमध्यस्थो, जाह्नवीजलमध्यगः ॥ अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलं गतो हरः । प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित्कचित् ॥ हेमाद्रौ चैवम् ॥ अत्र प्राप्ते काल इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे संपूर्णमेवाशौचम् ॥ पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि त्र्यहमाह ॥ शुद्धितत्वादिगौडग्रन्थेष्वप्येवम् ॥ एतच्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम् ॥ 'भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा' इति ॥ माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिवर्ज्यपूक्तेः नचात्र यावदुक्तनिषेधः ॥ विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् ॥ नच कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् ॥ सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तद्भिन्नस्यापि प्राप्तेः काम्यं भवत्येव ॥ ' ये वै तन्वां विसृजन्ति' इति श्रुतेः स्मृत्या संकोचायोगात् ॥ न चेयं स्वाभाविकमृत्युपरा धीरपदोक्तेः ॥

महामार्गमें चले, हिमालयमें चलाजाय, प्रयागवटकी शाखाके अग्रभागसे गिरकर देहको त्यागे, वा स्वयं देहविनाशका समय प्राप्त होय तो ऐसे समय बुद्धिमान् उत्तम लोकोंको प्राप्त होताहै, और आत्मघाती नहीं होता, महापापके क्षयसे स्वर्गमें दिव्यलोकोंको प्राप्त होता है, इनका अधिकार तो सब जीवोंके निमित्त है, नर और नारियोंकोभी है, उनका और वज्र अग्निसे मृतकोंका अशौच तीन रात तक लगता है, जो वैद्योंका त्यागा हुआ काशीमें काठ शिला गंगाजलमें मरे, तो अविमुक्तके सामने महादेव जो उसके कानमें तारक (ॐकार) मन्त्रको कहते हैं इससे अन्यथा कभी नहीं होता, मुक्त होताहै ॥ हेमाद्रिमें भी ऐसेही लिखाहै, यहां 'काल प्राप्त होनेपर' यह कथन करनेसे जिसके मरणका समय न आया हो ऐसी स्त्री यदि सती होय तो पूर्ण अशौच प्राप्त होताहै, पृथ्वीचन्द्रोदयने तो उसके निमित्त भी तीन दिनका अशौच लिखाहै, शुद्धितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें भी ऐसेही लिखाहै, और यह वृद्ध आदिकी मृत्यु कलियुगमें निषेध है, भृगु अग्नि आदिमें गिरकर वृद्धोंका मरना माधव और पृथ्वीचन्द्रने यहां निषिद्ध लिखाहै, यदि कोई सन्देह करै कि, पूर्वसे कहे सबका निषेध यहां नहीं है, सो उचित नहीं, कारण कि, वसिष्ठके उद्देश्यमें वाक्यभेदका भाव नहीं है, यदि कोई शंका करै कि, कलियुगमें वानप्रस्थ आश्रमके निषेधसेही यह बात सिद्ध थी, फिर मरणका निषेध करना व्यर्थ है, सो भी ठीक नहीं, कारण कि, 'सर्ववर्णेषु' इन वाक्योंसे वानप्रस्थसे भिन्नको भी यह बात प्राप्त होतीहै, काम्यमरण तो होताही है, जो शरीरको त्यागते हैं, इन श्रुतिस्मृतियोंसे संकोच नहीं होसकता । यदि कोई कहै, कि, यह स्वाभाविक मृत्युके

मात्स्यभारतादिषु–" न लोकवचनात्तात न वेदवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥" इत्युक्तेः ॥ अत एव विष्णुधर्मे रोग्यादिमरणमुक्त्वोक्तम् ' यथा युगानुसारेण संत्यजेदात्मनस्तनुम् ' इति ॥ काश्यामप्युक्तं मात्स्ये–" अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने ॥" हेमाद्रौ विवस्वान्– " सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्निपातो महापथः ॥ धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च । ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम् ॥ " अपरार्के चैवम् ॥ सहगमनं कलौ भवत्येव ॥ ' कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते ' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तं काशीखंडादौ चातुर्वर्ण्यस्य ॥ तनुत्यागविधयश्च युगान्तरपरा एव ॥ प्रयागेपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे–" यथाकथंचित्तीर्थेस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥ " पाद्मे विष्णुः–" देहत्यागं तथा धीराः कुर्वन्ति मम संनिधौ । मत्तनुं प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्म ते नराः ॥ " कौर्मे–" व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ईप्सितांल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुंगवाः ॥ " तथा–" या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।

विषय लेख है सो भी ठीक नहीं, कारण कि, इसमें श्रीरपद पड़ा है ॥ मत्स्यपुराण महाभारत आदिमें कहाहै कि, हे तात ! लौकिक और वेदोक्त वाक्योंसे प्रयागमें मरनेमें मतिको चलायमान न करना, इसलिये विष्णुधर्ममें रोगी आदिके मरणको कहकर लिखाहै कि, युगके अनुसार अपने देहको त्यागना, काशीमें भी मत्स्यपुराणके वाक्यमें लिखाहै कि, अविमुक्तक्षेत्रमें जो अग्निमें प्रवेश करतेहैं, हे वरानने ! वे निःसंदेह मेरे मुखमें प्रविष्ट होतेहैं, हेमाद्रिमें यमका वाक्य है कि, जिसकी सब इन्द्रिय शिथिल हैं, और जो अपने कार्य करनेमें असमर्थ है, उसका प्रायश्चित्त अग्निमें गिरना वा महामार्ग लिखाहै धर्मके संचय: करनेमें असमर्थ तथा पापसे युक्त ब्राह्मणको भी तीर्थमें प्राणोंका त्याग लिखाहै ॥ अपरार्कमेंभी इसी प्रकार लिखाहै सती होनेको जानो कलियुगमें होताहीहै कारण कि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि, सहअनुगमनको त्यागकर कलियुगमें स्त्रियोंकी दूसरी गति नहीं है, इससे मरणांतिकही प्रायश्चित्त है, काशीखंड आदिमें चारों वर्णोंको देहत्यागकी जो विधि लिखीहै वह अन्ययुगमें है, प्रयागमें भी त्रिस्थलीसेतुमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, जो जैसे तैसे तीर्थमें प्राणोंको त्याग करै, उसको आत्मघातका दोष नहीं लगता और वह यथेष्ट लोकोंको गमन करताहै, पद्मपुराणमें विष्णुने कहाहै कि, हे शूरो ! जो मेरे निकट देहको त्यागताहै, वह मेरे देहमें प्रवेश करताहै फिर उसका जन्म नहीं होता ॥ कूर्मपुराणमें लिखाहै कि, व्याधिसे युक्त दीन वा क्रोधी जो मनुष्य गंगायमुनामें प्राणोंको त्यागताहै, वह यथेष्ट कामनाको प्राप्त होताहै यह मुनिश्रेष्ठोंके वाक्य हैं, तैसे ही कथन है कि, जो योगीकी गति है जो सत्वगुणीकी गति है वही गति गंगायमुनाके संगममें

सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे ॥ " वाराहे-" तत्र यो मुश्चति प्रणान् वटमूलेषु सुन्दरि । सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते-" तथा-" अकामो वा सकामो वा वटमूलेषु सुन्दरि ॥ शीघ्रं प्राणान्प्रमुञ्चेत यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥" तथा-" पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मण्डले । व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥" ब्राह्मे-" ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः । तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ दुष्कृतोपि दुराचारो ब्रह्महत्यादिपातकी । हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रयागे मुक्तिमान्भवेत् ॥" भविष्योत्तरे-" समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश । महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥" इति सामान्यतोपि फलम् ॥ एवमन्येपि विषयो ज्ञेयाः ॥ यत्तु गौडाः प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तद्दूषणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ कृतमिति नात्रोच्यते ॥ अत्र दशाहमाशौचम् । त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति भट्टाः ॥ युक्तं तु त्रिरात्रम् ॥ दिवोदासीयेप्येवम् ॥ शुद्धितत्त्वेपि काश्यपः-" अनशनमृतानामशनिहतानामग्निजलप्रविष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम्" इति ॥ एवं मरणान्तप्रायश्चित्तेपि ॥ पूर्वोक्तश्चात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव ॥ वत्स-

प्राणोंके त्यागनेवालेकी होतीहै, वराहपुराणमें लिखाहै कि, हे सुन्दरि! प्रयागमें वटके मूलमें जो प्राणोंको त्यागताहै वह सब लोकोंको लंघकर मेरे लोकमें गमन करताहै, ऐसेही वाक्य है कि, पांच योजन पर्यन्त प्रयागके मंडलमें जो प्राणोंको त्यागताहै वह पिछले और अगले चौदह पुरुषोंको तार देताहै ॥ ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, विष्णुके चरणोंका ध्यान करके विष्णुमें तत्पर होकर जो मनुष्य माघमहीनेमें शरीर त्यागताहै, वह मुक्त होजाता है, इसमें सन्देह नहीं, दुष्टकर्मा हो दुराचारी ब्रह्महत्या आदि पातकी हो भगवानूका ध्यान करके प्रयागमें शरीर छोडे तो मुक्त होजाता है, भविष्योत्तरका वाक्य है कि, जलमें प्राण त्यागे, तो सात सहस्र वर्ष, अग्निमें दश सहस्र गिरनेमें सोलह सहस्र, महासंग्राममें साठ सहस्र, गौशालामें त्यागे तो अस्सी सहस्र वर्ष स्वर्गमें निवास होता है, हे भारत ! अनशन व्रतमें अक्षयगति होती है, यह सामान्यभी फल है, इसी प्रकार और भी विधि जाननी, और जो गौडोंने कहाहै कि, प्रयाग आदिका मरण ब्राह्मणसे भिन्नके विषयमें है, उसका दूषण हमारे पितामहचरणोंने प्रयागविधिमें लिखाहै इससे उसको नहीं लिखते इसमें दश दिनका अशौच है, त्रिरात्र अशौच प्राप्तकालके विषयमें जानना, यह भट्टोंका मत है, तीन रात करना युक्त है, दिवोदासीयमें भी ऐसेंही लिखाहै॥ शुद्धितत्त्वमें भी कश्यपका कथन है कि, अनशनसे मरे वज्रसे वा अग्नि वा जलमें प्रविष्ट हुये शिला संग्राम देशान्तरमें मृतक हुए दांत निकलनेमें मरोंका तीन दिन अशौच लगता है, इसी प्रकार मरणांत प्रायश्चित्तसे भी जानना चाहिये, पूर्वोक्त आत्महत्या करनेवाले आदिको दाह

रान्ते तु सर्वमौर्ध्वदैहिकं कुर्यात् ॥ " गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । ऊर्ध्वं संवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् " इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ एवं म्लेच्छीकृतानामपि गयाश्राद्धमपि कार्यम् ॥ " ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्च पातकी । सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात् " इत्यग्निपुराणात् ॥ एवं ब्राह्मेपि–"क्रियते पतितानां तु गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपे स्वबन्धुभिः ॥ मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् ॥ " सूर्यपद इत्यर्थः ॥ तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपरार्के वायुपुराणे–"शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्यात् श्राद्धं तु वत्सरम् । द्वादशाहानि वा कुर्याच्छुक्ले च प्रथमेऽहनि ॥ " छागलेयः–"नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥" व्यासः–"नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते ॥ तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा ॥" इति ॥ स चात्मघातादिप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यः ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–"कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । पिण्डोदकक्रियाः पश्चाद्वृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा ॥ " दिवोदासीये वृद्धशातातपस्तु–"पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यांस्तु षोडश । मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥" इत्याह ॥ इदं प्रायश्चित्तादिपित्रादिविषयम् ॥

अशौच आदिका निषेध तौ तभी है अर्थात् अशौचके समयमें ही है, वर्षके पीछेमें तो सब और्ध्वदैहिक कृत्य करै, कारण कि हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखाहै कि, जो ब्राह्मणद्वारा मरा हो और पतित हो उनका वर्षदिनके उपरांत सब और्ध्वदैहिक करै, इसीसे जो म्लेच्छ किये गये हैं, उनका भी गयाश्राद्ध करना, कारण कि, अग्निपुराणमें लिखा है कि, ब्रह्महत्यारे, कृतघ्न, गौका घातक, पांचों पातकी ये सब गयामें पिंडदानसे मुक्त होते हैं ॥ ऐसेही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, वर्षदिनके उपरान्त पतितोंका कर्म देशधर्मके अनुसार गयाकूपमें वा मार्तण्डके पादमूलमें हरिहरको स्मरण करके वा सूर्यपदमें बांधव श्राद्ध करै, उनका वर्षके बीचमें कृत्य करना, अपरार्कमें वायुपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, शुक्लपक्षकी द्वादशीको वर्षदिनतक श्राद्ध करना चाहिये वा शुक्लपक्षके पहले दिनसे बारह दिनतक करना, छागलेयने लिखाहै कि, लोकनिन्दाके डरसे मनुष्य नारायणबलि करै, तैसेही उनकी पवित्रता होती है और प्रकार नहीं यह यमने लिखाहै ॥ व्यासने कहा है कि, नारायण वा शिवके निमित्त जो दिया जाता है वही उसकी शुद्धिका कार्य है और नहीं, वह भी आत्महत्याका प्रायश्चित्त करके करना चाहिये, यही हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि, प्रथम चांद्रायण करके विधिपूर्वक क्रिया करनी, लोकअपवादके भयसे नारायणबलि करै, फिर पिंड जलदान और वृषोत्सर्ग आदि और एकोद्दिष्ट करै ॥ दिवोदासीयमें वृद्धशातातपने लिखा है कि, पतितके मरनेमें निमित्त सोलह प्राजापत्य, और अपत्यरहित मरनेमें नब्बे ९० कृच्छ्रव्रत करै, यह

इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः । घातयन्ति स्वमात्मानं चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः । यथा श्राद्धं प्रतन्वंति विष्णुनामप्रतिष्ठितम् ॥ तथा ते संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे ॥ " हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः ॥ तत्रैव बौधायनोपि–'नारायणबलिं व्याख्यास्यामोऽभिशस्तपतितसुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीत' इति ॥ गृह्यपरिशिष्टे तु–चण्डालादित्याद्युक्त्वा–"दग्ध्वा शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः । प्रायश्चित्ते तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायणत्रयम् " इत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने ब्राह्मणहतानां च द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीतेति ॥ मदनरत्ने ब्राह्मे–"प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो: यत्र कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः । चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये ॥ यद्वा कृच्छ्राण्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत् । बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेत्" इत्युक्तम् ॥ स्मृतिरत्नावल्यां तु–'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वार्वागब्दात्सर्वं कार्यम्' इत्युक्तम् ॥ " आत्मतो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् । तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा पुनः ॥ अर्वाक् संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् । कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः" इति ॥ इदं चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचितं कार्यम् ॥ अत एव बौधायनोक्तं–'द्वादश

प्रायश्चित्तके योग्य पिता आदिके विषयमें लेख है कारण कि, हेमाद्रिमें उसनेही यह लिखा है कि, जो इन्द्रियोंसे हीन मूढ और दुःखी हैं और अपनी आत्माको नष्ट करते हैं, और जो चाण्डालआदिसे मृतक हुए हैं दयासे युक्त उनके पुत्रपौत्रोंको जैसे नारायणबलि करनी चाहिये, तैसे ब्रह्माको नमस्कार करके तुझसे कथन करताहूँ ॥ वहांही बौधायनने लिखा है कि, नारायणबलिको कहते हैं, जिसे शाप लगाहो, जो पतित हो, मदिरासे मृतक हुआहो, ब्राह्मणने माराहो उसकी बारह वा तीन वर्षतक नारायणबलि करनी चाहिये, गृह्यपरिशिष्टमें तो यह लिखा है कि, चाण्डालआदिसे जो मृतक हो उसके शरीरको दग्ध करके अस्थियोंको यत्नसे स्थापन करना चाहिये, पुनः उसका पुत्र यत्नसे तीन चांद्रायण करे, मदनरत्नमें कहा है कि, ब्राह्मणसे जो मृतक हुएहों उनको प्रायश्चित्त बारह वा तीन वर्ष करे ॥ मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, प्रमादसे वा अकस्मात् ब्राह्मण चांडाल या चोरोंसे जो मृतक हुआ हो उसका दाह आदि करै, कारण कि, वह पतित नहीं, और उसकी शुद्धिके निमित्त चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करै, अथवा पन्द्रह तप्तकृच्छ्र करके विधिसे दाह करै, जानकर मरे होंय तो तीस कृच्छ्र करै ॥ स्मृतिरत्नावलीमें तो यह लिखा है कि, दुगुना प्रायश्चित्त करके वर्षदिनसे प्रथम भी सब क्रिया करै, आत्महत्याकी शुद्धिके निमित्त दो चांद्रायण और चार तप्तकृच्छ्र व्रत करै, वा तीस कृच्छ्र करै, फिर वर्षदिनसे प्रथम भी दाह आदि नारायणबलिके उपरांत अवस्थाके अनित्य होनेसे करै, और यह प्रायश्चित्त और जातिवधका प्रायश्चित्त एकसाथ करै, इसीसे बौधायन बारह वा तीन वर्ष लिखते हैं ॥

वर्षाणि त्रीणि वा' इति ॥ मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च-'ब्रह्महादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः' इत्युक्तम् ॥ एवं म्लेच्छीकृतानामपि । यत्तु कश्चिदाह- 'पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु महापातके तु कथं स्यादिति ॥' स स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयं वदन् हृदयशून्य एव ॥ नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति ॥ पुत्रकर्तृकसर्वप्रायश्चित्तादिविप्लवापत्तेः॥ प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक् ॥" इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव । प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम् इति केचित् ॥ मदनपारिजातादिस्वरसोप्येवम्॥ वस्तुतस्तु-'तदर्हानर्हयोर्वचनेनुपादानादविशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम् ॥ 'पतितोदकविधिस्तु पित्राद्यतिरिक्तविषयः' इत्यपरे ॥ स यथा हेमाद्रौ ब्राह्मे- "पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति । स हिं दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम् ॥ अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि । हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम् ॥ तोयपूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी । उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥ कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वदेः । निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत् ॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां च नान्यथा॥" इति ॥ इदं च मृताहे कार्यम् ॥

मदनपारिजात और स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै कि, ब्रह्महत्यारोंका यथायोग्य प्रायश्चित्त करके नारायणबलि करनी, इसी प्रकार जो म्लेच्छ होगये हों उनका भी जानना, जो किसीने यह लिखाहै कि, पुत्रके किये प्रायश्चित्तसे पिताका पापनाश होताहै इसमें प्रमाण नहीं है, आत्महत्यामें तो वाक्यसे रहो पर महापातकमें कैसे हो, ऐसा कहनेवाला ज्ञानशून्य है, कारण कि, उसने स्वयं आत्महत्याके प्रायश्चित्तके संग जातिहत्याका प्रायश्चित्त लिखाहै कोई वाक्य ऐसा नहीं है कि, जातिहत्याका प्रायश्चित्त पुत्र करै, कारण कि, पुत्रके करने योग्य सब प्रायश्चित्त वृथा होजायँगे और पूर्वोक्त बौधायनका कथनभी पुत्रको प्रायश्चित्त करनेमें प्रमाण है, यह संक्षेपसे लिखाहै ॥ यहभी प्रायश्चित्तयोग्योंके लिये है, प्रायश्चित्तके अयोग्योंको तो जलमात्र दे यह कोई कहते हैं, मदनपारिजात आदिका आशयभी इसी प्रकार है, सिद्धान्त तो यह है कि, वाक्योंमें प्रायश्चित्तके अयोग्य नहीं पढे, इससे सर्वथा उनका भी नारायणबलि और गयाश्राद्ध करना युक्त है, पतितकी जलक्रिया तो पितासे भिन्नके विषयमें है, यह बात अपर कहते हैं ॥ वह विधि इस प्रकार हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, जो अपनी दयासे पतितको तृप्त करनेकी इच्छा करै वह सबके संग गमन करनेवाली दासीको बुलावे, और अशुद्ध घडा हाथमें देकर यह कहे कि, हे दासी ! तू शीघ्र जा और तिल मोल ले आ; और जलसे भरे और तिलसहित इस घडेको दक्षिणमुख बैठी बायें पैरसे फेंकदे, और पातकीका नाम लेकर बारंवार कहना कि, तू इस जलको पी. इस वाक्यको सुनकर दासी उसी प्रकार करै, ऐसे करनेसे पतितोंकी तृप्ति होती है और भांति नहीं, यह पतितोदक विधि मरनेके दिन करनी, कारण कि, मदनरत्नमें लिखा

पतितस्य दासी मृताह्नि यदा घटमपवर्जयेदेतावतायमुपचरितो भवतीति मदनरत्ने विष्णूक्तेः ॥ इदं चात्मत्यागिविषयम् ॥ आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचोदकभाजः स्युरित्युपक्रम्य विष्णुना एतस्याभिधानादिति गौडाः ।यत्तु कश्चिदाह यः । पतितो घटस्फोटेन बान्धवैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणि क्रियानिषेधवाक्यानि जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः कृतत्वात्तत्पुनः करणाभावादिति ॥ स बन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्तेर्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन् मूर्ख इत्युपेक्षणीयः ॥ नच कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधिर्नेति वाच्यम् ॥ मनुनाऽकृतघटस्फोटस्य त्यागमुक्त्वा—"प्रायश्चित्ते तु चीर्ते पूर्णं कुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये" इत्युक्तेः । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥ अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादेरब्दान्ते नारायणबलिः ॥ निषेधास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् ॥ केचित्तु नारायणबलौ कृतेप्यन्त्यकर्म सपिंडनवर्जं कार्यम् ॥ "गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च । व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडना" इति वचनात् । 'ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते' इति श्राद्धप्रकारोक्तेश्चेत्याहुः ॥ ते हेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्राद्ध-

---

है कि, दासी पतितके मरने दिन चरणसे घडेको औंधा दे, इतनेहीसे वह पतित कृतार्थ होजाता है, यह भी आत्मत्यागीके विषयमें है ॥ कारण कि, विष्णुने कहाहै आत्मत्यागी जो पतित हैं वह जल और अशौचका भागी नहीं इस प्रकरणमें यह वाक्य है. यह गौड लिखतेहैं युक्त तो यह है कि, यह वाक्य उपलक्षण होनेसे सब पतितोंके निमित्त है, जो किसीने यह लिखाहै कि, जिस पतितका घटस्फोट करदिया फिर उसके और कृत्य करनेका अभाव है ऐसे कहनेवाला मूर्ख उपेक्षा करने योग्य है, कारण कि, बन्धुओंके त्यागसे जिसका वैराग्य प्राप्त होगया है, और जो प्रायश्चित्त करचुकाहै उसकी क्रिया भी कोई न करैगा इस मिताक्षरा आदिके विरोधको उसने नहीं देखा है यदि कोई शंका करै कि, जिसका घटस्फोट कर्म हो उसका फिर संग्रह नहीं सो उचित नहीं ॥ कारण कि, मनुने जिसका घटस्फोट हुआ हो उसके त्यागको कहकर लिखा है कि, प्रायश्चित्त किये पीछे जलसे भरे नये घडेको पवित्र जलके स्थानमें उसी पतितको संग लेकर स्नान करके फेंकदे, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इसका प्रसंग होजायगा. इससे घटस्फोटसे जातिबाह्य किये पिताकी भी नारायणबलि वर्षके अन्तमें करनी चाहिये, जो चाचा आदिके विषयमें निषेध है यह इसका सिद्धान्त है, कोई तो यह लिखतेहैं कि, नारायणबलि करनेके पीछे भी सपिंडीको त्यागकर अन्तकर्म करै, कारण कि, श्राद्धप्रकरणमें यह लिखाहै कि, और भी यह कथन है कि, गौ ब्राह्मणसे मरे और पतित और निषिद्ध कर्मोंसे मरोंकी सपिण्डी न करै, ब्राह्मण आदिसे मृतक हुए और संन्यासी पिताकी सपिंडी न करै, वेभी इससे उपेक्षा करनेको योग्य हैं कि, हेमाद्रिमें कहे पूर्वोक्त षट्त्रिंशत् मतका इससे विरोध है, और वह निर्मूल होनेसे श्राद्ध प्रकारका वचन वृद्धिश्राद्धके विषयमें जाननेसे उपेक्ष्य

प्रकारस्य वृद्धिश्राद्धविषयत्वादुपेक्ष्याः ॥ नारायणबलिनिर्णयः । नारायणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुसारेणोच्यते ॥ तत्रादौ क्रियानिबन्धे गारुडे तर्पणमुक्तम्–"कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥ अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुंडरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव" इति ॥ शुक्लैकादश्यां देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थमौर्ध्वदैहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्य इति संकल्प्य' ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं च पञ्चकुम्भेषु ॥' "विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना" इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् नामगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् यज्ञोपवीत्येवामुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाय ते पिण्ड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य तेनैव शङ्खोदकेनाभिषिच्याभ्यर्च्यामुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि;' इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं तर्पयित्वा एकमामान्नं ब्रह्मादिपञ्चभ्यो दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु–" ब्रह्माविष्णुमहादेवा यम-

है ॥ नारायणबलि तो हेमाद्रिके अनुसारसे लिखतेहैं, उसकी आदिमें क्रिया निबन्धमें गरुडपुराणके वाक्यसे तर्पण लिखाहै कि, पुरुषसूक्तसे वा विष्णुके मन्त्रसे दक्षिणको मुख कर प्रेतको विष्णुरूप स्मरण करताहुआ तर्पण करै, और कहे कि, आदि अन्तसे रहित शंख चक्र गदाधारी अक्षय पुंडरीकाक्ष जो देव हैं वे प्रेतको मोक्षप्रदान करैं शुक्लपक्षकी एकादशीको देशकालको कहकर अमुक गोत्र और अमुक नामके दुष्ट मृत्यु और आत्महत्याके दोषनाशार्थ और्ध्वदैहिक कर्ममें सप्रदान (जिसको दियाजाय) की योग्यता सिद्धिके निमित्त नारायणबलि करताहूं यह संकल्प करके ब्रह्मा विष्णु शिव यम प्रेतको पांच घडोंपर स्थापन करै ॥ सोनेके विष्णु चांदीके ब्रह्मा ताम्रनिर्मित शिवलिंग लोहका यम कुशाका प्रेत यमके कथनानुसार निर्माण करै वा सब प्रतिमा सुवर्णकी बनाकर पुरुषसूक्तसे षोडशोपचार अर्चन करके अग्निका स्थापन करने उपरान्त पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे नारायणके निमित्त हवन करके देवताओंके आगे दक्षिणाग्र कुशाओंपर विष्णुरूप प्रेतका नाम गोत्र उच्चारण कर स्मरण करताहुआ मधु घी तिलसे युक्त दशपिंडोंको सव्य होकर प्रदान करै, अमुक गोत्र अमुक शर्मन् प्रेत विष्णुरूप यह पिंड तुमको प्राप्त हो इस प्रकार देकर कुशा पुरुषसूक्त और यमसूक्तसे पिंडोंका अभिमंत्रण करना चाहिये, और शंखके जलमे छिडक और पूजा करके अमुक नाम अमुक गोत्र विष्णुरूप प्रेतको तृप्त करता हूं यह कहकर पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्रसे तर्पण करके ब्रह्मा आदि पांच देवताओंके निमित्त एक आमान्न (सीधा) देदे ॥ यह मन्त्र पढै कि, ब्रह्मा विष्णु

श्चैव सार्किकरः। बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च शुभां गतिम्" इति॥ मिताक्षरायां तु होमबल्यादि नोक्तम्॥ ततः प्रतिदैवतं त्रिविधं फलं शर्करामधुगुडघृतानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ नव सप्त पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुं यमं संपूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा विष्णुयमप्रेतान् स्मरन् विप्रानुपवेश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्यावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वोल्लेखनादि कृत्वान्नशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय सपरिवाराय चतुरः पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाभ्यर्च्याचान्तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलोदकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति॥ अत्र विशेषान्तरं भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम्॥ सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वेद्युरेकभक्तपूर्वं शुक्लपञ्चम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशङ्खपालकालियतक्षककपिलेतिनामभिः प्रतिमासं संपूज्य पायसेन विप्रान् संभोज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च दत्त्वा नारायणबलिं कुर्यात्॥ एतन्मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम्॥ बौधायनसूत्रे सर्पमृतानां 'नमोस्तु सर्पेभ्यः' इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां 'समुद्राय वयुनाय हुत्वेति' क्रियां कुर्यादिति शेषः॥ व्यासः–

महादेव और चरोंसहित यमबलि लेकर प्रेतकी शुभ गति प्रदान करैं, मिताक्षरामें तो हवन बलि आदि नहीं लिखी फिर प्रत्येक देवताको तीन प्रकारके फल शक्कर मधु घृत गुड देकर पिंडोंका पूजन कर नदीमें विसर्जन कर रात्रिमें तो सात वा पांच ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर व्रत और रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल हुये पर विष्णु और यमकी पूजा करके कहे कि, एकोद्दिष्ट विधिसे पांच श्राद्ध करताहूं विष्णु यम प्रेतका स्मरण करताहुआ पाद्य आवाहन आदि अर्घ्यसे युक्त तृप्तिको पूछ करके और वेदीपर उल्लेखन आदि करके ब्राह्मणोंके भोजनके शेष अन्नसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सानुचर यमके निमित्त चार पिंड देकर प्रेतके नाम, गोत्रका स्मरण करके विष्णुके नामसे पांचवां पिंड देकर अर्चा करै, और आचमन कराकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर और विशेषकर एक प्रेतका स्मरण करके ब्राह्मणोंके संतोष करने पूर्वक और प्रेतको यह तिलजल प्राप्त हो यह कहलाकर तिलसहित जल प्रदान कराय भोजन करै॥ इसका अन्य विशेष वर्णन भट्टकृत अन्त्येष्टिपद्धतिमें देखलेना, जो सर्पसे मृतक हुआहो उसके निमित्त वर्षपर्यन्त एक समय भोजन करके शुक्लपंचमीको उपवास व्रत वा रात्रि व्रत करके पिष्टके सर्प नागकी प्रतिमा इन नामोंसे पूजा करै कि, अनन्त वासुकी शंख पद्म कंबल कर्कोटक अश्वतर धृतराष्ट्र शंखपाल कालीय तक्षक कपिल नाम हैं, फिर पायससे ब्राह्मणोंको भोजन कराय वर्षके अन्तमें सुवर्णका नाग और प्रत्यक्ष गौ देकर नारायणबलि करै, इसका मूल तो हेमाद्रिमें लिखा है॥ बौधायन सूत्रमें तो यह लिखा है कि, सर्पसे मृतक हुओंके निमित्त "नमोस्तु सर्पेभ्यः" इस मन्त्रसे तीन आहुति देकर और

१ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु येन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ य०॥

"सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम्। व्यासाय दत्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्तवान् ॥" हेमाद्रौ भविष्ये-" पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत्। क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना " इति ॥ अपरार्के स्मृत्यन्तरेपि-" तदैव शुद्ध्यति प्रेतो नारायणबलौ कृते। यो ददाति क्रियापिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः ॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं त्र्यहमेव न संशयः । विष्णुश्राद्धसमाप्तौ तु त्रयोदश्यां दिनत्रयम् ॥ आशौचं पिण्डदः कुर्यान्न तु तद्बन्धुगोत्रजाः। यस्य वै मृत्युकाले तु व्युच्छिन्नाः संततिर्भवेत् ॥ स वसेन्नरके नित्यं पङ्कमग्नः करी यथा ॥ " इत्युपक्रम्य-' बलिं नारायणं कुर्यात्तस्योद्देशेन भक्तिमान् ' इति गारुडोक्तेरपुत्रस्यापि पत्न्याद्यैः कार्यं इत्युक्तं देवयाज्ञिकेन ॥ अथ विधानादाशौचाभावः। यथा यतियुद्धमृतादिषु-" त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्दाहादिकाः क्रियाः । यतेः किंचिन्न कर्तव्यं न चान्येषां करोति सः ", इति ब्राह्मात् ॥ उशनाः-" एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥ सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥" भिक्षुप्रेतसंस्कारः। अथ तत्संस्कारं वक्ष्यामः ॥

जलसे मृतक हुएकी "समुद्राय वयुनाय" इस मन्त्रसे होम करके मन्त्र क्रिया करै, व्यासने लिखाहै कि, सुवर्णके भारसे नाग और गौको निर्माणकर विधिसे व्यासको देकर पिताके ऋणसे उरिण होता है. हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, पंचमीके दिन एक सोनेका नाग बनावै, दूध और घीके पात्रमें रखकर उसको अर्चा करके ब्राह्मणको दे यह नागदष्ट मनुष्यका प्रायश्चित्त शंभुने लिखा है ॥ अपरार्कमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, नारायणबलि संपादन करतेही प्रेत शुद्ध होताहै, जो पुत्र उसके निमित्त पिंड और क्रियाको करै उसको तीन दिन अशौच लिखा है, त्रयोदशीके दिन विष्णुश्राद्धकी पूर्ति होनेपर पिंड देनेवालेको तीन दिन अशौच करना चाहिये, उसके बन्धु और सगोत्री न करैं, मरणकालमें जिसके संतति न हो वह नरकमें इस प्रकार बसताहै, जैसे कीचमें मग्न हुआ हाथी, इस प्रकरणमें गरुडकी उक्तिसे देवयाज्ञिकने लिखाहै कि, भक्तिमान् पुरुषको उसके निमित्त नारायणबलि करनी चाहिये. इस प्रकार अपुत्रकी पत्नी आदिको उसकी क्रिया करनी चाहिये ॥ अब विधिद्वारा अशौचके अभावको कथन करतेहैं जिस प्रकार संन्यासी और युद्धमें मृतक हुओंको अशौच नहीं लगताहै कारण कि, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, तीन आश्रमोंकी दाहआदि क्रिया करे, और संन्यासीके निमित्त कुछ भी न करै, कारण कि, यह भी किसीका नहीं करताहै, उशनाने लिखा है कि, संन्यासियोंका एकोद्दिष्ट सदा न करना चाहिये. ग्यारहवें दिन पार्वण करैं, पुत्र आदिको उनकी सपिंडी करनेका विधान नहीं, कारण कि, त्रिदण्डके ग्रहणसेही वे प्रेत नहीं होतेहैं ॥ संन्यासीका संस्कार आगे लिखेंगे,

दत्तात्रेयः—" एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रिया । न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥" वार्षिकादिति पूर्वभाविमासिकादिनिषेधो नतु दर्शादेः ॥ 'संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि' इति वायवीयोक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये प्रजापतिः—" अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः ॥" एषु सपिण्डनादिनिषेधानुवादेन पार्वणोक्तेस्तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते ॥ 'न गिरागिरेति ब्रूयादैरंकृत्वोद्गेयम्' इतिवत् ॥ इदं वार्षिकादिविधानं च त्रिदण्डिनामेव । एकदण्डिपरमहंसादीनां तु न किमपि कार्यम् । पूर्वोक्तोशनोवाक्ये त्रिदण्डिग्रहणादिति शूलपाण्यादयो गौडाः ॥ त्रिदण्डिशब्देन मनोदण्डादिदण्डत्रयोक्तेः ॥ 'यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते' इति स्मृतेः ॥ बौधायनः—' नारायणवलिश्चास्य कर्तव्यो द्वादशेऽहनि ॥' अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः ॥ तं च स एवाह—" कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् । अग्नौ कृत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान्साधून्वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ संभोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणां च निवेदयेत् । त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं [illegible]तेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथातथाभ्यर्च्य पाद्या-

---

दत्तात्रेयने लिखाहै कि, वार्षिक श्राद्धके सिवाय ब्रह्मरूप भिक्षुके निमित्त एकोद्दिष्ट जल पिंड अशौच और प्रेतकृत्य न करै, वार्षिक श्राद्धसे प्रथम होनेवाले मासिक श्राद्धोंका निषेध कहाहै अमावस्याके श्राद्धका नहीं कहा. कारण कि, वायुपुराणमें लिखा है कि, संन्यासीका भी वार्षिक आदि श्राद्ध पुत्र करै ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रजापतिका वाक्य है कि, ग्यारहवें दिन पार्वण करै, और पुत्रआदिको उसकी सपिंडी न करनी चाहिये. इन वाक्योंमें सपिंडीके अनुवादसे पार्वण करना लिखाहै, इस सपिंडीके स्थानमें पार्वणश्राद्ध जानना, जैसे वाणीसे २ ऐसे न उच्चार करै :किन्तु वाणीको उच्चारण करके गावै, यह वार्षिक आदिका विधान त्रिदंडीके विषयमेंही जानना. एकदंडी परमहंसआदिके निमित्त कुछ भी न करै, कारण कि, पूर्वोक्त उशनाके कथनमें त्रिदंडीका ग्रहण है, यह शूलपाणि आदि गौडोंका कथन है और त्रिदंडी पदसे मनोदंड आदि तीन दंड ग्रहण किये हैं, कारण कि, यह स्मृतिमें कहा है कि, जिसके पास ये दंड विहित हैं वही त्रिदंडी कहाता है ॥ बौधायनने कहा है कि, इसकी नारायणबलि बारहवें दिन करनी चाहिये इसका पार्वणके संग समुच्चय समझना वह भी उसनेही लिखाहै कि, विष्णुकी महापूजा करने उपरांत खीर निवेदन करै, और सावधान चित्त होकर महाव्याहृतियोंसे उसे अग्निमें होम करै, संन्यासी गृहस्थ साधु महात्माओंको न्यूनसे न्यून बारह निमन्त्रण देकर और बारह नामोंसे गंध पुष्प आदिसे अर्चा कर हव्य अन्नसे जिमाकर दक्षिणा दे और तेरहवें आत्मसंज्ञक जितेंद्रिय ब्राह्मण विष्णुरूपको यथायोग्य पाद्यआदिसे पूजन कर पुरुषसूक्तका पाठ कर क्रमसे गंध पुष्प

चैश्च विधानतः । दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ वस्त्रालंकरणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् । उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवः स्वः स्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद्बलित्रयम् । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ तत्फलं लभते देव यः करोति यतिक्रियाम् ॥" शौनकस्तु–"शौनकोहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम् । चण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्विद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वान्यसाधनैः ॥ जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकांक्षिणाम् ॥ पुण्यायाघक्षयार्थाय द्वादशेऽहनि कारयेत् ॥ द्वादश्यां श्रवणेऽब्दान्ते पञ्चम्यां पर्वणोस्तु वा" इत्युक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वं विधिमुक्त्वा अतो देवेति षड्भिः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादिद्वादशनामभिस्तद्रूपिणे पित्रे द्वादशविप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान्दद्या दित्यधिकमाह ॥ युद्धमृते तु प्रागुक्तम् ॥ कृतजीवच्छ्राद्धमृते सपिण्डैराशौचादि कार्यं न वा ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ लैङ्गे–"मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम् । काले गते द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते ॥" जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः–"नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा । बान्धवेपि मृते तस्य

आदिसे और शक्तिके अनुसार वस्त्र अलंकार देने और उस ब्राह्मणके उच्छिष्टके निकट भूमिमें कुशा बिछाय भूः भुवः स्वः स्वधासे युक्त इन तीनोंसे तीन बलि उसके निमित्त दे, जो मनुष्य संन्यासीकी इस क्रियाको करताहै उसको सहस्र अश्वमेधके और सौ वाजपेयके यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ शौनकने यह लिखाहै कि, मैं शौनक श्रेष्ठ नारायणबलिको लिखताहूं, चांडाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली दाढवाले पशु, रज्जु, शस्त्र, विष, पत्थर इनसे मृतक हुए, देशान्तरमें वा साधनोंसे मरोंका जीवत् श्राद्ध, और छोटोंका श्राद्ध, और संन्यासी योगी और दूसरे मोक्षके अभिलाषियोंके निमित्त पुण्य और अवक्षयके निमित्त बारहवें दिन करै, वा वर्षके उपरांत श्रवणयुक्त द्वादशीको वा पञ्चमीको पार्वण करै, यह कहकर और पूर्वोक्त सब विधिको कहकर 'अतोदेव०' इन छः मन्त्रोंसे और पुरुषसूक्तके प्रत्येक मन्त्रका पाठ कर पायसका होम करके, केशवआदि बारह नमोंसे विष्णुरूप पिताके निमित्त बारह ब्राह्मणोंको भोजन करायकर उन्हीं नामोंसे बारह पिंडदे यह अधिक लिखाहै, युद्धमें मृतकका तो पूर्व लिखाहै, जिसका जीवतेमें श्राद्ध करदियाहो वह मृतक हो तो सपिंड उसके अशौच आदिको करै वा न करै ॥ यही हेमाद्रिमें लिंगपुराणकके वाक्यसे लिखाहै कारण कि, जिससे वह स्वयं जीवन्मुक्त है अत इस कारण उसके मृतक होनेपर अन्त्यक्रिया करै वा न करै ऐसे समय मृत्यु होनेपर ऐसे द्विजको भूमिमें गाडदे वा जलादे, और सम्पूर्ण पुत्रका कार्य करनेका दोष नहीं, जीवतेहुएका भी वहांही विशेष लिखाहै कि, नित्य नैमित्त कर्मको करै, वा त्यागदे

नैवाशौचं विधीयते ॥ सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥" एतद्योगिविषयम् ॥ 'योगमार्गरतोपि च' इति तस्याप्युक्तेः ॥ तथाऽऽहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पित्रादीनामाशौचं संध्यादिकर्मलोपश्च नास्ति ॥ "अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति" इति स्मृतेः ॥ आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः ॥ संस्काराङ्गं च भिन्नो दशाह इति धूर्तस्वामी रामाण्डारश्च ॥ तच्चिन्त्यम् । मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च ॥एतत्प्रागुक्तम् ॥ अत्र देहस्यैव संभवे दाहः "आहिताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम् ॥ विधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे–"विदेशमरणेऽस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा । दाहयेद्बर्हिषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थ्नामलाभे पर्णानि शकलान्युक्तयावृता । दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥" हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–"कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं दर्भैस्त्रिशतषष्टिभिः । पालाशिभिः समिद्भिर्वा संख्या चैव प्रकीर्तिता ॥" भविष्ये–"चत्वारिंशच्छिरस्थाने ग्रीवायां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे

उसकी मृत्युमें योगियोंको अशौच और सूतक नहीं है, केवल स्नानमात्रसे शुद्धि होती है, यह योगीके विषयमें जानना ॥ कारण कि, योगमार्गरतोऽपि च' ऐसा कहाहै कि, आहिताग्नि परदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसकी अस्थियोंके दाहसे प्रथम पुत्र आदिको अशौच और सन्ध्या आदिके कर्मका लोप नहीं होताहै कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, अग्निहोत्रीसे पृथक्के मरनेमें द्विजातियोंमें अशौच आदि लगताहै, और अग्निहोत्री विदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसकी अस्थियोंके दाहसे प्रथम पुत्र आदिको अशौच और सन्ध्याआदि कर्मका लोप नहीं होता है, कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, अग्निहोत्रीसे पृथक्के मरनेमें द्विजातियोंमें अशौचआदि लगता है और अग्निहोत्री विदेशमें मृत्युको प्राप्त हो तो दाहसे अशौचआदि जानना चाहिये आहिताग्निका दाहसे प्रथम भी दशदिनका और संस्कारका अंग अशौच दश दिनका पृथक् होताहै यह धूर्तस्वामी और रामांडारका कथन है सो अप्रमाण है ॥ कारण कि, प्रमाण एकही है और वाक्योंका विरोध भी पडता है, यह कथन लिखआये हैं, यहां देह मिले तो दाह है, आहिताग्निकी विदेशमें मृत्यु होजाय तो देहको रख ले, कारण कि, जबतक उसका ही अग्निसे दाह नहीं होता तबतक गति नहीं होती यह ब्राह्मपुराणका वाक्य है, वह न होसके तो छन्दोगपरिशिष्टमें वर्णन किया है कि, विदेशमें मृत्यु हो तो अस्थियोंको लाकर और घृत लगाय कुशाओंसे ढककर दग्ध करावे, और पात्रोंको त्यागादि पूर्वके समान करै, अस्थि न मिले, तो पूर्व प्रकारसे अस्थियोंकी संख्याके समान पत्तोंको दाह करै, उसी दिनसे सूतक लगताहै, हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत लिखाहै कि, कुशाओंका प्रेत बनावे, और उसमें तीन सौ साठ कुशा हों, और इतनी ही संख्या ढाककी समिधोंकी है, भविष्यपुराणका वाक्य है कि, शिरके स्थानमें चालीस, ग्रीवामें दश, भुजाओंमें सौ, छातीमें बीस, पेटमें बीस, कटिमें तीस, जंघाओंमें सौ

विंशतिं दद्यात्त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघयोः ॥ पादाङ्गुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ॥' मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—" शिरस्यशीत्यर्धं दद्याद् ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैकशतं दद्याद्दश चैवाङ्गुलीषु च ॥ उरसि त्रिंशतं दद्यात्त्रिंशतिं जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयोरर्धार्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चैकशतं दद्यात्त्रिंशतं जंघयोर्द्वयोः । पादांगुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥ मस्तके नारिकेरं तु अलाबुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपर्दौ द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु अन्त्रस्थाने विनिक्षिपेत् । मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्रे तु पारदं दद्यात्पुरीषे पित्तलं तथा । संधिषु तिलपिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्वचास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्जर्जके देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्याद्वृन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः ॥" इति क्रियानिबन्धे । गारुडेप्येवमुक्त्वान्यदपि—" घृतं नाभ्यां तु देयं स्यात्कौपीने च त्रपु स्मृतम् । मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुंकुमेन विलेपनम् । सिन्दूरं नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्यमहारकैः । सर्वौषधियुतं कृत्वा पूजां चैव यथोदिताम् ॥" इदं निरग्नेरपि । तत्रैव वृद्धमनुः—" प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद् द्वादशाब्दिकः । प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥"

जानु और जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दश लगावे यह प्रेतकी कल्पना है ॥ मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वका कथन है कि, शिरमें चालीस, ग्रीवामें दश, बांहोंमें सौ, अंगुलियोंमें दश, छातीमें तीस, उदरमें तीस, वृषण (अण्डकोष) में छः, लिंगमें चार, जंघाओंमें सौ, और छोटी जंघाओंमें तीस, पादकी अंगुलियोंमें दो २ दे यह प्रेतकी कल्पना (बनाना) है, मस्तकपर नारियल, तालूपर तूंबी, मुखमें पंचरत्न, जिह्वामें केलेकी फली, नेत्रोंमें दो कौडी, नासिकामें काले तिलका फूल, कानोंमें ब्राह्मीके पत्ते, केशोंमें बडके अंकुर, कमलोंकी नाली आंतोंमें रक्खे, वसा (चर्बी) के स्थानमें मिट्टी, धातुके स्थानमें हरताल गन्धक, वीर्यमें पारा, विष्ठामें पित्तल, सन्धियोंमें तिलकी खल, मांसमें जौकी पिट्ठी, रुधिरमें शहत, त्वचामें मृगछाला, स्तनोंमें चौटली, नासिकामें कमल, नाभिमें कमल, वृषणोंमें बैंगन, लिंगमें लालमूली दे और, ढकनेके निमित्त दुपट्टा, गोमूत्र गोबर गन्ध सर्वौषधी आदिको सर्वत्र लगावे क्रियानिबन्ध और गरुडमें इस प्रकार लिखकर और भी कहा है कि नाभिमें घी, कौपीनमें लाख, स्तनोंमें मोती, मस्तकपर कुंकुम और नेत्रके कोणोंमें सिंदूर लगाना और ताम्बूलआदि सामग्री और सर्वौषधिसे युक्त करके विधिसे पूजा करै, यह निराग्निके निमित्त भी है, वहांही वृद्धमनुने लिखाहै कि, यदि परदेशमें गयेको बारह वर्ष बीतगये हों तो तेरहवें वर्षमें प्रेतकर्म करै ॥ बृहस्पतिने लिखाहै

बृहस्पतिः—"यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्द्वादशवत्सरात् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणा ॥" भविष्ये—"पितरि प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः। ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥ कुर्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः ॥ तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकर्माणि कारयेत् ।" द्वादशाब्दप्रतीक्षा पितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम् ॥ गृह्यकारिकायां तु—"तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया। ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता। द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता। चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत् कृच्छ्राणि वा सुतैः ॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा कार्याः शौचादिकाः क्रियाः" इत्युक्तम् ॥ पराशरः—"देशान्तरगतो नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ।" इदं मासज्ञाने ॥ तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् ॥ अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम् ॥ 'अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम् । तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि । वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णासूत्रेण बद्ध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः ॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे तत्र 'प्रोषिते कालशेषः स्यात्' इत्युक्तेः ॥ किंतु तदूर्ध्वम् ॥

कि, बारहवर्षतक जिसकी वार्ता न सुने उसका कुशाके पुतलसे दाहका निश्चय करै, भविष्यपुराणमें भी लिखाहै कि, जिसके पिताकी परदेशसे न वार्ता सुनाई आवे न वह आवे पन्द्रहवर्षके पीछे उसका पुतला बनाकर यथोक्तविधिसे संस्कार करै, और दाह आदि प्रेतकर्म करावे, बारह वर्षकी बाट देखना पितासे भिन्नके विषयमें है, यह मदनरत्नमें लिखाहै ॥ गृह्यकारिकामें तो वह प्रथम अवस्थाका होय तो वीसवर्षके उपरान्त और मध्यम अवस्थामें पन्द्रहवर्षके उपरान्त और उत्तर अवस्थामें बारह वर्षके उपरान्त क्रिया करै, तीन चांद्रायण वा तीस कृच्छ्र पुत्र करके कुशाओंका पुतला निर्माण कराय और दग्धकरके शौचआदि क्रिया करनी यह लिखाहै ॥ पराशरने कहाहै कि, देशान्तरमें जाकर मराहो और तिथिका ज्ञान न होय तौ कृष्णपक्षकी अष्टमी अमावस्या एकादशीमें जल पिंडदान और श्राद्ध करना चाहिये, यह मासके जाननेपर है, वहां आहिताग्निका पूर्ण अशौच और अनाहिताग्निका तीन दिन लगताहै और अनाहिताग्निके शरीरको गृह्यअग्निसे स्वयं दग्ध करै, वह न मिले तो पलाशोंके डांठलोंका पुतला निर्माण करै, और काली मृगछालासे उसे आच्छादित करै ऊनका सूत लपेटकर जलमें पिसे जौसे लीपे और अग्निसे दाह करै और बांधव इस प्रकार कहैं कि, परमेश्वरके निमित्त यह स्वाहा है, इस प्रकार पत्तोंके मृतकको जलाकर तीन दिन अशौच लगता है, यह ब्रह्मपुराणमें लिखा है ॥ यह त्रिरात्र दश दिनके मध्यमें होय तो नहीं है, दशाहमें दाह होय

तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहाद्येव ॥ गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् ॥ पत्नीमृतौ भर्तुश्चैवं सपत्न्योश्चैवमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ अन्यसपिंडानां तु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरात्रम् ॥ तदाहाङ्गिराः—'देशान्तरमृतं श्रुत्वा नाशौचं चेत्कथंचन ॥' गृहीतामितिशेषः ॥ 'कालात्ययेपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम्' इति । स्मृत्यर्थसारे तु 'गृहीताशौचानां स्नानमात्रमुक्तम् । बहृचपरिशिष्टेपि ॥ अथातीतसंस्कारः । स चेदन्तर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यादन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः सर्वमाशौचम् । गृहीताशौचयोः कर्माङ्गमिति त्रिरात्रम् ॥ षडशीतावप्येवम् ॥ विश्वादर्शे तु 'प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्' इत्युक्तम् ॥ द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः ॥ अथ प्रेतसंस्कारे कालः । हेमाद्रौ गार्ग्यः—"प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् । आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु संभवे ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ॥ प्रेतकार्याणि

तो परदेशीकी मृत्युमें कालका शेष लिखा है, किन्तु वह दश दिनके उपरान्त जानना वहांभी भार्या वा पुत्रने प्रथम अशौच न माना होय तो दशाह आदिही होता है, और, मानलिया हो तो तीन दिन इसी प्रकार पत्नीके मरनेमें पतिको है, कारण कि, सपत्नियोंको इसी प्रकार है, यह स्मृत्यर्थसारमें कहा है, और सपिंडोंको तो पर्णशरदाहमें सब स्थानमें तीन दिन होता है, यही अंगिराने लिखा है कि, देशान्तरमें मृतक हुएका सुनकर कदाचित् अशौच नहीं लगता, समय बीतनेपरभी दाहके समयमें तीन दिन अशौच करै, स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, जिन्होंने अशौच मानलियाहो उनको स्नानमात्र करना वह बहृचपरिशिष्टमेंभी इसी प्रकार लिखा है ॥ अब अतीतका संस्कार वर्णन करते हैं, यदि वह संस्कार दश दिनके उपरान्त होय तो वहांही सम्पूर्णको करदे, इसके उपरान्त आहिताग्निको दाहसे सम्पूर्ण अशौच है, और उसका कर्म कालके अनुसार करना चाहिये, अन्योंमें तो जिन स्वामी भार्याने प्रथम अशौच न मानालियाहो, उनको कर्मका अंग तीन दिन अशौच लगता है, षडशीतिमें भी इसी प्रकार लिखा है, विश्वादर्श ग्रन्थमें तो, प्रतिकृतिके दाह करनेमें अग्नि देनेसे तीन दिन अशौच लिखा है, बारह वर्ष आदि प्रतीक्षाके उपरान्त दाह होय तो पुत्र आदि सबको तीन दिन लगता है, यह कल्पतरु दिवोदास आदिका कथन है ॥ अब प्रेतके संस्कारकालको लिखते हैं, हेमाद्रिमें गार्ग्यका कथन है कि, प्रत्यक्ष मृतकके संस्कारमें दिनको न शोधे, अशौचके मध्यमें सम्भव होसकै तो दिनको शोधे, अशौचकी निवृत्ति हुये पर फिर मृतकका संस्कार किया जाय तो दिन शोधकरही लेना, यदि वर्षदिनसे उपरान्त हो, प्रेतकर्मोंको करै, उसम उत्तरायण उत्तम है

कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तुं दिनत्रयम् ॥" वाराहे–"चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा ॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मताराश्रये तथा ॥" जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः । भारते–"नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेये च भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ॥" काश्यपः–" भरण्यार्द्रामघाश्लेषामूलद्विचरणानि च । प्रेतकृत्येतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रोहिण्यनुराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च ॥" ज्योतिर्नारदः–" चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यंघ्रिभं विषमांघ्रिभम् ॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कुलनाशनम् ॥" अस्यापवादमाह तत्रैव बैजवापः–" प्रेतस्य साक्षाद्दग्धस्य प्राप्ते त्वेकादशेऽहनि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किंचन ॥ युगमन्वादिसंक्रांतिदर्शे प्रेतक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥" विश्वप्रकाशेपि–"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे । नातीतः पितृमेधः स्याद्वयां गोदावरीं विना ॥" दानमपि तत्रैवोक्तम्–" भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपादर्क्षे

और उनमें भी कृष्णपक्षके तीन दिन त्यागदे, वाराहपुराणका वाक्य है कि, चतुर्थ, अष्टम, द्वादश चन्द्रमा त्यागदे, और व्यतीपात, वैधृति, परिघ, विष्टि, करण और शनिवार विशेषकर त्रयोदशी तिथि जन्मका दशवां और उनईसवां इन तीन जन्मके तारोंमें प्रेतकर्म न करना चाहिये, महाभारतमें कहा है कि, जिसमें उत्पन्न हो उस नक्षत्रमें मनुष्य न करै, और प्रोष्ठपद कृत्तिकामें हे भारत ! न करै, और दारुणसंज्ञक नक्षत्र और प्रत्यरितारेमें वर्जदे ॥ काश्यपका वाक्य है कि, भरणी, आर्द्रा, मघा, आश्लेषा, मूलके दो चरण और धनिष्ठा आदि पञ्चक, ये प्रेतकर्ममें निषिद्ध हैं, दोनों पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसु, दोनों पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, विशाखा और दो चरणवाले नक्षत्र ये भी किञ्चित् निषिद्ध हैं, यथासम्भव इनको भी त्याग दे, ज्योतिर्नारदका कथन है कि, चौदश, नंदा, भद्रा तिथि, शुक्र और मंगलवार गुरु शुक्रके अस्त, दोचरणके और विषमचरणके नक्षत्र और शुक्लपक्षको त्यागकर फिर दाह करना उत्तम है धनिष्ठाके उत्तरार्द्धसे पांच नक्षत्र, जन्मके तीन नक्षत्र, रेवती रोहिणीमें दाहसे कुलक्षय होताहै, इसका अपवाद उसी स्थलमें बैजवापने लिखा है कि, साक्षात् दाह किये प्रेतके ग्यारहवें दिन नक्षत्रतिथिवार आदि कुछ न शोधे. युगादि मन्वादि संक्रांति अमावस्यामें प्रेतक्रिया यदि दैवसे आपड़े तो वहां दिन नक्षत्र आदिका शोधन न करै ॥ विश्वप्रकाशमें कहा है कि, गुरु और शुक्रका अस्त, पौष मलमासमें गया गोदावरीको त्यागकर अतीतप्रेतका संस्कार नहीं होता, दानभी वहांही लिखा है कि,

हिरण्यदः । वारेषु तत्तद्वर्णे तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥ इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ हेमाद्रौ वृद्धमनुः—" अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदैहिकम् । प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥ जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुम्भे निमज्य तम् ॥ उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवास्य तु । स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः । अग्नीनाधाय विधिवद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् । अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ॥ इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः ॥" अनाहिताग्नेस्तु चरुः ॥ मृतवार्ताश्रवणे त्वाश्वलायनः—' सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः ' इति ॥ यस्य तु जीवत एव मृतिवार्तां श्रुत्वा स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव भर्तृमरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । प्रमात्वस्य गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् ॥ तन्न ॥ मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेतीतानागतयोरपि तत्त्वापत्तेः । भर्तुर्वैधदाहाभावेन तस्याः सहगमनाभावाच्च ॥ तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरणस्यैव निमित्तत्वम् ॥ नचात्र तदस्ति ॥ परं काम्यं मरणमस्तु ॥ अत आत्महननदोषोस्तीति तातपादाः ॥ सर्पसंस्कारविधिः । तथा सर्पसंस्कारे

भद्रामें करे तो भूमिका दान, त्रिपाद नक्षत्रमें सुवर्णदान, वारोंमें तिस २ वर्णका वस्त्रदान धनिष्ठा आदि पंचकोंमें मृतक हो तो पंचरत्नको दान करै, इक्यासी ८१ पल कांसी उससे आधी वा उससेभी आधी, वा नौ छः तीन पल कांसी ब्राह्मणको शक्तिसे दान करै, इस अप्रसंगसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखा है कि, जिनकी मृत्यु न हुई हो और मृत्यु सुनकर उसका और्ध्वदैहिक कर दिया हो वह प्रायश्चित्त करके अग्निका आधान करै यदि वह जीवित आजाय तो घीके घडेमें उसे मग्न कर निकालकर जातकर्म आदि करै, उसको बारह दिनतक ब्रह्मचर्य्या वा तीन दिन ब्रह्मचर्या करै, फिर स्नान करके दूसरी स्त्रीको वा उसको ही विवाहै, पीछे विधिसे अग्निस्थापन करके व्रात्यस्तोमयज्ञ करना चाहिये. अथवा इन्द्राग्निके निमित्त पशुयज्ञ करना चाहिये. पर्वतमें जाकर आयुष्मतीनामक यज्ञ और दूसरे यज्ञोंको करै अनाहिताग्निका तो मृत हुएकी वार्ता सुननेपर चरु निर्माण करै, यह आश्वलायनने लिखा है, और जीवते जी जिसमें मृतक शब्द हो उसके निमित्त गोदान करै, जिसकी जीतेहुयेकी मृतवार्ताको सुनकर स्त्रीने सहगमन (सती होना) कियाहो तब तो वह स्वशास्त्रपूर्वक है, कारण कि, स्वामीके मरणका ज्ञानही उसका निमित्त है, प्रमाणका खोज करना तो गौरवसे युक्त नहीं है, यह किन्हीका कथन है, सो उचित नहीं, कारण कि, यदि मरण ज्ञानको निमित्त मानोगे तो भूत और भविष्यत्मरणमें भी सती होना प्राप्त होगा और जब स्वामीका विधिसे दाह नहीं है, तब उसका सती होना भी असंभव है, इससे अशौचके तुल्य ज्ञात मरणही वहां निमित्त कारण है, सो वहां है ही नहीं, हांय तो इच्छित मरण हो इससे आत्महत्याका दोष है यह हमारे पूज्यपिताजीने कहा है ॥ ऐसेही सर्पके संस्कार करनेमेंभी तीनदिनका अशौच लगता है, उसकी

कृते त्रिरात्रमाशौचं तद्विधिं चाह शौनकः—" अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधिमुत्तमम् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥ कृतसर्पवधो विप्रः पूर्वजन्मनि वा यदि । वधं प्रख्यापयेत्पापी चरेत्कृच्छ्रांश्चतुर्दश ॥ विप्राय लोहदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ॥" मूल्यमाह—" निष्कत्रयं द्विनिष्कं वा निष्कमेकं कनीयसम् । अनुमन्त्रादिकर्तॄणां निष्कमर्धं तदर्धकम् ॥ " इदं स्वर्णरूप्ययोः शक्त्या ज्ञेयम् ॥ संस्कारमाह "प्रियङ्गुव्रीहिगोधूमतिलपिष्टेन वा पुनः । कृत्वा सर्पाकृतिं शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् ॥ एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः ॥ वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः संपूज्य च हरेद्बहिः । कुर्यात्संस्कारसंकल्पं प्राणायामपुरःसरम् ॥ यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म तु । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य समिदाधानमाचरेत् ॥ ततोऽग्नेरग्निदिग्भागे भूमिं संप्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं कृत्वाथ संस्तीर्य कुशैराग्नेयकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृत्वेध्माधानमाघारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः । स्रुवेण जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पास्ये जुहुयादाज्यं व्याहृत्या च समग्रया । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥ चमसस्थैर्जलैः सर्पं व्याहृत्याभ्युक्ष्य पाणिना । अग्ने रक्षाण इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥ उपतिष्ठेद्दह्यमानं नमोस्तु सर्पमन्त्रतः ।

विधि शौनकने इसी प्रकार लिखी है, अब सर्पसंस्कारका श्रेष्ठ विधान वर्णन करतेहैं, अमावास्या पूर्णिमा पंचमीके दिन सर्पसंस्कार करै, जिस ब्राह्मणने पूर्वजन्ममें, सर्पका वध किया हो, वह पापी उस मारणको प्रगट करके चौदह कृच्छ्रव्रत करै, और ब्राह्मणके निमित्त लोहेका दंड वा उसका मूल्य देना चाहिये, याज्ञवल्क्यने भी कहा है कि, सर्पके मारनेमें लोहेका दण्ड देना, मूल्य यह लिखा है कि, तीन वा दो निष्क एक निष्क आधा वा चौथाई शक्तिसे चांदी वा सुवर्ण देने ॥ संस्कार यह लिखा है कि, कांगनी, व्रीहि, गोधूम वा तिलकी खलसे सर्पकी मूर्ति बनाय और छाजमें रखकर सर्पकी स्तुति करै कि, हे पहिले मरा सर्प तू आ और इस पिट्ठीमें प्रवेश कर मैं संस्कारके निमित्त संक्षपसे भक्तिपूर्वक तेरी प्रार्थना करता हूँ, वस्त्र, यज्ञोपवीत गंध आदिसे पूजकर और उसे बाहिर लेजाकर प्राणायामपूर्वक संस्कार करै, फिर संकल्प करै, यह संस्कार सव्य होकर करना चाहिये लौकिक अग्निको स्थापन करके समिधा रक्खे, फिर अग्निसे अग्निकोणमें अग्निको छिडककर चिता बनावे, अग्निकोणको अग्रभागवाली कुशा बिछाकर चितामें अग्नि स्थापन कर, जलसे छिडक पूजा कर. फिर ईंधन रखकर आघार और चक्षुषी आहुति प्रदान कर बुद्धिमान् यत्नसे सर्पको लेकर चितामें रक्खे, फिर स्रुवेसे तीनों व्याहृति पढकर अग्निमें घृतकी आहुति दे, सर्पके मुखमें सब व्याहृतियोंके. घृतका होम करै और उसके देहमें स्रुवेसे घृतका—शेष सींचे. चमसके जलोंसे सर्पको सींचकर हाथसे स्पर्श करके ' अग्नेरक्षाण' इस मंत्रसे

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥ पूर्वजन्मनि वा सर्प तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । क्षीराज्येन ततश्चाग्निं प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः ॥ नास्थिसंचयनं कुर्यात् स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् । ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते ॥ सचैलं तु चतुर्थेह्नि स्नात्वा विप्रान् समर्चयेत् ॥ सर्पोनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च ॥ कालिकः शंखपालश्च भूधरश्चेति नामभिः । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद्द्विजान् ॥ घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजानष्टौ तु भोजयेत् । एवंकृते विधानेन सर्पसंस्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥" इति सर्पसंस्कारः ॥ जीवतोऽन्त्यकर्माशौचं च । क्वचित्तु जीवतोप्यन्त्यकर्माशौचं च कार्यम् ॥ यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे 'पतितस्योदकं कार्यं सपिंडैर्बान्धवैः सह । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्तदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥" इति मनूक्तेः ॥ निन्दिते रिक्तादौ । अपरार्के वसिष्ठोपि—'वेदविप्लावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसङ्करादकृत्स्नं पात्रमादाय दासीसवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापः पूर्णपात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु

सर्पका अग्नि दे, जब प्रज्वलित होने लगे तब 'नमस्तु सर्पेभ्यः०' इस मंत्रसे प्रार्थना करे कि, हे सर्प ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने पूर्वजन्ममें सर्पका वध किया हो तो उस सबको तू क्षमा करना, दूध और घृतसे व्याहृति पढे; जलोंसे अग्नि छिडके और फिर अस्थि संचयन न करै, और स्नान करके घरको आगमन करै, ब्रह्मचर्य आदि करै, और इसका तीन दिन अशौच करना चाहिये, चौथे दिन सचैल स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करै, और सर्प, अनन्त, शेष, कपिल, नाग, कालिक, शंखपाल, भूधर इन आठ नामोंसे गंध पुष्प धूप दीप आदिसे ब्राह्मणोंकी अर्चा करै. घृत, दुग्ध, भक्ष्योंसे आठ ब्राह्मण जिमावै, इस विधिसे संस्कार करनेसे सर्पकी हत्यासे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं, इति सर्पसंस्कारः ॥ कहीं तो जीवित हुयेके भी अन्तकर्मका अशौच करना लिखाहै, जैसे प्रायश्चित्तकी इच्छा करते हुएके घटस्फोटमें मनुने लिखाहै कि, बांधवोंसहित सपिंड रिक्ताआदि निन्दित तिथि दिनमें सायाह्नके समय ज्ञाति ऋत्विक् गुरुके निकट जलसे भरे घटको दासी इस प्रकार फैंकदे जैसे प्रेतके निमित्त डालतेहैं, बांधवोंसे सहित एक दिन रात बैठे रहे, और अशौच नहीं लगता ॥ अपरार्कमें वसिष्ठने लिखा है कि, वेदके नाशक शूद्रका यज्ञ करानेवाले जो विप्रआदि वर्णोंके संघट्टसे पतित होगयेहैं, उनके पात्रका दान कुत्सित पात्रोंमेंसे करै, अर्थात् निंदित पात्रोंमेंसे एक पात्र उनको दे, असवर्ण भार्याका पुत्र वा असवर्ण बन्धु उस पात्रको लेकर बांये पगसे अग्रभागसे छिन्न हुई वा लाल कुशा बिछाकर जलसे पूर्ण उस पात्रको पतितके निमित्त दान करै, उस पात्रके लेजानेवालेको बालोंको खोलकर सब जातिके मनुष्य छूए फिर अपसव्य यथेच्छ

स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयन्तः' इति ॥ उत्तमवर्णा ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्तस्मात्पतिता ब्रह्महादयः । अपात्रसङ्करः कुत्सितपात्रसमूहः । प्रवृत्ताग्राः छिन्नाग्राः । स्वैरं यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः । अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात्प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कः ॥ 'तस्य विद्यागुरुयोनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः' 'दासः कर्मकरोवाऽवकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकं करोमि इति नामग्राहं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः' इति गौतमोक्तेश्च ॥ उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः । प्रेतकार्याण्येकादशाहश्राद्धान्तानि ॥ दास्याहृतोऽम्बुघटो दासीघटः । तेनोदकेनामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासादिर्न्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः ॥ अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जनार्थम् ॥ तेन तत्तूष्णीं भवति ॥ एतच प्रायश्चित्तानिच्छोः ॥ 'तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेति सपद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्' इति शंखोक्तेः ॥ जीवन्तमेवोद्दिश्य पिंडोदकश्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः ॥ पुनः संग्रहविधिः । कृतप्राय-

---

चर आवे, यह करने उपरान्त उसके संग धर्मआदि व्यवहार करें, न करें तो उसके तुल्यही होते हैं, इस वाक्यके सामर्थ्यसे पात्र नियतसे प्रथम पतित ज्ञातियोंको धर्ममें अधिकार है नहीं यह अपरार्क लिखते हैं ॥ उसके विद्यागुरु, योनिसम्बन्ध, सब इकट्ठे होकर जलदानआदि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करें, और इसके पात्रके औंधे करनेका निषेध है, कोई कर्मकर (भृत्य) घूरेमेंसे अपवित्र पात्रको लेकर दासीके घडेमेंसे भरकर दक्षिण मुख किये जलसे फेंक दे, नाम लेकर यह जल देते हैं, यह कहकर सब जातिके मनुष्य देनेवालेको छूएं और शिखा खोलेहुये विद्यागुरु और योनिसम्बन्धवाले देखते रहें और जलका स्पर्श करके ग्राममें प्रवेश करें, यह गौतमने लिखा है, जलदान कथनसे यहां दाहकी निवृत्ति है, और प्रेतकार्य एकादशाहपर्यन्त लेना, हरदत्तने तो यह लिखा है कि, दासीके लिये जलके घडेको दासीघट कहते हैं, उसके जलसे अपवित्र पात्रको भरकर दास आदि बांये चरणसे औंधा करें, यहां नाम लेकर कथन इस कारण है कि, प्रेतकर्ममें जलदान आदि नाम लेकर न करना किन्तु मौन होकर, यह भी उसके निमित्त है, जो प्रायश्चित्तकी इच्छा न करता हो कारण कि, शंखने लिखा है कि, गुरु, बांधव, राजाके आगे, उसके दोषोंको कहकर उससे कहें कि, आचार्यके निकट जा, यह कहनेपरभी उसकी बुद्धि ठिकाने न होय तो उसका घडा फेंक दे, अपरार्क तो यह लिखते हैं कि, जीतेहुये उसके निमित्त जल पिंडदान और श्राद्ध नाम लेकर दे । घट फोडनेके उपरांत जिसने प्रायश्चित्त

७८

श्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि. संग्रहविधिमाह गौतमः " यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यह्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनमुपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्सं प्रतिगृह्य जपेच्छान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तरत्सम-न्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद्गां चाचार्याय ॥ यस्य तु प्राणा-न्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्ध्येत्सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्यु-रेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु" इति ॥ घटस्फोटोत्तरं प्राणान्तिकप्रायश्चित्ते कृते तु मृत एव शुद्ध्येन्न तत्र संग्रहविधिः ॥ अतस्तेन विनापि प्रेतकर्म कुर्या-दित्यर्थः ॥ उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृत एवं कार्यमित्यर्थः ॥ याज्ञवल्क्यः— "चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्सेरन्नचाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः ॥" कृतघटस्फोटस्यैवायं परिग्रहविधिरिति मिताक्षरायामपरार्के च ॥' अन्यथा प्राय-श्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥ मनुरपि घटस्फोटमुक्त्वा—' निवर्त्तेरंस्तस्तस्मात्सं-भाषणसहासनैः' इत्युक्त्वा—" प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये" इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त ॥ अपरार्के वसि-

---

किया हो उसकी संग्रहकी विधि गौतमने लिखी है कि, जो प्रायश्चित्तसे पवित्र हो उसको शुद्धिके उपरांत सुवर्णके पात्रको पवित्र कुंड वा नदियोंसे भरकर फिर इनका स्पर्श करैं, और इसको वह पात्र दे, वह पतित उस पात्रको लेकर यह पढे कि, 'शांता द्यौः शान्ता पृथ्वी० शांतमन्तरिक्षन्० योरोचनस्तामिह गृह्णामि' फिर यजुर्वेदके मन्त्रोंसे और 'पावमानी, तरत्स-मन्दी; कृष्मांडी' ऋचाओंसे घृतका हवन करे, सुवर्ण और गाय गुरु आचार्यके निमित्त दे, जिसका प्रायश्चित्त मरणांतिक हो वह मरकर पवित्र होता है, और जल आदि सब प्रेतके कर्म करै, यही शांत्युदक सब उपपातकोंमें होता है ॥ घट फोडनेके उपरांत प्राणांतिक प्रायश्चित्त करने उपरांतही शुद्ध होता है, उसमें संग्रहकी विधि नहीं है. इससे संग्रहके विना भी प्रेतकर्म करै—उपपातकोंमें भी घट फोडनेके उपरांत ऐसे करना. याज्ञवल्क्यने भी लिखा है कि, जब प्रायश्चित्त करके वह आवे तब नया घडा लेजाय और उसकी निन्दा न करें, और उसके संग रहैं, यह ग्रहण करनेकी विधि है. जिसका घट फोडा हो, यह मिताक्षरा और अपरार्कमें कहा है, नहीं तो सब प्रायश्चित्तोंमें इस विधिका प्रसंग प्राप्त होगा. मनुने भी घटस्फोटको लिखकर और उसके संग संभाषण और स्थिति नहीं करते हैं यह कहकर इस वाक्यमें तत् शब्दका प्रयोग किया है कि, प्रायश्चित्त किये उपरांत पानीसे भरे नये घडेको उसके संग पवित्र जल स्थानमें स्नान करके फेंक देना चाहिये ॥ अपरार्कमें वसिष्ठका भी कथन है कि, जिन पति-

ष्ठोपि पतितानां चरितव्रतानां प्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरन्ति " अग्रेऽत्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडन्निव हसन्निव । पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव । " इत्याचार्यमातापितृहन्तारस्तत्प्रसादादपगतपापा एतेषां प्रत्यापत्तिः पूर्णह्रदात्प्रवृत्ताद्वा 'सकाञ्चनं पात्रं माहेयं वाद्भिः पूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्भिरभिषिञ्चेयुः सर्वं एवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः' इति ॥ प्रत्युद्धारः परिग्रहः ॥ तत्रोद्धरतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोचन्निव पश्चाद्गच्छेत् । मातापित्रादिहन्तॄणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्रतानां कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरं जातकर्मादयः संस्काराः पुत्रजन्मवत्कार्या इत्यपरार्को व्याचख्यौ ॥ अत एव विज्ञानेश्वरः "घटेपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् ॥ प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया" इत्यत्र गवां भक्षणाभावे पुनर्व्रतं चरेदित्येतत्प्रकृते, एवं चरितव्रतविधौ विशेषोयमिति वदन् घटस्फोटोत्तरं परिग्रह एवैतच्च सर्वत्रेत्याह ॥ तस्मात्कृतेपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रहविधिः पुनः संस्कारा भवन्तीति सिद्धम् ॥ तथा जीवच्छ्राद्धे कृते ' हेमाद्रौ बौधायनः–' तत्राशौचं दशाहं स्यात्स्वस्य ज्ञातेर्न विद्यते' इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ अन्त्यकर्मसाधारणविधिः । एवं सापवादे आशौचे उक्ते प्रतिशाखं भिन्नेप्यन्त्यकर्मणि साधारणं किञ्चिदुच्यते ॥

तोंने प्रायश्चित्त किया है, उनके प्रत्युद्धारको लिखते हैं. उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और क्रीडा करता और पातयितोंके पीछे रुदन करता हुआ चले, यह आचार्य माता पिताके मारनेवालोंकी उनके प्रसादसे पाप निवृत्ति होनेपर प्रत्यापत्ति लिखी है. पूर्ण कुंडमेंसे वा नदीमेंसे सोनेके वर्तनको जलसे पूरा कर आपोहिष्ठाआदि ऋचाओंको पढकर पातकियोंपर छिडके, और अभिषेक कियेका प्रत्युद्धार पुत्रजन्मके तुल्य लिखा है, प्रत्युद्धार नाम परिग्रहका है. उद्धार करनेवालोंके आगे हँसता और घडा फोडनेवालोंके पीछे शोचताहुआ चलै माता पिताके मारनेवालोंका परिग्रह न करै, उनकी प्रसन्नतासे करै, प्रवृत्त नाम झरनेका है, पुत्रजन्मसे यह कहनेसे अभिषेकके उपरांत जातकर्म आदि संस्कार पुत्रजन्मके तुल्य करने चाहिये, यह अपरार्कने इसकी व्याख्या लिखी है ॥ इसीसे विज्ञानेश्वरने कहा है कि, घट दिये उपरांत जातिके मध्यमें बैठकर गौओंको घास देनी उसकी ही श्रेष्ठ क्रिया होती है, जिसका गौओंसे संस्कार हो, गौओं द्वारा घासका भक्षण न होय तो फिर व्रत करै यह प्रकृत (यहां) मेंही जिसने प्रायश्चित्त विधि करली है, उसके निमित्त यह विशेष है, यह कथन करताहुआ घडा फूटनेके पीछे परिग्रह विधि और फिर संस्कार होता है, इस प्रकार जीवच्छ्राद्ध किये उपरांत, हेमाद्रिमें बौधायनने लिखा है कि, वहां दशदिनका अशौच लगता है, प्रसंगसे कहना इतनाही बहुत है ॥ इस प्रकार अपवादसहित अशौच वर्णन किया, शाखा २ के प्रति भिन्नभी अन्तका कर्म

तत्राधिकारिणः प्रागुक्ताः ॥ सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कार्यः "अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः । पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनाय च " इति व्यासवचनात् ॥ गृह्यपरिशिष्टे-कर्तृदेशविषये विशेषो मैत्रायणीयगृह्यपरिशिष्टे-" स्वगृहे विद्यते पुत्रः पिता ग्रामान्तरे मृतः । केनापि तत्र चारब्धमग्निपिण्डोदकादिकम् ॥ पुनः संचयनात्प्राक् चेद्गच्छेदूर्ध्वं स आचरेत् । स्वगृहे तत्र वा सर्वं प्रेतकार्यं सपिण्डनम् " ॥ तथा ॥" भयस्थानेऽथवा मार्गे मृतस्तत्र च संस्कृतः । न तिष्ठति जनः पिण्डं तत्र तत्र च वर्तयेत् " ॥ मंत्रेण दाहोऽस्थिसंचयनं च संस्कारस्तस्मिन्कृते तत्र च भयादिना स्थातुमशक्तौ यत्र यत्र प्रेतकार्यकृद्गच्छेत्तत्रतत्रैव पिण्डोदकदानादि सपिण्डनान्तं समापयेदिति श्राद्धसंकल्पः ॥ तदेवं परिशिष्टयोर्विरोधे यथाचारमापदनापदादिभेदेन व्यवस्था ज्ञेया । केचित्त्वस्यापवादत्वमाहुः—" असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥"दद्यात्पिण्डमिति शेषः॥भविष्ये -'यत्राद्यो दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत्' ॥ ब्राह्मेऽपि-"प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥ " विज्ञानेश्वरादयस्तु-'केचित्तु अग्निं दद्यात्' इति व्याचक्षते ॥

है तो भी सबके निमित्त साधारण कुछ वर्णन करते हैं, उसके अधिकारी प्रथम वर्णन करआये हैं, यदि कोई भी न हो तो. उसको धर्म पुत्रको करना चाहिये, जिसके पुत्र न हो वह पिंड और जलदान और नाम चलनेके निमित्त जैसे तैसे पुत्रको यत्नसे ग्रहण करै, यह व्यासजीने कहा है ॥ गृह्यपरिशिष्टमें लिखा है और कर्ताके देशविषयमें मैत्रायणीय गृह्यपरिशिष्टमें कहाहै कि, पुत्र अपने घर हो और पिता ग्रामान्तरमें मृतक होजाय और वह उनके निमित्त किसीने अग्नि और पिंड जलदान आदिका प्रारम्भ करदिया हो और अस्थिसंचयनसे प्रथम पुत्र चलाजाय तो फिर वह कृत्य करै, अथवा अपने घरमें प्रेतकर्म और सपिंडश्राद्ध करै, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि, भयस्थानमें अथवा मार्गमें कोई मृतक होगयाहो और संस्कार होचुका होय तो मनुष्य मार्गमें जहां २ स्थित हो वहां २ पिंड दे, आशय यह है कि, मन्त्रसे अस्थिसंचयन और संस्कार करचुकनेपर और वहां भयआदिसे स्थित न होनेके तो प्रेतकर्म करनेवाला जहां २ गमन करे वहां २ पिंड जलदान आदिकर्मको सपिंडीतक पूरा करै ॥ इति श्राद्धसंकल्प ॥ इससे इस प्रकार दोनों परिशिष्टोंके विरोधमें आचारके अनुसार आपत्ति और अनापत्तिके भेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये. कोई तो इसको अपवाद लिखते हैं, असगोत्री हो वा सगोत्री हो स्त्री हो वा पुरुष प्रथमदिन जो पिण्ड दे वही दशदिनतक क्रियापूर्ति करै. भविष्यमें लिखाहै कि, जो प्रथमदिन पिण्ड दियाजाय उसीसे सब पूर्ण करै, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, प्रथमदिन जो मनुष्य प्रेतके निमित्त अन्न दे, वही सावधानीसे अन्न नौ दिनोंमें दे॰ विज्ञानेश्वर कहते हैं कोई तो यह व्याख्या लिखतेहैं कि, जो अग्नि दे वहही क्रिया करै कारण

सगोत्रो वासगोत्रो वा योग्निं दद्यात्सखे नरः । सोपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धचेत्तु दशमेऽहनि॥" इति दिवोदासीये वचनाच्च ॥ तत्रैव—"दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नमर्धोन्मीलितलोचनम् । भूमिष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ॥ तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥" तानि यथा—"मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम ॥" इति मोक्षधेनुमन्त्रः ॥"ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् । तत्सर्वं शुद्धिमयातु गामेतां ददतो मम ॥" इति ऋणधेनोः ॥"आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः । तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥" इति पापधेनोः ॥ भारते—"शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥" हेमाद्रौ वाराहे—"व्यतीपातोथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालस्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥" व्यासः—"आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् । तदभावे तु गौरेव नरकोत्तरणाय वै ॥ तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गाम् । शक्तोन्योऽस्तदा दत्त्वा दद्याच्छ्रेयो मृतस्य तु ॥" मदनरत्ने जातूकर्ण्यः—उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूतिलहिरण्याज्यवासो धान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् ॥ एतानि दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः । कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेपि हि परत्र वै ॥" ब्राह्मे—

कि, दिवोदासीयमें लिखा है कि, सगोत्री वा असगोत्री जो मित्रको अग्नि दे वहभी नवश्राद्ध करे, और दशवें दिन पवित्र होता है, वहांही कहा है कि, आधे नेत्र मिचे और भूमिपर लेटे पिताको पुत्र अपने घरमें देखकर जो दान दे वह गयाश्राद्ध देता है, और सौ अश्वमेधोंसेभी श्रेष्ठ है ॥ वे दान ऐसे हैं, हे हृषीकेश ! हे जनार्दन ! मोक्ष दो, मोक्षधेनुके दानसे मुकुन्दभगवान् मुझपर प्रसन्न हो यह मोक्षधेनुका मन्त्र है. और इस लोक और परलोकका सात जन्मसे संचित सब ऋण इस धेनुके दानसे निवृत्त होजाय और मनवाणिकायाकर्मसे, जन्मसे लेकर जो पाप किया है वह सब इस गोदानसे दूर हो यह पापधेनुका मन्त्र है. भारतमें लिखा है कि, हे तात ! शुक्लपक्ष दिन भूमि गंगा उत्तरायणमें जनार्दन भगवान्को हृदयमें धारण करके जो मरते हैं उन्हें धन्य है, हेमाद्रिमें वाराहपुराणका वाक्य है कि व्यतीपात, संक्रांति, सूर्यका ग्रहण, मृत्युके समयमें ये सब पुण्यकाल होते हैं ॥ व्यासने लिखा है कि, जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट हो उस मनुष्यको पूर्वोक्त प्रकारसे सवत्सा गौ देनी चाहिये, सवत्सा न होयं तो नरकसे पार होनेके निमित्त गौ दे यदि वह मरणके समय आपत्तिमें वैतरणी गौ न प्रदान करसके तो और पुत्र आदि समस्त मृतकके कल्याणके निमित्त पूर्वोक्त गौका दान करै, मदनरत्नमें जातूकर्ण्यका कथन है कि, मृत्युके समयमें मृतकके दशदान देने, वे क्रमसे इस प्रकार हैं—गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, अन्न, गुड, चांदी, लवण ये दश महादान मनुष्योंके मरण और जन्ममें कल्याणके निमित्त और परलोकमें मृतकके सुखके निमित्त करने चाहिये ॥

"ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु । सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम् ॥ उत्क्रान्तवैतरण्यौ च दशदानानि चैव हि । प्रेतेपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् ॥" तत्रैव परिशिष्टे—'म्रियमाणस्य कर्णे तु पुण्यमन्त्रान् जपेत्ततः ॥' क्रियानिबन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्युक्तानि ॥ " तुलसीं संनिधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा । तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्" इति ॥ दशदानवैतरणीधेनूत्क्रान्तिधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥ कर्ताऽन्त्यकर्माधिकारार्थं त्रीन् कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम् ॥ अत्र देवयाज्ञिकेन मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम्, तदुक्तं वाराहे—"दृष्ट्वा सुविह्वलं हेनं यममार्गानुसारिणम् । प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ॥ मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्" ॥"ॐएतद्गृहाण रुचिरं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं ह्यमृतेन तुल्यम् । नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सुरलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्यात्र मधुपर्ककम् । नरस्य मृत्युकाले तु परलोकसुखावहम् ॥" दुर्मरणे ॥ अथ दुर्मरणे दिवोदासीये—"चण्डालादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शुद्धिस्तत्र प्रकी-

---

ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, तिलोंसे भरा तांबेका सुवर्णसहित सेरभर पात्र अपने वित्तके अनुसार जो मनुष्य ब्राह्मणोंको देता है वह सब पापोंसे शुद्ध आत्मा होकर उत्तम गतिको प्राप्त होता है. मृतक समयके दशदान और वैतरणी गौ देनी चाहिये. प्रेतके निमित्त इन सबको देकर शवके धर्मसे उस प्रेतको दग्ध करे, वहांही परिशिष्टमें यह लिखा है कि, मृतक होतेहुये मनुष्योंके कानमें पवित्र मंत्रोंको जपै क्रियानिबन्ध और गारुडमें आठ दान लिखे हैं कि, तुलसी और शालिग्रामकी शिलाको निकट रखकर तिल, लोहा, सुवर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी, गौ, ये एकसे एक पवित्र हैं ॥ दशदान, वैतरणी गौ, उत्क्रांति और गोदान आदि भट्टकी रची अन्त्येष्टिपद्धतिमें लिखे हैं और ये भी वहांही लिखा है कि, कर्ता अन्त्यकर्मके अधिकारके निमित्त तीन कृच्छ्र करे. यहां देवयाज्ञिकने मृत्युको प्राप्त होते मनुष्यको मधुपर्कका दान लिखा है, यही वराहपुराणमें कहा है कि, यममार्गको गमन करनेवाले इसको विह्वल देखकर मरनेके समयमें मनुष्य विधिपूर्वक और शीघ्र मधुपर्कको ग्रहण करके यह मन्त्र उच्चारण करै कि, सनातन संसारके नाशक अमृतकी समान नारायणके निमित्त भगवान्के भक्तोंको दाहमें शांत करनेवाले और देवलोकमें पूजित इस मधुपर्कको ग्रहण करो इस मन्त्रसे परलोकमें सुख देनेवाले मधुपर्कको मनुष्यके मृत्युसमयमें दे ॥ अब दुर्मरणके विषयमें लिखते हैं, दिवोदासीयका कथन है कि, चाण्डाल आदिसे और अन्तरिक्षमें ब्राह्मणकी मृत्यु हो तो कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र और चांद्रायण आदिसे शुद्धि होती है. देवजानीयमें जाबा-

र्तिता ॥" देवजानीये जाबालिः—"शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम् । प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये ॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम् ।" गृह्यकारिकायाम्—"उदक्या सूतिका वापि यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि । तस्यैव विधिरादिष्टो वात्स्येनैव महात्मना ॥" एष सूतिकोक्तः ॥ मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—"ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च । अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेपि च । एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ कृच्छ्रांस्त्रिपट्पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा । शुद्ध्यै तदानीं सम्पाद्य शावधर्मेण दाहयेत्॥" गृह्यकारिकायाम्—"खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत् । सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टो मृतो दैवात्कथंचन ॥ एकत्रिंशत्सुकृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । कुणपे त्वर्धदग्धे तु चितास्पृष्टान्त्यजादिभिः । तत्स्पर्शने दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥" धर्मप्रदीपे—"चाण्डालसूतिकोदक्यास्पृष्टे प्रेते तथैव च । तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान्पञ्चदशाचरेत्" इत्युक्तम् ॥ मनुः—'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्कदूषिता ॥' अत्रापि कृच्छ्रत्रयम् 'अस्पृश्यस्पर्शने चैव' इत्युक्तेः ॥ तत्रैव कर्मप्रदीपे—"रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्ते चेद्द्विजातयः । दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः ।" रजस्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः ॥ निर्णयामृते पारिजाते यमः—"सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च । नवश्राद्ध

लिने कहा है कि, शूद्रद्वारा दग्ध किया जो ब्राह्मण उत्तम गतिको प्राप्त नहीं होता और पापकी शुद्धिके निमित्त वह ब्राह्मण चांद्रायण पराक प्राजापत्य प्रायश्चित्त करै. गृह्यकारिकामें कहा है कि, रजस्वला सूतिका जिस प्रेतको स्पर्श करै, उसके निमित्त महात्मा वात्स्यमुनिने वही प्रायश्चित्त लिखा है जो सूतिकाको है ॥ मदनरत्न और स्मृतिका कथन है कि, उच्छिष्टसे प्रथम वा पश्चात् वा भयसे उच्छिष्ट और स्पर्शके अयोग्यके स्पर्शसे और जो खाटपर मरे कुत्ता मांसभक्षक कृमिकीटके स्पर्शसे जो मृतक हुए हों इनमें दोषके अनुसार प्रायश्चित्त करै. तीन छः पांच दश कृच्छ्र तीन चांद्रायण करनेसे शुद्ध किये उपरान्त दान देकर शवधर्मसे दग्ध करै. गृह्यकारिकामें कहा है कि, खाटपर मरनेमें तीन कृच्छ्र व्रत अन्त्यजके स्पर्शसे मृत्यु होय तो सात वा इकतीस कृच्छ्रोंसे बुद्धिमानोंने शुद्धि कही है, यदि आधे शरीरके दाह किये उपरांत अन्त्यज चिताको छूले तो उनके छूनेका दोष तीनःकृच्छ्रोंसे जाता है॥ धर्मप्रदीपमें तो यह लिखा है कि, चाण्डाल सूतिका रजस्वला ये प्रेतको छूलें तो उस पापीकी शुद्धिके निमित्त पन्द्रह, कृच्छ्र करै, मनुने लिखा है कि शूद्रके छूनेसे दूषित जो आहुति है, इससे स्वर्ग नहीं मिलता है, इसमें और स्पर्शके अयोग्यके छूनेसे तीन कृच्छ्र करै, इस वाक्यसे तीन कृच्छ्र करै, वहांही कर्मप्रदीपमें कहा है कि, रात्रि वा रात्रिके शेषमें जो द्विजाति मृत्युको प्राप्त हो तो नीतिपूर्वक दाह करके पुत्र दो पिण्ड दे. रजस्वला आदि गर्भिणीके मरनेका निर्णय आगे लिखेंगे. निर्णयामृत और मदनपारिजातमें यमका कथन है कि. संध्या वा रात्रिमें दाह और यममार्गका कृत्य करै, तथा नौश्राद्ध

च नो कुर्यात्कृतं निष्फलतां व्रजेत् ॥" एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थम् ॥ यत्तु स्कान्दे-"यदि रात्रौ दहेनस्य समाप्तिर्दहतस्य तु । परेऽहन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया ॥ दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया" इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ रात्रिमृतस्य तु तत्रैव संग्रहे-"रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डांतं कृत्वा वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया ॥" इति ॥ वपनं तु प्रातः ॥ तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम् "गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥" इति मिताक्षरायां स्मृतेः ॥ मरणस्याऽनङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम् ॥ तदेव संग्रहवचनेन परेद्युरुत्कृष्यते तीर्थवत् ॥ तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या ॥ मदनरत्ने गालवः-" प्रथमेहनि कर्तव्यं वपनं चानुभाविनाम् । प्रेतस्य केशश्मश्र्वादि वापयित्वाऽथ दाहयेत् ॥" आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात् ॥ मदनपारिजातेऽप्येवम् ॥ तेन सर्वस्यास्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्-' शवं रात्र्युषितं चेत्त्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत्सुतः ॥' मदनरत्नेऽङ्गिराः-" ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेपि च ॥"

न करे तो निष्फल होजाते हैं. यदि दिनमें मरे मनुष्यका आलस्य आदिसे दाह न किया होय तो रात्रिमें दाहके निषेधके निमित्त वचन है ॥ जो स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, जो रात्रिमें दाह करै, तो उसकी पूर्ति अगले दिन सूर्योदयके समयमें करै और दाह किये हुयेका जलदान रात्रिमें कभी न करैं. वह वाक्य निर्मूल है, रातमें जो मरे उसके निमित्त वहांही संग्रहमें लिखा है कि, रातको दाह और मुण्डनके विना पिंड करके अगले दिन मुण्डन करै, कारण कि, रात्रिमें मुण्डनका निषेध है, प्रातःकालमें शिरका मुण्डन तो सब पुत्रोंको करना चाहिये, कारण कि, मिताक्षरामें स्मृतिका वाक्य है कि, गया, भास्करक्षेत्र, माता, पिता गुरुके मरण तथा अग्निके आधान और सोमयज्ञ इन सातमें मुण्डन लिखा है. मरणका मुण्डन अंग नहीं, किन्तु मुण्डनको हेतु मरण है, उसीकी श्रेष्टता[1] अगले दिन तीर्थके समान लिखी है, इससे मुण्डनको जो किसीने दाहका अंग लिखा है वह अशुद्ध है ॥ मदनरत्नमें गालवने लिखा है कि, विचारवान् मनुष्य पहले दिन मुंडन करै, बाल, डाढी, मूंछ आदि मुँडवाकर प्रेतका दाह करै, अशौचके उपरान्त विधिके बलसे फिर मुंडन करै. मदनपारिजातमें भी ऐसेही कहा है, इससे यह निर्मूल ही है. स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि, यदि मृतक रात्रिमें मृतक हुआ होय तो पुत्र तीन कृच्छ्र करके दाह करै, मदनरत्नमें अंगिराका कथन है कि, उच्छिष्टसे प्रथम वा उपरान्त और अंतरिक्षमें वा अशौचमें मृतक हो तो तीन

१ जो क्रिया करै उसका मुण्डन तो उसी समय होना चाहिये और छोटों तथा पुत्रोंका दशाहमें मुण्डन होता है, दिन वा रात्रिमें यदि कहीं शव स्थित रहजाय तो वह पर्युषित कहाता है तब पंचगव्यसे स्नान करके तीन प्राजापत्य व्रत करै ॥

अथ साग्निविशेषः । कारिकायाम्–" कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्याहि प्रातराहुतीः । शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत् ॥" प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः ॥ 'यद्याहिताग्निरपरपक्षे म्रियेताहुतिभिरेनं पूर्वपक्षे हरेयुः' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ " तदानीमेव जुहुयात् सायंकालाहुतीरपि । सायं म्रियेत चेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहुयात् प्रातःकालाहुतीरपि । सकृद्गृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नतन्त्रं च होमयोः ॥ दार्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु ॥" छन्दोगपरिशिष्टे–" हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् । प्रातर्होमस्तदैव स्यात् जीवेच्च स पुनर्नवा ॥" इदं शुक्लपक्षपरम् ॥ दुर्बलो मुमूर्षुः ॥ त्रिकाण्डमण्डनः–" दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् । देवतानां प्रधानानामेकैकस्य हुनेत्पृथक् ॥ पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां चतुरस्तु घृताहुतीः ।" तथा–" अग्नावरुण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि । प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया ॥" विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम् " प्रेतं स्वाम्यालये क्षिप्त्वा मथित्वाऽन्यानलेऽरणी । सन्निधायारणीं मन्थेत् यस्येति यजुषा ततः ॥ यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् ॥ जायन्तु ते हविषे सादिताय, स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु ।" इति मन्त्रतः ।" प्रणीय पावकं तूष्णीं

कृच्छ्र करना चाहिये ॥ अब साग्निके निमित्त विशेष लिखते हैं कारिकामें लिखा है कि, कृष्ण पक्षमें मृतक हो तो दिनमें प्रातःकाल आहुति देकर शेष आहुति पक्षहोमके तुल्य अमावस्यापर्यन्त देना, कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, यदि आहिताग्नि कृष्णपक्षमें मृतक हो तो प्रतिदिनकी आहुतिसे इसे शुक्लपक्षमें लेजाना, फिर शुक्लपक्षमें प्रातःकाल आहुति दे, यहां दोनों होमोंका भेद और तन्त्र इष्ट है, और तभी अमावस्याका होम और स्थालीपाक करै, छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, सायंकालकी आहुतिके उपरान्त गृहस्थी दुर्बल (असमर्थ) होय और जीवै तो प्रातःकाल हवन होता है, यह शुक्लपक्षके विषयमें है ॥ त्रिकांडमण्डनका कथन है कि, यदि यज्ञ न हुआ होय तो अमावास्याको यज्ञ करै, और प्रधान देवताओंकी आहुति देनी, पुरोनुवाक और याज्यमन्त्रोंसे चार घीकी आहुति दे, इसी प्रकारके मन्त्र हैं कि, खाटआदिपै आरूढ पति मृतक होजाय तो अग्नावरुण मन्त्रसे प्रेतका स्पर्श और अग्निका मथन और उपारोहण मन्त्रको जपकर और घृतकी बारह आहुति दे मौन होकर सबकी क्रिया करै. जिसकी श्रौत अग्नि नष्ट होगई हो वह मृतक होजाय तो वहांही प्रेताधान लिखा है कि, प्रेतको स्वामीके घरमें रखकर और अरणीमें मथी अग्निका स्थापन करके मथनके दण्डमें 'यस्य यजुषा' यह मन्त्र पढकर (यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् । जायंतु से हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयंतु)

द्वादशोपात्तसर्पिषा । तूष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते मात्या इति क्रियाम् ॥ नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत् । आहरेदरणीद्वन्द्वं मनोज्योतिरृचा ततः ॥ " यज्ञपार्श्वः—" यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति । वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्थनं तत्र कारयेत् । तच्छेषा लाभतोन्येन दग्धशेषेण वा पुनः ॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ हुतशेषं दहेत्तु वा ॥ " अत्राग्निषु सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः ॥ शरीरे वासति प्रेताधानेनाग्न्युत्पत्तिः ॥ उभयाभावे तु प्रेताधानेऽनधिकाराद्दाहादिसंस्कारलोपः ॥ उदकदानाद्येव कार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः ॥ तन्न ॥ 'निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः' इति विरोधात् ॥ 'क्रियालोपगता ये च' इति निषेधात्तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः ॥ पुमानपीत्यभावे विधानस्याग्न्यभावेपि साम्याच्च ॥ तेन प्रेताहुत्यभावेपि स्विष्टकृद्द्रव्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् ॥ प्रेताधानं दाहोपि भवत्येव ॥ प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोजकत्वापत्तेः ॥ पत्न्या अप्येवम् ॥' दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥

अरणीकी अग्निको लाकर वारहवार लिये घीसे मौन हो आहुति देकर प्रेतकी अन्त्येष्टि करै, अग्नि और अरणी दोनोंके नष्ट होनेपर, स्वामीकी मृत्यु हो तो मनोज्योतिः ऋचासे दो अरणी लावै ॥ यज्ञपार्श्वका कथन है कि, जब यजमान चितामें आरूढ होजाय और पुत्रोंको त्याग करचुका हो और वर्षा आदिसे अग्नि नष्ट होजाय तो यज्ञके कर्ता किस प्रकार करैं, तब आधे जले काष्ठसे मथन बनाकर उस का शेष न मिले तो और आधे जलेहुये काष्ठसे मथनी बनावे लौकिक अग्निमें घृतका होम करके दग्धसे शेषका दाह करैं, यहां अग्नि होय तो पर्णशरोंसे शरीरको निर्माण करै शरीर होय तो प्रेतके पूर्वोक्त आधानसे अग्निको उत्पन्न करै ॥ दोनों न होय तो प्रेतके आधानका अधिकार न होनेसे अधिकारका लोप होजाता है, जलदान आदिही करने, यह केशवीकार शतद्वयी आदिका कथन है सो यथार्थ नहीं है कारण कि, गर्भाधानसे श्मशानक्रियातक जिनके कर्म मन्त्रसे होतेहैं, इस वाक्यसे विरोध है और जिनकी क्रियाका लोप है, इस निषेधसे उसके अभावमें ढाकके डंठलोंसे पुरुषको निर्माण करै. इस विधिको अग्निकी अप्राप्तिमें माननेकी समानता है, इससे प्रातःकाल आहुतिके अभाव होनेपरभी स्विष्टकृत्के निमित्त अन्य द्रव्य लिखा है, इससे अर्थात् प्रेताधान होगा. उसका दाहभी होगा, कारण कि, प्रतिकृति और अग्नि ये दोनों प्रेताधानके कथन करनेवाले हैं, इसमें हानि नहीं, पत्नीका भी ऐसेहीहै, कारण कि, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, आचरणवाली भार्याको पति अग्निहोत्रसे

१ अग्निनाशसे मृति होजाय तो आहिताग्निको अग्नि मथन कर भस्म करै, यह न हो तो उस रूपसे काष्ठ हुनाय अग्नि मथन कर भस्म करै यह कारिकामें कहा है ॥

यत्तु–" द्वितीयां चैव यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवन्त्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं स्मृतम् " इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ मदनरत्ने ब्राह्मेपि–" आहिताग्न्योश्च दंपत्योर्यस्त्वादौ म्रियते भुवि । तस्य देहः सपिण्डैश्च दग्धव्यस्त्रिभिराग्निभिः ॥ पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकिकाग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ॥ " त्रिकाण्डमण्डनस्तु विकल्पमाह–" ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोषिते । काम्यं नित्याग्निहोत्रं वा न कथंचित्प्रयच्छति ॥ स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान्यैर्वैदिकादिभिः । विवाह्याद्यते यद्याधानमेवास्ति चेद्वधूः ॥" इति ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ ॥ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्दहेदित्येकः पक्षः । " भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ " इति मनूक्तेः ॥ 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ॥' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ पुनर्विवाहशक्तौ निर्मन्थ्येन तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रेष्ट्यादिकार्यमित्यर्थः ॥ " आहार्येणाहिताग्निं पत्नीं च" इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ भरद्वाजोपि–'निर्मन्थ्येन पत्नीम्' इति पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः ॥ यानि च–'तस्मादपत्नी

दाह करके दूसरा विवाह करै ॥ जो यह कथन है कि, जो दूसरी भार्या वैतानकी अग्निसे प्रथमके जीते दाह करै, वह कुल्य सुरापानके सदृश है, वह वाक्य उस भार्याके निमित्त है, जिसका आधानमें सह अधिकार न कियाहो, यह विज्ञानेश्वरका कथन है. मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, आहिताग्नि स्त्रीपुरुषोंमें जो प्रथम पृथ्वीपर मृतक होजाय उसके देहको सपिंड तीनों अग्नियोंसे दग्ध करैं और जो पश्चात् मरै, उसको लौकिक अग्नि से दाह करैं, और अनाहिताग्निके देहको तो ब्राह्मण गृह्याग्निसे भस्म करै ॥ त्रिकांडमण्डनने तो विकल्प लिखा है कि, बडी विद्यमान होय तो दूसरी अपनी स्त्रीको काम्य नित्यका अग्निहोत्र कदाचित् न दे, स्त्रीमात्रको वैदिक अग्नियोंसे दग्ध करके विवाही भार्यायुक्त आधान करै. जो वधू विद्यमान हो तो यहां यह विचार है कि, साग्निकी स्त्रीके मृतक होनेमें दो पक्ष हैं, फिर विवाह करनेकी इच्छा होय तो पूर्वाग्नियोंसे दाह करै, यह एक पक्ष है. कारण कि, मनुने लिखा है कि, प्रथम मरी स्त्रीको अन्त्यकर्ममें अग्नियोंको प्रदान कर फिर विवाह और आधान करै ॥ याज्ञवल्क्यने कहा है कि, आचारवाली स्त्रीको अग्निहोत्रसे दग्ध करके फिर विवाह करै, फिर विवाहकी सामर्थ्य न होय तो मथन कीहुई अग्निसे दाह करके पूर्व अग्नियोंमेंही अग्निहोत्र आदि करना यह दूसरा पक्ष है. कारण कि, आश्वलायनने कहा कि, आहार्य (अन्यकुलसे लाई) अग्निसे अनाहिताग्निको और पत्नीको दग्ध करै. भरद्वाजने लिखा है कि, मथी अग्निसे भार्याको दग्ध करै. देवयाज्ञिक यज्ञपार्श्व आदि तो यह लिखते हैं कि, पूर्व अग्निके एक देशसे दाह करै. जो वाक्य है कि, इससे पत्नीरहितको भी अग्निहोत्र करना चाहिये यह श्रुति

कोप्यग्निहोत्रमाहरेत्' इति श्रुतिः ॥ विष्णुः छन्दोगपरिशिष्टे च-" मृतायामपि भार्यायां लौकिकाग्निं नहि त्यजेत् । उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत् ॥" उपाधिर्हेमकुशपत्न्यादिः ॥ " अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः ॥ " इत्यपरार्के स्मृत्यन्तरात् ॥ कात्यायनोपि- " रामोपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ " इत्यादीनि तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि क्रतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् ॥ अपत्नीकस्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्च ॥ ' सोमो न भवत्येव अपत्नीकोप्यसोमपः' इतिः श्रुतेः ॥ यत्तु भरद्वाजापस्तम्बसूत्रम्-' दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयम् ' इति ॥ अस्यार्थः-पुनर्विवाहाशक्तौ यदग्न्याधेयं पूर्वं कृतमस्ति तदात्मार्थमेव न पत्न्यै दद्यादिति ॥ ब्राह्मणभाष्यापरार्काशार्करामाण्डारादितत्त्वमप्येवम् ॥ त्रिकाण्डमण्डनस्तु पक्षद्वयमाह ॥ अन्येऽप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः ॥ याज्ञवल्क्यः-' आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ॥," क्रतुः-" एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥"

है ॥ विष्णु और छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, भार्याकी मृत्यु होनेपर भी लौकिक अग्निको न त्यागे, उपाधि (सुवर्ण वा कुशाकी पत्नी) से भी जीवनपर्यन्त उस कृत्यको करै. अपरार्कमें यह दूसरी स्मृति है कि, और गृहस्थी कुशाकी पत्नी बनाकर उस व्रतमें तत्पर हुए जीवनपर्यन्त अग्निहोत्रकी उपासना करते रहते हैं, कात्यायनने भी लिखा है कि, रामचन्द्रने भी सोनेकी यशस्विनी सीतास्त्रीको बनाकर भाइयोंसहित बहुत यज्ञ किये इत्यादि वाक्य हैं, वे पूर्व अग्नियोंमें ही अग्निहोत्रके विषयमें लिखे हैं, पत्नीरहितको आधानके कहनेवाले बाधक नहीं हैं, कारण कि, यज्ञकी विधि आधानकी प्रेरक नहीं होसकती और मानवपरिशिष्टमें भी कहा है कि, भार्यारहितको आधानमें प्रवृत्त होना नहीं है, सोम यज्ञभी नहीं होता कारण कि, यह श्रुति है कि, जो पत्नीरहित है वह सोम नहीं कर सकता ॥ जो भारद्वाज और आपस्तंबका यह सूत्र है कि, स्त्रीके कर्ममें जो असमान है, वह अपने निमित्त अग्निका आधान करै, इसका अर्थ यह है कि, फिर विवाह करनेमें असमर्थ होय और जो अग्न्याधान प्रथम कियाहुआ है वह अपने निमित्त है, पत्नीको न देना. ब्राह्मणभाष्य, अपरार्क, आशार्क, रामाण्डार आदिका तत्त्व भी इसी प्रकार है, त्रिकांडमंडनमें तो दो पक्ष लिखे हैं, औरोंने भी भार्यारहितको अधिकार लिखा है, उनके अभिप्रायको हम नहीं जानते, अर्थात् वह यथार्थ नहीं वृद्धयाज्ञवल्क्यने लिखा है कि, आहिताग्निको नीतिके अनुसार तीन अग्नियोंसे दग्ध करै और अनाहिताग्निको लौकिक एक अग्निसे दग्ध करै. क्रतुने कहा है कि, इस प्रकार आचरणवाली पूर्व मरी सवर्ण स्त्रीको धर्मका ज्ञाता द्विजाति अग्निहोत्र और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करै ॥ कारिकामें कहा है

कारिकायाम्–"पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि । अनग्निकां दहेदेवं कपालेन हविर्भुजा ॥" छन्दोगपरिशिष्टे–"अनयैवावृता नारी दग्धव्या याऽव्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥" इदं छन्दोगानामेव । तथा "अग्निनैव दहेद्भार्यां स्वतंत्रां पतिता न चेत् । तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगग्निके ॥" इदमपि तेषामेव ॥ आशौचप्रकाशे क्रतुः–"विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत् । ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्तपनाग्निना ॥ तुषाग्निना च दग्धव्या कन्यका बाल एव च । अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिःक्षिपेत् ॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः ॥" अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापि तस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः ॥ स्मृत्यन्तरे–गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः ॥ औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः ॥" उत्तपनस्तु–"दर्भाग्रेग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः । पुनर्दर्भैस्तृतीयेग्निरेष उत्तपनः स्मृतः ॥" यमः–" यस्यानयति शूद्रोग्निं तृणकाष्ठहवींषि च । प्रेतत्वं च सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ॥" देवलः–"चण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च

कि, भर्ताके प्रथम मृतक हुई होय तो पत्नीको भी इसी प्रकार दाह करे, और अग्निहोत्र न करती होय तो कपालकी अग्निसे दग्ध करै. छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, जो स्त्री स्थितिसे रहती हो उसको भी इसी प्रकारसे दाह करना चाहिये और उसके निमित्त अग्नि देनेका मन्त्र न पढे, यह स्थिति है, यह भी छन्दोगोंके निमित्त है, तैसे ही कथन है कि, पतित न होय तो स्वतन्त्र भार्याको भी अग्निसे दाह करै और उसके शरीरसे उत्तरकी ओर वा उत्तर दिशामें अग्निके पात्र दाह करै यह भी छांदोगोंके निमित्त है ॥ अशौचप्रकाशमें क्रतुने लिखा है कि, भार्यारहित पुरुष और विधवा स्त्रीको कपालकी अग्निसे, ब्रह्मचारी और संन्यासीको उत्तपन की अग्निसे, कन्या और बालकको तुषकी अग्निसे दग्ध करै. मृत्तिकाके कपालको अग्निके तुल्य लाल करके उस कपालमें (सूखा गोबर) आदि डालदे उससे उत्पन्न हुई अग्निको कपालअग्नि कहते हैं. यद्यपि यज्ञोपवीत न हुआ हो उसके निमित्त अरणीसे उत्पन्न हुई अग्नि लिखी है तो भी वह कलियुगमें निषिद्ध है इससे वही पूर्वोक्त जाननी ॥ और स्मृतिमें लिखा है कि, गृहस्थी ब्रह्मचारी स्त्रीसे हीन विधवाके निमित्त क्रमसे औपासन उत्पन्न कुशाग्नि और कपालाग्नि होती है उत्तपन अग्नि यह होती है कि, कुशाके अग्निको प्रज्वलित करै फिर उसे कुशामें मिलावे फिर और कुशाओंमें मिलावे, उस तीसरी अग्निको उत्तपन कहते हैं, यमने कहा है कि, जिसके निमित्त शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ, हवि लेजाय वह सदा प्रेत रहता है, और वह अधर्मसे संयुक्त होता है ॥ देवलने कहा है कि, चाण्डालाग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका और पतितकी अग्नि, और चिताकी अग्नि ये किसी प्रकार भी श्रेष्ठोंको ग्रहण करने योग्य नहीं. पश्चिम उत्तर पूर्व द्वारोंसे क्रमसे मरेहुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको लेजाय. मनुका

कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥" मनुः—"दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ॥ पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः॥" अत्र प्रातिलोम्येन क्रमः। "पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात् । उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा ॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः ॥" इत्यादिपुराणादित्यपरार्कः ॥ तेन त्रिंशच्छ्लोक्युक्तोनुलोमक्रमो हेयः ॥ आश्वलायनः—'ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्या गच्छेयु आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे श्रौतस्मार्तान्योःसंसर्गः॥ बौधायनसूत्रे—'अथ यद्याहिताग्निर्द्वे भार्ये विन्देत प्राक् संयोगान्म्रियेतौपासनं संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वाग्नौ जुहोति संमितं संकल्पेथामिति मिंदाहुतीर्व्याहृतीश्च हुत्वा अथैतमग्निमयं ते योनिर्ऋत्विज इति समिधि समारोप्य गार्हपत्ये समिधमभ्यादधाति भवतं नः समनसाविति गार्हपत्य आज्यं विलाप्य चतुर्गृहीत गार्हपत्ये जुहोत्यग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट इत्यपरं चतुर्गृहीत्वा चित्तिः स्रुगिति सग्रहं जुहोति, अथ गार्हपत्ये स्रुवाहुतीर्जुहोति ब्राह्मण एक होतेति दशभिः, अथ प्राचीनावीत्यन्वाहार्यपचने जुहोति ये समाना ये सजाता इति द्वाभ्याम्, अथ तत्रैव स्रुवाहुतिं जुहोत्यग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहेति, अथ यज्ञोपवीती द्वादशगृहीतेन स्रुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेनाहवनीये जुहोति, अथ स्रुवाहुतीर्जुहोत्यग्नये विविचये स्वाहाग्नये

कथन है कि, शूद्रको दक्षिण ओर पुरीके द्वारसे लेजाना चाहिये. यहां क्रम प्रतिलोमसे जानना कारण कि, यह आद्य पुराणमें लिखा है कि पूर्वाभिमुख ब्राह्मणको उत्तराभिमुख क्षत्रीको और पश्चिमाभिमुख वैश्यको और दक्षिणाभिमुख शूद्रको कुटुम्बी घरसे लेजांय, यह अपरार्क लिखते हैं इससे त्रिंशत्श्लोकीमें कहा अनुलोम क्रम छोडने योग्य है, आश्वलायनने कहा है कि ज्येष्ठ पहिले और कनिष्ठ पीछे जाय इसके उपरांत आधानके उपरांत दूसरा विवाह करनेके पीछे यजमान मरजाय तो श्रौत और स्मार्त अग्निका संयोग होता है ॥ बौधायन सूत्रमें कहा है कि, इसके अनन्तर लिखते हैं कि, यदि आहिताग्नि दो भार्याओंको विवाहै, और संयोगसे प्रथम मरजाय तो उपासनाग्निका स्थापन आर घीको तपाकर चारवार स्रुवेसे लेकर प्रज्वलित अग्निमें हवन 'समितं सङ्कल्पेथाम्' इस मन्त्रसे और व्याहृतियोंसे हवन करके उस अग्निको ' अय ते योनि ऋत्विज० 'इस मन्त्रसे समिधपर रखकर उस समिधको गार्हपत्य अग्निपर रक्खै 'भवतं नः सुमनसौ०' इस मन्त्रसे गार्हपत्य अग्निपर घीको तपाकर और चार चार घीको ग्रहण करके गार्हपत्य अग्निमें 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः ०' इस मन्त्रसे आहुति दे, फिर चार वार ग्रहण करके चित्तिस्रक् आदिको अग्निमें होम करदे, फिर गार्हपत्य अग्निमें स्रुवेसे आहुति दे, और एक ब्राह्मण हो । है, फिर अपसव्य-हुये 'ये समाना० ये सजाता०' इन दो मन्त्रोंसे अन्वाहार्य वाक्य आहुति दे, फिर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमःस्वाहा' इस मन्त्रसे स्रुवाहुति दे, फिर सव्य होकर बारह वार लिये घीको स्रुवेमें भरकर पुरुषसूक्तसे आहवनीय अग्निमें आहुति दे, फिर स्रुवेसे यह आहुति दे कि,

व्रतपतयेऽग्नये पवमानायाग्नये पावकायाग्नये शुचये स्वाहाग्नये पथिकृते स्वाहाग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानरायेति, अथ चतुर्गृहीतं जुहोति मनोज्योतिरित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते' इति ॥ आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्दाहः । पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येप्युपरम्यते ॥ प्रेतनिर्हरणदाहौ । स्मार्ताग्निसूत्रे मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च—"दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतिनम् चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत् । हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु । मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ आमपात्रेऽग्निमादाय प्रेतमग्निपुरस्सरम् । एकोनुगच्छेत्तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजेद्भुवि ॥ ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः । सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥ अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत् । तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णं स्रुवं दद्याद्दक्षिणाग्रं नसि स्रुचम् । पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात् । सुसमे तु न्यसेन्युज्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥ चान्त्रोविलीढमत्रैव अग्नेरप्ययं विधिः । अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः । अथाग्नि

'अग्नये विविच्यग्नये स्वाहा अग्नये व्रतपतये अग्नये पवमानाय अग्नये पावकाय अग्नये शुचये स्वाहा० अग्नये पथि कृते स्वाहा० अग्नये तन्तुमतेऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा० 'फिर चार वार ग्रहण करके मनोज्योति' इस मन्त्रसे आहुति दे, ऐसे करने उपरांत पैतृक कर्म सिद्ध होता है. आहिताग्नि विदेशमें मृतक होय तो मार्गका यज्ञ और मृतकका अग्निहोत्र और उसका दाह पात्रोंका योजन कल्पसूत्र आदिके अनुसार हमारे पितामहकी निर्माण की हुई पद्धतिमें जानना चाहिये, यहां बहुत कुछ कहना था, तो भी विस्तार होनेसे नहीं कहते हैं ॥ स्मार्त अग्निवालेका दाह तो मदनरत्न और छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, दुर्बल (मरने योग्य) को स्नान कराकर शुद्धवस्त्रसे ढककर और दक्षिणकी ओर शिर करके भूमिमें कुशाओंपर लिटादे, घृत मलकर स्नान कराकर और शुद्धवस्त्र और यज्ञोपवीत पहरावे, सब अंगपर चन्दन छिडके और फूलोंसे भूपित करै, सुवर्णके टुकडे सातों छिद्रोंमें डालकर और मुख ढककर पुत्र आदि इसको श्मशानमें लेजांय, आमपात्रमें अग्न लेकर अग्निको आगे कर एक मनुष्य चले, उस अन्नके आधे भागको आधे मार्गमें भूमिपर त्यागदे, फिर दक्षिणको मुख करके और पिण्डदानके समान बायें गोडको नवायकर तिलके सहित दग्ध करना चाहिये, फिर पुत्र आदि स्नान करके श्रेष्ठ दाहकी चरु निर्माण करै, फिर सीधे इस प्रेतको चितामें लिटाकर मुखमें घीसे भरे सुवेको दे, और दक्षिणको अग्रभाग करके नासिकामें दे, चरणोंमें प्राक्अरणी और छातीपर ऊपरकी अरणी, और सूप और चमस सव्यदक्षिण पार्श्वोंमें क्रमसे रखदेने, और प्रेतकी जंघाओंमें समान देशमें ऊखल रक्खे, और चांत्रविलीढ वहांही स्थापन करै, अग्निकी भी यही विधि है, अपसव्य होकर यह सब करै, और दक्षिणकोण मुख किये बैठे, फिर अग्निको सव्य होकर लेकर शनैः २ दक्षिणदि-

मुख्यमावृत्को दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ अस्मात्त्वमधिजातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत् ॥" तथा-"एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत् । कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषोध्वर्युचोदितः ॥" तत्रैव-"अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥" इदं छन्दोगानामेव । पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं साग्निपरम्, निरग्निस्तु पुमानधोमुखः, स्त्रीतूत्ताना दाह्या ॥ "सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः । अधोमुखो दक्षिणदिक्चरणस्तु पुमानिति । उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः ॥" इत्यादिपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः ॥ उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरम् ॥ वाराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः "कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान्स गच्छतु ॥ ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत् । चतुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके ॥" अत्र क्रियानिबन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम् ॥ "मृतस्योत्क्रान्तिसमये षट् पिण्डान् क्रमशो ददेत् । मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वरे तार्क्ष्यकारणात् ॥ विश्रामे काष्ठचयने तथा संचयने च षट् ॥" तथा-"आदौ देयास्तु षट् पिण्डा दश

शामें अग्निदे, यह मन्त्र उच्चारण करे कि, इस अग्निसे उत्पन्न हुआ और ब्रह्मरूप तुझसे यह अग्नि फिर उत्पन्न हो यह स्वाहा स्वर्गलोकके निमित्त है ॥ तैसेही वाक्य है कि, इसी प्रकार आहिताग्निके पत्रोंका रखना होता है, और अध्वर्युका कहा काले मृगका चर्म यहां विशेष लिखा है, वहांही लिखा है कि, जो नारी श्रेष्ठ आचरणवाली है, उसेभी इसी प्रकार दग्ध करना केवल अग्नि देनेका मन्त्र इसके निमित्त नहीं कहना यह स्थिति है; यह छन्दोगोंके निमित्त है. पात्रोंका रखना कहनेसे सीधा देह रखना, सगोत्री ग्रहण करके मृतकको चितामें रक्खै, नीचामुख और दक्षिणको शिर पुरुषका करै, और सपिंडबांधव स्त्रीको उत्तान मुख ग्रहण करै, यह आदिपुराणमें लिखा है, यह शुद्धितत्व हारलता आदि लिखते हैं, उत्तरको शिर करना, सामवेदियोंसे पृथक् वेदियोंके विषयमें है ॥ वराहपुराणमें तो अग्निके दानका दूसरा मन्त्र है कि, जानकर वा न जानकर पापकर्मोको करके और मृत्युकालके वशमें होकर मृतक हुये धर्म अधर्मसे युक्त और लोभ मोह सहित मनुष्यके सब गात्रोंको दाह करै और वह जीव स्वर्गलोकमें जाओ इस मन्त्रसे जलती हुई अग्निको शिरके स्थानमें लगावै और हे पुत्रो ! चारों वर्णोंमें इसी प्रकार स्थिति होती है यहां क्रियानिबंधमें गरुडके वाक्यसे छः पिण्डोंका देना लिखा है कि, हे गरुड ! मृतकके मरणके समय क्रमसे छः पिंड देने, एक मृतस्थानमें, एक द्वारमें, चौराहेमें, विश्राम और चिता और अस्थिसंचय ये छः कहे हैं, ऐसेही वाक्य हैं कि, छः पिंड आदिमें देने, और दश पिंड दशदिनके, मृतस्थान, अर्द्धमार्ग, चिता, शवका हाथ, श्मशान-

देया दशाहिकाः । स्थाने चार्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके ॥ श्मशानवासिभूतेभ्यः षष्ठं संचयने तथा ॥" ततः—"त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः ॥ उक्तः संहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय" इत्यग्निं दत्त्वा । अस्मात्त्वमिति मन्त्रेणार्धदग्धे आज्याहुतिरुक्ता । आहिताग्नौ पराशरः—"शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणीं मुष्कयोरपि । जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ शिश्ने तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् ॥ उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे । श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥ कर्णे नेत्रमुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् । अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निःक्षिपेत् ॥" प्रचेताः—" स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत् ॥" यमः—'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।' आश्वलायनसूत्रे—' संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति' इति ॥ माधवीये ब्राह्मे—' दरिद्रोपि न दग्धव्यो नग्नः कस्यांचिदापदि ॥' तथा—'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्त्यजेन्नरः ॥' दाहकालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—" यजमाने मृते क्वापि चितादौ वा प्रवेशिते । वर्षाद्यभिहतेऽग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं

वासीभूतोंको, छटा संचयनमें दे॥ फिर हे अग्निदेव ! तुम भूतोंके करनेवाले जगत्के करनेवाले और लोकके पालक हो इससे इस मृतकको स्वर्गमें लेजाओ, इस मन्त्रसे अग्नि देकर और अस्मात्त्वमधिजात० इस पूर्वोक्त मन्त्रसे आधा शरीर दग्ध हुयेपर घीकी आहुति देनी लिखी है, आहिताग्निके निमित्त पराशरने लिखा है कि, शमीको लिंगके स्थानपर और अरणीको अंडकोशोंपर, जुहूको दक्षिण हाथपर और उपभृतको वाम हाथपर, उलूखलको शिश्नपर पृष्ठपर मुशलको, छातीपर पत्थर, तण्डुल घी तिलोंको मुखमें, कानोंमें प्रोक्षणी, और घृतस्थालीको नेत्रोंमें सोनेके खण्ड, कान, मुख, नेत्र, नासिकामें रक्खे, और संपूर्ण अग्निहोत्रकी सामग्री वहां रखदे ॥ प्रचेताने लिखा है कि, पुत्र आदि प्रेतका स्नान और वस्त्र आदिसे पूजन करें, नग्नका दाह न करें, और कुछ देनेकी वस्तु दे. यमने कहा है कि, प्रेतका दाह शुभ गन्धोंसे करना चाहिये, स्नान और वस्त्रोंसे भूषित करें, आश्वलायन सूत्रमें कहा है कि, मृत्युके पीछे प्रेतका अलंकार करते हैं, केश, श्मश्रु, लोम, नख मुडाते हैं, चन्दनलिप्त करते हैं, चन्द्रनकी माला पहराते हैं, माधवीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, कैसी भी आपत्ति क्यों न हो दरिद्रोको भी नग्न करके दग्ध न करै, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि, सब दाह न करै, कुछ शेपको मनुष्य छोडदे ॥ दाहके समय अग्नि नष्ट होजाय तो मदनरत्नमें यज्ञपार्श्वने लिखा है कि, मृतक हुआ यजमान कहीं वा चिता आदिमें प्रविष्ट किया हो और अग्नि वर्षा आदिसे नष्ट होजाय तो प्रेतकी कल्पना कैसे हो, तो शेपका दाह करै, वा अग्निको मथकर

दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मथ्यैव तु कारयेत् ॥" अथ पर्णशरादिदाहेनाग्निनाशे पश्चाद्देहलाभे मदनरत्ने ब्राह्मे-" अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वाग्निषु तद्देहो यदूर्ध्वं लभ्यते क्वचित् ॥; तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् ॥ यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निःक्षेप्तव्यं महाजले ॥" दम्पत्योरेकदा मृतौ ॥ दंपत्योरेकदा मृतौ विशेषमाहापस्तम्बः-' तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्विवचनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयन्ति ॥' पितृमेधो दाहान्तं कर्म ॥ ':दाहान्तमेकतन्त्रत्वम्' इति बौधायनोक्तेः ॥ अस्थिसंचयनमप्येवम् ॥ उदकपिण्डदानादि पृथगेव ॥ सहगमनेप्येवम् ॥ तदाह मदनरत्ने भाष्यार्थसंग्रहकारः-" एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद्द्वयोः । तन्त्रेण दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक् पृथक् ॥ एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः । विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसांप्रतम् ॥ दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसंमतम् ॥ मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता । अस्थिसंचयनान्तोस्या भर्तुः संस्कार एव हि ॥ कीकसानां तु संस्कारो न्यायासिद्धोपि यो मतः ॥ एककाले मृतेप्येवं कीकसानां विधिः स्मृतः ॥ नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ॥ कपर्दिकारिकापि-" मृते भर्तरि तद्दाहात्प्राक्

दाह करै, क्रियानिबंधमें कहा है कि, निरन्तर जलकी धारा प्रदक्षिण क्रमसे कर्ता दे और धाराको कांधेपर वट रखकर चरणके चारों ओर चिताके डाले, जो पुतले आदिके दाहमें अग्नि नष्ट होजाय और पीछे उसका देह मिलजाय, तब मदरत्नमें ब्रह्माका वचन है कि, पर्णशरदग्ध और पात्रन्यास करनेपर अग्नि बुझनेपर उसका देह मिलजाय तो आधे जले हुये उन काष्ठोंको ही मथकर दाह करै, जो आधा जला काष्ठ न मिले तौ तब अस्थियोंके टुकडोंको महा जलमें फेंकदे ॥ स्त्रीपुरुष एकबार मृतक होजांय तो आपस्तंबने लिखा है कि, उस समयमें मरःनेमें संगही पितृयज्ञ करैं, और जिनमें द्विवचन हो ऐसे मन्त्रोंको स्वीकार करते हैं, कारण कि, बौधायनने लिखा है कि, दाहपर्यन्त प्रेतकर्ममें तन्त्र होता है, अस्थियोंको संचयन भी एकही होता है, जल और पिंडदान पृथक् होते हैं. सती होनेमें भी इसी प्रकार हैं यही मदनरत्नमें कहा है कि, भाष्यार्थसंग्रहकारने लिखा है कि, एक समयमें भर्ता और भार्या मृतक होजांय तो उसका दाह एकचितामें करै, और पिंडश्राद्ध भिन्न २ करै. जो किसीने यह लिखा है कि, एककालमें स्त्री पुरुष मृतक होजांय तो पिताका दाह पृथक् करै, यह अनुचित है, यज्ञके कर्ताओंकी यह संमति है कि, यहां पर्यन्त एकतंत्र करै, मृतकपतिके उपरांत जो स्त्री सती होगई हो, अस्थिसंचयनतक पतिका संस्कार ही उसका संस्कार है, और (नीचों) का तो संस्कार न्यायसिद्ध नहीं है, एक समयमें मरे अधमकी ऐसेही विधि लिखी है जैसे नवश्राद्ध सपिंडीपर्यन्तकी विधिसे होता है ॥ कपर्दीकी कारिकामें लिखा है कि, स्वामीके पीछे दाहसे प्रथम स्त्री

पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहादर्वाक्पतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकसानां तु संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् ॥ एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता ॥ तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगास्थिक्रिया भवेत् ॥" अस्थिसंचयनपृथक्त्वे विकल्पः ॥ सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्रचेताः—"एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक् पिण्डं समाचरेत् ॥" उदकदानम् ॥ अथोदकदानं वसिष्ठः—"शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्षमाणा अपोऽभ्यवयन्ति सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मम् ॥" आपस्तम्बः—"मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः पितुश्चासप्तमात् पुरुषाद्यावतां वा सम्बन्धो ज्ञायते तेषां प्रेतेषूदकक्रिया" इति ॥ याज्ञवल्क्यः—"सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः । अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।" सप्तमाद्दशमाद्वा दिवसादादन्तामिति विज्ञानेश्वरः ॥ कातीयास्तु सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषादित्याहुः ॥ 'सप्तमाद्दशमाद्वा पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः' इति पारस्करोक्तेः ॥ मन्त्रस्नानांगमेवेति हेमाद्रिः॥

मृतक होजाय वा स्त्रीके दाहसे प्रथम पति मृतक होजाय तो वहां एक चितामें दाह होता है, और मन्त्रोंमें द्विवचनका ऊह करना. कीकस (नीच) जातिमें तो उनका संस्कार भिन्न २ होता है, और एक दिन मरनेमें उनके नवश्राद्ध एक वार संयुक्त होते हैं, मृतकपतिके पीछे पत्नी सती होय तो वहांभी दाह संग और अस्थिसंचयन भिन्न होता है, अस्थिसंचयनके पृथक् होनेमें विकल्प है, सती होनेमें सर्वत्र एक पाक प्रचेताने लिखा है कि, यदि मरेहुए स्त्रीपुरुष एक चितामें दग्ध किये हों तो पाक एक करै, और पिंड पृथक् २ दे ॥ अब जलदानको लिखते हैं, वसिष्ठने कहा है कि, अग्निमें शरीरको मिलाकर और उसको नहीं देखतेहुये जलके निकट जांय, वाम और दक्षिण हाथोंसे विषम मनुष्य जलदान करै. आपस्तंबमें लिखा है कि, माताके योनिसम्बन्धी और पिताके सात पीढियोंमें वा जितनोंका सम्बन्ध है विदित हो मरेहुये उतनोंको जलदान होता है, और गर्भसे वर्षपर्यन्तके बालकोंका निषेध है. याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, सातवीं वा दशवीं पीढीतक जातिके मनुष्य जलके निकट जांय, दक्षिणको मुख करके जल हमारे पापको दूर करो, यह कहकर नाम गोत्र उच्चारण कर और मौन होकर जलदान करैं, सातवें दशवें दिनसे दांत निकलनेतक जलदान होता है यह विज्ञानेश्वरने लिखा है । कातीय तो यह लिखते हैं कि, सातवें वा बारहवें पुरुषतक जलदान करना चाहिये, कारण कि, पारस्करने लिखा है कि, सातवें वा दशवें पुरुषतक एक ग्राममें जितने मनुष्य निवास करते हों उनमें जितनोंका संबन्ध विदित हो उनको जलदान करै,

प्रचेताः–"प्रेतस्य बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्घर्षयेयुरुदकान्तं प्रसिञ्चेयुरपसव्य-यज्ञोपवीतवाससो दक्षिणामुखाः ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः ॥" स एव 'नदीकूलं ततो गत्वा' इत्युक्त्वा "सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशाञ्जलीन् ॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पञ्चदश स्मृताः । त्रिंशच्छूद्राय दातव्यास्ततस्तु प्रविशेद्गृहम् ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ॥" प्रेतस्नानम् । प्रेतस्नाने विशेषः शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे–"आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितस्ततः । कर्त्तव्यं तैः सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम् ॥" पूर्वपरिहितं वस्त्रं प्रक्षाल्य पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः ॥ अपन इति मन्त्रेण वामहस्तानामिकया जलालोडनम् ॥ अवतरणे वृद्धपुरस्सरत्वोक्तेः 'यथावालं पुरस्कृत्य' इति बौधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलतादयः ॥ अञ्जलिदानम् । आश्वलायनः–'सव्यावृता व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद्भवति, तत्प्राप्य सकृदुन्मृज्यैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा' इति ॥ प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयमप्युक्तं 'त्रिःप्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति ॥ तथा–" दिनेदिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । तावद्वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते ॥" एकवृद्धिस्त्रिकवृद्धिवत्यर्थः ॥

दानका मन्त्र वही है जो स्नानसे है, यह हेमाद्रि लिखते हैं ॥ प्रचेताने लिखा है कि, प्रेतके बांधव वृद्ध वृद्धके क्रमसे जलमें उतरकर स्नान करैं, और जलके निकट बैठकर और यज्ञो-पवीत और वस्त्रको अपसव्य करके शूद्र दक्षिणमुख और ब्राह्मण उत्तरको और क्षत्रिय वैश्य पूर्वको मुख होकर जलदान करैं. प्रचेताने कहा है कि, नदीके किनारे जाकर सवस्त्र स्नानके पीछे शुद्ध और सावधान मनुष्य पत्थरको लेकर उसके ऊपर ब्राह्मणको दश अंजलि, क्षत्रि-यको वारह, वैश्यको पन्द्रह, शूद्रको तीस दें, फिर घरमें आवें वहां फिर स्नान और घरकी शुद्धि करैं ॥ प्रेतके स्नानमें विशेष शुद्धितत्त्वमें आदिपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, पहले वस्त्रको धोकर फिर धले उसी वस्त्रको ओढकर सचैलस्नान करै, जैसे सब मल दूर हो अर्थात् पूर्वको त्यागे हुये वस्त्रको धोकर और धुले हुये वस्त्रको ओढकर फिर सचैलस्नान करै. जल हमारे पापको दूर करो, इस मन्त्रको उच्चारण कर वांये हाथकी अनामिका कनउंगलीसे जलको विलोवै. जलमें घुसनेमें वृद्धोंको आगे कहनेसे यह बौधायनका वाक्य है कि, वाल-कोंको आगे करके जलसे निकलनेमें है, यह हारलता आदि लिखते हैं ॥ आश्वलायनने लिखा है कि, सव्य होकर प्रेतको नहीं देखते, जहां जल अधिक हो वहां जाय, और जाकर प्रेतका नामगोत्र लेकर एक २ अंजली देनी. प्रचेताने तो प्रतिदिन तीन अंजली देना कहा है कि, प्रेत तृप्त हो यह कहकर प्रत्येक तीन २ अंजली दे, ऐसेही वाक्य है कि, प्रेतके निमित्त दिन २ जलसे पूर्ण अंजली दे, और जबतक पिंड समाप्त हो तबतक एक वा तीन

मदनरत्ने भरद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता " आशौचान्ते प्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽह्नि सकृद्दद्यात्पिण्डयज्ञावृतो दिवा ॥ त्रींश्च दद्याद्द्वितीयेऽह्नि तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥ षष्ठेऽह्नि चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे पञ्चदशका नवमे दश सप्त च । एकोनविंशतिं चाग्रे शताञ्जलिमतं स्मृतम् । केचिद्दशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् । पञ्चपञ्चाशतं चान्ये स्वशाखोक्तव्यवस्थया ॥ " छन्दोगपरिशिष्टे—" अथानवेक्षयेत्पापः सर्वे चैव शवस्पृशः । गोत्रनामपदान्ते तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ॥" विष्णुपुराणे—सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥" रामायणे—"इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु पानीयं मद्दत्तमुपतिष्ठताम् ॥" दानवाक्ये विकल्पः ॥ याज्ञवल्क्यः—'कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥' काम इच्छा ॥ प्रेततृप्तीच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः ॥ शङ्खपारस्करौ—'आचार्ये चैवं' "मातामह्योश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वीरंस्ताश्च तेषाम्" इति ॥ द्विवचनान्मातामह्या अपि ॥ शङ्खलिखितौ—'उदकक्रिया कामं श्वशुरमातुलयोः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि च' इति ॥ वृद्धमनुः—" क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना

अंजली प्रतिदिन बढ़ाता जाय ॥ मदनरत्न और भरद्वाज गृह्यमें तो दो अंजलिकी भी वृद्धि लिखी है कि, अशौचके पीछे प्रेतका पुत्र तिलांजलि दे पहले दिन अपसव्य होकर एक अंजली, दूसरे दिन तीन, तीसरे दिन पांच, चौथे दिन सात, पांचवें दिन ९ नौ, छठे दिन ग्यारह ११, सातवें दिन १३, आठवें दिन पंद्रह १५, नौवें दिन १७, दशवें दिन १९ उसके आगे सौ अंजली लिखी हैं. और कोई दश अंजली कोई सौ अंजली कोई ५५ अंजलि अपनी २ शाखामें लिखीहुई व्यवस्थासे कथन करते हैं, असमर्थमें गौतमने लिखा है, प्रथम तीसरे सातवें नौवें दिन जलदान करै ॥ छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, शव (मृतक) स्पर्श करनेवालेको न देखकर गोत्र और नामके पीछे मैं तर्पयामि उच्चारण कर दक्षिणको अग्रभागवाली कुशा और तिल लेकर पृथक् २ जलदान करना चाहिये, विष्णुपुराणमें कहा है कि, सपिंडीतक ऋजु सीधी एक २ कुशासे पितृकार्य करै, और सपिंडोंके पश्चात् दूनी कुशाओंसे विधिपूर्वक पितृकर्म करना चाहिये. रामायणमें कहा है कि, हे पुरुषशार्दूल ! निर्मलदिव्य मेरा दिया हुआ यह जल पितृलोकमें अक्षय पूर्वक प्राप्त हो, दानके वाक्यमें विकल्प है, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, विवाही कन्या भानजा श्वशुर ऋत्विज इनको इच्छाके अनुसार अर्थात् प्रेततृप्तिकी इच्छा होय तो देना नहीं तो न देना ॥ शंख और पारस्करने लिखा है कि, आचार्य नाना नानी विवाही कन्याओंको जल दें और वे उनको दें. शंखलिखितका कथन है कि, श्वशुर और मामाको यथेच्छ जल दान देना चाहिये, और शिष्य संन्यासी राजाको भी दे. वृद्धमनुने कहा है कि, नपुंसक आदि, चोर, व्रात्य,

व्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः " याज्ञवल्क्यः—'न ब्रह्मचारिण कुर्युरुदकं पतितास्तथा ॥' षडशीतौ—"स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः पतिता ये च दूषिताः । न कुर्युरुदकं ते वै तेभ्योऽप्यन्ये न चैव हि ॥ " मदनरत्ने हारीतः—"पतितानामवृद्धानां चरन्तीनां च कामतः । प्रत्तानां चैव कन्यानां निवर्त्या सलिलक्रिया॥" अपरार्के शङ्खलिखितौ—'अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि व्यावर्तन्ते ॥' अपपात्रितः कृतघटस्फोटः ॥ तस्यापि संग्रहविधौ कृते आशौचोदकादि कुर्यादेवेत्याशौचप्रकाशः ॥ अथाशौचे नियमाः । याज्ञवल्क्यः—"इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः ॥ विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि । क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्क्षितौ ॥" इदं चाद्येह्नि ॥ वसिष्ठः—'आद्ये प्रस्तरे गृहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वा वर्त्तेरन्' ॥ शुद्धितत्त्वे बैजवापः—'शमीमालभन्ते शमी पापं शमयतु इति, अश्मानमश्मेव स्थिरो भूयासमिति, अग्निमग्निर्नः शर्म यच्छत्विति ज्योतिरित्यन्तरा गामजमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वान्यगेहोदकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भुञ्जीरंस्त्रिरात्रं च कर्मोपरमणम्, क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य ॥' आश्व-

---

और विधर्मी, गर्भ और स्वामीके द्रोही, मद्यपी स्त्री इनको जलदान न करना चाहिये. याज्ञवल्क्यने कहा है कि, ब्रह्मचारी और पतितको जलदान करना उचित नहीं ॥ षडशीतिमें कहा है कि, निज आचरणमें भ्रष्ट, पतित, दूषित ये जल न दें, और औरभी इनको न दें. मदनरत्नमें हारीतने कहा है कि, पतित त्यागी हुई यथेच्छ विचरती विवाही कन्याको जलदानका निषेध है, अपरार्कमें शंखलिखितका वाक्य है कि, जो पात्रोंसे बाह्य है उसका भाग, पिंड, जलदान निवृत्त होतेहैं, पात्रोंसे बाहिरवह होता है, जिसका घटस्फोट हुआहो, यदि उसकी संग्रहविधि करदीं होय तो अशौच और जलदान आदि करने, यह अशौचप्रकाशमें कहा है ॥ अब अशौचनियम लिखते हैं. याज्ञवल्क्यने कहा है, कि, यह सुनकर और बालकोंको आगे करके घरको जांय और मंदिरके द्वारपर नीमके पत्ते चाबकर आचमन करके अग्नि जल गोवर श्वेतसरसोंको छूकरके पत्थरपर चरण रखकर शनैः २ घरमें प्रवेश करें. यह प्रवेश आदिका कर्म प्रेतके छूनेवालोंको भी है, मोल लेकर भोजन करै और भूमिपर पृथक् २ शयन करै, यह प्रथम दिन है, वसिष्ठने कहा है कि, प्रथमदिन भूमिपर सोवें और भोजनको त्यागकर रहैं, वा मोलके लिये वा औरका अन्न भक्षण करै ॥ शुद्धितत्वमें बैजवापने कहा है कि, शमी पापको दूर करो यह उच्चारण कर शमीको छुए, पत्थरके समान स्थिर रहूं यह कहकर पत्थरको, अग्नि हमें सुख दो यह कहकर अग्निको, ज्योतिरूप हैं यह कहकर बकरीको छुए, मोल लिये वा औरके घरसें मिले लवणसे हीन अन्नजलको एक दिन भोजन करै, तीन दिनतक कर्मको छोडदे, मोल लेकर भोजन करना उसके निमित्त है, जिसको व्रत करनेकी सामर्थ्य नहीं हो आश्वलायनने

लायनस्तु–'नैतस्यां राज्यामन्नं पचेरन् त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युः, द्वादशरात्रं वा' इत्याह ॥ अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तम्बः–'नार्याः परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् ॥' यदा मृतिः परदिने तावत्कालमित्यर्थः ॥ बृहस्पतिः–"अधःशय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः । अक्षारालवणान्नाः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥" भोगो-ऽभ्यङ्गताम्बूलादिः ॥ क्षाराः परिभाषायामुक्ताः ॥ यत्तु मार्कण्डेयपुराणे–'तैलाभ्यङ्गो वान्धवानाङ्गसंवाहनं च यत् । तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः॥ प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा । वस्त्रत्यागं बहिःस्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकम्" इति ॥ तदन्त्यदिनपरम् 'आशौचान्ते तिलकल्कैः स्नाता गृहं प्रविशेयुः' इति विष्णूक्तेः ॥ विष्णुपुराणे त्वस्थिसंचयोर्ध्वं भोगोप्युक्तः ॥ "शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते । अस्थिसंचयनादूर्ध्वं संयोगस्तु न योषिताम् ॥" भारते–"तिलान् ददत पानीयं दीपं ददत चाग्रतः । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥" मनुः–'मांसाशनं च नाश्नीयुश्शयीरंश्च पृथक्क्षितौ॥' देवजानीये कारिकायाम्–"लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम् । वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ, प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत् ॥" मरीचिः–"प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्त-

---

तो लिखा है कि, उस रातमें अन्नका पाक न करें, वा मोलका भोजन करें तीन राततक खारा और लवण न भोजन करें वा बारह राततक न भोजन करें ॥ असामर्थ्यमें तो रत्नाकरमें आपस्तं-बका कथन लिखा है, भार्या परमगुरुके मृतक होनेपर मरनेके समयसे दूसरे दिन उसी समयतक अकालमें भोजन करें, बृहस्पतिने कहा है कि, नीचे सोवें, दीन रहैं, मलिन और भोगोंसे वर्जित रहैं, खारा और लवणहीन अन्नखावें, वा मिलाहुआ वा मोलका भोजन करैं, .भोगपदसे उबटना तांबूल आदि लेना, खारे पदार्थपरिभाषामें लिखे हैं ॥ और जो तो मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि, तेलसे स्नान, अंगका दबवाना यह कर्म बांधव करैं जो बांधव भोजन करतेहैं, उससे वह (प्रेत) पुष्ट होता है, पहले तृतीय सप्तम नवम इन दिनोंमें वस्त्रोंको त्याग बाहिर स्नान करके तिलजल दें, वह वाक्य अंत्यदिनके विषयमें है, कारण कि, विष्णुने लिखा है कि, अशौचके पीछे तिलकी खलसे स्नान करके घरमें प्रवेश करै. विष्णुपुराणमें तो अस्थिसंचयनके उपरान्त भोगभी लिखा है, कि, शय्या आसनका भोग अस्थिसंचयनके सपिंडोंको इष्ट है, परन्तु स्त्रियोंका संग इष्ट नहीं. भारतमें कहाहै कि, तिल जल दीप दो, और जागो, ज्ञातिमें बैठकर भोजन करना यह प्रेतोंमें दुर्लभ है ॥ मनुने लिखा है कि, मांस भोजन न करैं, और पृथ्वीपर भिन्न हो शयन करैं. देवजानीयमें कारिका लिखी है कि, लवण दूध उडद पूवे मांस खीरको बालक वृद्ध आतुरको छोडकर मंगवाये हुये अन्नमें त्यागदें, गुरुभार्या बेटेके मरनेमें व्रत होता है. मरीचिने कहा है कि, प्रथम तृतीय चौथे सातवें दिनोंमें ज्ञातियोंके

व्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥" भोजनं च दिवैव ॥'दिवा चैवं तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ' इति विष्णुपुराणात् ॥'क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवान्नमश्नीयुः' इति पारस्करोक्तेश्च ॥ मदनरत्ने हारीतः–'पाणिषु मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्नीरन् ॥' देवजानीये ब्राह्मे शुद्धितत्त्वे आदिपुराणे–'आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान् ।' अन्त्यदिने तु मदनरत्ने ब्राह्मे–"यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र गृहशुद्धिं च वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि ॥" अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तु तत्रैवोक्तम्" ग्रामाद्बहिस्ततो गत्वा प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यथ ।" इति ॥ शङ्खः–"दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । प्रेतपिण्डक्रियावर्ज्यमाशौचे विनिवर्तते ॥" काठकगृह्ये–' यत्र प्राणोत्क्रमस्तत्रान्वहं महाबलिं कुर्यात्' ॥ इति ॥ पारस्करः–'तदानीमेव वस्त्रं तण्डुलं दीपं कांस्यभाजनं प्रेताय दद्यात्' ॥ आशौचप्रकाशे भरद्वाजः–वासोऽन्नं च जलं कुम्भे प्रदीपं कांस्यभाजनम् । नग्नप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥" भृगुः–" तिलोदकं तथा पिण्डान् नग्नप्रच्छादनादिकम् । रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम् ॥" प्रेतपिण्डनिर्णयः । अथ प्रेतपिण्डः यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण–" ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ।

संग भोजन करना प्रेतोंको दुर्लभ है, भोजनदिनमें ही करैं, कारण कि, विष्णुपुराणमें लिखा है कि, हे मनुष्योंमें उत्तम ! मांसको त्याग कर दिनमें ही भोजन करैं. और पारस्करने भी कहा है कि, मोल लिये वा मिलेहुए अन्नको दिनमें भोजन करै, मदनरत्नमें हारीतका कथन है कि, हाथ मिट्टीके बरतन वा पत्तोंके दोनोंमें भोजन करना चाहिये ॥ देवजानीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है; और शुद्धितत्त्वमें आदिपुराणका कथन है कि, अशौचके बीचमें यत्नसे अपने सगोत्रियोंको जिमाना चाहिये. अन्त्यके दिन तो मदनरत्नमें ब्रह्माका वाक्य लिखा है कि, जिस २ वर्णका जो २ पिछला दिवस है, वह उस दिन घरकी और वस्त्रोंकी शुद्धि करै, अन्त्यकर्म करनेके वस्त्रोंका उसी स्थलमें यह लिखा है कि, ग्रामसे वाहिर जाकर प्रेतस्पर्शके दोनों कपडे अन्त्यज और सेवकोंको देकर स्नान करै. शंखका कथन है कि, दान प्रतिग्रह होम वेदपाठ पितरोंका कर्म ये सब प्रेतकी पिंडक्रियाको त्यागकर अशौचमें निवृत्त होजातेहैं ॥ काठकगृह्यमें कहा है कि, जहां प्राण निकले हों, वहां प्रतिदिन महाबलि देनी चाहिये, यह पारस्कर लिखते हैं, और उसी समय वस्त्र चावल दीप कांसीका वर्तन प्रेतको दे. अशौचप्रकाशमें भरद्वाजका कथन है कि, वस्त्र अन्न जल घडा कांसीका पात्र धोती ये श्राद्धमें ब्राह्मणको देनी, भृगुका कथन है कि, तिल जल पिण्ड धोतीका दान, इनको रात्रि और संध्यामें न करै, यदि करै, तो वह फल नहीं देता व्यर्थ है ॥ अब प्रेतपिण्डको लिखते हैं यद्यपि हेमाद्रिमें पारस्करने ब्राह्मणको दश पिण्ड क्षत्रियको बारह वैश्यको पन्द्रह शूद्रको

वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ " इत्युक्तं तथापि–' प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान्दद्याद्दशैव तु' इति तेनैवोक्तेः सर्वेषां दशैव ज्ञेयाः ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ तथा च हेमाद्रौ ब्राह्मपाद्मयोः–" जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां क्वचिदेव हि । देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान्वपन्त्यपि " इत्युक्त्वा–विप्रान्येषु दशमपिण्डोत्कर्ष उक्तः " देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेहनि । वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेह्नि दीयते ॥ " इति युद्धमृतादेः सद्यः शौचे त्र्यहादौ च तेनैवोक्तम् 'सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा।' दैवतैक्येपि न सांतपनं प्राजापत्यवत्तंत्रेण किन्तु दशपिण्डान् पृथक् दद्यात् शिरस्त्वाद्येन पिण्डेनेति दशत्वविच्छिन्नायेव शरीरोत्पादकत्वात् ॥" त्र्यहाशौचे प्रदातव्यः प्रथमेह्न्येक एव हि । द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पंच चैव हि ॥" त्र्यहे प्रकारान्तरं प्रागुक्तम् ॥ शातातपः–' आशौचस्य च ह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु ।' तत्रैकपात्रे सकृत्त्यक्त्वा दश पिण्डान् दद्यात् " उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात्पूर्वपिण्डांस्तथैव च ॥ " इति गृह्यकारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः ॥ शिलाविपर्ययघटस्फोटादेर्नावृत्तिः ॥ अक्षाभ्यञ्जनादिपदकर्मण एकहायनिनयनवदप्रयोजकत्वात् ॥ तद्वत्रालौकिकग्रहणम्॥ केचित्तु–' नवान्यादाय भाण्डानि आरुकं चरुकं तथा' इति प्रचेतसोक्तेः पात्रानेकत्व-

---

तीस लिखे हैं, तथापि सब वर्णोंके प्रेतोंको दश पिण्ड देने, यह उसने ही लिखा है, इससे सबके दशाही जानने. मदनरत्नमेंभी ऐसेही लिखा है, सोई हेमाद्रिमें ब्राह्म और पद्मपुराणके वाक्य हैं कि, वर्णोंकी जातिके अशौचकी समान कहीं २ पिण्ड देतेहैं, और देशधर्मके अनुसार भी पिण्ड देतेहैं, यह लिखकर ब्राह्मणसे भिन्न जातियोंमें दशवें दिनका उत्कर्ष लिखा है कि, राजाओंको ,दशवां पिण्ड बारहवें दिन, वैश्योंको पन्द्रहवें दिन, और शूद्रको महीनेकी पूर्तिपर देना चाहिये. युद्धमें मृतक हुये आदिके अशौचमें और तीन दिन आदिके अशौचमें उसनेही लिखा है कि, सद्यःशौचमें सब पिण्ड एकवार देने चाहिये. देवता एकभी होय तो भी सांतपन और प्राजापत्यके समान तन्त्रसे न करै, किन्तु भिन्न २ दशों पिण्ड देने, कारण कि, प्रथम पिंडसे शिर होता है, इत्यादि वाक्यसे दशोंही शरीरके उत्पादक हैं. तीन दिनके अशौचमें प्रथम दिन एक दूसरेमें चार तीसरेमें पांच दे, तीन दिनका प्रकार पहले कहा ॥ शातातपने कहा है कि, अशौचका ह्रास होजाय तोभी दशाही पिण्ड दे, वहां एक पात्रमें एक बार देकर दश पिंड देने, दुपट्टा, शिला, पात्र करता द्रव्यकी नष्टता होजाय तो पूर्व दी हुई अंजलि और दिये पिंडोंको दे, यह गृह्यकारिकामें पात्रके नष्ट होनेमें दोष लिखा है, शिलाका विपर्यय होजाय तो घटस्फोट दूसरीवार करना चाहिये, नेत्रोंके अभ्यंजन आदि कर्मोंको एक हायन (एक वर्ष) के लेजानेकी तुल्य बोधकता नहीं है, इसी प्रकार यहां लौकिक पदका ग्रहण है, कोई तो नये पात्र आरुक और

माहुः ॥ क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीयः ।" एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपद्यते । तद्बन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः ॥" इति शुद्धितत्त्वे बृहस्पतिस्मृतेः ॥ पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदन्ते कुर्यात् 'शावाद्दिगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः॥ ॥ आशौचान्ते आर्तवे कर्तुरस्वास्थ्ये वान्येन क्रिया सर्वावर्तनीया कर्तृविपर्ययात्कालातिक्रमयोगाच्च ॥ वाराहे–" स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । कृत्वा तु पिण्डं संकल्प्य नामगोत्रेण सुन्दरि ॥ " मरीचिः–"प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥ " दर्भवर्जनमनुपनीतपरम् । 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे–'भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयमुपलेपं वा दद्युः ॥ ' शुनःपुच्छः– "फलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च । तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च । शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ॥" मदनरत्ने मात्स्ये–"तैजसं मृन्मयं

चरुको लेकर इस प्रचेताके वाक्यसे अनेक पात्रोंको लिखते हैं, क्रिया करनेवाला मृतक होजाय तो औरसे क्रियाको पूर्ण करावै, कारण कि, शुद्धितत्त्वमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, इसी प्रकार क्रिया करनेवालोंमें कोई यदि मृतक होजाय तो उसके बंधु क्रिया करैं, वा सब सहायता पूर्वक करैं, भार्या करती हो और रजोदर्शन होजाय तो रजके अन्तमें कर्म करै, कारण कि मृतकके अशौचसे दूना आर्तवको मानै, अशौचके पीछे आर्तव होय वा करनेवाला अस्वस्थ होय तो दूसरे सब क्रियाको करावैं, कारण कि, करनेवालेका विपर्यय है, और समयका अवलंघन हो नहीं सकता है ॥ वाराहपुराणमें लिखा है कि, स्थंडिलपर प्रेतका भाग पूर्वाह्णमें नाम और गोत्र लेकर हे सुन्दरी ! पिण्डको संकल्प कर देना. मरीचिने लिखा है कि, कुशा और मन्त्रसे वर्जित प्रेत पिंडको ईशानदिशामें चरुको सावधानीसे स्नान करके बनाकर बाहिर दे, कुशाका त्याग यज्ञोपवीत रहितके निमित्त है, जो संस्कारहीन हैं, उनको भूमिपर पिंड दे, संस्कारियोंको कुशापर दे. यह प्रचेताने कहा है. मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, भूमिमें माल्य पिण्ड और पानी पत्थर पर दे, शुनःपुच्छमें कहा है कि, फल मूल दूध शाक गुडमें तिल मिलाकर कुशाओंपर दक्षिणदिशामें पिंड देने, और सेचन फूल धूप दीपको मंत्रके विना दे, वा सांठी सत्त शाकका पिण्ड दे, प्रथम दिन जो द्रव्य हो वही दशदिनतक होना चाहिये ॥ मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, सुवर्ण वा मृत्तिकाके पात्रको यत्नपूर्वक पवित्र

---

१ पिताका दशाह करते यदि पुत्रकी मृत्यु होजाय तो दूसरा पुत्र शेष पिण्ड दे, वह न होय तो उसका पुत्र प्रतिदिन पहले अपने पिताको पिण्ड दे, फिर स्नान कर पितामहको शेष पिण्ड दे कारण कि, आरका अधिकार नहीं है ॥

वाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः । लौकिकाग्नावधिश्रित्य पचेदन्नं घृतप्लुतम् ॥ स्नात्वाथ तिलसंमिश्रं प्रदद्याद्दर्भसंस्तरे ॥" शुद्धितत्त्वे देवजानीये च ब्राह्मे–"प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥ मृन्मयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसंयतः । तण्डुलप्रसृतिं तत्र त्रिः प्रक्षाल्य पचेत्स्वयम् ॥ सपवित्रैस्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशविवर्जितम् । द्वारोपान्ते ततः क्षिप्त्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम् ॥ भूपृष्ठे संस्तरे दर्भान् याम्याग्रान्देशसंभवान् । ततोऽवनेऽजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्रनामनी ॥ तिलसर्पिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तत्तमेव हि । दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शीतलैः । ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासोभिः पिण्डमर्चयेत् ॥ दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु । सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा ॥ त्र्यहाशौचेपि दातव्यास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः । दशाहेपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि ॥ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकं च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन् ॥" इत्याद्युक्त्वा–"एवं स्युः पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् । तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि तिलादिभिः॥" इति ॥ पात्रं कुम्भः ॥ अत्राहःपदमहोरात्रपरम्, तेन रात्रावपि देय इति गौडाः ॥ दिवसपदाद्रात्रौ नेति मैथिलाः ॥ स एवे-

---

करके और लौकिक अग्निपर रखकर घी डाल अन्नको पकावे, और स्नान करके तिलोंसे युक्त पिण्ड कुशाओंपर दे, शुद्धितत्त्व और देवजानीयमें ब्रह्माका कथन है कि, प्रथम दिन जो मनुष्य सावधानीसे प्रेतको अन्न दे, उसीको और नौ दिनोंमें देने चाहिये. मिट्टीके नये बरतनको लेकर स्नान कर और जितेन्द्रिय हो तीन वार धोकर यह एक प्रसृति अंजाली तंडुल उस पात्रमें डाल दे, और स्वयं पक्क करै, पवित्री तिलोंसे युक्त और कीट और वालोंसे रहितको द्वारके समीप फेंककर वा शुद्ध श्वेत मृत्तिकाको फेंककर वेदीपर दक्षिणाग्रदेशमें उत्पन्न हुई कुशा रक्खै, फिर नाम गोत्र उच्चारण करके अवनेजन दे, तिल घी मधु दूध और वस्त्रसे पिण्डकी अर्चा करै. प्रतिदिन इसी क्रमसे पिण्ड देने और सद्य शौचमें सब पिण्ड एकत्र देने और तीन दिनके अशौचमें भी सावधानीसे तीन पिण्ड देने चाहिये. और चार पिण्ड दूसरे दिन देने और एक अस्थिसञ्चयनमें देना, तीन तीसरे दिन दे. फिर वस्त्रआदि धोकर एक दशवें दिन दे और प्रथम दिन एक दे और एकही जलकी अंजलि और एकही पात्र दे दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन अंजली दे इत्यादि कहकर इस जलकी पचपन ५५ अंजली क्रमसे होती है, और तिल आदिसे युक्त जलके पात्रभी उतनेही होते हैं. पात्र कुंभ लिखते हैं. यहां दिन पदसे दिनरात लेना इससे रात्रिमें भी दे, यह गौड़ोंका कथन है ॥ दिवसके पदसे रात्रिमें न दे. यह मैथिलोंका कथन

त्युक्तेः सपिण्डेन दशपिंडे प्रक्रान्ते पुत्रागमेपि स न दद्यात् ॥ 'असगोत्रः सगोत्रो वा' इति प्रागुक्तेः ॥ दाहकर्तैव दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् ॥ शुद्धितत्त्वे वायवीयेपि- "असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिंडं दद्यात्स एव हि" इति ॥ तत्रैव-"पूरकेण तु पिंडेन देहो निष्पाद्यते यतः । कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तते क्रिया ॥" शुद्धिप्रकाशे वायवीयेपि-"निवर्तयति यो मोहात् क्रियामन्यनिवर्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥ तस्मात् प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि । न तां निवर्तयेत्प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन्" इति ॥ आदिपुराणे-"पितृशब्दं स्वधां चैव न प्रयुञ्जीत कर्हिचित् । अनुशब्दं तथा चेह प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ उपतिष्ठतामयं पिण्डः प्रेतायेति समुच्चरेत् ॥" क्रियानिबन्धे व्यासः-' प्रेताय पिण्डं दत्त्वा तु ततोऽश्नीयादिनात्यये ॥ ' भविष्ये- " ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिषु । प्रथमेऽहनि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥ गृहद्वारि श्मशाने वा तीर्थे देवगृहेपि वा । यत्राद्यं दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ॥ " ब्राह्मे-" शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् । चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानू जंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि

है. वही दे यह कहनेसे सपिण्डने जब दश पिण्डका प्रारंभ करदियाहो पुत्रके आनेपर भी उसेह देने चाहिये, कारण कि, असगोत्र हो, वा सगोत्र हो यह कहा है कि, जिसने दाह कियाहो वही दशाह करै यह मिताक्षरामें कहा है, शुद्धितत्त्वमें वायुपुराणका वाक्य लिखा है कि, असगोत्र हो वा सगोत्र स्त्री हो वा पुरुष जो प्रेतको अग्नि दे वही पिंड दे. वहांही कथन है कि, जिससे पूरकपिंडसे देह उत्पन्न होता है इससे कृतका करना अयोग्य है इससे फिर क्रिया न करै ॥ शुद्धिप्रकाशमें वायुपुराणका कथन है कि, औरकी कीहुई क्रियाको जो मनुष्य मोहसे निवृत्त करताहै वह उससे विधिका हनन करनेवाला और पिताका नाश करनेवाला होताहै, इससे जो जिस किसीने प्रेतक्रिया करदी होय तो सत्पुरुषोंका स्मरण करते हुए बुद्धिमान् पुरुषको उसकी निवृत्ति करनी न चाहिये. आदि पुराणमें कहाहै कि, पितृशब्द और स्वधाको किसी प्रकार न कहै, और अनु और इदं शब्दको यत्नपूर्वक त्यागदे, प्रेतको यह पिंड प्राप्त हो यह कहै, क्रियानिबंधमें व्यासका कथन है कि, प्रेतको पिण्ड देकर सूर्यास्त होनेपर भोजन न करैं ॥ भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, चावल, मांस, सत्तू, शाक, मूल, फलमेंसे प्रथम दिन जो दे, दूसरे दिनभी वही देनी गृह द्वार, श्मशान, तीर्थ, देवमंदिरमेंसे जहां प्रथम पिंड दे, वहांही सब दे. ब्रह्मका कथन है कि, प्रथम पिण्डसे प्रेतका शिर बनता है, दूसरेसे कान नत्र नासिका, तीसरेसे कण्ठ कांधे भुजा छाती, चौथेसे नाभि लिंग गुदा, और पांचवेंसे जानु जंघा पाद, छठेसे

षष्ठेन सप्तमेन तु नाड्यः॥ दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च । दशमे स्यात्तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः॥" इति ॥ याज्ञवल्क्येन तु–' पिंडयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्' इत्युक्तम् ॥ अत्र फलतारतम्यं ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ तेन त्र्यहाशौचपरत्वं देवयाज्ञिकोक्तं चिन्त्यम् ॥' आशौचस्य हि ह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु' इति वचनाच्च ॥ दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति हारलतादयः ॥ शातातपः–' जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥' पारस्करः–' मृन्मये तां रात्रिं क्षीरोदके विहायसि निदध्युः' प्रेतात्र स्नाहीत्युदकं पिब चेदमिति क्षीरम् ॥ ' इदं रात्रावेवेति गौडाः ॥ गारुडे–तु, ' अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम्' इत्युक्तम् ॥ हेमाद्रौ पाद्मे दशाहमुक्तम् ॥ "तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयो जलम् । सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥" देवजानीये कारिकायाम्–" तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम् । कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्त्तिकम् । भोज्याद् भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥ नामगोत्रेण संबुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत् ॥" शातातपः–"भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत् ॥ तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु ॥" अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः । भविष्ये–" प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्श प्रपद्यते । समाप्य

सब मर्म, सातवेंसे नाडी, आठवेंसे दांत लोम, नौवेंसे वीर्य, दशवेंसे पूर्णता होकर क्षुधाका नाश होता है. याज्ञवल्क्यने तो पिंड और अन्न अपसव्य होकर प्रेतको देने, इसी कथनसे यहां फलकी न्यून अधिकता जानना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर लिखते हैं, इससे देवयाज्ञिकने जो तीन दिनके अशौचमें यह वाक्य लिखा है वह निर्मूल है और यह भी वाक्य है कि, अशौचकी न्यूनतामें भी दशाही पिंड दे, तीन दिनकी आवश्यकताके निमित्त यह हारलता आदि लिखते हैं. शातातपने लिखा है कि, एक दिन आकाशमें रक्खे, मिट्टीके पात्रमें दूध रक्खे, पारस्करने लिखा है कि, उस रात्रिमें दूध और जल मृत्तिकाके पात्रमें आकाशमें दे, और यह कहे कि, हे प्रेत ! यहां स्नान कर और दूध पी. यह रात्रिमें दे यह गौड कहते हैं । गारुडमें तो यह लिखाहै कि, कच्चे मिट्टीके पात्रमें तीन दिन दूध दे, हेमाद्रिमें तो पद्मपुराणके वाक्यसे दश दिनतक दूध देना लिखाहै कि, इससे सब तापोंकी शांति और मार्गके श्रमनाशकके अर्थ दश राततक आकाशमें दूध, जल रक्खे, देवजानीयमें कारिका लिखीहै कि, वहां प्रेतके हितके निमित्त दश रात्रतक तेलका अखण्डित दीप मृत्तिकाके पात्रमें परलोकके सुखनिमित्त दे, और भोजनके समय भोजनके पदार्थोंमेंसे एक मुट्ठी अन्न नाम गोत्र और संबोधनसे भूमिपर अपसव्य होकर रखदे, शातातपने लिखाहै कि, भूलोकसे प्रेतलोकमें जानेके लिये श्राद्ध करै, वही मृतकके मार्गमें चलनेमें प्राप्त होता है अब यदि दश दिनके मध्यमें अमावस्या आजाय तो उसका निश्चय कहते हैं. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि अशौचके मध्यमें अमावस आजाय तो जल और पिंड समाप्त करके स्नान करै.

चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत् ॥" ऋष्यशृङ्गः-" आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् । समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥" पैठीनसिः-"आद्येऽन्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया । द्वितीयेऽब्दे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते ॥" मातापित्रोस्तु श्लोकगौतमः-" अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन् ॥" इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते ॥ तदूर्ध्वं दर्शे तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्यमेव " पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापयेत् । तावदेवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम्" इति गालवोक्तेः ॥ अन्येषां तु त्र्यहमध्येऽपि समाप्तिरिति पराशरमाधवीये निर्णयामृते चोक्तम् ॥ कालादर्शेऽपि-" दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत् । त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृतावित्ति विनिश्चयः ॥ मदनपारिजाते तु गालवीयमापदौरसपुत्रादिविषयम् ॥ त्र्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तन्त्रसमाप्तिरित्युक्तम् ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ मम तु देशाचाराद्व्यवस्थेति प्रतिभाति ॥ अथास्थिसंचयः । तत्राश्वलायनेन च कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु आषाढीफाल्गुनीप्रौष्ठपदीभिन्नर्क्षे उक्तम् । तदाशौचमध्येऽसंभवे तदूर्ध्वं च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयम् ॥ आशौ

ऋष्यशृङ्गने कहा है कि, यदि अशौचके बीचमें अमावस्या आजाय तो प्रेतके तंत्रकी पूर्ति होती है यह गौतमका मत है, पैठीनसिमें लिखा है कि, पहले चन्द्रमामें प्रेतपिंड और जलमें दान करै, दूसरे चन्द्रमामें महीनेमें करै तो फिर शावसूतक लगता है. माता पिताके विषय, गौतमने कहा है कि, दश दिनके भीतर अमावस्या होजाय तो वहां तंत्र पूर्ते करै-और माता पिताका तो जबतक अशौच हो तबतक जलकी अंजली दे, यहभी तब है जब तीन दिनके बीचमें अमावस्या हो. उसके उपरान्त अमावस्या होय तो माता भी तन्त्र पिताका पूर्ण करने योग्य है, कारण कि, माता पिताके अशौचमें यदि अमावस्या होजाय तो तबतकही तीन दिनके अनन्तर तंत्रको पूर्ण करदे यह गालवने लिखा है ॥ औरोंमें तो तीन दिन इसकी पूर्ति होती है; यह पराशर माधवीय और निर्णयामृतमें कहा है, कालादर्शमें भी लिखा है कि, दर्श दशाहके बीचमें होय तो उसके उपरान्त तन्त्रकी पूर्ति करै. यदि पिता माताके मरे पीछे तीन दिनके मध्यमें ही यह निश्चय है, मदनपारिजातमें तो गालवका वाक्य आपत्ति और औरससे भिन्न पुत्रके विषयमें है, तीन दिनके पीछे भी माता पिताके मरणमें दर्श होय तो तन्त्रकी पूर्ति नहीं होती यह लिखा है. मदनरत्नमें भी इसी प्रकार है । मुझे तो यह यथार्थ प्रतीत होता है कि, ऐसी व्यवस्था देशके आचारसे लिखी है ॥ अब अस्थिसंचयको कथन करते हैं, उसमें आश्वलायनने कृष्णपक्षकी एकादशीमें, दर्शमें, पूर्वाषाढ, फाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद इनसे पृथक् नक्षत्र होय तो दोष लिखा है कि, वह अशौचके बीचमें न होसकै और उसके

चमध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः-"प्रथमेह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥" छंदोगपरिशिष्टे तु-' अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थि संचयनं भवेत्' इति द्वितीये युक्तम् ॥ विष्णुकात्यायनौ-' संचयनं चतुर्थ्याम्' इति ॥ माधवीये यमः-" भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत् । वर्जयेदेकपादर्क्षे द्विपादर्क्षेऽस्थिसंचयम् ॥ मदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्क्षे विशेषतः ॥" ब्राह्मे-" चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेऽहनि भूभृताम् । नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम् ॥" दशमेह्नीति वा पाठः ॥ शौनकः-' पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः संचयनं भवेत् ॥' काम्यमरणे, तु तस्य त्रिरात्रमाशौचम् । द्वितीये त्वस्थिसंचय इत्युक्तम् ॥ अङ्गिराः-" प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः ॥" तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ ज्ञेयः ॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे-"त्रीणि संचयनस्यार्थे तानि वै शृणु सांप्रतम् । यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः ॥ ततः संचयनस्यार्थे तृतीये श्राद्धमिष्यते ॥", अपरार्के मदनरत्ने च ब्राह्मे-"सद्यः शौचे तथैकाहे सद्यः संचयनं भवेत् । त्र्यहाशौचे तृतीयेह्नि कर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः ॥" तत्रैव-"श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत् ।

पश्चात् वर्षसे प्रथम करनेमें जानना चाहिये, अशौचके बीचमें मदनरत्नमें संवर्तका वाक्य है कि, पहले दिन तीसरे सातवें नववें दिन सगोत्रियोंके संग अस्थिसंचय करै छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, दूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचय होता है, इस वाक्यसे, दूसरे दिनभी लिखा है ॥ विष्णु और कात्यायनका वाक्य है कि, चौथे दिन संचयन करै, माधवीयमें यमका वाक्य है कि, मंगल, सूर्य, शनैश्चर और युग्म तिथि और एकपाद और द्विपाद नक्षत्र इनमें अस्थिसंचयन त्यागने योग्य है, और विशेषकर पिंड देनेवालेका जन्म नक्षत्र और त्रिपाद नक्षत्रोंमें भी त्यागने योग्य है, ब्रह्माका वाक्य है कि, ब्राह्मणोंके चौथे दिन, राजाओंके पांचवें दिन, वैश्योंके यहां नौवें दिन, शूद्रके यहां दशवें दिन पीछे अस्थिसंचय करना, वा दशवें दिन यह पाठ है. शौनकका वाक्य है कि, यदि ढाकके काठमें अस्थियोंका दाह हुआ होय तो सद्यः अस्थिसंचयन प्राप्त होता है, यदि काम्य (इच्छासे) मृत्यु होय तो उसका अशौच त्रिरात्र होता है, दूसरे दिन अस्थिसंचय करै यह कथन कर आये हैं ॥ अंगिराका वाक्य है कि, प्रेतके निमित्त जो मनुष्य देवताओंका पूजन पवित्र होकर नहीं करता, उसको देवता शाप देते हैं, उसकी विधि भट्टके रचे अपने २ सूत्रमें जाननी चाहिये, हेमाद्रिके नागरखंडमें कहा है कि, संचयनके निमित्त तीन श्राद्ध हैं उनको तू अब श्रवण कर. जहां मृत्यु हो वहां श्राद्ध करै, जहां विश्राम किया हो उस जगहमें एकोद्दिष्ट कर फिर अस्थिसंचयनके निमित्त तीसरा श्राद्ध करना कहा है ॥ अपरार्क और मदनरत्नमें ब्राह्मका वाक्य है कि, सद्यः शौचमें पहले दि नही

मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥ सुपक्वैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा। फलैर्मूलैर्वनोत्थैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः॥ धूपो दीपस्तथा माल्यमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः। तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्रे समन्ततः ॥ निवेदयद्भिर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः । नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा ॥ येऽत्र श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः । तेस्मत्सकाशाद्गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमक्षयम् ॥ प्रेतस्यास्य शुभाँल्लोकान् प्रयच्छन्तु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च ददतां चिरम् ॥ एवं कृत्वा बलीन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः । एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम् । तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ ततो याज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः ॥ प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥ शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वाभ्यां चैव पादतः । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्ट्य च ॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे ॥ अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयत्यपि । गृहीत्वास्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिःक्षिपेत् ॥ ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः । पूजां च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववत्क्रमात्" इति ॥

अथ तीर्थेस्थिक्षेपविधिः । तत्रैव—" तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवीजले । कश्चित्क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥

सद्यः अस्थिसंचयन होता है, और तीन दिनके अशौचमें तीसरे दिन अस्थिसंचय करना होता है, वहांही कहा है कि, श्मशान देवताओंका पूजन चौथे दिन मृत्तिकाके पात्रोंमें कुम्भ और दोनोंमें भली प्रकार पके भक्ष्य भोज्य पायस और जल पानोंसे करै, और वनके फल मूलोंसे क्रव्याद देवताको पूजे और धूप, दीप, माला, अर्घ्यको त्यागकर कहैं कि, क्रव्याद मुख्य देवताओंको नमस्कार है, और जो इस श्मशानमें ऐश्वर्यवाले सनातन देवता हैं, वे हमारे निकटसे अष्टांग अक्षय बलिको स्वीकार करो और इस प्रेतको सुन्दर लोक और हमें बहुत कालतक आयु आरोग्य सुख दो, इस प्रकार बलि देकर और दूधसे छिडककर मौन हो तीन पिंड दे, एक तो श्मशानवासी भूतोंके निमित्त, दूसरा मध्यमें प्रेतको और तीसरा प्रेतके मित्रोंको अपसव्य होकर देना, फिर यज्ञके वृक्षकी शाखाको लेकर और मौन होकर यह प्रेतके प्रधान अंगकी अस्थियोंको ग्रहण करै, शिर छाती हाथ पार्श्व और पादोंके ग्रहण करै, पश्चात् गव्यमें स्थापन करके पाटके वस्त्रसे लपेटे और मृत्तिकाके नये पात्रमें रक्खै, और वस्त्रसे ढकै और वनके वृक्षको मूलमें स्थापन करै, अस्थि और भस्मको ग्रहण करके जलमें डालदे, फिर पृथ्वीको मार्जन करके गोवर और जलसे लीपै और फूल धूप बलि आदिसे पीछे कहे अनुसार पूजा करनी चाहिये ॥ अब तीर्थमें अस्थिनिक्षेपकी विधि लिखते हैं, वहांही कहा है कि, उस स्थानमें जाकर पुत्र दौहित्र वा सहोदर शनैः गंगाजलमें अस्थि

मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" तत्रैव, ब्रह्माण्डपुराणे—"अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथंचित् । सद्बान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य । ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोस्तु धर्माय वदेत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं स दक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात् ॥ एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ॥" यमः—"गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥" तथा ॥ "अस्तंगते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे । गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥" दशाहान्तर्न दोषः "दशाहस्यान्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति । गंगायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात्" इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः ॥ शौनकः—"शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात् । आदौ ग्रामाद्बहिर्गत्वा स्नानं कुर्यात्सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत्पंचगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः ॥" गायत्र्याद्यैः पंचगव्यमन्त्रैर्निखातास्थिभूमिं प्रोक्षेदित्यर्थः ॥ "उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा । मृत्तिकोद्धरणं चास्थ्नां

डाले, माता पिता कुलको छोड नीच और कुलमें उत्पन्न हुएकी अस्थि लेजाताहै, उसे चान्द्रायण करना होता है. वहांही ब्रह्माण्डपुराणका, कथन है कि, माता पिताके पूर्ववंशियोंके अस्थि जो गंगामें दया करके और अपने बांधवकी किसी प्रकार डालते हैं उनको तीर्थका फल प्राप्त होता है, फिर स्नान करके पञ्चगव्य छिडककर सुवर्ण मधु घी. तिल मिलाकर मिट्टीके बरतनमें रखकर दक्षिणदिशाको देखता और धर्मको नमस्कार है, यह कहता हुआ जलमें प्रविष्ट होकर वह प्रेत मुझपर प्रसन्न हो यह कहकर डालदे और उठकर सूर्यका दर्शन कर ब्राह्मणोंमें मुख्यको श्रेष्ठदक्षिणा दे, इस प्रकार करनेसे प्रेतकी स्वर्गमें इन्द्रके तुल्य गति होती है ॥ यमने कहा है कि, जिन शुभकर्मियोंकी अस्थि गंगाजलमें डालीजाती हैं, वह सनातन ब्रह्मलोकसे फिर नहीं आते, इसी प्रकारका वाक्य है कि, गुरु और शुक्रके अस्तमें मलमासमें गंगामें अस्थि न सिलावै यह गौतम लिखते हैं, दश दिनके बीचमें दोष नहीं कारण कि, मदनरत्नमें वृद्धमनुने लिखा है कि, दश दिनके भीतर जिसकी अस्थि गंगाजलमें पडती हैं वह गंगाजलमें मरनेके फलको प्राप्त होता है ॥ मैं शौनक अस्थियोंके सिलानेकी विधि क्रमसे लिखताहूँ, पहले ग्रामसे बाहिर जाकर और सचैल स्नान करं मंत्रोंसे पृथ्वीको छिडककर अर्थात् गायत्री आदि मंत्रोंसे पञ्चगव्यसे भूमिको सिंचन कर उपसर्प आदि मंत्रोंसे पृथ्वीकी प्रार्थना करै और खोदे, मिट्टीको उखाडे, और अस्थियोंका ग्रहण करै, उपसर्प आदि चार

१ उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीम्सुशेवाम् ॥ ऊर्णम्रदायुवतिर्दक्षिणावत् एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥ ऋ० ७ । ६ । २७ ॥

ग्रहणं च यथाक्रमम् ॥" उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम् ॥ "स्नात्वा- स्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विन्द्रेतिसूक्ततः । स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । भस्म मृन्मधु आदीनि मन्त्रतस्तानि वै दश ॥ कुशैः संमार्जयेदस्थीन्यतोदेवेतिमन्त्रतः । एतोन्विंद्रं शुचीवेति नतमंह इतीति च ॥ पावमानीमिमामेश्च रुद्रसूक्तं यथाक्रमम् ॥" एतैः कुशैर्मार्जनम् ॥ "हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितृनुद्दिश्य यत्नतः । पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ॥" अस्थिक्षेपांगं चेदम् ॥ "अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाः शाणमेव च । भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥ हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा । निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः । उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते । मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नास्थीनि धारयेत् ॥ " अत्र दशदानं वैतरणीऋण- मोक्षपापधेनुदानमुक्तम् । दिवोदासीये काशीखण्डे—"धनंजयोपि धर्मात्मा मातृभक्ति- परायणः । आदायास्थीन्यथो मातुर्गंगामार्गस्थितोभवत् ॥ पंचगव्येन संस्नाप्य तथा पंचामृतेन वै । यक्षकर्दमलेपेन क्षिप्त्वा पुष्पैः प्रपूज्य च ॥ आवेष्ट्य नेत्रवस्त्रेण ततः पट्टाम्बरेण च ॥ ततः क्षुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥ नेपालकम्बलेनाथ मृदा

मंत्रोंसे क्रमसे प्रार्थना आदि जाननी, स्नान करके 'एतोन्विन्द्रं' इस सूक्तसे अस्थियोंकी शुद्धि करै, और स्नान और पंचगव्यसे अस्थियोंके स्पर्शकी शुद्धि होती है, और तिस २ मंत्रसे बुद्धि- मान् मनुष्यको दश स्नान करना चाहिये और मंत्रसे वे दश स्नान ये हैं कि, गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशाका जल, भस्म, मिट्टी, मधु और जलसे, फिर 'अतो देवा' इस मंत्रसे अस्थियोंका मार्जन करै, और इन मंत्रोंसे कुशाओंसे मार्जन करै कि, एतोन्विंद्रं शुचीवो० नतमंहो० पावमानी ऋचा, इमं मे० रुद्रसूक्त पढ कुशासे मार्जन करै ॥ फिर यत्नसे सोनासे श्राद्ध पितरोंके निमित्त करै, फिर पिंडदान और तिलोंसे तर्पण करना. यह तर्पण अस्थि सिला- नेका अंग है, इन सातोंसे अस्थियोंका लपेटना लिखा है कि, मृगछाला, कंबल, कुशा, गौके केश, शण, भोजपत्र, ताडपत्र, और सुवर्ण, मोती, चांदी, मूंगा, नीलक, इनको अस्थियोंके मध्यमें डाले अन्यथा शुद्धि नहीं होती, पुनः बुद्धिमान् मनुष्य तिल घीसे होम करै. और 'उदीरता' इस सूक्तसे एकसौ आठ १०८ आहुति दे, फिर जाकर तीर्थमें फैंकें, स्पर्शका दोष नहीं लगता, मूत्र और पुरीष करने उपरान्त आचमन करके फिर अस्थियोंको धारण करै ॥ यहां दश महादान और ऋणमोक्ष पापधेनुओंका दान दिवोदासीयमें लिखा है, काशीखंडमें लिखा है कि, माताकी भक्तिमें तत्पर धर्मात्मा धनंजयके समान माताकी अस्थिको लेकर गंगाके मार्गमें नहीं स्थितहुए वहां पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराकर चंदनसे लीप और फूलोंसे पूजकर और वस्त्र और रेशमके वस्त्रसे लपेटकर और सुरस वस्त्रसे फिर मंजीठके वस्त्रसे फिर

चाथ विशुद्धया ॥ ताम्रसंपुटके कृत्वा मातुरंगान्यथो वहेत् ॥" व्यासः—"पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपट्ट च अजिनं च तथोत्तरम् ॥" एषां विकल्पः ॥ अन्यश्चात्र ॥ विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः ॥ संचयनोत्तरं श्राद्धमाहाश्वलायनः 'श्राद्धमस्मै दद्युः' इति । स्मृत्यर्थसारे–'संचयने कृते मनुष्यलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यम्' इति ॥ अनुपनीतस्य न संचयनम् ॥ नवश्राद्धनिर्णयः । अथ नवश्राद्धं पृथ्वीचन्द्रोदयेऽङ्गिराः—"प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥" शिवस्वामी—"नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥" पञ्च एकादशाहिकं विना 'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमात्, यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात्' इति मदनरत्ने बौधायनोक्तेः ॥ भविष्ये–" नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्णयोस्तु षडित्याहुर्महर्षयः ॥" हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः— "अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्न विमुच्यते । अर्वाक् तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम् ॥" अतः षडेव ॥ एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते ॥ नागरखण्डे तु–"पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्राद्धानि तानि च" इत्युक्तम् ॥

नेपालके कंवलसे फिर शुद्ध मृत्तिकासे लपेटकर और तांबेके तष्टेमें करके माताके अंगोंको लेचले ॥ व्यासने कहा है कि, पाटका, कुशाका, मंजीठका वस्त्र, श्वेतवस्त्र, कंबल, शण, मृगछालाके लपेटनेमें विकल्प है, अर्थात् चाहै जिसमें लपेटे, इसमें जो कुछ और विशेष है, वह त्रिस्थलीसेतुमें और दिवोदासीयमें लिखा देखना, अस्थिसञ्चयनके उपरांत आश्वलायनने श्राद्ध लिखा है कि, प्रेतको श्राद्ध दे स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, अस्थिसञ्चयन किये उपरांत मनुष्यलोकमें जाओ, और पाथेयका श्राद्ध सीधेसे करना, जिसका उपनयन नहीं हुआ उसका सञ्चयन नहीं होता ॥ अब नवश्राद्धको लिखते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें अंगिराका कथन है कि, पहले तीसरे सातवें नवमें दिन जो हो उसे नवश्राद्ध कहते हैं, शिवस्वामीने लिखा है कि, आश्वलायनशाखावाले पांच नवश्राद्ध लिखते हैं, आपस्तंब छः लिखते हैं, दूसरोंमें विकल्प है, कारण कि, मदनरत्नमें बौधायनने यह लिखा है कि, पञ्चम और एकादशाह आदिके विना मृत्युसे विषम एक २ दिनमें नौदिनपर्यन्त एक २ श्राद्ध करै यदि नौवें दिन न होसके तो ग्यारहवें दिनमें श्राद्ध करै. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, वैश्य और क्षत्रियोंके नव और सात श्राद्ध क्रमसे होते हैं, और पहिले पछिले वर्णोंके छः होते हैं, यह महर्षि कहते हैं ॥ हेमाद्रिमें वृद्धवसिष्टने कहा है कि, नवश्राद्ध न मिले तो प्रेतयोनिसे छुटकारा नहीं होता और द्वादशाहसे प्रथम नवश्राद्धको प्राप्त होकर पापसे तरजाता है, इससे छःही हैं, इनकोही विषमश्राद्ध कहा है. नागरखण्डमें तो यह लिखा है कि, पञ्चम सप्तम अष्टम नवम दशम एकादश इन

कात्यायनस्तु—"चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥" प्रथमे सप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यासपाठः ॥ बह्वृचानां तु—नवश्राद्धदशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्' इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ॥ चतुर्थदिनकृत्यम् । दीपिकायाम् ॥ अथ तनुयादाद्ये चतुर्थे दिने श्राद्धे पञ्चमसप्तमाष्टनवदिग्रुद्रेषु युग्मद्विजैः ॥ "प्रथमेह्नि तृतीयेह्नि पञ्चसप्तनवस्वपि । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकं तु विन्यसेत्" एको विषमश्राद्धेऽवयवपिण्डश्चैक इति द्वावित्यर्थः ॥ अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्था ॥ अपरार्के भविष्ये—"नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च । न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः ॥" वाराहे—"गतोसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये । पूजयिष्यामि भोगैस्त्वामेवं विप्रं निमन्त्रयेत् ॥" आवाहनेपि तत्रैव—"इहलोकं परित्यज्य गतोसि परमां गतिम् । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये" इति ॥ तत्रैव बह्वृचपरिशिष्टे—"अनूदकमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम् । नवश्राद्धममन्त्रं च पिण्डोदकविवर्जितम् ॥" उदकमर्घ्यः ॥ पिण्डोदकं शुन्धंतां पितर इत्यवनेजनादि । "एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । नाग्नौकरणमन्त्रश्च एकं वात्र तिलोदकम् ॥ अनपत्येषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥ एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न विद्यते ।

दिनके श्राद्ध नवश्राद्ध कहाते हैं कात्यायनने लिखा है कि, चौथा पांचवां नौवां ग्यारहवां इनमें जो कुछ जंतुको दियाजाय वह नवश्राद्ध कहाता है, पहले और सातवेंमें यह पहले पादमें पाठ है. बह्वृचोंके निमित्त तो यह कहा है कि, दशादिनतक और नवमें दिन और छः ऋतुपर्यन्त नवश्राद्ध लिखे हैं यह नारायणवृत्तिमें कहा है ॥ दीपिकामें लिखा है कि, उसके पीछे चौथे दिन पहले प्रहरमें श्राद्ध करै, पांचवें सातवें आठवें नौवें दशवें ग्यारहवें दिनोंमें दो दो पिंड देने, और शेष दिनोंमें एक २ पिंड दे यह अर्थ है कि, एक पिण्ड विषम श्राद्धका और एक पिंड शरीरके अवयवका ये दो दे, इसकी व्यवस्था शाखाके भेदसे है. अपरार्कमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, नवश्राद्ध त्रिपक्ष, षण्मास और मासिक इन श्राद्धोंको जो पुत्र नहीं करता उसके पितर नरकमें जाते हैं. वाराहपुराणमें लिखा है कि, मृत्युके रचे मार्गसे दिव्यलोकमें तू वायुरूप मनके द्वारा गया है, हे प्रेत ! तुझे मैं ब्राह्मणमें नियुक्त करताहूं, मैं तेरा भोगोंसे सत्कार करूंगा, इस प्रकार ब्राह्मणको निमन्त्रण दे आवाहनमें भी वहांही लिखा है कि, इस लोकको त्यागकर तू परमगतिको पवनरूप मनसे प्राप्त हुआहै मैं तुझे ब्राह्मणमें नियुक्त करताहूं ॥ वहांही बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है कि, अर्घ धूप गन्ध पुष्प मन्त्र पिंड जल इतने कर्मोंका नवश्राद्धमें निषेध है पितर पिंड जलसे शुद्ध होवैं इस मन्त्रसे अवनेजन आदि लेने, सब एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें स्वधा और अभिरम्यताम् अग्नौकरण मन्त्र और तिलोदक इतने कर्म नहीं होते हैं, सन्तानसे हीन सबके श्राद्धमें स्वधा अभिरम्यताम् नहीं कहे जाते और ॐकारसे हीन स्वस्तिको कहकर विसर्जन करै. एकोद्दिष्टके पिण्डमें अनुशब्द नहीं होता, और पितृशब्द न

पितृशब्दं न कुर्वीत पितृहा चोपजायते ॥" सपिण्डनात्प्रागिति हेमाद्रिः । 'तेन स्वधां प्रयुञ्जीत प्रेतश्राद्धे दशाहिके ॥' इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहे स्वधा-प्रयोगे एवेति हारलता परास्ता ॥ रत्नावल्याम् -"आशिषो द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः स्वसंबद्धः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् । तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणा विसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा । अष्टादश पदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" अत्र स्वधापितृनमःशब्दानां तिलोसीतिमन्त्रे प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् ॥ तूष्णीमर्घ्यदानम् ॥ अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः ॥ नाम्ना एकः पिण्डः ॥ निनयनमन्त्रे ऊहः ॥ अनुमन्त्रणादि त्वमन्त्रकम् ॥ अभिरम्यतामिति विसर्जनम् ॥ एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु ॥ 'नवश्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वम्' इति नारायणवृत्तिः ॥ क्रियानिबन्धे-" उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः । न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्त-स्योपरि कुशान्न्यसेत् ॥ नवश्राद्धं गृहे कुर्याद्भार्या यत्राग्नयोपि वा । सपिण्डीकरणा-न्तानि प्रेतश्राद्धानि यानि वै । तानि स्युर्लौकिके वह्नावित्याह त्वाश्वलायनः ॥" इदं संभवेऽन्नेन कार्यम् ॥" नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहपर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशेषं च

उच्चारण करै; करै तो पितरोंको मारनेवाला होता है, यह सब वार्ता सपिंडीसे प्रथम होनी चाहियें, ऐसा हेमाद्रिने कहा है, इस दश दिनतकके श्राद्धमें स्वधा और प्रेतशब्द उच्चा-रण करै, इस ऋष्यशृंगके वाक्यमें दशाहिक कहनेसे एकादशाहमें स्वधाशब्दका प्रयोग होना है इस वाक्यसे यहां हारलता परास्त होती है ॥ रत्नावलीमें कहा है कि, आशीर्वाद, द्विगुण कुशा, जयका आशीर्वाद, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, अपना संबन्ध और शर्मशब्द, पात्रोंका आलंभ, अवगाह, उल्मुक उल्लेखन, तृप्तिप्रश्न, विकिर, शेषका प्रश्न, प्रदक्षिण, विसर्जन और सीमाके अन्ततक जाना यह अठारह १८ पदार्थ प्रेतश्राद्धमें त्यागने चाहिये ॥ इस श्राद्धमें स्वधापितृनमः शब्दसे, 'तिलोसि' इस मन्त्रसे प्रेतशब्दके ऊहसे वा मौन हो तिलोंको डाल दे, और मौन हो अर्घ दे, और अमुष्मै स्वाहा कहकर प्रेतके नामसे हाथमें हवन करै, नाम लेकर एक पिण्ड देना. निनयनके मन्त्रमें ऊह करना चाहिये, अनुमन्त्रण आदि विना मन्त्रके करना, अभिरम्यतां कहकर विसर्जन करना, यहभी नवश्राद्धसे भिन्न एकोद्दिष्ट जानना, नव-श्राद्धमें तो विना मन्त्र सब होता है यह नारायणवृत्तिमें कहा है ॥ क्रियानिबन्धमें कहा है कि, बुद्धिमान् मनुष्यको एकोद्दिष्टमें सदा सीधा पात्र रखना चाहिये, और पार्वणमें औंधा करना चाहिये. और उसके ऊपर कुशा रखदे, नवश्राद्ध जहां पत्नी और अग्नि हो वहां करै, सपिंडीतक जितने प्रेत श्राद्ध हैं, वे सब लौकिक अग्निमें होते हैं, यह आश्वलायनने लिखा है. यह संभव होय तो अन्नसे करना चाहिये, कारण कि, यह अंगिरका लिखा वाक्य है । प्रमाण है कि, नवश्राद्धका शेष, घरका बासी अन्न, स्त्री पुरुषके भोजनका शेष इनको कभी भोजन न करै.

न तद्भुञ्जीत कर्हिचित्" इत्यङ्गिरोवचनलिङ्गात् ॥ 'द्वाभ्यां तदा तु कृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम् 'इति ब्राह्मे उक्तम् ॥ विघ्ने तु निर्णयामृते कण्वः—" नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥" हेमाद्रौ गालवः—"शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ तथा । नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाक्रमम् ॥" निशायामाशौचान्ते द्व्यहवृद्धौ ॥ अन्वारोहणे तु—"नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥" आशौचान्तदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे—" यस्ययस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥ श्मश्रुलोमनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि । गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥" क्रियानिबन्धे गृह्यकारिकायाम् —" अत्र पिण्डत्रयं दद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् । प्रेताय मध्यमं तद्वत्तृतीयं च यमाय वै ॥" तथा—" कर्त्रात्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः । दद्युरभ्यङ्गतः पूर्वं त्रींस्त्रीन्धर्मोदकाञ्जलीन् ॥ पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमो नेह कश्चन॥" मदनरत्ने विष्णुहारीतौ—'आशौचान्ते कृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकल्कैः सर्षपकल्कैर्वा स्नाताः

ज्ञानियोंकी तो दो कृच्छ्रोंसे शुद्धि होती है यह ब्राह्ममें लिखा है विघ्न होजाय तो निर्णयामृतेंम कण्वका कथन है कि जिस नवश्राद्ध वा मासिकमें विघ्न होजाय वह २ उत्तरश्राद्धके तंत्रसे करना चाहिये ॥ हेमाद्रिमें गालवका वाक्य है कि, मृतकमें सूतक होजाय और रात्रिमें मरण होजाय तो नवश्राद्धका समय और क्रमके अनुसार करना, रात्रिमें कहनेका आशय यह है कि अशौचके अन्तमें दो दिनकी वृद्धिमें अर्थ है सती होनेमें तो सब नवश्राद्ध और सपिंडी भिन्न २ होतीहै एक वृषोत्सर्ग और एकही गोदान होताहै आशौच अन्त्यदिनका कार्य ब्राह्ममें लिखाहै कि, जिस वर्णका जो १ पिछला दिन होताहै, वह उस दिन वस्त्र और घरकी पवित्रता करता है, दशम पिंड और प्रेतके स्पर्श किये कपडोंका त्याग करके और अन्त्यज और आश्रितोंको देकर स्नान करै, डाढी मूंछ बाल नख इनमें जो त्यागने योग्य हो उसका भी त्याग करैं, श्वेत सरसों वा तिलकी खलसे शिरको धोकर और जलसे आचमन करके और तूष्णीं होकर बैल गौ सुवर्णका स्पर्श करके मनुष्य पवित्र होता है । क्रियानिबंधमें गृह्यकारिकाका वाक्य है— कि, इसमें तीन पिंड दे, प्रथम पिंड उसके सखाओंको दूसरा प्रेतको और तीसरा यमको दे, ऐसेही वाक्य है कि, कर्ताकी प्रार्थनासे सज्जन ज्ञाति और बान्धव उबटनसे प्रथम तीन २ अंजलि धर्मजलकी दे, और पूर्वके तुल्य नाम गोत्रका उच्चारण करै, उसका यहां कोई नियम नहीं है. मदनरत्नमें विष्णु और हारीतके कहे वाक्य हैं कि, अशौचके पीछे मुण्डन कराकर तिल

शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः ' इति ॥ देवलः—"दश-मेहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च॥" अपरार्के बृहस्पतिः—' नवमे वाससां त्यागो नखरोम्णां तथान्तिमे ॥ " तत्रैव व्यासः—आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते ॥' एतत्प्रेतात्पवयसामित्याहापस्तम्बः । 'अनुभाविनां च परिवापनम्' इति ॥ अनुभाविनः कनिष्ठा इति विज्ञानेश्वररत्नाकराद्यः। ' आशौचमनुभवतां पुंसां सर्वाशौचे तु मुण्डनम्' । " आज्ञयानरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु ॥" इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेपीति शुद्धितत्त्वादयः ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ परं शिखावर्ज्यम् 'केशश्मश्रुनखलोमानि वापयीत' शिखावर्ज्यम्' इति गोभिलोक्तेः ॥ यत्त्वापस्तम्बः—'न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारादित्येके ॥' विहारो दर्शादियागः ॥ तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः ॥ यच्च—'वृथा छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ' इति तत् ' केशश्मश्रुधारयतामग्र्या भवति संततिः' इति दानधर्मोक्तं काम्यपरम् ॥ अनुभाविनः पुत्राद्य इत्येके ॥ "पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथा-

---

श्च सरसोंकी खलसे न्हाय और श्वेत वस्त्रोंको धारण करके घरमें प्रवेश करैं, वहां शांति करके ब्राह्मणोंका सत्कार करै ॥ देवलने लिखा है कि, दशवें दिन ग्रामसे बाहिर स्नान करै. वहां वस्त्र और केश श्मश्रु नखको त्याग करै. अपरार्कमें बृहस्पतिका कथन है, कि, नवमें दिन वस्त्रोंका त्याग और पिछले दिन नख और रोमोंका त्याग करै, वहांही व्यासका कथन है कि, माता और गुरुकी मृत्यु होनेपर अशौचके अन्त्यदिनमें हजामत बनवावे, यह भी थोडी अवस्थाके प्रेतोंमें लेख है, यह आपस्तम्बने लिखा है, अनुभावियों (छोटों) का तो मुण्डन होता है, यह विज्ञानेश्वर रत्नाकर आदिका मत है. जिनको अशौच हो उनका मुण्डन सब अशौचमें होता है, अपने राजाकी आज्ञा, द्विजातियोंका विवाह, मरण और सूतक, बन्धनसे मुक्ति, छूटना, यज्ञकी दीक्षामें और सब अमावस्यामें क्षौर है, इस रत्नमालाके वाक्यसे जन्मके अशौचमें भी मुण्डन होता है, यह शुद्धितत्वआदि लिखते हैं, यहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी, परन्तु मुंडन शिखाको छोडकर करना, कारण कि, गोभिलने लिखा है कि, केश डाढी लोम नखको शिखा त्यागकर मुंडवावे । जो आपस्तंबने लिखा, है कि, समावृत्तादिविहार (दर्शआदि यज्ञ) को छोडकर मुण्डन कराना, इससे यह अर्थ है कि, गृहस्थोंके विना मुण्डन न करावें, जो वृथा केशोंका छेदन करता है उसको ब्रह्महत्यारा कहते हैं, वह वाक्य जो केशश्मश्रु धारण करते हैं उनकी सन्तान मुख्य होती है, इस दानधर्ममें कहे काम्यमें है. कोई यह लिखते हैं कि, अनुभावीपुत्र आदिही होते हैं, कारण कि,

विधि । पिण्डदानोचितोन्योपि कुर्यादित्थं समाहितः" इत्यपरार्के व्यासोक्तेः ॥ यत्तु मिताक्षरायाम्—"द्वितीयेहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वाप्रदानतः" इति ॥ 'आप्रदानतः' इति चतुर्थादीनि ॥ तत्प्रथमदिने संभवे ज्ञेयम् ॥ 'अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोत्र केशान्प्रवापयेत् । द्वितीयेह्नि तृतीयेह्नि पञ्चमे सप्तमेपि वा ॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत तावदित्यपरं मतम्"इति माधवीये मदनरत्ने च बौधायनोक्तेः ॥ मदनपारिजाते तु दशमे प्रथमे च समुच्चय उक्तः ॥ यत्तु—'दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्' इति तदेकादशाहश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम् ॥ एकादशाहनिर्णयः । अथैकादशाहः ॥ मनुः—"विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधैः । वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥" शुद्धितत्त्वे देवलः—"आद्याहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः । आशौचाद्विज मुच्यन्ते ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ॥" याज्ञवल्क्यः—'आद्यमेकादशेहनि' क्षत्रियादेराशौचेप्येकादशेह्नि श्राद्धं कार्यम् । "आद्यं श्राद्ध ऽपि कुर्यादेकादशेहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥ पैठीनसिः—"एकादशेह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक् ॥" यत्तु मरीचिः—आशौचान्ते ततः सम्यक्

अपरार्कमें व्यासने कहा है कि, पुत्र और पत्नी अशौचके पीछेमें यथाविधि मुण्डन करावें और भी पिंड देने योग्य मनुष्य सावधानीसे मुण्डन करावे ॥ जो मिताक्षरामें लिखा है कि, दूसरे दिन प्रयत्नसे क्षौरकर्म करै, वा पिण्डदानपर्यन्त तीसरे पांचवें दशवें दिन करै, पिण्डदानपर्यन्त करना तब है जब पहिले दिन न होसके कारण कि, माधवीय और मदनरत्नम बौधायनने लिखा है कि, जिसके केश पहले न मुँडेहों वह दूसरे तीसरे पांचवें सातवें दिन जबतक श्राद्ध दिया जाय तबतक मुण्डन करावे, यह दूसरा पक्ष है. मदनपारिजातमें तो दशव और प्रथमदिन समुच्चय लिखा है, जो यह कथन है कि, दशवें पिंडको देकर रात्रिशेषमें शुद्ध हो, वह एकादशाह श्राद्धके अंग ब्राह्मणनिमंत्रणार्थ जानना चाहिये ॥ अब एकादशाहका कथन करते हैं, मनुने लिखा है कि, ब्राह्मण जलके छूनेसे, क्षत्रिय वाहन आयुधोंके छूनेसे, वैश्य कोडे वा रस्सियोंके छूनेसे और शूद्र क्रिया करनेसे शुद्ध होता है. शुद्धितत्त्वमें देवलने लिखा है कि, पापके दिन बीतनेपर भली प्रकार स्नान मंगल और स्वस्तिवाचन करनेसे ब्राह्मण अशौचसे छूटजाते हैं । याज्ञवल्क्यने कहा है कि, एकादशाहको प्रथमश्राद्ध होता है, क्षत्रियआदिने अशौचमें आद्यश्राद्ध करना कारण कि, हेमाद्रिमें शंखने लिखा है कि, अशुद्ध मनुष्य भी एकादशाहके दिन आद्य श्राद्ध करै, तो कर्ताकी श्राद्ध करनेके समयमें पवित्रता होती है, और फिर वह अशुद्ध होजाता है ॥ पैठीनसिने कहा है कि, एकादशाहका जो श्राद्ध है वह सामान्य वर्णन किया है और सूतक तो चारों वर्णोंका भिन्न २ है. जो मरीचिने लिखा है कि, अशौचके पीछेमें भली प्रकार पिंडदान समाप्त होता है, फिर

पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः" इति ॥ तत्सर्ववर्णानां दशाहाशौचपरम् ॥ यत्तु विष्णुः—'अथाशौचापगमः' इति ॥ यच्च गौडग्रन्थे हारीतः—'श्वोभूते एकोद्दिष्टं कुर्यात्' यच्च वैजवापः—'ऊर्ध्वं दशम्या अपरेद्युः' इति तद्विप्रविषयम् ॥ एतेन दशमपिण्डापकर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ वचनादाशौचमध्ये इव तत्राप्यविरोधात् ॥ भविष्ये—"एकादशभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादेकादशेहनि । भोजनं तत्र वैकस्मै ब्राह्मणाय महात्मने ॥" यत्तु मात्स्ये—"एकादशेहनि तथा विप्रानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्" इति ॥ तद्रुद्रगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजातः ॥ गौडास्त्वस्माद्वचनात्क्षत्रियादीनामाशौचान्त एवेत्याहुः ॥ रामायणेपि—"समतीते दशाहे तु कृतशौचो यथाविधि । चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च ॥" द्वादशाहेन निर्वर्त्यं त्रयोदशाहश्राद्धं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि ॥ क्षत्रियाणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टं चतुर्दशे सपिण्डनम् ॥ द्विविधवाक्यादेकादशाहाशौचान्तयोर्विकल्प इत्येके ॥ सद्यःशौचादौ युद्धहतादेरेकादशाहः ॥ अन्येषामाशौचान्ते

श्राद्ध करना सब वर्णोंमें यह विधि लिखी है, यह तब है जब सब वर्णोंमें दश दिनका अशौच मानाजाय. जो विष्णुने लिखा है कि, अब अशौच दूर हुआ, जो गौडग्रन्थमें हारीतका कथन है कि, प्रातःकाल होनेपर एकोद्दिष्ट करै ॥ जो वैजवापने लिखा है कि, दशमीसे ऊपर अपरदिनमें करैं, यह ब्राह्मणके विषयमें है, इससे यह मूर्खकथन निरस्तहुआ कि, जब दशपिंड करनेका श्रेष्ठपक्ष है, अंगपिण्डोंकी पूर्ति न होनेपर एकादशाहमें श्राद्ध किस प्रकार होगा, कारण कि, वाक्यसे अशौचमध्यमें तुल्य वहां भी करनेमें विरोधकी प्राप्ति नहीं है. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, एकादशाहको ग्यारह ब्राह्मणोंको दान और एकमहात्माको भोजन देना. जो मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, एकादशाहके दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको और क्षत्रियादि सूतकके अन्तमें विषमब्राह्मणोंको भोजन करावे, वह रुद्रगण श्राद्धमें है. यह मदनपारिजातमें लिखा है, गौड तो यह लिखते हैं कि, इस पूर्वोक्त वाक्यसे क्षत्रिय आदिको अशौचके पीछे ही ब्राह्मण भोजन है ॥ रामायणमें भी लिखा है कि, दशदिनके बीतनेपर शास्त्रोक्तविधिसे शौच करनेके उपरान्त द्वादशिक और त्रयोदशिक श्राद्धकरता हुआ द्वादशिकपदसे बारहदिनबीतनेपर श्राद्धका ग्रहणकरना और त्रयोदशिकपदसे चौदह १४ दिनमें करनेयोग्य सपिंडी पाथेय ग्रहण करते हैं. क्षत्रिय आदिके द्वादशाह अशौचमें तेरहदिनमें महैकोद्दिष्ट होता है, और चौदहवें दिनमें सपिंडी दोनों प्रकारके वाक्योंके मिलनेसे एकादशाह अशौच और दूसरे अशौचोंका विकल्प है, यह कोई

---

१ सब प्रेतोंके निमित्त दशपिण्ड होते हैं, राजाका दशवां पिण्ड बारहवें दिनमें, वैश्यका पन्द्रहवें दिन और शूद्रका दशवां पिण्ड मासकी पूर्तिमें होता है यह आदिपुराणमें लिखा है ॥

इति वयम् ॥ कौर्मे—"एकादशेह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः । द्वादशे वाह्नि कर्तव्यमनिन्द्येप्यथवाहनि" ॥ निन्द्यं प्रेतक्रियाकालयुक्तम् ॥ एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं प्राक् ॥ बृहस्पतिः—"वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् ॥ गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे तदर्पयेत् ॥ श्रोत्रिया भोजनीयास्तु नव सप्त त्रयोदश । ज्ञातयो बान्धवा निःस्वास्तथा चातिथयोपरे ॥" देवयाज्ञिकनिबन्धे—"एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत् । तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ॥" विष्णुः—"एकवन्मन्त्रानूहेनैकोद्दिष्टे ॥" बहुवचनान्तानेकवचनान्तान्वदेदित्यर्थः ॥ एतत् दृष्टार्थत्वे ॥ अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः—"एकोद्दिष्टं श्व एव स्याद्द्वादशेहनि वा पुनः ॥ अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहस्सु शक्तितः ॥ अर्धमासेऽथवा मासि ऋतौ संवत्सरेपि वा" इति॥

लिखते हैं, हम तो यह कथन करते हैं कि, आद्यश्राद्ध अशौचके प्रारम्भमें युद्धमें मरे आदिका ग्यारहदिनमें और अन्योंका अशौचके पीछेमें होता है ॥ कूर्मपुराणका वाक्य है कि, ग्यारहवें दिनमें प्रेतके निमित्त भावसे बारह दिन वा श्रेष्ठदिनमें श्राद्ध करै, निन्द्यदिन प्रेत क्रियाके वर्णनमें लिखआये हैं, ग्यारहवें दिनका तो निषेध है यह पहले कह आये हैं, बृहस्पतिने लिखा है कि, पिताके वस्त्रभूषण शय्यावाहनआदि सबको गन्धपुष्पोंसे पूजन कर श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणको देदे, और नौ सात तेरह श्रोत्रिय (वेदपाठी ब्राह्मण) जिमाने, ज्ञाति बांधव निर्धन अतिथियोंकोभी जिमावे. देवयाज्ञिकनिबन्धमें कहा है कि, ग्यारह ब्राह्मणोंमें प्रेतका आवाहन करके जिमावे, उनमें प्रथमको शय्याआदि दे यह आद्यश्राद्ध लिखा है ॥ विष्णुने कहा है एकोद्दिष्टमें, मंत्रोंमें एक वचनका ऊह करना अर्थात् बहुवचनांतपदोंको एकवचनांत पढना चाहिये यहभी दृष्टार्थ (इस लोकके निमित्त) है, इसमें विघ्न होनेपर गौण करलेना, हेमाद्रिमें बौधायनके वचन हैं कि, इस प्रकार एकोद्दिष्ट बारहवें दिन होता है, इससे आगे शक्ति न होय तो विषमदिनोंमें करै, वा आधे महीने मास, ऋतु (२ दोमहीने) वा वर्षमें करै,

१ वायवीयप्रेतदेह प्रायः एकवर्षतक रहता है. उसके आरंभके निमित्त शरीरारंभके धर्म कियेजाते हैं पितृत्वप्राप्तिमें प्रतिबन्धक उस देहके भोग्यदुःख भोगनाश और उस अधर्मके नाशनिमित्त दुःख भोग होता है उसके निमित्त प्रेतदेहकी आवश्यकता है, उसकी उत्पत्तिके निमित्त पिण्डदान कियाजाता है, इससे अवश्य प्रेतदेहकी उत्पत्ति होती है, एकादशाहादि श्राद्धकी पूर्ति होनेसे प्रेतका देह पूर्ण होजाता है, यम कहते हैं जिसको सोलह श्राद्ध न दियेगये उसका पिशाचत्व सौ श्राद्धोंसे भी नहीं जाता, एकादशादिश्राद्धोंसे मृतकको तृप्ति होती है वर्षकी पूर्तिमें वह पितरोंके स्थानको प्राप्त होता है इस प्रकार देवलके कथनसे आप्यायन और प्रेतत्वका परिहार है सर्वथा पिण्डदानसे विलंब और क्लेशसे कार्यसिद्ध है यह सिद्ध हुआ, दशम पिण्डदानसे पहले प्रेतदेहकी अनिष्पत्ति होनेसे उसकी निवृत्तिके निमित्त एकादशाहादिश्राद्धोंका अशौचमें किस प्रकार कारण होगा ॥

तत्रैव लघुहारीतः—"एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहःसमुपोषणम् ॥" गोभिलः—ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथवा । पुनश्च भोजयेदेकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" एतदाद्यमासिकाब्दिकयोः सिद्ध्यर्थमिति भट्टाः ॥ तेन मह्रैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव ॥ अत एवाद्यं सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतमेकादश इति विज्ञानेश्वरः ॥ अन्येत्वाद्यमासिकाब्दिकयोः । 'आद्यमेकादशेहनि' इति नियमादभेदमाहुः ॥ द्वयोस्तन्त्रत्वबाधार्थम् । गालवीयमित्यन्ये ॥ युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः । "सद्यःशौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ॥" एवमेकादशाहादौ ॥ अतोत्र द्वितीये ह्येकादशाहं वदन् दौहृः शूलपाणिः स्मार्तगौडश्च परास्तः ॥ एतेन 'आद्यमेकादशेहनि' इत्याशौचानन्तरदिनपरम् विष्णूक्तेः । प्रागुक्तशंखादिवचनानां चानाकरत्वादिति वदन्तः कल्पतरुवाचस्पतिप्रमुखाः सर्वमहानिबन्धविरोधादुपेक्ष्याः ॥ उशनाः—"त्र्यहाशौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेहनि । अतीतविषये सद्यस्त्र्यहोर्ध्वं वा तदिष्यते ॥" याज्ञवल्क्यः—एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ उपतिष्ठतामित्य-

यहांही लघुहारीतका कथन है कि, एकोद्दिष्ट श्राद्ध सदा स्वयं और पाक बनाकर करै, पाकके पात्र न मिले तो उस दिन व्रत करे ॥ गोभिलने कहा है कि, आद्य श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन नहीं करावै वा अग्निमें होम करै, फिर एक ब्राह्मण जिमावै इस प्रकार दो आवृत्ति होती हैं यह प्रथम मासिक वार्षिक श्राद्धोंकी सिद्धिके निमित्त है, यह भट्ट लिखते हैं, इससे यह एकोद्दिष्ट षोडश श्राद्धसे भिन्न है इससे सबकी आदि एकोद्दिष्ट और २ प्रकृति भूत एकादश जानना यह विज्ञानेश्वर कहते हैं और तो आद्यमासिक आब्दिकको कहते हैं. 'आद्यमेकादशेहनि' इस नियमसे अभेद कहते हैं, कोई गालवीयमें दोनोंके तन्त्रत्वबाधाके निमित्त कहते हैं, युद्धमें मृतक हुए आदिके निमित्त तो हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें पैठीनसिका कथन है कि, सद्यःशौचमें भी प्रेतको एकादशाह दिनमें श्राद्ध आदि दे कारण कि श्राद्ध शय्या आसन आदि देनेके निमित्त उसका वही दिन है इसी प्रकारका एकादशाह आदिमें जानो. इससे यहां दूसरे दिन एकादशाहको लिखते हुए दौहृ शूलपाणि और स्मार्त गौड परास्तहुये, इससे प्रथमश्राद्ध ग्यारहवें दिन होता है, यह वाक्य अशौचके उपरान्त दिनका बोधक है इस विष्णुके कथनसे पूर्वोक्त शंखादिकके वचनोंको तिरस्कार कहते हुये कल्पतरु वाचस्पति आदि सब बडे २ ग्रन्थोंके विरोध होनेसे यह वाक्य उपेक्षा करनेके योग्य हैं ॥ उशनाने लिखा है कि, तीन दिनके अशौचमें भी आद्यश्राद्ध ग्यारहदिनमें करना और बीते हुए अशौचमें सद्यः वा तीनदिनके उपरान्त आद्यश्राद्ध कहा है. याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, एकोद्दिष्ट देवसे हीन और एक अर्घ एक पवित्री आवाहन और अग्नौकरणसे हीन और अपसव्यसे होता है, अक्षय जल और स्नानमें (उपतिष्ठतां) कहै और ब्राह्मणोंके विसर्ज-

क्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेयुस्तेभिरताः स्म इ" इति अग्नौकरणनिषेधोन्यपरः ॥ बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् ॥ स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति कात्यायनः ॥ प्रथमे पात्रे ससंस्रवानित्यस्य तृतीयेनापिधानस्य च बाधान्न पात्रन्युब्जतेति शूलपाणिः ॥ प्रचेताः—' नात्र पात्रालम्भो नाशिषः प्रार्थयेत् ॥ ' अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे—"श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदं तथैव च । स्नपनाभ्यञ्जनं दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम् ॥ " तथा—" उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत् । पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च ॥" विष्णुः—दक्षिणान्तं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुलपृथ्वीतस्तावदन्तरालास्तावदधःखाता वितस्त्यायतास्तिस्रः कर्षूः कुर्यात्। कर्षूणां समीपेऽग्निमाधाय परिस्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधानमोऽग्नये कव्यवाहनाय यमायाङ्गिरस्वते ' इति ॥ स्थानत्रये प्राग्वत्पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्ते इति जपेत् ॥ शेषं नवश्राद्धवत् ॥ अत्र साग्नेरप्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् ॥ इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तं क्रियानिबन्धे ॥ गृह्यकारिकायां—"तिलोसि प्रेतदेवत्यः प्रेतं लोकान्हि नोन्तकम् । मन्त्रमुक्त्वा तिलानेवं प्रक्षिपेदर्घ्यपात्रतः ॥ दक्षिणामुदकुम्भं च सान्नं दत्त्वा तथैव गाम् । तस्मै दद्या-

नमें (अभिरम्यतां) कहना चाहिये, और ब्राह्मण (अभिरता स्मः) कहैं, और तृप्तिके पूछनेमें (स्वदित) कहै, ब्राह्मण सुस्वदितं: (अच्छा खाया) कहैं, और आज्ञाका वाक्य लें. कात्यायनने लिखा है कि, अग्नौकरणका निषेध औरोंके निमित्त है, बह्वृचोंके यहां तो सब एकोद्दिष्टोंमें अग्नौकरण होता है, यह पहले कहकर आये, पहले पात्रमें संस्रव रक्खै, इसका तीसरेसे बाध हो तो पात्रोंको औंधा न करै, यह शूलपाणि लिखते . है ॥ प्रचेताने कहा है कि, एकोद्दिष्टमें पात्रोंका (स्पर्श) और आशीर्वादकी प्रार्थना नहीं होती, इसमें विशेष हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, श्मश्रुकर्म (क्षौर) नखोंका छेदन करै, और स्नान और अभ्यंग ब्राह्मणको विधिसे दे, इस प्रकारकेही वाक्य हैं कि, उत्तम आसनपर बैठाय छत्री दे. और पीछेसे जूता और सब भूषण दे ॥ विष्णुने कहा है कि, दक्षिणापर्यंत श्राद्धको करके जहां अक्षय दिया हो वहां चार अंगुल पृथ्वीके अन्तरसे और उतनीही नीचे खोदकर वितस्तिभर खोदकर तीन कर्षू रेखा करै, कर्षूके निकट तीन अग्नि स्थापन करके कुशा फैलाय एकमें तीन २ आहुति दे, कि, सोमाय पितृमते स्वधा १, नमोग्नये कव्यवाहनाय २, यमायांगिरस्वते ३, तीनों स्थानोंमें पूर्वके समान पिंड दे, दधिमधुमांसोंसे तीनों कर्षूओंको पूर्ण कर यह मेरा नहीं है, यह उच्चारण करै, शेषकर्म नवश्राद्धके तुल्य करै. यहां साग्निको भी अन्तमें वैश्वदेव है, यह पहले लिख आये हैं, वा इसको दशाहका कर्ता पुत्र करै, यह क्रियानिबन्धमें लिखा है ॥ गृह्यकारिकामें कहा है कि, 'तिलोसि प्रेतदेवत्यः प्रेत लोकान् हि नोन्तकम्' यह मन्त्र पढकर अर्घपात्रसे दक्षिणकी ओर तिल डाले, अन्नसहित जलका घडा और गौ

द्रक्तशेषं तद्भाण्डान्यपि भाजनम् ॥" विप्राभावेऽग्नावेकोद्दिष्टम् ॥ 'अग्नौ पायसं श्रपयित्वाज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य पृथिवी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्तीभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्' इति ॥ याज्ञवल्क्यः—'एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥' अथ वृषोत्सर्गनिर्णयः। स च नित्यः काम्यः ॥" न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् । न ददाति सुतो यस्तु मातुरुच्चार एव सः ॥" उच्चारः पुरीषम् ॥" एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्,' इति मत्स्यकौर्मोक्तेः" एकादशेह्नि प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥" इति षट्त्रिंशन्मते निन्दाश्रुतेः ॥ " एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स क्रमेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान्दशापरान् " इति देवीपुराणे भविष्यादौ फलश्रुतेश्च ॥ अयं द्वादशाहे उक्तो भविष्ये—'चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेह्नि वा ' इति ॥ विष्णुधर्मे तु मृताहेऽप्युक्तः ॥ ' विषुवद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च' इति ॥ अयं गृहे न कार्य्यः ' न गृहे मोचयेन्नीलं

देकर प्रेतके भागका शेष मांड और भाजन उस ब्राह्मणको दे, ब्राह्मण न होय तो अग्निमें एकोद्दिष्ट इस प्रकार करै कि, अग्निमें खीर पकाकर आज्यभागके उपरान्त उसके आगे श्राद्ध योग करके अग्निमें प्रेतको आवाहन और गन्ध आदिसे पूजाकरके पृथ्वीते पात्रं० इत्यादिमन्त्रोंसे अन्नका संकल्प और उदीरताम इन आठ ऋचाओंकी चार २ आहुति देकर पिंडदान आदि श्राद्धपूर्ति करै, ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा है कि सपिंडी और एकोद्दिष्ट स्त्रीके भी होते हैं ॥ अब वृषोत्सर्ग लिखते हैं, वह नित्य और काम्य है, कारण कि, मात्स्य और कौर्मके कथन है कि (अच्छे) सुतीर्थमें जो पुत्र जलकी अंजली और वृषोत्सर्गको नहीं करता वह माताका उच्चार (विष्ठा) है, बहुतसे भी पुत्र हों उनमेंसे एकभी गयामें जाय वा अश्वमेध करै वा नील वृषको छोडै, वही पुत्र है. षट्त्रिंशन्के मतमें यह निन्दा सुनी है कि, एकादशाहको जिस प्रेतके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं होता उसको चाहें सौ श्राद्ध करो तो भी प्रेतत्व नहीं छूटता है. और देवीपुराण भविष्यआदिमें यह फल लिखा है कि, जिसके निमित्त नील वृष छोडै उसकी परमगति होती है, वृषका छोडना दश पिछले और दश अगलोंको पवित्र करता है ॥ यह भविष्यपुराणमें द्वादशदिनमें भी कहा है कि, चैत्र वा वैशाखकी तृतीयाको वा द्वादशाहको वृषोत्सर्ग करै । विष्णुधर्ममें मरनेके दिन भी लिखा है कि, दोनों विषुवत् तुलमेषसंक्रांतियोंमें और बांधवके मरणदिनमें वृषोत्सर्ग करै, इसको घरमें न करै, कारण कि कालिकापुराणमें लिखा है कि, अधिक फलकी इच्छा करै तो घरमें वृषोत्सर्ग न करै. कामधेनुमें कहा है कि वर्षके भीतर

कामयन्पुष्कलं फलम्' इति कालिकापुराणात् ॥ कामधेनौ-" वत्सराभ्यन्तरे पित्रो-र्वृषस्योत्सर्गकर्मणि । वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ॥" तल्लक्षणं तु ब्राह्मे-"लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥" श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोपि नीलं उक्तो मात्स्यादौ ॥ देवीपुराणे-' चतस्रो वात्सिका भद्रा द्वे वासंभवतोपि वा' यत्तु पठन्ति "वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथंचन । मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् ॥ न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत्" इति । तन्निर्मूलम् ॥ तद्विधिर्हेमाद्रौ भट्टकृतौ च ज्ञेयः ॥ अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्णुरूपिप्रेतोद्देशेन विष्णुतर्पणमुक्तम् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ पारस्करः-" सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥ प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिःक्षिपेत् " ॥ तथा-"विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोहयेच्च ता धेनूर्नच कश्चन वन्धयेत् ॥ " स्त्रीषु विशेषः संग्रहे-पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि । वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥" पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम् ॥ अन्वारोहणेपि गोदानमेवेत्युक्तं प्राक् ॥ आशौचा-

मातापिताके वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध न करै, उसको अन्यत्र करै, उसके चिह्न तौ ब्राह्ममें यह लिखे हैं कि, जिसका रंग लाल मुख और पूंछ पीली खुर और सींग सफेद हों वह नीलवृष है, जिस श्वेतके मुख आदि श्याम हों और जिस श्यामके मुख आदि श्वेत हों वह भी मात्स्य आदिमें नील लिखा है ॥ देवीपुराणमें लिखा है कि, चार वा दो वा जो होसकें उतनी सुंद-रीवत्सी (बछिया) हों, जो यह लिखते हैं कि, यदि वृषोत्सर्गके समय वृषका अभाव हो तो मृत्तिका चून कुशाका वृष बनाकर छोडदे वृषोत्सर्ग न करसके तो वहां होम करादे, सो ठीक नहीं है, उसकी विधि हेमाद्रि और भट्टकृतिमें जाननी, यहां देवयाज्ञिकने वृषोत्स-र्गसे प्रथम पुरुषसूक्तसे विष्णुका तर्पण लिखा है उसमें मूल नहीं है ॥ पारस्करने लिखा है कि, बांये हाथसे बैलकी पूंछ पकडे और दक्षिणसे तिल जल कुशा लेकर फिर प्रेतका गोत्र उच्चारण करके अमुकस्मै (इसको) यह कहता हुआ 'यह वृष मैंने प्रदान किया है उसको सदा तारो, यह कहकर सोने और तिलसहित जलको भूमिमें गेरदे, ऐसेही वाक्य है कि, उसको कोई बांधेभी नहीं और न जोते और गौको भी कोई न दुहै और न बांधै, स्त्रियोंके निमित्त विशेष संग्रहमें लिखा है कि, पति पुत्र जिसके दोनों विद्यमान हों वह पतिसे प्रथम मरजाय तो वृषोत्सर्ग न करै किन्तु दूध देती गौ दे, यहां पति पुत्रका साहित्य (दोनों) विवक्षित है. सती होनेमें भी गोदानही होता है यह पहले लिख-आये हैं. अशौचके मध्यमें भी वृषोत्सर्ग आद्यमासिक शय्यादान आदिको देना यह लिख-

न्तपरेपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम् ॥ क्रियानिबन्धे स्मृत्यन्तरे– "सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि ॥ पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च ॥ न हन्यात्सूतके कर्म द्वादशैकादशाहिकम् । शुद्धो वा यदि वाशुद्धः कुर्यादेवाविचार-यन्" इति ॥ अथ पददाननिर्णयः । अत्र पददानमुक्तं देवजानीये गारुडे–' एका-दशाहं प्रक्रम्य–" तदह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः । पदानि सर्ववस्तूनि वरि-ष्ठानि त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोप्यात्महेतवे । सुखी भूत्वा महामार्गं वैनतेय स गच्छति ॥" तथा–"आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः । भाजनं भाजनाधारो वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥" तथा–"भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च । आज्यपज्ञोपवीतेन पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चि-तम् । सर्वोपस्करयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महे-तवे । स गच्छति परं स्थानं महाकष्टविवर्जितः ॥ त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतायैकादशेहनि । दातव्यानि यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत् ॥ अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः । छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं तथाष्टमम् ॥ अग्नीष्टिकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च । चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश ॥ योश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् । स्वमहिम्नोनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् " इति ॥

आये हैं. क्रियानिबंधमें स्मृत्यंतरका वाक्य है कि सूतक और मृतकमें दूसरा मरजाय तो पिण्डदान और वृषोत्सर्ग करै, और द्वादशाह और एकादशाहक सूतककर्मको त्यागे, शुद्ध वा अशुद्धके विचारको त्यागकर अवश्य ही करना चाहिये॥ अब पददान लिखते हैं देवजानीय और गारुडमें एकादशाहके प्रकरणमें लिखा है कि, उस दिन और विशेष कर द्वादशाहके दिन सब वस्तु और सुन्दर तेरह पद दियेजाते हैं. जो मनुष्य मृतकके निमित्त जीवता हुआ अपने निमित्त देता है, हे गरुड! वह महामार्गमें आनन्द होकर जाताहै, तैसेही वाक्य है कि, आसन, उपानह, छत्री, मुद्रिका, कमंडलु, भाजन, भोजनका आधार, वस्त्र यह आठ प्रकारका पद लिखा है॥ तैसेही वाक्य है कि भाजन आसन मुद्रिका भोजन, आज्य यज्ञो-पवीतसे पद संपूर्ण होता है, भैंस रथ गौके दानसे निश्चय सुखी होता है. सब सामग्रियोंसे युक्त तेरह पद यहां होते हैं, जो इनको मृतकके और जीवता हुआ अपने निमित्त देता है, वह श्रेष्ठस्थानमें महाकष्टसे छूटकर गमन करता है. तेरह पद इस प्रकार हैं, प्रेतके निमित्त दशवें दिन यथाशक्तिसे देने उससे वह प्रेत सुखी होता है. अन्न, जल, उपानह, कमण्डलु, छत्र, वस्त्र, लाठी, आठवां लोह दण्ड, अग्नि, ईंट, दीप, तिल, पान, चन्दन, पुष्पदान ये चौदह उपदान हैं. जो मनुष्य घोडा रथ आदि ब्राह्मणोंको देता है वह अपनी महिमाके अनुसार उस २ सुखको प्राप्त होता है, इनमें मूल नहीं है ॥ इसमें

अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अथ शय्यादाननिर्णयः । हेमाद्रौ भविष्ये-" तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्राचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभदण्डोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् । तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥" अत्र हरिस्थाने प्रेतम् ॥" उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् । ताम्बूलं कुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥ दीपिकोपानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥ शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकाद्यं तु पञ्चवर्णवितानकम् ॥" मन्त्रस्तु-"यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ॥ शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ॥" अर्थं तदेव ॥" दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥ विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय । तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥" पाद्मे-" मृतकान्ते द्वितीयेह्नि शय्यां दद्यात्सलक्षणाम् । काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत्यं नानामणिविभूषितम् । उपवेश्य तु

शय्यादान भी है, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, इससे सालके काठकी दृढ शय्या हाथी दांतके पत्तोंसे चिता और सुवर्णके पायोंसे शोभित हंसके तुल्य श्वेतरुईसे ढकी और सुंदर तकियासे युक्त और आच्छादनके वस्त्रोंसे युक्त, गन्धधूपोंसे सुगन्धित शय्यापर लक्ष्मीनारायणकी मूर्तिको स्थापन करै, यहां हरि स्थानमें प्रेतको स्थापन करै, शिरकी ओर घीसे भरा कलश रक्खे, पान कुंकुम सहत कपूर अगुरु, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्री, चँवर, आसन, भाजन इन्हें और सप्तधान्यको शय्याके पार्श्वोंमें स्थापन करै, सोतेहुये मनुष्यका जो कुछ और उपकारक हो शृंगारकरके (लोटा) आदि और पांचवर्णका चंदोवा वह सब रखदे ॥ मंत्र तो यह है कि, जिस प्रकार कृष्णकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं है, तैसेही जन्म २ में मेरी शय्या अशून्य हो इस विष्णु और शिवकी वह शय्या पूर्ण हो तैसेही मेरी हो. इस प्रकार देकर और नमस्कार करके विदा करै. एकादशाहमें भी यह विधि लिखी है, हे राजन् ! इसमें मेरे कहे विशेषको सुनो प्रेतका भोगाहुआ जो वस्त्र वाहन भाजन है और जो जो उसको प्रिय था वह सब दे, और उसकीही सुवर्णकी मूर्ति शय्यापर स्थापन करै, और पूजाकरके यथोचित मृतशय्याको प्रदान करै ॥ पद्मपुराणका वाक्य है कि, मृतकके अन्तके दूसरे दिन सुलक्षण शय्या दे, और तैसेही फलवस्त्रसे युक्त सुवर्ण पुरुषको दे, नानाभूषणोंसे शोभित ब्राह्मणी और ब्राह्मणको पूजकर और शय्यापर बैठाकर मधु-

शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत् ॥ रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्धसमन्वितम् । अस्थि ललाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद्द्विजदांपत्यं विधिरेष सनातनः । एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥" एतत्प्रतिग्रहे तत्रैवोक्तम्—' गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति ॥' शय्यादानफलं भविष्ये "स्वर्गे पुरंदरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा । सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥" इति ॥ अथोदकुम्भदाननिर्णयः । हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये—" एकादशाहात्प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः । दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥" लौगाक्षिः—" यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥" उत्तरार्धे ' तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ।' इति याज्ञवल्क्यपाठः ॥ सपिण्डनापकर्षेऽस्यापकर्षप्राप्ते बाधकमिति शूलपाणिः । तन्न । प्रकृतिविकाराभावेन तदन्तन्यायविषयत्वात् ॥ मात्स्ये—" यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" केचित्त्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्निर्मूलम् ॥ देवयाज्ञिकः—" सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भम् अर्वागेव

पर्क देना और वह मधुपर्क दही दूधसे युक्त चांदीके पात्रमें हो, शिरकी अस्थि लेकर और पीसकर खीरमें मिलाकर स्त्री पुरुषको जिमावै. यह सनातन विधि है. यही विधि पर्वतनिवासी ब्राह्मणोंमें देखी है, इसके प्रतिग्रहमें वहां ही लिखा है कि, ऐसी शय्याको ग्रहण करके फिर संस्कारके योग्य होता है. भविष्यपुराणमें शय्यादानका फल कहा है कि, इन्द्रपुरी, स्वर्ग, यमराजकी पुरी इनमें यह जीव शय्यादानके प्रभावसे सुखपूर्वक निवास करता है, और प्रलयपर्यन्त दुःखसे रहित होता है ॥ अब जलघटको लिखते हैं, हेमाद्रिमें स्मृतिसमुच्चयका लेख है कि, एकादशाहसे लेकर जल और अन्नसे युक्त घटको वर्षदिनतक पुत्र प्रतिदिन दे. लौगाक्षिने कहा है कि, जिसकी सपिंडी वर्षसे प्रथम होजाय उसको मासिक और जलका घट वर्षदिनतक देना, उत्तरार्द्धमें याज्ञवल्क्यका पाठ है कि, उसको अन्न जलका घडा वर्षदिनतक ब्राह्मणको दे. शूलपाणि यह लिखते हैं कि, सपिंडीकी न्यूनतासे इसकी जो न्यूनता पायी उसका यह बाधक है, सो यथार्थ नहीं प्रकृतिके विकारके अभावसे तदंतन्यायका विषय नहीं है. मात्स्यका कथन है कि, जो मनुष्य वर्षदिनतक क्रोधको त्यागकर घटदान अन्नसहित प्रेतके निमित्त देता है वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है. कोई तो त्रयोदशाहसे लेकर कहते हैं, सो उचित नहीं है ॥ यहां देवयाज्ञिक लिखते हैं कि, सपिंडीके अपकर्षमें इतने वर्ष हो जल-

दद्यात्, नोर्ध्वम् । 'प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत' इति गोविन्दराजधृतविष्णूक्तेः ।" अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाब्दिकावधि । दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्धघटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः । दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्युदकुम्भकम्' इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य विधानादूर्ध्वं निषेधादित्याह ॥ तन्न ॥ उदकुम्भे पार्वणविधिनानुपपत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च ॥ वचनं च यदि समूलं तदा वृद्धावपकर्षं विधत्ते ॥ 'प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा' इति हेमाद्रौ शाठ्यायनोक्तेः ॥ 'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भम्' इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च ॥ मदनरत्ने गौतमः-" अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥ " अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम् ॥ एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टं पार्वणं कार्यम् ॥ अपरार्कस्तु "सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वेनोपपद्यते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डना ॥" इति ॥ लघुहारीतोक्तावपि-'तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे' इति । याज्ञवल्कीये तस्येत्येकत्वोक्तेः सपिण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह ॥ अत्र

घट उससे पहिले ही दे, पीछे न दे प्रेतलोकमें गयेके निमित्त जलका घट दे, यह गोविंदराजमें लिखा विष्णुका वाक्य है, अपनी शक्तिसे वर्षदिनतक की संख्या करके अन्न दे. वा स्कन्धघट आदिमें उसका निष्क्रय (मोल) दे. हे मनुष्यो ! चाहे सो श्राद्ध दो परन्तु जब तक घटदान न हो तबतक दुःखित हुये संसाररूपी समुद्रमें भ्रमते हैं, इससे अपकर्ष पहलेसे भी प्रेतके निमित्त जलका कुंभ दे. यह गोभिलभाष्यमें स्कन्दका कथन है कि, इससे सपिंडीसे प्रथमही उसकी विधि है, और पीछे निषेध है, सो उचित नहीं है ॥ कारण कि, कुंभमें पार्वणकी विधि न होनेसे ऐसी व्याख्यामें कोई प्रमाण नहीं है और मिताक्षराका उससे विरोध है. यदि वाक्य प्रमाणयुक्त है तो वृद्धजन इसको अपकर्ष कहते हैं, कारण कि, सम्पूर्ण प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको करैं, यह शाठ्यायनने कथन किया है. उसको भी अन्न जलघट दे, इस याज्ञवल्क्यके वाक्यका भी विरोध है. मदनरत्नमें गौतमने लिखा है कि, बिना दैव पार्वण श्राद्ध और अधर्मक जलघट और प्रतिअब्द वर्षके धर्म श्राद्ध संकल्पविधिसे प्रतिदिन करने यह मासिकके समान एकोद्दिष्ट वा पार्वणश्राद्ध करना चाहिये ॥ अपरार्कमें तो यह लिखा है कि, सपिंडीकरणके उपरान्त भिन्नता नहीं होती यदि पृथक् श्राद्ध किया होय तो फिर सपिंडी करनी इस लघुहारीतके वचनमें भी और उसके निमित्त भी जलका घट और ब्राह्मणको दे. इस याज्ञवल्क्यके वाक्यमें (तस्य) यह एक वाक्य लिखा है इससे सपिंडीके उपरान्त भी एकोद्दिष्टही होता है, इसमें पिण्डदान (वृत्ताऽकृतम्) किया

पिण्डदानं कृताकृतम् ॥ 'अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति' इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः ॥ श्राद्धाशक्तौ पिंडमात्रमिति गौडाः ॥ तन्न ॥ अपिशब्दबाधापत्तेः ॥ हारीतः—"मृते पितरि वै पुत्रः पिंडमब्दं समाचरेत् ॥ अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः " प्रेतशब्दोच्चारणेनेति हलायुधः ॥ यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मकमित्यर्थः ॥ अत्राशौचान्तदिनाद्यब्दान्तं यावद्वत्सरापूर्तेः शौचं नाधिकारिविशेषणम् ॥ तेन मृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमिति केचित् ॥ तन्न ॥ हेमाद्रिधृतवचोविरोधात् ॥ मध्ये अशौचादिना बाधे तु लोप एव दार्शवत् ॥ तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम् ॥ देवजानीये गारुडे—"प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये । कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थितम् ॥" अथ मासिकनिर्णयः । अथ मासिकानि ॥ तानि च कृत्वैव सापिंडनं कार्यम् ॥ तथा गोभिललौगाक्षी । "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम् । श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिंडनम् ।" तानि त्वाह जातूकर्ण्यः—"द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ॥" आद्यषाण्मासिकाब्दिकशब्दा ऊनमासिकोनषष्ठोनाब्दिकपराः ॥ हेमाद्रौ तु सपिंडीकरणं चैव इत्येतत् 'श्राद्ध-

---

मी न किया है, कारण कि, हेमाद्रिमें पारस्करका कथन है कि, प्रतिदिन प्रेतके निमित्त अन्न और जलका घडा ब्राह्मणको दे, और कोई कहते हैं कि, पिंडभी दे, श्राद्धकी सामर्थ्य न हो तो पिंडही दे. यह गौडोंका कथन है सो यथार्थ नहीं, कारण कि, अपिशब्दका बाध होजायगा ॥ हारीतने कहा है कि, पिताके मरने उपरान्त पुत्र वर्षदिनतक पिंड दे, और प्रेतके निमित्त धर्मसे अन्नघट दे, प्रेतशब्दका उच्चारण करके दे, यह हलायुधका कथन है. अथवा प्रेतके उच्चारणवाले एकोद्दिष्टको धर्मपूर्वक करें, वहां अशौचांत दिनसे वर्षकी पूर्तितक शौच अधिकारीका विशेषण नहीं है, इससे मरणके दिनसे लेकर यह करना यह कोई कहते हैं, सो उचित नहीं कारण कि, हेमाद्रिमें लिखे वाक्यका इसमें विरोध है, मध्यमें आशौच आदिसे बाध होजाय तो लोप न करना, अमावस्याके तुल्य होता है, तैसेही प्रथम वर्षमें गरुडके कथनसे दीपदान लिखा है कि, विषममार्गमें प्रतिदिन दीपक प्रेतके सुख निमित्त वर्षदिनतक दे, पूर्वाभिमुख वा उत्तरमुख दीपक देवमन्दिर वा ब्राह्मणके घरमें दे और पितरोंके निमित्त दक्षिणमुख हो संकल्प करके देना ॥ अब मासिकोंको वर्णन करते हैं उनको करकेही सपिण्डी करनी चाहिये. षोडश श्राद्ध करके सपिंडीको करै यह वचन जातूकर्ण्यने लिखे हैं कि, द्वादशमहीनोंके बारह और आद्य ऊनषाण्मासिक त्रैपक्षिक (तीन-पखवारे) और ऊनाब्दिक ये षोडश श्राद्ध हैं, यहां आद्यषाण्मासिक आब्दिक शब्द क्रमसे ऊनमासिक ऊनषष्ठ ऊनाब्दिकके बोधक हैं ॥ हेमाद्रिमें तो (सपिण्डीकरणं चैव) यह

---

१ जिसने नवश्राद्ध नहीं किया वह षाण्मासिक और मासिकका अधिकारी नहीं है ॥

षोडशम्' इत्युत्तरार्द्धे पाठः—तदा आद्यमूनमासिकं द्वादशाहे पाण्मासिकम् ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः ॥ कात्यायनस्त्वन्यथाह "द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ॥ एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षण्मासिके तदा ॥" द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थमाह पृथ्वीचन्द्रः ॥ व्यासस्त्वन्यथाह "द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके ॥ श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ॥" "द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वादशाहेप्युक्तेरिति कालादर्शः । मदनरत्ने ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम् "नृणां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वदा । चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धा द्वादश संख्यया" इति ॥ चतुर्थादीनि दिनानि ॥ भविष्येत्वन्यथोक्तम् ॥ "अस्थिसंचयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु । रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेतश्राद्धानि षोडश" इति रिक्तयोस्तिथ्योरिति न्यूनषष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः ॥ अत्र देशकुलशाखाभेदाद्व्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः ॥ गालवः— "ऊनषाण्मासिकं षष्ठे मासे वा न्यूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा ॥" ऊनमासिके तु गोभिलः—"मरणाद्द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम् ॥"

उत्तरार्द्धमें पाठ है, तब आद्य ऊनमासिक द्वादशाहमें होता है; और पाण्मासिक ऊनषष्ट आब्दिक ऊनाब्दिक यह अर्थ है. कात्यायनने तो अन्यप्रकार लिखा है कि, द्वादश प्रतिमासके आद्य पाण्मासिक और सपिंडी ये षोडश १६ श्राद्ध हैं, एक दिनमें तीन दिनमें जब षण्मास होते हैं वा जब कम तीन वर्ष हो तब पाण्मासिकमें होते हैं. पृथ्वीचन्द्रने यह लिखा है कि, पूर्व कहे कात्यायनके वाक्यमें (पाण्मासिक) के इस द्विवचनसे ऊनषष्ठ और ऊनाब्दिक लेने ॥ व्यासने तो और भांति कहा है कि, बारह दिन तीन पक्ष छः मास मासिक वार्षिकमें ये षोडश श्राद्ध बुद्धिमानोंने लिखे हैं, द्वादशदिन पद ऊनमासिकका ज्ञापक है. द्वादशाहमें भी लिखा है. यह कालादर्श लिखते हैं, मदनरत्नमें ब्राह्मके वाक्यसे तो अन्यथा लिखा है कि, मृतक मनुष्योंके सदा षोडशश्राद्ध होते हैं, चौथे पांचवें नौवें ग्यारहवें दिनमें और फिर बारह महीनोंमें जो श्राद्ध वे षोडश श्राद्ध हैं ॥ भविष्यमें तो और भांति कहा है कि, अस्थिसंचयन श्राद्ध, त्रिपक्ष और द्वादशमासिक ये रिक्तातिथियोंमें होते हैं । रिक्तातिथियोंके ऊनषष्ठ ऊनाब्दिक पर हैं, यह हेमाद्रिका कथन है, इनकी देश कुल शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये, यह सब निबन्ध लिखते हैं, गालवने लिखा है कि, ऊनपाण्मासिक छटे मासमें और. ऊनमासिक मासमें त्रैपक्षिक त्रिपक्षमें ऊनाब्दिक बारह मासमें होते हैं, ऊनमासमें तो गोभिलने लिखा है कि, मरणसे द्वादशाहमें वा मही

मदनरत्ने कालादर्शे च श्लोकगौतमः "एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥" क्रियानिबन्धे क्रतुस्तु-"सार्ध एकादशे मासे सार्द्धे वै पञ्चमे तथा । ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि ॥" इत्युक्तम् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ ऊनेषु वर्ज्यान्याह मरीचिः-"द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे " ज्योतिषे-"त्रिपादर्क्षं तिथिर्भद्रा भौमेज्यरविभिः सह । तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥" गालवः-त्रिभिर्वा दिवसैरूने त्वेकेन द्वितयेन वा । आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम् ॥" एकन्यूनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपदि द्व्यूने द्वितीयायामिति केचित् ॥ माधवस्तु-"षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे. स्यातां पूर्वेद्युरेव ते । मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेपि च ॥" इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषाण्मासिकं सप्तममासगतमृताहात्पूर्वेद्युः कार्यम्, ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वेद्युः कार्यमित्यर्थमाह । 'मासिकानि स्वकीये तु दिवसे' इत्युक्तेः ॥ इदमेव युक्तम्, मदनरत्नेप्येवम् ॥ याज्ञवल्क्यः-"मृतेहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि ॥" अत्राद्यमासिकमाब्दिकं चैकादशेह्नीति निर्णयामृतादयः ॥ "ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा । पुनश्च भोजये-

---

नेम ऊनमासिक होता है, मदनरत्न और कालादर्शमें गौतमका कथन है कि, एक दो तीन वा त्रिभागसे कर्ममें ऊनआदि श्राद्ध होते हैं, क्रियानिबंधमें क्रतुने तो यह लिखा है कि, साढेग्यारहमें और साढेपांचमें ऊनाब्द और ऊनषण्मास श्राद्ध होतेहैं, इसमें मूल नहीं है, ऊन श्राद्धोंमें निषेध मरीचिने लिखा है कि, द्विपुष्करयोग नन्दा सिनीवाली शुक्रवार चतुर्दशी कृत्तिका त्रिपुष्कर इनमें ऊन श्राद्ध नहीं होते, ज्योतिषमें लिखा है कि, त्रिपाद नक्षत्र भद्रा तिथि मंगल बृहस्पति रविवार तीनों होंय तो त्रिपुष्कर योग और दोका योग होय तो द्विपुष्कर योग होता है, गालवने लिखा है कि, तीन दिन वा दो दिन कममें पहले आदि मासोंमें ऊनाब्दिक आदि श्राद्ध करै, एक न्यून पक्षमें पञ्चमीको मृतककी तृतीया, तीनसे न्यूनमें मरेकी प्रतिपदा दोसे न्यूनमें मृतककी द्वितीयामें होता है, यह कोई लिखते हैं ॥ माधवने तो यह लिखा है कि, षाण्मासिक आदि श्राद्ध पूर्वदिनमेंही होते हैं, मासिक आदि श्राद्ध अपने दिनमें वा बारह दिनमें होते हैं, इस पैठीनसिके कथनमें ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक मरणदिनसे प्रथमदिन करने । कारण कि, यह लिखा है कि, मासिक अपने दिनमें होते हैं यही युक्त है, मदनरत्नमें भी ऐसाही लिखा है, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, वर्षके मध्य मासिक और प्रतिवर्ष वार्षिकश्राद्ध मृत्युके दिन और आद्य श्राद्ध ग्यारह दिनमें करने, यहां निर्णयामृत आदि यह लिखते हैं कि, आद्यमासिक और आद्य-आब्दिक ग्यारह दिनमें करने, आद्य श्राद्धमें ब्राह्मणको जिमावें वा अग्निमें हवन करैं और फिर

द्विर्न द्विरावृत्तिर्भवेदिति ॥" इति गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः॥ अन्ये तु 'मासपक्षतिथिस्पृष्टे' इत्यादिविरोधादाब्दिकं वर्षान्तएव ॥ मासिकं तु मासादौ ॥ द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा ॥ देवयाज्ञिकोप्येवमाह ॥ लौगाक्षिरपि—"मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते ॥ आद्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत् ॥" दीपिकायां तु—'आद्यं रुद्रमितेर्कसंमितदिने वा स्यात्' इत्युक्तम् ॥ गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकादिनाधिके माससंवत्सरपदं गौणम् । पूर्णाब्दे इति ईषदसमाप्तत्वमिति शूलपाणिः ॥ तेन द्वितीयमासादावाद्यमासिकादीनि तन्मौल्यंच्छत्तम् ॥ अशक्तौ तु हारीतः—"तुल्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति । द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा ॥" ऋतुं प्रति द्वे द्वे इत्यर्थः ॥ यदा पितुर्मरणात्त्रयोविंशतितमे दिने दर्शो वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः ॥ त्रैपक्षिकं तु त्रिपक्षेऽतीते मृताहे कार्यम् ॥ 'त्रैपक्षिकं भवेद्वत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम्' इति भविष्योक्तेः । इति मदनरत्ने उक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रकालादर्शनिर्णयामृतादयस्तु—"ऊनान्यूनेषु मासेषु विषमाहे समेपि वा । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ पूर्वेद्युः वृत्ते

ब्राह्मणको जिमावे इस प्रकार द्विरावृत्ति होती है, इस गोभिलके कथनको भी इसी विषयमें लिखते हैं ॥ और तो यह लिखते हैं कि, मासपक्षतिथिसे स्पृष्ट (युक्त) इत्यादि वाक्यके विरोधसे वार्षिक श्राद्ध वर्षके भीतरमें ही होता है, मासिक तो मासके पहिले होता है, द्विरावृत्ति तो एकादशाहके और आद्यमासिकके विषयमें वर्णन कीगई है, देवयाज्ञिकने भी इसी प्रकार लिखा है, लौगाक्षिने भी यही लिखा है कि, महीनेकी आदिमें मासिक और वर्ष बीते पर वार्षिक और ग्यारह दिनमें आद्य और अधिकमासमें अधिकश्राद्ध होता है, दीपिकामें तो यह लिखा है कि, आद्यश्राद्ध ग्यारहवें वा द्वादशवें दिन होता है ॥ गौडोंने तो यह लिखा है कि, मृत्युकी तिथिसे एक दिन अधिक मासमें संवत्सरपद गौण है, पूर्ण वर्षमें यह कुछेक असमाप्तत्व है, यह शूलपाणिका कथन है, जिससे दूसरे महीनेकी आदिमें आद्यमासिक आदि होते हैं, वह मूलछन्न है, अशक्तिमें तो हारीतने कहा है कि, मास २ में जो श्राद्ध तुल्य होता है, पूर्ण न हो सके तो ऋतु २ में दो दो होते हैं, बारह दिनमें वा ग्यारह दिनमें बारह ब्राह्मण जिमावे, जब पिताके मरनेसे तेईसवें दिन अमावस वा वृद्धि होजाय तब बारह दिनोंमें बारह श्राद्ध मासिक करने, त्रैपक्षिक तो तीन पक्ष बीतनेपर मृत्युके दिनमें करना । कारण कि, त्रिपक्ष बीतनेपर त्रैपक्षिक होता है, यह भविष्यपुराणका वाक्य है, यह मदनरत्नमें लिखा है ॥ पृथ्वीचन्द्र निर्णयामृत कालादर्श आदिका तो यह कथन है कि, कमती वा तुल्यमासमें वा विषमदिन वा समदिनमें ऊनश्राद्ध और तीनपक्षमें त्रैपक्षिक और इतर श्राद्ध मरणदिनमें होते हैं, इस कार्ष्णाजिनकी स्मृतिसे पूर्वके हुवे

प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः ते तदनन्तरशब्दविरोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावाच्चोपेक्ष्याः ॥ त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम् ॥ यत्तु–क्रियानिबन्धे गारुडे"त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने । मासिकान्यपि चोनानि अष्टाविंशतिमेदिने॥" इति तन्निर्मूलम् ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्–"द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम् । एकादशेह्नि कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥" पैठीनसिः–"सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः । प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ॥" मदनरत्ने कात्यायनः–"श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेहनि । ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ " ध्रुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि ॥ क्रियानिबन्धे गारुडे–' त्रिपक्षात्पूर्वतः साग्नेर्मर्त्यसंस्कारवासरे । ऊर्ध्वं मृतदिनेऽनग्नेः सर्वाण्येव मृताहतः ॥ ' एतानि च यदा सपिंडनात्पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदा देशकालकर्त्रैक्यतन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित् ॥ पाकभेद इति भट्टचरणाः ॥ अत्र केचिदाहुः देशकालदैवतैक्ये तन्त्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेः–"द्वादशाहेऽथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत् । तान्येव तु पुनः कुर्यात्प्रेतशब्दं न कारयेत् ॥" इति कात्यायनोक्तेः । 'नैव श्राद्धद्वयं कुर्यात्

पदको प्रवृत्त अर्थ करतेहैं, वे इससे छोडने योग्य है कि, उससे अनन्तर शब्दका विरोध त्रैपाक्षिक और द्वितीय मासिक पदके एकत्र होनेसे हो जायगा, त्रिपाक्षिकी सपिण्डीमें तो एवं शब्दके न होनेसे अधिकरणताहीकी प्राप्ति जाननी, जो क्रियानिबंधमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, त्रैपक्षिक तीसरे पक्षकी प्रवृत्ति होनेपर विषमदिनमें होताहै, और ऊनमासिक श्राद्ध अट्ठाईसवें दिन होते हैं वह निष्प्रमाण है ॥ स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है कि, जब पुत्र पिताकी सपिंडी द्वादशाहश्राद्धको करै तब एकादशाहके दिन षोडश प्रेतश्राद्ध करै, पैठीनसिमें कहा है कि सपिंडीके प्रथम षोडश श्राद्धको करै तो एकोद्दिष्टकी विधिसे उन सबको करले, जब सपिंडीके उपरान्त करै तो प्रतिवर्षका श्राद्ध जैसे किया है वैसेही उनको भी करै, मदनरत्नमें कात्यायनका कथन है कि, अग्निहोत्रीका श्राद्ध दाहसे ग्यारहवें दिन करै और ध्रुव (त्रिपक्षसे अगले) श्राद्धोंको तो मरनेके दिन निरन्तर करै ॥ क्रियानिबन्धमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, अग्निहोत्रीके त्रिपक्षसे प्रथम श्राद्ध संस्कार (दाह) के दिनमें और त्रिपक्षके पीछे मरणादिनमें होते हैं, और अनग्निके सब मरणदिनमें ही होते हैं, इनको जब सपिंडीसे प्रथम एकत्र करै तब देश काल कर्ता एक हैं, इससे तंत्रसे एकपाक होता है, यह कोई लिखते हैं, भट्टचरण तो यह वर्णन करते हैं कि, भिन्न २ पाक होता है, यहां कोई यह लिखते हैं कि, देशकालदेवता ये एक हैं, तंत्रसे श्राद्धकालका अतिक्रम होजायगा, इससे द्वादशाहको सबकी संक्षेपसे पूर्ति करै और उनकोही फिर करै परन्तु प्रेतशब्द न कहै, इस

समानेऽहनि कुर्वीत" इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेप्यत्र तत्सत्त्वात् ॥ 'श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न कारयेत्' इति जाबाल्युक्तेः षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये सप्तदशत्वसंख्यावत्साम्नाव्यस्यागाङ्गित्ववच्च दर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवद्युगपदनुष्ठानेप्युपपत्तेः— 'आद्यमासिकाद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रियताम्' इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः पिंडोप्येवेति ॥ विरुद्धविधिविध्वंसेप्येवं तन्मन्दम् ॥ 'द्वादशाहेन वा कोऽप्या एकाहे द्वादशापि वा' इति हेमाद्रौ हारीतवचोविरोधात्तेन विप्रभेदात् पिंडाग्न्यादि भिन्नमिति सिद्धम् ॥ एतानि द्वादशाहादौ सपिंडनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनापकर्षे पुनः स्वकाले कार्याणि ॥ 'यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिंडीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥' इति मदनरत्ने आङ्गिरसोक्तेः ॥ नचेदं मासिकानामपकर्षे किंतु सपिंडनोर्ध्वं स्वकालेनुष्ठानमेवेति वाच्यम् ॥ 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा न तु कुर्यात्सपिंडनम्' इति विरोधात् ॥ " यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिंडता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥ " इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च । " अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिंडीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः " इति तत्रैव गालवोक्तेः ॥ षोडशत्वं चैकादशाहात्सपिंडनपक्षे ॥ तत्राद्यमासिकस्य

कात्यायनके कथनसे और एक मनुष्य एक दिनमें कभीभी दो श्राद्ध न करै यह वाक्य कहै देवताके एक होनेमें भी हो यहां एक देवता है ॥ और श्राद्धकरके फिर श्राद्ध न करै इस जाबालिके कथनसे, और षोडशसंख्याकी (सिद्धि) वाजपेयमें प्राजापत्यपशुकी सप्तदश १७ संख्याके समान और साम्नाय्यकी द्वित्वसंख्याके समान और दर्शमें तथा संक्रान्तिके तुल्य एकवार करनेमें भी होजायगी, इससे प्रथममासिकआदि ऊनाब्दिकपर्यन्त षोडशश्राद्धोंमें क्षण (समय) करो इस प्रकार एकही ब्राह्मण और एकही पिंड और अर्घ होते हैं । विरुद्धविधिके नाशमें भी इसी प्रकार होता है सो मंद है कारण कि, हेमाद्रिमें इस हारीतके वाक्यका विरोध किया है कि, बारह दिनमें वा ग्यारह दिन बारह ब्राह्मण जिमावें, जिससे ब्राह्मणके भेदसे पिंडअर्घआदि भी पृथक् होते हैं, यह सिद्ध हुआ, ये द्वादशादिन आदिमें सपिंडीसे प्रथम कियेभी वृद्धिके विना अपकर्ष होजाय तो फिर अपने समयमें करने कारण कि, मदनरत्नमें आङ्गिरसने लिखा है कि, जिसकी सपिंडी वर्षदिनसे प्रथम होजाय उसको भी मासिक और जलका घड़ा वर्षदिनतक दे, यह वाक्य कुछ मासिकश्राद्धोंके अपकर्षको नहीं करता, किन्तु सपिंडके उपरान्त अपने समयमें करनेको कहता है, यह शंका उचित नहीं कारण कि, इस वाक्यका विरोध है कि, षोडशश्राद्ध विना किये सपिंडी न करै, और माधवीयमें गोभिलका भी कथन है कि, वर्षदिनसे प्रथम सपिंडी होगई हो फिरभी विधिपूर्वक षोडशश्राद्ध करै । वर्षदिनसे प्रथम जिसकी सपिंडी होजाय, षोडशश्राद्धोंकी दूसरी आवृत्ति करै यह गौतमने और गालवने लिखी है, षोडशाद्धमें सपिंडी करनेके पक्षमें है, वहां आद्यमासिकका समय है, और पक्षमें

कालसत्त्वाद्न्यपक्षेषु यथासंभवं ज्ञेयम् ॥ यत्तु दीपिकायाम्—'हीअनुमासिकानि तु चैर-त्यान्येव सापिंड्यतः पश्चात्' ॥ द्वादशेत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधाचिन्त्यम् ॥ यत्तु गौडाः—'सपिंडीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः' इति शातातपोक्तेर्मासिकानां । प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिंडनापकर्षे तदन्तन्यायेन तेषामपकर्षान्मासिकानां न पुनः कृतिः । यत्तु 'मासिकं चोदकुम्भं च' इति लौगाक्ष्यादिवचनं, तन्निर्मूलम् । समूलत्वेपि दार्शपरं चेत्याहुः ॥ ते उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविरोधान्मूर्खा इत्युपेक्ष्याः । यत्तु मिताक्षरायां सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम्, तदपि पूर्वविरोधाचिन्त्यम् ॥ तेन वृद्धिं विनापकर्षे पुनः कृतिः । "अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप," इत्यग्निपुराणात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः । अन्यथा वृद्धावसंभवादिति शूलपाणिः ॥ कार्ष्णाजिनिः—" सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥ " निषेधं चाह कात्यायनः—" निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ॥ अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु" इति ॥ द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव, न पूर्वेषां

यथासम्भव (जैसा होसके) जानना ॥ जो दीपिकामें कहा है कि, अनुमासिक तो सपिंडीसे पश्चात् करै इससे पीछे द्वादश कहनेसे ऊन श्राद्धोंको फिर न करै, सो इसके विरोधसे यह चिन्ता है, जो गौड लिखते हैं कि, बुद्धिमानोंको सपिंडीकर्मपर्यन्त प्रेतक्रिया जाननी चाहिये, इस शातातपके कथनसे मासिकश्राद्ध प्रेतत्व दूर करनेके निमित्त है इससे सपिंडीके अपकर्षमें तदंतन्यायसे मासिकोंका भी अपकर्ष होनेसे मासिकश्राद्धोंका फिर करना नहीं होता, और जो लौगाक्षिआदिने लिखा है कि, मासिक और जलघट वर्षदिनतक दे वह निर्मूल है, समूलभी होय तो दर्शके विषयमें है, वे गौड उक्त और आगे कहे वाक्यवाले ग्रन्थोंके विरोधसे मूर्ख होनेसे त्यागने योग्य हैं ॥ जो मिताक्षरामें लिखा है कि, सपिंडीके उपरान्त अपने समयमें करने, अपकर्ष तो अनुकल्प है, वह भी पूर्वके विरोधसे चिन्तनीय है, इससे वृद्धिके विना अपकर्ष होजाय तो फिर करना होता है, और हे राजन् ! वर्षदिनके प्रथम जिसकी सपिंडी होजाय उसको भी वर्षदिनतक प्रेतत्व जानना, इस अग्निपुराणके कथनसे वृद्धिके निमित्तवाला अपकर्ष होनेपर इसके तुल्य उसकी भी निवृत्ति होती है, नहीं तो अन्यथा वृद्धिकी संभावना नहीं है यह शूलपाणि कहते हैं ॥ कार्ष्णाजिनिने लिखा है कि, सपिंडीसे प्रथम अपकर्षसे कियेभी श्राद्ध पुनः भी (संक्षेपसे) कियेजाते हैं, कारण कि, वृद्धिके पीछे निषेध है, वह निषेध कात्यायनने लिखा है कि, वृद्धिके तन्त्रोंको निवृत्त करके मासिक श्राद्धोंको तन्त्रसे न करै,

स्वस्वकालकृतानाम् । तदाह माधवीये कार्ष्णाजिनिः—" अर्वागब्दाद्यत्रयत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वमासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥" हेमाद्रौ शाठ्यायनिः—" प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः ॥ " वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशनाः— " वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥" इति आधानेपकर्षमाह हेमाद्रावुशनाः—" पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥" विशेषस्तूक्तो विवाहनिर्णये ॥ कण्वः—" नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ॥ तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥" गारुडेपि—' आपादाद्यकृतं यत्तु कुर्यादूर्ध्वं मृताहनि ॥' अथ सपिण्डीकरणनिर्णयः । माधवीये हारीतः " या तु पूर्वममावास्या मृताहाद्दशमी भवेत् ॥ सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोग्निमान् ॥" मृताहादूर्ध्वं दशमी एकादशीत्यर्थः ॥ " सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्ववच्चाग्निमान्सुतः ॥ परतो दशरात्राच्चेत्कुहूरब्दे परेतरः " इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ आहिताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः ॥ तदाह गालवः—" सपिण्डीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते ।

कारण इस प्रेतका (कुत्सित) मरण न हो दूसरी बार करना भी पिछलोंका है, अपने समयमें किये पहिलोंका नहीं, सोई माधवीयमें कार्ष्णाजिनिने कहा है कि, वर्षदिनसे प्रथम जहां २ सपिंडी की है वहां २ उसके उपरान्त मासिकश्राद्धोंको अपने २ समयमें करै॥ हेमाद्रिमें शाठ्यायनिका वाक्य है कि, प्रेतश्राद्ध और सपिंडीको संक्षेपसे भी वह ब्राह्मण करै, जो नांदीमुखकी इच्छा करै, वृद्धिके विना अपकर्षमें उशनाने दोष लिखा है कि, वृद्धिश्राद्धके विना जो मनुष्य प्रेतश्राद्ध करता है वह पितरों सहित घोर नरकमें जाता है । आधानमें संक्षेप उशनाने हेमाद्रिमें लिखा है कि, पिताकी सपिंडी वार्षिक मरनेके दिन होती है, और आधान आदि आजाय तो वर्षसे प्रथम भी होती है, विशेष तो विवाहनिर्णयमें लिखा है, कण्वने कहा है कि, नवश्राद्ध और मासिक जो अन्तमें पडै वह उत्तरतन्त्रमें अनुष्ठान करना चाहिये, गरुडमें लिखा है कि, मृत्युके दिन आपत्ति आदिसे यदि न किया हो तो वह उससे आगे न करना चाहिये ॥ अब सपिंडीकरणको लिखते हैं । माधवीयमें हारीतका कथन है कि, जो अमावस्या मृत्युके दिनसे दशादिनमें होय तो अग्निहोत्री पुत्रको उसमें सपिंडी करनी चाहिये, मरनेके दिनसे दशमी नाम एकादशी होय यह अर्थ है, कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि, अग्निहोत्री पुत्र प्रथम अमावसमें सपिंडी करै, दशरात्रसे पीछे पूर्व होय तो पूर्ण वर्षमें करै, कारण कि, आहिताग्निके विना वेदोक्त कर्म और पिंडपितृयज्ञकी सिद्धि नहीं होसकती, यहां गालवने लिखा है कि, सपिंडी करनेसे जब प्रेत पितर पदवीको प्राप्त होते हैं, तब अग्नि-

आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते" ॥ मदनरत्ने प्रजापतिः–' नासपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् ।' अपरार्के कात्यायनः–" एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् ॥" आशौचान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिदह्नीत्यर्थः। पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन मातुरपि प्राग्दर्शात्सपिण्डनं युक्तमित्यपरार्कः ॥ एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कार्यम् ॥ तेन विना पार्वणायोगाद् द्वादशाहे वा कार्यम् ॥" साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् ॥ द्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः ॥" इति गोभिलोक्तेः। साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे–"प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात् कर्तानग्निर्यदा भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके ॥" इति सुमन्तूक्तेः ॥ मदनरत्ने लघुहारीतोपि " अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही ॥ प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात् त्रिपक्षे वै सपिण्डनम् ॥" द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव " साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत् ॥ द्वादशाहे तदा कार्यं सपिण्डीकरणं पितुः" इति तेनैवोक्तेः ॥ द्वयोरनग्नित्वे तु भविष्ये–" सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्दे भरतर्षभ ॥ द्वादशाहनि

होत्रिका अमावसमें यज्ञ होता है ॥ मदनरत्नमें प्रजापतिने लिखा है कि, विना सपिंडी किये अग्निहोत्री पुत्र पिंडपितृयज्ञ न करै, अपरार्कमें कात्यायनका कथन है कि, दर्शसे प्रथम विधिपूर्वक एकादशाहकी निवृत्ति करके अग्निहोत्री पुत्र माता पिताकी सपिण्डी करै, अर्थात् अशौचांत और प्रथम दर्शके बीचमें जिस किसी दिन करै, जब सपत्नीक पिता आदि देवता है तो माताका भी उनमें प्रवेश है, इससे माताकी भी सपिण्डी दर्शसे प्रथम युक्त है यह अपरार्क लिखते हैं, इसी प्रकार पितामह आदिकी भी सपिंडी दर्शसे प्रथम करनी, कारण कि, उसके विना पार्वण नहीं होसकता अथवा द्वादशाहको करनी कारण कि, गोभिलने लिखा है कि, जब कर्ता अग्निहोत्री हो और प्रेत अग्निहोत्री न हो तब पुत्र द्वादशाहमें सपिंडी करै ॥ और अग्निहोत्री प्रेतकी तो तीन पक्षमें करै, कारण कि सुमंतुका वाक्य है कि, यदि आहिताग्नि प्रेत हो और कर्त्ता अनग्नि होय तो तीसरे पक्षमें सपिंडी करै, मदनरत्नमें साग्निके निमित्त लघुहारीतका वाक्य है कि, हे वीर गृहस्थ अग्निहोत्री न हो और प्रेत अग्निहोत्री होय तो तीनपक्षमें सपिंडी करै, दोनों अग्निहोत्री होंय तो द्वादशाहमें करै, कारण कि, उसकाही कथन है कि, कर्ता और प्रेत दोनों अग्निहोत्री होंय तो पिताकी सपिंडी द्वादशाहमें करै, दोनों अग्निहोत्री न होंय तो भविष्यमें यह लिखा है कि, हे भरतश्रेष्ठ ! अनग्नि प्रेतकी सपिंडी पूर्ण-

षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा ॥ एकादशेपि वा मासि मङ्गलस्याप्युपस्थितौ ॥' कात्यायनगोभिलौ–' यदहर्वा वृद्धिरापद्यते ' । तत्र वृद्धिदिन एवेति वाचस्पतिः । तन्न ।' प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ' इति नियमात्सपिण्डनस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने चेति श्रीदत्तः॥ स्मार्तगौडस्तु–' वृद्धिपूर्वो वर्षान्त्यश्च क्षणः सपिण्डनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी । तेन परेद्युर्विघ्नाद्वृद्ध्यभावेपि तत्कर्तव्यतानिश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकम् ' इत्याह तन्न ॥ अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात् ॥ एतेन निमित्तनिश्चयवत एवाधिकाराद्वृद्ध्यभावेपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता ॥ वृद्धिपूर्वदिनस्य च कालस्याङ्गत्वेन निमित्तत्वाभावाच्चेन पुनः कार्यमित्यन्ये ॥ मदनरत्ने पुलस्त्यः–" निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः । पूर्णे संवत्सरे कुर्याद्वृद्धिर्वा यदहर्भवेत् ॥" चतुर्विंशतिमते–" सपिण्डीकरणं चाब्दे संपूर्णेभ्युदयेपि वा । द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥" अथ सपिण्डीकरणनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः–'त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि, षष्ठे चैकादशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे वा' इति ॥ एतत्प्रक्रमे विष्णुः–' मासिकार्थं द्वादशाहं

वर्षमें अनग्नियजमान करै, वा बारह दिन षण्मास त्रिपक्ष तीन महीने और ग्यारह मासमें तब करै, जब कोई मंगलकार्य उपस्थित हो ॥ कात्यायन और गोभिलका वाक्य है कि, जिस दिन वृद्धि हो उस वृद्धिदिनमेंही सपिंडी करै, यह वाचस्पति कहते हैं, सो ठीक नहीं, कारण कि, वृद्धि निमित्तक श्राद्ध प्रातःसमय होता है, इस नियमसे सपिंडीका अपराह्ण काल होनेसे पूर्वत्व पहले होनेका बाध होजायगा श्रीदत्त तो यह कथन करते हैं कि, वृद्धि दिनमें वा उसके पूर्वदिनमें करै, स्मार्त्त गौडने तो यह लिखा है कि, वृद्धिसे पूर्व और वर्षाके अन्तका समय सपिंडीसे प्रेतत्वके नाशमें सहायक है, तीसरे पहले दिन विघ्नसे वृद्धिके अभाव होनेपर भी उसके करनेका निश्चय सहित कालान्तरमें (क्रियमाण) करने योग्य वृद्धिसे पूर्व समयमें किया प्रेतत्वका नाशक है, सो ठीक नहीं ॥ कारण कि, असमयमें किये फलका जनक नहीं होता, तिससे यह मिश्रका कथन परास्त हुआ कि, निमित्तके निश्चयवालेकाही कर्ममें अधिकार है, इससे वृद्धिके अभावमें भी सपिंडी करनेमें कुछ क्षति नहीं । वृद्धिसे पूर्वका दिन और वर्षका अन्त ये कालके अंग हैं इससे निमित्त नहीं हो सकते तिससे फिर करना यह और कथन करते हैं, मदनरत्नमें पुलस्त्यका वाक्य है कि, निरग्निपुत्र पिता माताकी सपिंडी पूरे वर्षमें वा वृद्धिके दिन करै, चतुर्विंशतिके मतमें लिखा है कि, पूर्ण वर्षमें वा वृद्धिके दिन द्वादश वा एकादश दिनमें सपिंडी करै ॥ अब सपिंडीको लिखते हैं:–पृथ्वीचन्द्रोदयमें बौधायनका वाक्य है कि, तीन पक्ष तीसरे महीने छठे महीनेमें वा ग्यारहवें वा बारहवें दिनमें सपिंडी होती है, इसी प्रकरणमें विष्णुने कहा है कि, मासिकके निमित्त बारह दिनमें श्राद्ध करके तेरह दिनमें

कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा कुर्यान्मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां द्वादशेऽह्नि संवत्सराभ्यन्तरे यद्य-धमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत् इति ॥ आशौचोत्तरं द्वादशस्वहस्सु मासिकानि ॥ तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषु मासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं कुर्यात् ॥ अधिमासे तु चतुर्दशेऽह्नि कुर्यात् ॥ शूद्रस्त्रयोदशे द्वादशेऽह्नीत्यस्य मासिका-न्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ पैठीनसिः—"संवत्सरान्ते संसर्जनं नवमे मासी-त्येके ॥' अत्र साग्नेरनग्नेर्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्तानामनुकल्पा ज्ञेयाः ॥ कल्पतरुस्त्वग्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह ॥ तन्न 'यदहर्वा' इति स्वात-न्त्र्यश्रुतेः ॥ यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरग्नेरेवोक्तः तथापि साग्नावपि ज्ञेयः ॥ उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्वृद्धेरपि प्राप्तेः ॥ वक्ष्यमाणगोभिलवचनात् ॥ ' अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु' इति दोषश्रुत्यविशेषाच्च ॥ अपरार्कपृथ्वीचन्द्रा-दिस्वरसोऽप्येवम् ॥ अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् । सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्ध-लोप एवेत्याचार्यचूडामणिः ॥ पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धवि-वेकः ॥श्रुतिसागरेऽपि बृहस्पतिः—"प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्न कृते वृद्धिकर्मणि । तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥ " गर्भाधानस्य त्वन्तरेऽपि संभवात् ॥ ' अन्य-

---

सपिंडी करै, शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंके विना बारह दिनमें वर्षके भीतर जो अधिकमास हो उस महीनेमें मासिकके निमित्त एक दिन बढाले, अशौचके पीछे बारह दिनोंमें मासिक करै, उन्हीं दिनोंमें प्रथम आठ द्वादशदिनोंमें ऊनमासिक आदि करके तेरह दिनमें सपिंडी करै, अधिमासमें तो चौदह दिनमें करै, शूद्र तेरह वा बारह दिनमें करै, यह मासिकके अन्त्यदिनका ज्ञापक है यह पृथ्वीचन्द्र लिखते हैं ॥ पैठीनसिने कहा है कि, संवत्सरके अंतमें वा किसीके मतसे नौवें महीनेमें सपिंडी होती है, यहां साग्नि पूर्वोक्तकालमें न कर सके तो तीन पक्षसे वर्षके अन्ततक इसका अनुकल्प जानना, कल्पतरुने तो यह लिखा है कि, सब अपकर्षके प्रकार वृद्धिके निश्चय होनेपर ही होरहेहैं, सो योग्य नहीं कारण कि, जिस दिन वृद्धि हो उस दिन करै यह स्वतंत्र वाक्य है, यद्यपि वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष निरग्निको लिखा है तथापि साग्निको भी जानना कारण कि, उक्तकालकी असम्भवतामें वर्षका अन्त आदि गौणकालके समान वृद्धिभी प्राप्त है, आगे कहे गोभिलके वाक्यसे और पिछलेका अयातयाम (बुरा) मरण न हो इस दोषके सुननेमें अविशेषसे अपरार्कमें पृथ्वीचन्द्रोदयका आशयभी यही है, यहां वृद्धिपद मुंडन यज्ञोपवीत विवाहमात्रका ज्ञापक है, सीमंतोन्नयनादिमें तो वृद्धिश्राद्धका लोपही होता है, यह आचार्य्य चूडामणि लिखते हैं, पुंसवन अन्नप्राशनपर्यन्तोंमें आवश्यकता होनेसे अपकर्ष होता है यह श्राद्धविवेक लिखते हैं ॥ श्रुतिसागरमें भी बृहस्पतिका वाक्य है कि, जिस कर्ममें वृद्धिकर्मके न करनेसे पाप हो उसके निमित्त आकर्षसे मातापिताकी सपिंडी करै, गर्भाधान तो और

श्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्' इति देवलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयस्तन्न ॥' ऋतुस्नातां तु यो भार्याम्' इति निषेधात् 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इति मैथुने दोषाभावाच्च पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ नापकर्षः ॥ तस्य महागुरुत्वाभावात् ॥ तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचन्द्रिका । तन्न । 'भ्राता च' इत्यादौ तदभावेप्यपकर्षोक्तेः तेन निर्देशोप्युपलक्षणम् ॥ व्याघ्रः—"आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥" एवदाशौचान्तोपलक्षणम् ॥' सर्वेषामेव वर्णानामशौचान्ते सपिण्डनम्' इति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेः ॥ सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरम् ॥ शूद्राणां त्वाशौचमध्ये ॥' मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां द्वादशेहनि कीर्तितम्' इति विष्णूक्तेः एतद्दर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपरार्के कल्पतरौ च ॥ वृद्धमनुः—"द्वादशेऽहनि विप्राणामशौचान्ते तु भूभुजाम् । वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथ वा स्यात्सपिंडनम्" निर्णयामृते गोभिलः—"द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् । सपिंडीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु ॥" इदं साग्नेरुक्तकालासंभवे गौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ ऋष्यशृङ्गः—"सपिंडीकरणं

ऋतुमेंभी हो सकता है और श्राद्ध परान्न गंध माल्य मैथुन इनको पहले वर्षमें न करै, इस देवलके कथनसे मैथुनका निषेध है इसके गर्भाधानमें अपकर्ष न करना, यह श्राद्धकौमुदी आदि लिखते हैं कारण कि, गर्भाधानमें इस वाक्यसे मैथुन करनेका दोष नहीं कि, ऋतुस्नाता भार्याके निकट जो गमन नहीं करता उसको भ्रूणहत्या प्राप्त होती है, पर्व और आदिकी चार रात्रिको जो ऋतुकालमें त्यागताहै वह ब्रह्मचारीही कहाता है, पितामहकी मृत्युमें पौत्रवृद्धिमें अपकर्ष न करै कारण कि, वह महागुरु नहीं उसमें उससे ऊर्ध्वोंके निमित्त वृद्धिश्राद्ध होता है यह श्राद्धचंद्रिकामें लिखा है सो यथार्थ नहीं है कारण कि 'भ्राता च' इत्यादिमें गुरुके अभावमें भी अपकर्ष लिखा है तिससे निर्देश उपलक्षण है । व्याघ्रने लिखा है कि, कुलके धर्म असंख्य हैं, और पुरुषोंकी अवस्थाका क्षय है और शरीर अनित्य है इससे बारहवां दिन श्रेष्ठ है, यह अशौचांतदिनका उपलक्षण है कारण कि, निर्णयामृतमें कात्यायनका वाक्य है कि, सब वर्णोंमें अशौचके पीछे सपिंडी करै, सब वर्णोंके यह वाक्य त्रैवर्णिकके विषयमें लिखे हैं, शूद्रोंके तो अशौचके मध्यमें होता है कारण कि, विष्णुने कहा है कि, शूद्रोंकी सपिंडी मंत्रोंसे रहित बारह दिनमें लिखी है, यहभी दर्शश्राद्धके अधिकारी शूद्रके विषयमें है, यह अपरार्क और कल्पतरुमें कहा है ॥ वृद्धमनुने लिखा है कि, ब्राह्मणोंके बारह दिनमें, राजाओंके अशौचके अन्तमें, वैश्योंके त्रिपक्षआदिमें सपिंडी होती है, निर्णयामृतमें गोभिलका वाक्य है कि, बारह दिनआदि कालमें जो प्रमादसे सपिंडी आगेके कालोंमें सपिंडी करै, यह साग्निके कहे समयमें असम्भव होनेपर गौणकालमें करनेके निमित्त है यह मदनपारिजातमें लिखते हैं । मदनरत्नमें भी इसी

श्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम् ॥ रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत् ॥" कालादर्शेपि—"एकादशे द्वादशेह्नि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा। षष्ठे चैकादशे वाब्दे संपूर्णे वा शुभागमे ॥ सपिंडीकरणस्येत्थमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः । साग्नौ कर्तुर्भावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः ॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः । रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चरेत् ॥" नारदसंहितायां तु—"सपिंडीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेह्नि वा ॥" इत्युक्तम् ॥ वत्सरेतीतेपि ज्ञेयम् ॥ 'ततः सपिंडीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम्' इति भविष्योक्तेः 'पितुः सपिंडीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम्' इति नागरखण्डोक्तेः ॥ 'पितुः सपिंडीकरणं वार्षिके मृतवासरे' इत्युशनसोक्तेश्च ॥ "पूर्णे संवत्सरे पिंडाः षोडशाः परिकीर्तिताः। तेनैव च सपिंडत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते ॥" इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव ॥ यत्तु—"पूर्णे संवत्सरे कुर्यात् सपिंडीकरणं सुतः। एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत् ॥" इति धवलनिबन्धे जावाल्युक्तेः ॥ "पुत्रः सपिंडनं कृत्वा कुर्यात्स्नानं सचैलकम्। एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात् कुतपे न विचारयेत् ॥" इति स्वल्पमात्स्योक्तेश्चाब्दिकं तद्दिने पुनः कार्यमिति केचित् ॥ ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्ष्याः ॥ षोड-

---

प्रकार लिखा है, ऋष्यशृंगने लिखा है कि, यदि सपिंडीश्राद्ध पूर्वोक्त समयमें न किया होय तो भादोंमें हस्त रोहिणी अनुराधा नक्षत्रमें करना चाहिये, कालादर्शमें भी कहा है कि, ग्यारह वा बारह दिनमें तीन पक्ष वा तीसरे छठे वा ग्यारहवें महीनेमें पूर्णवर्षमें वा श्रेष्ठमुहूर्त्तमें इस भांति सपिंडीके आठ समय लिखे हैं, अग्निहोत्री कर्त्ता होय तो प्रथम समय और साग्नि प्रेत होय तो तीसरे समय आठोंमें होता है और अनाग्निको तो दूसरे,आदि सात समय मुनियोंने लिखे हैं वा रोहिणी आर्द्रा हस्त अनुराधामें उसको करै ॥ नारदसंहितामें तो वर्ष वा अर्धवर्षमें तीन महीने वा त्रिपक्षमें वा बारह दिनमें सपिंडी करै, यह लिखा है, वह वर्ष समाप्त होनेपर जानना, कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, सपिंडीकरण वर्षसे आगे स्थित जानना और नागरखंडमें भी लिखा है कि, पिताकी सपिंडी वर्षके आगे करै, और उशनाने भी लिखा है कि, पिताकी सपिंडी संवत्सरमें मरणदिनमें करै, और हेमाद्रिमें भी लिखा है कि, पूर्णवर्षमें सोलहवां पिंड होता है, उससेही सपिंडी वार्षिक दोनों होतेहैं इसको हटाकर करना मूढता है, जो किसीने यह लिखा है कि, बेटा पूरे वर्षमें सपिंडी और उसी मरणमें एकोद्दिष्ट पूर्ण करै, तथा धवलनिबंधमें इस जाबालिके कथनसे और पुत्रको सपिंडी करके सचैल स्नान करना चाहिये, फिर कुतुपसे प्रथम एकोद्दिष्ट करै, इस स्वल्प मात्स्योक्तके कथनसे उसी दिन फिर वार्षिक करै, यह कोई लिखते हैं वे निर्मूल होनेसे तथा हेमाद्रिके विरोधसे त्याग करने योग्य हैं ।

शत्वं च सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे ॥ स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षे श्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥ तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात् ॥ 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नतु कुर्यात्सपिंडताम् । प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ॥' इति वायवीयोक्तेः षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वं कालाभावेपि तान्यदत्त्वा न कुर्यात् ॥ किं तु दत्त्वैव ॥ तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिंडनमेव कुर्यादित्यपरार्कः ॥ सपिंडने तु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः ॥ तत्रैव—"अज्ञानादथ वा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता । तत्रापि विधिवत्कार्या कालादपि चिरादपि ॥" तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः ॥ 'ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः' । इति मनूक्तेः ॥ अपरार्के प्रचेता अपि—"एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः । कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्दिकं तु पृथक्पृथक् ॥" मरीचिः—"सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥" यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथक्कार्यमिति । तन्न । एवकारस्य तदभावेपि पृथक्करणाभावार्थत्वात् ॥ अन्धादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च ॥ अतस्तेषां प्रत्यवाय-

सोलह कहना तो उस पक्षमें है, जब सपिंडीको षोडशश्राद्धके अन्तर्गत मानतेहैं ॥ स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि वर्षके अन्तदिनमें संवत्सरविमोक्ष श्राद्ध और मरण दिनमें वार्षिक श्राद्ध करै, गौडभी ऐसेही लिखते हैं, वह पूर्वविरोध होनेसे त्यागनेयोग्य हैं, वह सपिण्डी पुत्रके होते औरको न करनी चाहिये कारण कि, वायवीयमें यह लिखा है कि षोडशश्राद्ध देकर भी परदेशसे आया पुत्र बहुतकाल बीतजाने पर सपिंडीको संपादन करै। वर्षके उपरान्त षोडशश्राद्धोंको विना दिये समयके अभावमें भी सपिंडी न करै, किन्तु देकरही करै, यदि छोटे भाई आदिने करदिये होयँ तो सपिंडी न करै, यह अपरार्कका कथन है, सपिंडीमें तो कनिष्ठोंका अधिकार नहीं, वहांही लिखा है कि अज्ञान वा मोहसे सपिण्डी न की होय तो बहुत कालमें भी विधिसे करनी, उनमेंभी ज्येष्ठका ही आधिकार है, कारण कि ज्येष्ठके उत्पन्न होतेही मनुष्य पुत्रवान् होता है, यह मनुजी कहते हैं ॥ अपरार्कमें प्रचेताने भी कहा है कि, एकादशाहसे लेकर सम्पूर्ण कर्म ज्येष्ठको क्रमसे करने उचित हैं और उनको पुत्रोंमें एकही करै, और (क्षयाह) को तो भिन्न २ को करना चाहिये, मरीचिने तो यह लिखा है कि, सबकी सम्मतिपूर्वक इकट्ठे द्रव्यसे बडेने जो कृत्य किया वह सबका किया होजाता है, वाचस्पति और शूलपाणिने यह लिखा है कि, द्रव्य देनेकी सम्मति न होय तो छोटा भ्राता पृथक् करै, सो उचित नहीं कारण कि, एवपद संमतिके अभावमें भी पृथक् न करनेके निमित्त इस प्रकार है जैसे अन्धको और कनिष्ठोंको ज्येष्ठके होते अधिकार भी नहीं है, इससे

१ सोलह श्राद्ध करने उपरान्तही सपिण्डी करै सोलह श्राद्ध न देकर सपिंडी नहीं कर सकता॥

मात्रम् ॥ आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव ॥ अन्यथा पितृयज्ञासिद्धेः ॥ एवमावश्यककवृद्धावपि कनिष्ठोन्यः सपिण्डो वा कुर्यात् ॥ "भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः ॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमाहते । " इति मदनरत्ने लघुहारीतवचनात् ॥ वृद्ध्यनन्तरं प्रथमाब्दमध्येपि काम्यं कुर्यात् ॥ वृद्ध्यभावे तु प्रथमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः ॥ काम्योक्तेरनावश्यके इष्टापूर्तादौ नापकर्षः ॥ एतद्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नान्दीश्राद्धाधिकारार्थम् ॥ अभ्युदयपदं च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपरमिति हेमाद्रिः ॥ तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता ॥ भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नान्दीश्राद्धेन्यदेवतामात्रपरोपकर्ष इत्यपास्तम् ॥ अस्य क्रममात्रपरत्वाद्वृद्धिकर्तैव सपिंडनं कुर्यादिति न नियम इति गौडाः ॥ अत एव कन्यायाः मातृमरणे भ्रात्रा सपिंडने कृते पितुर्नाधिकारः ॥ शूलपाणिस्तु 'महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते ' इति निषेधात् मृतस्य भ्रात्रादिः सपिंडनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्नतु स्वपुत्रसंस्कारे संस्कार्यपितुः सपिंडनं विना वृद्धौ दैवतात्वाभावादि-

छोटोंको पापमात्र होता है, आहिताग्नि होय तो छोटा भी करै, अन्यथा उसका पितृयज्ञ न हो सकेगा इसीप्रकार आवश्यक वृद्धिको भी छोटा वा और सपिंड करै ॥ कारण कि, यह मदनरत्नमें लघुहारीतने कहा है कि, भाई, भाईका पुत्र, शिष्य सपिण्डी करके अभ्युदय श्राद्ध करै, और तैसेही पहले वर्षको त्यागकर काम्यश्राद्ध करना चाहिये, वृद्धिश्राद्धके उपरान्त पहले वर्षमें भी काम्यश्राद्ध करै, वृद्धिके अभाव होनेमें तो पहिले वर्षके उपरान्तही करै, काम्यश्राद्ध कहनेसे अनावश्यक इष्टापूर्त्त आदिमें अपकर्ष नहीं है यह भी भाईके पुत्र आदिके संस्कारमें जिसको अधिकार कहा है उसको नान्दीश्राद्धके अधिकार निमित्त है, और अभ्युदय पद नान्दीमुख श्राद्धके निमित्त सम्पूर्ण कर्मोंका बोधक है, यह हेमाद्रि कहते हैं इससे यह श्रीदत्तका कथन परास्त होता है कि, बडाभाई देशान्तरमें होय तो कनिष्ठको सपिंडीके विनाही वृद्धि श्राद्ध करके पुत्रका संस्कार करना चाहिये, और भ्रातृ शिष्य आदिके कहनेसे यह परास्त हुआ कि, नान्दीश्राद्धमें पूजने योग्य देवतामात्रमें अपकर्ष होता है, गौड तो यह लिखते हैं कि यह वचन क्रममात्रका जनानेवालाहै इससे वृद्धिश्राद्धके करनेवालेहीको सपिण्डी करनी चाहिये, यह नियम नहीं है इससे माताकी मृत्युमें भ्राता सब सपिंडी करले तब पिताको कन्यादान करनेका अधिकार नहीं है ॥ शूलपाणिने तो यह कहा है कि, गुरु (बडे भ्राता) की मृत्यु होनेपर वृद्धि कर्मकी पूजा नहीं होती इस निषेधसे मृतक भाई आदिकी सपिंडी करके उसके पुत्र और भाई आदिका अभ्युदय करना चाहिये, जब अपना पुत्र संस्कार करै, तो संस्कार करनेयोग्य पिता सपिंडीके विना वृद्धिश्राद्धमें देवता नहीं हो

१ एकादशाहादि निवृत्तकरके फिर यथाविधि अग्निमान् पुत्र मातापिताकी सपिण्डी करै सपिण्डी किये विना अग्निमान् पुत्र पितृयज्ञ नहीं करसकता ॥

त्याह ॥ तन्न । विदेशस्थेन ज्येष्ठेन पुनः कार्यम्—"यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिंडीकरणं पुनः ॥" इति स्मृतेः ॥ 'ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन सपिंडीकरणे कृते' आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति वा पाठः ॥ "देशान्तरगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत् । श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशाहान्तं तिलोदकम् ॥ ततः सपिंडीकरणं कुर्यादेकादशेहनि । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥" इतिवचनाच्चेति भट्टाः ॥ सिङ्गाभट्टीयेऽप्येवम् ॥ पूर्ववचनेऽत्र च मूलं चिन्त्यम् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'विभक्ता ऋद्धिकामाश्चेत्पुत्राः पृथक्सपिंडीकरणं कुर्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां विशेषः प्रागुक्तः ॥ केचित्तु वृद्धिं विनापि कनिष्ठस्य सपिंडनमाहुः ॥ 'मातापित्रोर्मृते काले ज्येष्ठे देशान्तरस्थिते । कनिष्ठेन प्रकर्तव्यं सपिंडीकरणं तथा ।" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ "गते वा रोधिते ज्येष्ठे पित्रा वा प्रेषिते सति । षण्मासान्न निवर्तेत तदा कार्यं कनीयसा ।" ॥ संवर्तः— "पुनः सपिंडीकरणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत् । अर्घ्यसंयोजनं नैव पिंडसंयोजनं न च" इति ॥ तेषां वचसां निर्मूलत्वात्—'प्रोषितावसिते पुत्रे' इत्यादिविरोधाच्चोपेक्ष्याः ॥ व्युत्क्रममृतौ । व्युत्क्रममृतौ तु हेमाद्रौ ब्राह्मे—"मृते पितरि यस्याथ विद्यन्ते च पितामहाः । तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ तेभ्यश्च पैतृकः

सकता सो उचित नहीं । देवताके किये अपकर्षका पूर्वमें खण्डन करचुके हैं, यदि वृद्धिश्राद्धके विना छोटेने सपिंडी करदी होय तो परदेशमें स्थित बडा फिर सपिंडी करै, कारण कि यह स्मृतिमें लिखा है कि, छोटे भ्राताके किये कर्मको प्रेतशब्दको छोडकर बडा भ्राता फिर सपिंडीको करे, ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता सपिंडी करले, वह कनिष्ठ माता पिताकी सपिंडी करले तो देशान्तरके रहनेवाले पुत्र कैसे करैं, वे सुनकर मुण्डन करावें, और दशदिन तक तिलांजलि दें, फिर ग्यारहवें बारहवें दिनमें सपिण्डी करैं यह शातातपने लिखा है इससे भी वह उचित नहीं यह भट्ट लिखते हैं ॥ सिंगाभट्टीयमें भी इसी प्रकार लिखा है, पूर्व और इस वाक्यमें मूल नहीं है, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि, पृथक् हुए पुत्र वृद्धिकी इच्छा करैं तो पृथक् सपिंडी करैं, इसमें दत्तक और उसके पुत्रआदिकोंका विशेष प्रथम कह आये हैं । कोई तो वृद्धिके विना भी कनिष्ठको सपिंडी करनेका विधान कहते हैं कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि, ज्येष्ठ पुत्र कहीं गया हो वा बंधनमें हो वा पिताने कहीं भेजा हो और छै महीनेतक न आवे तो छोटा भाई सपिंडी करले । संवर्तने कहा है कि, फिर सपिंडी श्राद्धको पार्वणके समान करै, अर्घ और पिंडोंको न मिलावे, वे वाक्योंके निर्मूल होनेसे और पूर्वोक्त 'प्रोषितावसिते पुत्रः' इत्यादि वाक्योंके विरोधसे उपेक्षा करनेके योग्य हैं ॥ क्रमसे मृत्यु न होनेमें तो हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है कि, जिसका पिता मृतक होगया हो और पितामह जीवित हो वह प्रपितामहसे लेकर प्रारम्भ कर

पिण्डो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत्। मातर्यथ मृतायां च विद्यते च पितामही॥ प्रपितामहीपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः॥" एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम्॥ तदाह सुमन्तुः–" त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने। पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः॥" यत्तु–' व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता' इति तन्मातापितृभिन्नविषयम्॥" व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते। यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः॥" इति माधवीये स्कान्दोक्तेः॥ मदनरत्नादौ चैवम्॥ अत्र ' प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते तत्सपिण्डने सति पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम्' इति हेमाद्रिमतमाह॥ अन्ये नैव तन्मन्यन्ते॥ तत्त्वं तु पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं न तत्सत्त्वे। " त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने। पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः॥ पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेऽप्यसंस्कृताभ्यामेव पितुः सपिण्डनं कुर्यात्॥" असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकौ॥ पितरं तत्र संस्कुर्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत्॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात्॥

तीन पिंड दे, और उनमें पूर्वके तुल्य पिताके पिण्डको मिलादे, और माताकी मृत्यु हुई होय और दादी जीती हो तो परदादी आदिको देना। और योंही परदादाके जीते हुए उनके पिताआदिमें जानना चाहिये, सुमंतुने लिखा है कि तीन पिंडोंमें एकके संग सापिंडी होनेपर भी प्रेत पितर होता है, यह धर्मकी व्यवस्था है और जो किसीने यह कहाहै कि, क्रमरहित मरोंकी सापिंडी न करै वह माता पिता और पतिसे भिन्नविषयमें है क्योंकि माधवीयमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, व्युत्क्रमसे मृतकोंकी सापिंडी इष्ट नहीं है, यदि पिता माता पति मृतक हुए होय तो यह विधि नहीं है, मदनरत्नआदिमें भी इसी प्रकार लिखा है॥ यहां हेमाद्रिने यह बात लिखी है कि, प्रपितामहआदिके संग पिताकी सापिंडी करने उपरान्त पितामहके मृत्यु होनेपर पितामहकी सापिंडीके पीछे फिर पितामहके संग पिताकी सापिंडी करै परन्तु दूसरे कोई इस मतको स्वीकार नहीं करते। सिद्धान्ततो यह है कि, यदि पिताकी सापिंडी न हुई हो तो दादाके संग फिर करै, यदि हुई होय तो न करना। कारण कि यह विष्णुधर्मका कथन है कि तीन पिंडोंके बीचमें एकके संगभी सापिंडी होनेपर प्रेत पितर होजाय तो यह धर्मकी व्यवस्था है, पितामह वा प्रपितामहका और पुत्रोंने संस्कार न किया होय तो संस्कारविनाही उनके संग पिताकी सापिंडी करनी। कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, प्रथम संस्कार न कियेहुए पोते और परपोतेका संस्कार न करै, और पिताका तो संस्कार असंस्कृत हुएका भी करदे, यह कात्यायनने लिखा है॥ कोई

असंस्कृतौ दाहाद्यौरीति केचित् ॥ असपिण्डीकृताविति तु तत्त्वम् । अत एवोक्तं तत्रैव "पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा । पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः॥" पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न तु पतितादि ।'अभिशस्तपतितभ्रूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत्' इति बैजवापोक्तेः'॥'पापकर्मिणो न संसृजेरन्' इति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तं निर्णयामृते ॥ पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव ॥' पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः । पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्" इति कात्यायनोक्तेः ॥ अपरार्के शूलपाणौ चैवम् ॥ तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसपिण्डनयोरेव पार्वणानुप्रवेश इति मूर्खोक्तिः परस्ता ॥'कृते सपिंडीकरणे प्रेतः पार्वणभाग्भवेत्' इति हारीतविरोधाच्च ॥ केचित्पुत्रान्तराभावेपितामहवार्षिकमप्याहुः । तन्न॥ श्राद्धषोडशमिति निगमात् ॥ इच्छयाभवत्येव ॥' पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।' इति वाचस्पतिधृतगर्गोक्तेः त्रयाणां यौगपद्ये तु प्राधान्यात्पितुः सपिण्डनं कृत्वा पूर्वयोः कुर्यात् ॥ पितामहे मृते दशाहान्तः पितुर्मृतौ पितुः संस्कारं कृत्वा पितामहस्य पुनः

असंस्कृतपदसे दाहआदि संस्कार न होना कहते हैं, सपिंडी होगई हो तो यह सिद्धान्त है इसीसे वहांही लिखा है कि पापीभी शुद्धके संग वा पापीके संग शुद्धका संस्कार होनेसे पवित्र होता है इससे दादाके संग पिताका संस्कार करै, यहां पापीपदसे वह ग्रहण करना जिसकी सपिंडी न हुई हो वह पतितआदिका ग्रहण नहीं है, कारण कि, बैजवापने कहा है कि, शापित भ्रूणहत्यारे व्यभिचारिणी स्त्रीकी सपिण्डी न करो और गौतमने भी कहा है कि पापकर्मियोंकी सपिंडी न करै यह निर्णयामृतमें लिखा हैं, पहले दोनोंके पुत्र न होंय तो पौत्र सपिंडी करै, कारण कि, कात्यायनने कहा है कि पिताके पीछे पितामहकी मृत्यु होय तो पौत्र एकादशाह आदि षोडश श्राद्ध करै, यदि दादा पुत्रवाला होय तो पुत्र पिताकी सपिंडी करके मासिक आदि श्राद्ध करै ॥ अपरार्क और शूलपाणिमें भी इसी प्रकार कहा है, इससे यह मूर्खका कथन परास्त हुआ कि, सपिंडी अनित्य हैं, इससे जिनकी सपिंडी हुई उनका ही पार्वणमें प्रवेश है और इस हारीतऋषिके वाक्यका भी विरोध है कि, सपिंडीकरनेपर प्रेत पार्वणका भागी होता है, यह कोई लिखते हैं और पुत्र न हो तो पितामहके वार्षिकको भी लिखते हैं, सो ठीक नहीं, यहां सोलह श्राद्ध होते है यह नियम है, इच्छापूर्वक तो श्राद्ध होताही है, कारण कि, वाचस्पतिमें यह गार्ग्यका वाक्य कहा है कि, पितामहको श्राद्ध दे तो एकोद्दिष्ट दे, पार्वण न देना चाहिये, तीनों एकवार मृतक होंय तो प्रधान होनेसे पिताकी सपिंडी संपादन कर पहिले दोनोंकी करै ॥ पितामहकी मृत्यु होनेपर दशदिनके भीतर पिताकी मृत्यु

सर्वमावर्तयेत् ॥ वृत्ते दशाहे नैव ॥ अशक्त्या पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहश्राद्धे प्रक्रान्ते पितृमृतौ तदाशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वादिति मदनपारिजातपृथ्वीचन्द्रौ. ॥ यत्तु–" उत्तरात्रितयरौद्ररोहिणीयाम्यसर्पपितृभेषु चाग्निभे । श्मश्रुकर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥" इति सपिण्डनप्रकरणे पाठान्मुख्यकाले निषिद्धर्क्षे सपिण्डनापकर्षः ॥ सर्वकालेषु तद्वत्त्वे तद्वर्ज्यान्येव ॥ पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पतिमिश्राः, तन्न ॥ अस्य पारिभाषात्वेन वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात् ॥ अस्य प्रेतमात्रदैवत्यभावाच्च ॥ स्त्रीणां सपिण्डनानिर्णयः । अथ स्त्रीषूच्यते ॥ हेमाद्रौ वृहस्पतिः–" भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् " यत्तु भाविष्ये– "पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः" इति तदासुरादिविवाहोढापरम् । 'आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ' इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥ तच्चानेकवचनेषु पितामह्या पत्या मातामहेन वा सहोक्तम् ॥ तत्र व्यवस्थोक्ता भाविष्ये– 'जीवात्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनम् । प्रमीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः ॥' तत्पित्रा मातुः पित्रा ॥ लौगाक्षिः–" पितामह्यादिभिः सार्धं

हुई होय तो पिताका संस्कार करके फिर पितामहके सब कर्मको करै दशदिन बीतगये होय तो इस प्रकार न करना, अशक्तिमें पिताकी आज्ञासे करना चाहिये, तिससे पौत्रने पितामहका श्राद्ध प्रारम्भ कर दिया होय तौ पौत्र पिताके अशौचमें ही दादाके कर्म करै कारण कि, उसका आरंभ होचुका है. यह मदनपारिजात और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै, जो यह वाचस्पतिने लिखाहै कि, तीनों उत्तरा आर्द्रा रोहिणी आश्लेषा मघा कृत्तिकामें बुद्धिमान् मनुष्य क्षौर और प्रेतकर्मको न करै, इस वाक्यसे मुख्यकालमें निषिद्ध नक्षत्र होयँ तो सपिंडीका अपकर्ष होताहै, सब कालमें निषिद्ध नक्षत्र होयँ तो सपिंडीसे पृथकही पूर्वोक्त ब्राह्मणोक्त षोडश श्राद्धोंको करै, यह वाचस्पतिमिश्र कहतेहैं सो यथार्थ नहीं कारण कि, इस वाक्यको पारिभाषिक होनेसे सावकाशकर्मकी विषयता प्राप्त है, और सपिंडीमें प्रेतमात्रको देवत्वका भाव है ॥ अब स्त्रियोंके विषयमें वर्णन करतेहैं–हेमाद्रिमें वृहस्पतिने लिखाहै कि, पतिके गोत्र और नामसे माताकी सपिंडी करै जो भविष्यपुराणमें कहाहै कि, पिताके गोत्रको त्यागकर पतिके गोत्रसे न करैं वह उस माताके विषयमें है जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाहीगईहों, कारण कि, वृहत्शातातपने कहाहै कि, धर्मजाननेवाला आसुर आदिविवाहोंमे पिताके गोत्रसे सपिंडी करै, वह माताकी सपिंडी अनेक कथनोंमें दादीपति नानाके संग लिखीहै उसकी व्यवस्था भविष्यपुराणमें कहीहै जिसका पिता जीवित हो वह माताकी सपिंडी पितामहीके संग करै, और पिता मृतक होगया होय तो पिताके संग करै लौगाक्षि

मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि ध्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति ॥" शंखः- "मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः । पितामह्यादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥" येन केनापि मातुः सापिण्ड्ये यत्रान्वष्टकादौ मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम् । "नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेऽहनि । पितामह्यादिभिः सार्धं मातुः श्राद्धं समाचरेत् ॥" इति शातातपोक्तेः ॥ अपुत्रायां तु पैठीनसिः "अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥" यत्तु लघुहारीतः- "पुत्रेणैव तु कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोपि ये । इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणे-' सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते ' इति ॥ तत्पुत्रपत्यभावे ज्ञेयम् ॥ अत्र सपत्नी पुत्रोपि ज्ञेयः "बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥" इति मनूक्तेरेतत्परत्वात् ॥ यत्तु शातातपः- "मृते पितरि मातुस्तु न कार्या सहपिण्डता । पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् " इति तदशक्तपरम् ॥ केषांचिद्वा मतमिति हेमाद्रिः ॥ अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिंड्यम् ॥" मृता यानुगता नाथं सा तेन सहपिण्डनाम् । अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंप्लवम् ।" इति शातातपोक्तेः ॥" पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डी-

---

कहतेहैं पितामहीआदिके साथ माताकी सपिंडी करै पिताके मरण और मरणमें जाने ॥ शंखका कथन है कि, पुत्र माताकी सपिंडी किस प्रकार करै, पितामही आदिके संग सपिंडी करना लिखाहै जिसकिसीके संग माताकी सपिंडी होय तो अन्वष्टका आदिमें माताका श्राद्ध भिन्न लिखाहै वह पितामहीके संग करना चाहिये, कारण कि, शातातपने कहाहै कि, नान्दीमुख अष्टकाश्राद्ध मरणादिन गयामें माताका श्राद्ध पितामहीआदिके संग करना पुत्र न होय तो पैठीनसिस्मृतिमें कहाहै कि, पुत्ररहित माता मृतक होजाय तो पति सासआदिके संग सपिंडी करै, जो लघुहारीतका यह वचन है कि, स्त्रीकी सपिंडी पुत्रही करै, और पुरुषकी तो भाईके पुत्र आदि औरभी करैं ॥ जो मार्कण्डेयपुराणके वाक्य है कि पुत्रके अभावमें स्त्रियोंकी सपिंडी नहीं होती, वे वाक्य पुत्र और भर्ताके अभावमें जानने चाहिये यहां सपत्नीका पुत्र भी मानना कारण कि, इसमें मनुका प्रमाण है कि, एककीही बहुत पत्नी हो इनमें एकपुत्रवाली होय तो वे सब उस पुत्रसे पुत्रवाली है यह मनुने कहाहै, जो शातातपने लिखा है कि पिताके मरनेपर माताकी सपिण्डी न करनी कारण कि पिताकी सपिंडीसे ही उसकी सपिंडी होगई, वह अशक्तके विषयमें है, वा किसी २ का सम्मत है यह हेमाद्रि लिखतेहै, अन्वारोहणमें तो पतिके संग सपिण्डी होती है कारण कि, शातातपने कहाहै कि, स्त्री मरकर अपने स्वामीके संग सपिण्डी तथा प्रलय-

करणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः ।" इति यमोक्तेश्च ॥ अत्रैकशब्दः पितामह्यादिपक्षनिवृत्त्यर्थः ॥ पतिपदं वर्गपरम् ॥ सपिण्डनस्य पार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्पतरुमदनरत्नादयः ॥ अन्ये तु भत्रैवैकेनाहुः "स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्" इत्येवकारश्रवणात् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि विकल्प उक्तः ॥ इदं तु तत्त्वम् ॥ यदा हेमाद्र्यादिमते द्वयोरेकः पिण्डस्तदा वर्गेण सह ॥ यदा माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक् पिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चैकेनापि ॥ अतो मातृपिण्डमसपिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादिभिः संयोजयेत् ॥ अन्त्यपक्ष एव युक्तः ॥ स्मृत्यर्थसारे तु—' अन्वारोहणेनैकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक् सपिण्डनं नास्ति ॥ भर्तुः कृते स्त्रिया अपि कृतं भवति' इत्युक्तम् ॥ तन्मतान्तरमस्तु ॥ इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम् ॥ आसुरादिषु तु शातातपः—" तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छ्वश्र्वा वा सपिण्डनम् । आसुरादिविवाहेषु विन्नानां योषितां भवेत् ॥" मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्रपितामह्या चेत्यर्थः ॥ सुमन्तुः—" पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे

पर्यंत स्वर्गनिवासके योग्य होती है, यमने कहाहै कि, एक भर्ताके संगही स्त्रीकी सपिंडी करैं कारण कि, वह मृतक होकर भी पतिके संगही मन्त्रोंकी आहुति और मन्त्रोंसे एकताको प्राप्त हुई है, यहां एकशब्द पितामही आदिके संग करैं, इस पक्षकी निवृत्तिके निमित्त है, पतिपद पतिके कुलका पक्ष है, कारण कि, सपिंडी पार्वण और एकोद्दिष्ट रूप है, यह माधव, कल्पतरु, मदनरत्न आदिका मत है. और तो एकपतिके संगही लिखतेहैं, कारण कि , पतिके संगही इसकी सपिंडी होती है, इस वाक्यमें एव (ही) पद सुनेहैं। पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी विकल्प लिखा है, सिद्धान्त तो यह है कि, जब हेमाद्रि आदिके मतसे दोनोंको एक पिंड दियाजाय तब पतिकुलके संग, और माधव पृथ्वीचन्द्र आदिके मतसे पृथक पिंड दियाजाय तब एकपतिके संगही सपिंडी करनी चाहिये और वचनसेभी एकके संग सपिंडी प्राप्त होतीहै, इससे माताके पिंडको असपिंडी कियेहुए पतिपिंडके संग मिलाकर एक किये हुए दोनों पिण्डोंको दादा आदिके संग मिलादे, इन दोनोंमें पिछला पक्षही योग्य और उचित है ॥ स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखतेहैं कि, सती होनेमें स्त्री पुरुष एकदिन मृतक हुए होंय तो स्त्रीकी सपिंडी नहीं होती, पतिके सपिंडी करनेसे स्त्रीकी भी होजाती है, वहभी मतांतर विद्यमान रहो, यह भी ब्राह्मआदि विवाहोंमें जानना चाहिये, आसुर आदि विवाहोंमे तो शातातपने कहा है कि, माता, पितामही, सासके संग उन स्त्रियोंकी सपिंडी होतीहै, जो आसुर आदि विवाहोंसे परिणीत हो अर्थात् मातामही और माताकी पितामही वा प्रपितामहीके संग सपिंडी करनी ॥ सुमंतुने कहाहै कि, पूर्ण

तद्वदित्याह भगवाञ्छिवः ॥" इदमासुरादिपरं पुत्रिकापुत्रपरं चोक्तं प्राक् ॥ हेमाद्रिस्तु ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पमाह ॥ अतो गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति श्राद्धप्रयोगसपिण्डने च दृश्यते, ॥ हेमाद्रावापस्तम्बोपि " कोकिलस्य यथा पुत्रा अन्यसंचयजीविनः। पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नारी मृता सती ॥" यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्ड्येन पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नित्यमित्याह। यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टे–' षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत ' इति, तदेतद्विषयमेव ॥ मातुः पृथक्श्राद्धाभावात् ॥ अत एव हेमाद्रौ भविष्ये मातुः सपिंडनं प्रक्रम्य "उदितेनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत। तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद्बुधः॥" इत्युक्तम् ॥ अस्य वृद्धावपवादमाह तत्रैव व्याघ्रपात् "कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा मातृपूर्वकम्। विधिज्ञो विधिमास्थाय वृद्धो मातामहादिवत् ॥" केचिदेतत्पुत्रिकापुत्रपरमाहुः ॥ पत्युः सापिंड्यमाह लौगाक्षिः–"सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिंडीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" इति। यत्तु वचनम्–'अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिंडताम्' इति ॥ यच्चापस्तम्बः–"अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोपि वा। तेषां सपिंडनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥ "

तर्कमें पुत्र पिताको पितामहमें माताको मातामहमें मिलावें यह भगवान् शिवने कहाहै, यह आसुर आदि विवाहोंमें और पुत्रिकाके पुत्रमें है, यह प्रथम कह आये हैं, हेमाद्रिने तो ब्राह्मआदि विवाहोंमेंभी है, तोभी सर्वत्र देशभेदसे विकल्प लिखा है, इसीसे गुर्जरोंमें जो कोकिलमतके अनुसरण करनेवाले है उनका यह श्राद्धप्रयोग है, कि, माता, मातामह, प्रमातामह और इनकी सपिंडीभी देखतेहै, हेमाद्रिमें आपस्तंबकाभी कथन है कि, जैसे औरके संचयसे कोकिलके पुत्र पुष्ट हुए अपने कुलमें जातेहै, इसी प्रकार मरकर सती नारी पतिलोकको जाती है ॥ और जो विज्ञानेश्वरने मातामहके संग माताकी सपिंडीमें पितृश्राद्धके संग माताका श्राद्ध नित्य लिखा है, और जो वृद्धिश्राद्धमें छंदोगपरिशिष्टका कथन है कि, उसके पीछे छः पितरोंको श्राद्ध देनेका-प्रारम्भ करै वह उसी विषयमें है कारण कि, माताका पृथक् श्राद्ध नहीं हो सकता, इसीसे हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य माताके सपिंडीप्रकरणमें लिखाहै कि, उदित और अनुदित सूर्यमें जैसे होमका भेद होता है तैसेही कुलके क्रमसे चले आये आचारको बुद्धिमान् मनुष्य करै, वृद्धिमें इसका अपवाद वहांही व्याघ्रपादमें लिखाहै कि, मातामहका श्राद्ध निरन्तरके क्रमसे करै, और विधिका ज्ञाता विधिसे वृद्धिश्राद्धमें मातामहके क्रमसे करै, कोई इस वाक्यको पुत्रिकाके विषयमें लिखते है, पतिकी सपिंडी लौगाक्षिने लिखीहै कि, सबके अभावमें पत्नी स्वयं अपने भर्ताओंकी सपिंडी विना मंत्र करै, और फिर पार्वण करै, जो यह वाक्य है कि, मरेहुए पुत्रहीनकी सपिण्डी न करै ॥ और जो आपस्तम्बने कहा है कि, जो पुत्रहीन स्त्री वा पुरुष मृतक हुए हैं इनकी सपिण्डीके अभावसे एकोद्दिष्ट होताहै, पार्वण नहीं

इति, तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः । "सपिंडीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च ॥" इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च ॥ अन्ये तु द्विविधवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः ॥ स्मृत्यर्थसारेपि–'ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च पिंडनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिंड्यं कार्यं न वा ॥ केचित्सर्वत्र सपिंडनमाहुरिति' ॥ अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकाकारिकायाम्– "भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव । सपिंडीकरणं कुर्यात्पुत्रहीने मृते सति ॥ सर्वबन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सपिंडताम् । ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥ वसुरुद्रादितिसुतैः कार्या तेषां सपिंडता ॥ व्युत्क्रमाच्च प्रमीता ये तद्विना प्रेतता ध्रुवम् । पुनः सपिंडनं तेषां कुर्यात्प्रेते पितामहे ॥" इति ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ यतीनां सपिंडनं नास्ति किंत्वेकादशेह्नि पार्वणं कार्यम् ॥ तदपि त्रिदण्डिनः ॥ एकदण्डचादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक् ॥ दण्डग्रहणात्पूर्वं मृते तु दाहादिसपिंडनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टचरणाः ॥ सपिंडनविधिमाह । बैजवापः–'समाप्ते संवत्सरे चत्वार्युदपात्राणि प्रयु-

होता, वे वाक्य पुत्र उत्पन्न करनेकी अनेक प्रशंसाके विषयमें हैं यह माधवका कथन है, और हेमाद्रिमें प्रचेताका भी कथन है कि, जो सम्पूर्ण पुत्रहीन और पत्नीसे रहित है उनकी सपिण्डी करनेपर एकोद्दिष्ट करै, और तो यह लिखतेहै कि, विधवाओंकी सपिण्डी नहीं देखते, इससे विकल्पहै। स्मृत्यर्थसारमें भी लिखाहै, ब्रह्मचारी, संततिहीनकी सपिण्डी नहीं होती, इनका सदा एकोद्दिष्ट होता है। क्रमके विना जो मरे हैं उनकी सपिंडी करै, वा न करै कोई तो सबकी सपिंडी करनी कथन करते हैं, अपुत्र और क्रमहीन मरेका विशेष रेणुकाकारिकामें लिखा है कि, पुत्रहीन मरे तो भाई, भाईका पुत्र, सपिंड वा शिष्य सपिंडी करै, जिसके कोई बंधु न हो उसकी सपिंडी भार्या करै, अथवा ऋत्विज वा पुरोहित करै, क्रमहीनसे मरोंकी और पूर्वोक्तोंकी सपिंडी वसु रुद्र आदित्योंके संग करै, सपिंडी न करै, तो निश्चय प्रेत होते हैं, और पुनः उनकी सपिंडी दादाके संग करै, इन सपिंडीवाक्योंमें मूल नहीं मिलता। संन्यासियोंकी सपिंडी नहीं होती किन्तु ग्यारहवें दिन पार्वण करना चाहिये, यह भी त्रिदण्डीके निमित्त है, एकदंडीके निमित्त तो वह भी नहीं, यह प्रथम कह आये हैं, दण्डके लेनेसे प्रथम मरजाय

१ जिसका पिता मृतक होगया हो पितामह जीवित हो वह पिताका नाम लेकर प्रपितामहका कीर्तन करै ऐसा मनु कहते हैं। पिताका नाम लेकर पितरको देवतात्वसे निर्देश कर प्रपितामहकोभी तीन दे। जिसका पिता प्रेत हो वह पिताके स्थानमें पिण्ड रखकर पितामहसे परे दे ऐसा विष्णु कहते हैं। पितृस्थानपर पिण्ड रखकर पितामहसे आगे दोनोंको दे। व्युत्क्रमसे मरनेमें पुत्रको दशाहादिमें पितामहादिकोंकाही पार्वण करना चाहिये, जो तात ब्राह्मणादिसे हत पतित संगवर्जित हो व्युत्क्रमसे मरनेमें जिसके निमित्त देता हो, दे, ऐसा कात्यायन कहते हैं॥

नक्ति, एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिंचति ये समाना इति, द्वाभ्यामेव पिंडोयाभिमृशति ॥ "एष वोनुगतः प्रेतः पितरस्तं ददामि वः । शिवं भवतु शेषाणां जायन्तां चिरजीविनः ॥" समानीवः संगच्छध्वं संवदध्वम् । इति ॥ यद्यपि—"तच्चापि देवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥" इति मार्कण्डेयेनोक्तम् । तथापि—"सपिंडीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् ॥" इत्यादिविरोधाद्विकल्पः प्रेतांशे वा ज्ञेयम् ॥ अत्र कामकालौ वैश्वदेवावपीत्युक्तं प्राक् ॥ मैत्रायणीयपरिशिष्टे—'पित्र्यावेप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह' । यत्तु गोभिलः—"अनुक्तकालेष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि । आमेन वापि सापिण्ड्यं हेम्ना वापि प्रकल्पयेत् ॥" इति तदापदि मातापितृभिन्नपरम् ॥ 'आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्' इति तेनैवोक्तेः ॥ शुद्धितत्त्वे कामधेनौ च लघुहारीतः "सपिंडीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम् । पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः ॥" विश्वप्रकाशे—"प्रेतः सपिंडनादूर्ध्वं पितृलोकेनुगच्छति । कुर्यात्तस्य तु पाथेयं द्वितीयेह्नि सपिंडनात् ॥" स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् ॥ एतन्मलमासेपि कार्यम् ॥

तो दाहसे लेकर सपिंडीपर्यन्त सब कर्म करना चाहिये, यह भट्टचरण कहते हैं ॥ सपिण्डीकी विधि बैजवापने लिखी है वर्षकी समाप्ति होनेपर चार जलके पात्र रक्खै, एक प्रेतका और तीन पितरोंके, प्रेतके पात्रको पितरोंके पात्रोंमें 'ये समानाः०'[1] इन दो ऋचाओंसे मिलावै, फिर पिंडोंको छूकर कहै कि, हे पितरो ! यह प्रेत तुमको दिया शेष रहोंके मंगल हो और चिरजीवी हो और ये तुम्हारे संग मिले, यद्यपि मार्कण्डेयने लिखा है कि, वह सपिंडी विश्वेदेवाओंसे हीन एक पवित्री और एक अर्घ्यवाली होती है, और उसमें अग्नौकरण आवाहन यह दोनों नहीं होते हैं तथापि सपिण्डी श्राद्धको देवपूर्वक करना चाहिये, इत्यादि वाक्यसे विकल्प है, अथवा पूर्ववाक्य प्रेतभागमें जानना चाहिये, सपिण्डीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं. यह पहले लिख आये हैं ॥ मैत्रायणीयपरिशिष्टमें यह कहा है कि, सपिंडीमें पितृब्राह्मणके हाथमें अग्निहोत्री भी होम करै, जो गोभिलने कहा है कि, अनुक्त समयमें व्युत्क्रमसे मरनेपर भी आम अन्नसे वा सुवर्णसे सपिंडी करै, वह आपत्तिमें माता पिताके भिन्न विषयमें है, कारण कि, उसनेही यह लिखा है कि, आपत्तिमें भी कभी आमान्नसे श्राद्ध न करै । शुद्धितत्त्व और कामधेनुमें लघुहारीतका कथन है कि, सपिंडीपर्यन्त पोडश प्रेतश्राद्ध मांससहित पक्वान्नसे द्विजाति करै । विश्वप्रकाशमें कहा है कि, सपिंडीसे उपरान्त प्रेत पितृलोकमें गमन करते हैं, सपिंडीके दूसरे दिन प्रेतको पाथेय (मार्गका व्यय) करै, स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है, फिर वृद्धिश्राद्ध करै । यह मलमासमें भी करै । यह हेमाद्रिमें हारीतऋषिने कहा है कि, अधिकमा-

---

१ ये समानाः समनसः पितरोयमराज्ये । तेषाँल्लोकः स्वधानमो यज्ञोदेवेषु कल्पताम् । यजु०॥

" अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा । तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते ॥ " इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ सपिंडीकरणम् ॥ अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि । हेमाद्रौ–"स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम् । प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥" अग्नितर्पणं लक्षहोमादि. न त्वाधानम्, ॥ तत्तु प्रथमाब्दे भवत्येव । तदाह हेमाद्रावुशनाः–"पितुः सपिंडीकरणं वार्षिके मृतवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ॥ " अन्यतर्पणमिति शुद्धितत्त्वे पाठः ॥ आदिपदं वृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरम् ॥ दिवोदासीये–"महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च । संवत्सरं न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥ " इदं श्राद्धकौमुद्यां देवीपुराणस्थमुक्तम् ॥ गौडनिबन्धे मात्स्ये–" सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् । वृद्धीष्टापूर्तयोग्यश्च गृहस्थश्च सदा भवेत् ॥ " वर्षान्तसपिंडनाभावे नाधिकारीत्यर्थः ॥ गृहस्थः सपिंडोपीत्यर्थः । अत एव–" प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥" इति ज्योतिषे उक्तम् ॥ माधवीये देवलः– "प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥ " इदं वर्षान्तसपिंडनपरम् ॥ ' तथैव काम्यं यत्कर्म, वत्सरात्प्रथमादृते ' इति लघुहारीताद्येकवाक्यत्वात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु काम्यादि भव-

---

मासमें वृद्धिश्राद्ध और इसी प्रकार काम्य कर्म पहले वर्षको त्यागकर न करै ॥ इति श्रीनिर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां सपिंडीकरणम् ॥ अब पहले वर्षमें निषिद्धोंको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें कहा है कि, महागुरुकी मृत्युमें स्नान, महादान, वेदपाठ, अग्नितर्पण (हवन) को पहले वर्षमें न करै, शुद्धितत्त्वमें तो अन्यका तर्पण करना, यह पाठ है । अग्नितर्पणसे लक्षहोम होते हैं, आधान नहीं । आधान तो पहले वर्षमें भी होता है । यही हेमाद्रिने उशनाने लिखा है । पिताकी सपिंडी मृत्युके दिन वर्षीके दिन करै, आधान आदि आन पडे तो वर्षसे प्रथम भी करै । आदि पदसे वृद्धिके निमित्त नित्यकर्म ग्रहण करते हैं । दिवोदासीयमें कहा है कि, महातीर्थमें गमन, उपवास, व्रत महागुरुकी मृत्युमें वर्षदिनतक न करना चाहिये, यह श्राद्धकौमुदीमें देवीपुराणका वाक्य लिखा है॥ गौडनिबंधमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, सपिंडीके उपरान्त प्रेतपार्वणके योग्य और गृहस्थ वृद्धिश्राद्ध और इष्टापूर्तके योग्य होते है, वर्षके पीछे सपिंडीके विना अधिकारी नहीं है, गृहस्थ पदसे सपिंडीको भी लेना । इससे ज्योतिषमें लिखा है कि, प्रेतकर्मकी जबतक निवृत्ति न हो तबतक वृद्धिश्राद्ध चौथी पीढीतक न करै, और पांचवीं पीढीमें करना श्रेष्ठ है, माधवीयमें देवलका कथन है कि, जिसके माता पिता मृतक होजायँ उसका देह अपवित्र होता है, उसे वर्षदिनतक देवता और पितृकर्म न करना चाहिये, यह वाक्य भी तब है जब वर्षके पश्चात् सपिंडी हो, कारण कि, इस लघुहारीत आदिके कथनके संग एकवाक्यता है कि, इन्होंही प्रथम वर्षको त्यागकर काम्यकर्म न करै, वृद्धिश्राद्धके निमित्त अपकर्ष होय तो वर्षके बीचमें भी काम्य

त्येवेति गौडाः ॥ पित्र्यं सपिंडनम् ॥ अत एव लौगाक्षिः—"अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने । कुर्यात्संवत्सरादर्वाक् श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ॥" दाहाद्येकादशाहान्तं कार्यम् ॥ तत्राशौचान्तरस्याप्रतिबन्धकत्वात् ॥ 'आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेऽहनि' इत्युक्तेश्च ॥ एकं सपिंडनम् ॥ पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋष्यशृङ्गः—"पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेषु च । स्नुषास्वस्रोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि ॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सापिण्ड्यमाचरेत् ॥" लौगाक्षिः—"पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि । पितरौ च यदैकस्मिन् म्रियेरन्वासरे तदा ॥ आद्यमेकादशे कुर्यात्त्रिपक्षे तु सपिण्डनम् ॥" धवलनिबन्धे—"महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि । कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥" भृगुः—"माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा स्नुषा । एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः ॥" एतदपि सपिण्डनपरम् ॥ पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः ॥ शुद्धितत्त्वे देवलः—"अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् । वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥" पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—"पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते । मातर्यपि च वृत्तायां पितृश्राद्धादृते समम् ॥" समं पितरं विनान्यश्राद्धं नेत्यर्थः ॥ शुद्धि-

आदि कर्म होते हैं, यह गौडोंका कथन है, पितृकर्मसे सपिंडी लेना ॥ इसीसे लौगाक्षिने कहा है कि, और कर्म प्रेतकर्मके बन्धक नहीं हैं, यहभी वाक्य है कि, अशुद्ध भी मनुष्य एकादशाहको प्रथम श्राद्ध करै, पत्नी आदिकी एकसापिंडीमें तो अपवाद माधवीयमें ऋष्यशृंगने लिखा है कि, पत्नीके संग बेटेका और पोतेका, भाई और भाईके बेटोंका, वधू और सासका माता और पिताकी यदि एकसाथ मृत्यु होजाय तो वर्षके बीचमें भी माता पिताकी क्रमसे सपिंडी करै, लौगाक्षिने कहा है कि, भार्या, पुत्र, पौत्र और भाई, भाईके बेटे, माता, पिता ये यदि एक दिन मृतक होजायँ तो एकादशाहको आद्य श्राद्ध और त्रिपक्षमें सपिंडी करनी चाहिये ॥ धवलनिबन्धमें लिखा है कि, महागुरुकी मृत्युमें यथाविधि प्रेतकर्म वर्षसे प्रथमभी करै, परन्तु एकोद्दिष्ट करना पार्वण न करना, भृगुने कहा है कि, माता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, बन्धु इनके मरनेमें श्राद्ध औरका करै और पिता मृतक होजाय तो औरका न करै, यहभी सपिंडीके विषयमें जानना. शुद्धितत्त्वमें देवलका वाक्य है कि औरका श्राद्ध पराया अन्न, गन्ध, पुष्प, मैथुनको पिताकी मृत्युमें वर्षदिनतक त्यागदे, पारस्करभाष्यमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, पिताकी मृत्युमें पुत्रको माताका श्राद्ध न करना चाहिये और माताकी मृत्युमें भी पिताके श्राद्धसे औरोंका श्राद्ध न करना ॥ शुद्धितत्त्वमें देवलका कथन है कि, पिताकी मृत्युमें किंचित्भी

१ जहां माताकी मृत्यु उपरान्त पिताकी मृत्यु हो वहां माताके सपिण्डनकी आवश्यकतासे पुत्रादिको सपिण्डी करनी चाहिये अथवा जहां माताकी सपिण्डी नहीं की वह औरकी सपिण्डीमें क्या कहना, यह और सपिण्डोंकी निन्दाम तात्पर्य है ॥

तत्त्वे देवलः–"महागुरुनिपाते तु काम्यं किंचिन्न चाचरेत् । आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा ॥ ॥ " एतत्सीपण्डनात्प्रागिति केचित् ॥ तदुत्तरमपीत्यन्ये ॥ श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वार्द्धे–"विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः । यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ॥" केचित्तु–"पित्रोरब्दमशौचं स्यात्षण्मासं मातुरेव च । त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ " इति स्मृतेः सपत्नमातुरब्दार्धमाहुः ॥ श्राद्धकौमुदीकारस्तु–"द्वयोरेव महागुर्वोरब्दमेकमशौचकम् । नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किल ॥." इति समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह ॥ हेमाद्रौ भविष्ये–"गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते ॥" त्रिस्थलीसेतौ गारुडे–"तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम् । अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु ॥" इदं वृद्ध्यर्थसपिण्डनाभावे ॥ वृद्धौ सपिण्डनापकर्षेऽब्दमध्येऽपि दर्शादि कार्यमेव ॥ 'पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ '. सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् ।' इति मात्स्यात् ॥ "ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते । विन्दते पितृलोकं च ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ " इति हारीताच्चेति शूलपाणिः ॥ यत्तु कातीयं–"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्टविधा

काम्य कर्म यज्ञ करना ब्रह्मचर्य देवपूजाको न करै, यहभी सपिंडीसे प्रथम जानना, ऐसा कोई कहते हैं और इससे आगे कहते हैं, श्राद्धकौमुदीमें कालिकापुराणके पूर्वार्धमें लिखा है–विशेषकर प्रमीतपितृक पुरुष मनसे भी शिवपूजाको न करै कोई कहते हैं कि, पिताका वर्षदिन, माताका छः महीने, स्त्रीका तीन महीने, भाईके पुत्रका डेढमहीने अशौच होता है, इसी स्मृतिसे सौतेली माताका छः महीनेतक कहते हैं ॥ श्राद्धकौमुदीकारने मूलसहित इस जातूकर्ण्यके विरोधसे पूर्वोक्त वाक्यमें निर्मूल लिखा है कि, दोनों माता और पिता महागुरुओंका अशौच एकवर्षतक होता है और दूसरोंका अधिक अशौच नहीं होता किन्तु अपनी २ जातिके अनुसार ही होता है, हेमाद्रिमें भविष्यका वाक्य है कि, मृतक हुओंका गयाश्राद्ध पूर्णवर्षमें उत्तम कहा है, त्रिस्थलीसेतुमें गरुडपुराणका वाक्य है कि, तीर्थश्राद्ध गयाश्राद्ध और अन्य पितृश्राद्धको महागुरुकी मृत्युमें वर्षके बीचमें न करना । यह वाक्य भी वृद्धिके निमित्त सपिंडीके अभावमें है, वृद्धिके निमित्त सपिंडीका अपकर्ष होय तो संवत्सरके बीचमें भी दर्श आदि करने ॥ कारण कि, छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, पिताकी सपिंडी करनेके पीछे मासिक और अनुमासिक श्राद्ध करै, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, सपिंडी किये उपरान्त प्रेत पार्वण श्राद्धका भोक्ता होता है, और हारीतऋषिने भी कहा है कि, सपिंडीके पश्चात् प्रेत पितरोंके तुल्य होता है और पितृलोकमें गमन करता है और श्राद्धकी प्रवृत्तिभी तभी होती है, यही शूलपाणि लिखते हैं, जो कातीयका कथन है कि, सपिंडीके उपरान्त प्रतिमासके

नेन दद्यादित्याह शौनकः ॥" इति ॥ तत्रैकोद्दिष्टविधिनान्नं दद्यादित्यन्वयः ॥ तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः ॥ ब्रह्मवैवर्ते-"उद्वाहश्चोपनयनं प्रथमेब्दे महीपते। कृते सपिण्डनेप्यूर्ध्वमस्थ्नां चोद्धरणं त्यजेत् ॥ तथापि कर्तुमिच्छन्ति त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्य चरेत्पुनः ॥" अत्रेदं तत्त्वम् ॥ वृद्धिं विनार्वागपि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव ॥" कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते ॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ "अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् । प्रेतत्वमपि तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप ॥" इत्यग्निपुराणाच्च ॥ तेन तत्सत्त्वेपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनाधिकारः वृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव ॥" अर्वाक्संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेपि वा । ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां तु पृथक् क्रिया " इति शातातपोक्तेः ॥ तथैव काम्यमिति हेमाद्रिधृतहारीतादिवशाच्चैवमिति । तथा " अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । प्रथमेब्दे न कुर्वीत कृतेपि तु सपिण्डने ॥". अस्यापवादः-"अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । प्रथमेब्देपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्सुतः ॥" भक्त्याख्यं श्राद्धं तद्वानिति मदनपारिजातादयः ॥ अन्ये यथाश्रुत-

---

श्राद्ध न देने चाहिये किन्तु एकोद्दिष्टकी विधिसे देने, यह शौनकने लिखा है, वहां एकोद्दिष्टकी विधिसे न दे यह अन्वय जानना चाहिये, किन्तु पार्वण श्राद्ध करै, और चौथे चरणसेभी पार्वणका विकल्प लिखा है ॥ ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि; हे राजन्! पहले वर्षमें विवाह उपनयन यह सपिंडी करनेपरभी, न: करै तो भी पुत्र तीन करनेकी इच्छा करते हैं, मासिक अवशिष्टका अपकर्ष करके फिर करैं यहां यह सिद्धान्त है कि, वृद्धिके विना वर्षकी पूर्तिसे प्रथमभी सपिण्डीका अपकर्ष आजाय तो पितृत्वकी प्राप्ति वर्षके अन्तमेंही होजाती है कारण कि, विष्णुधर्ममेंभी लिखा है कि, सपिंडी करनेके उपरान्त मनुष्य वर्षदिनसे आगे प्रेतदेहको त्यागकर भोगदेहको प्राप्त होता है और अग्निपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन्! वर्षसे प्रथमभी जिसकी सपिंडी होजाय उसकोभी प्रेतत्व प्राप्त रहता है, इससे सपिंडी होनेपरभी दैव और पितृकर्ममें अधिकार नहीं होता, वृद्धिश्राद्धनिमित्तक सपिंडीमें तो सपिंडीके उपरान्तही दैव और पितृकर्ममें अधिकार होजाता है कारण कि, शातातपने लिखाहै कि, वृद्धिके निमित्त वर्षसे प्रथम वा पूर्ण वर्षमें जिन प्रेतोंकी सपिंडी होगई है उनका कर्म पृथक् नहीं होता ॥ और इसी प्रकार काम्यकर्मको करै, इस हेमाद्रिमें लिखे हारीतके वाक्यसे भी इसी प्रकार है, तैसेही वाक्य है कि, तीर्थमें अस्थियोंका डालना, गया और अपरपक्षके श्राद्धको पिताकी सपिंडी करनेपरभी वर्षके बीचमें न करै, इसका अपवाद लिखा है कि, भक्तिमान् पुत्र होय तो अस्थि मिलाना, गया और अपरपक्षके श्राद्धको प्रथमवर्षमें भी करै, मदनपारिजातमें तो यह अर्थ लिखा है कि, भक्ति नामके श्राद्धवाला पुत्र

माहुः ॥ तत्त्वं तु–यदीदं समूलं तदा वृद्धिं विनापकर्षे पूर्वं, वृद्ध्यर्थं तु परमिति योज्यम् ॥ पतितानां गयायां विशेषो ब्राह्मे–" क्रियते पतितानां च गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाश्राद्धं स्वबन्धुभिः ॥" अथ विधानानि । तत्र पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे–" आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य तु समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा ॥ दर्भमय्यास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमान्त्रिताः " ॥" ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥ पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः ॥ तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत् ॥" क्रियानिबन्धे–" भाजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रा च वाससी । दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी ॥" मदनरत्ने गार्ग्यः–" यदि भद्रातिथीनां स्याद्वानुभौमशनैश्चरैः । त्रिपादर्क्षैश्च संयोगो द्वयोर्योगो द्विपुष्करः ॥ द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपुष्करे ॥ खननेप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वापि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालंकृत्य दाहयेत्पैतृकोपरि ॥" तद्दाहे मन्त्रमाह बौधायनः– "अस्मात्त्वामिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषात्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपो-

और तो पूर्वोक्तही अर्थ कहते हैं, सिद्धान्त तो यह है कि, यदि यह वाक्य मूलसहित है तो वृद्धिके विना अपकर्षमें प्रथम और वृद्धिके निमित्त श्राद्धमें उपरान्त करै, पतितोंके निमित्त गयामें श्राद्ध करना, विशेष ब्राह्ममें लिखा है कि, कहीं २ वर्षके बीतनेपर देशधर्मके प्रमाणसे बान्धवलोग वर्षके पीछे पतितोंका गयाश्राद्ध सम्पादन करते हैं ॥ अब विधियोंको वर्णन करते हैं उनमें पंचकोंमे मृतक हो तो मदनरत्नमें गरुडपुराणका यह कथन है कि, धनिष्ठा-नक्षत्रके उत्तरार्धसे लेकर रेवतीपर्यन्त पांच नक्षत्र दूषित और दाह करनेमें अशुद्ध हैं, यदि ऐसा हो तो शवके समीप कुशाके चार पुतले बनाकर नक्षत्रोंके मन्त्रोंको पढकर रक्खै फिर उन पुतलों सहित दाह करै, फिर पुत्र सूतकके पीछे शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंको करै, जिस मनुष्यकी पंचकोंमें मृत्यु होती है उसकी गति नहीं होती, उसके निमित्त तिल सुवर्ण घी देना चाहिये, क्रियानिबंधमें कहा है कि, पात्र, जूता, छत्र, सोनेकी मुद्रा दो वस्त्र और सब पापोंकी दूर करनेवाली दक्षिणा ब्राह्मणको देनी चाहिये ॥ मदनरत्नमें गार्ग्यका कथन है कि, भद्रा तिथि, सूर्य, मंगल, शनैश्चर वार और त्रिपादनक्षत्र इन तीनोंके योगमें त्रिपुष्कर और दोनोंके योगमें द्विपुष्करयोग होता है, इन दोनों योगोंमें दोनों मृत्यु दूसरेकी मृत्यु करनेवाले हैं, इनमें दाह और मृत्यु होय तो दूना और त्रिष्पुकरमें तिगुना होताहै ऐसेही गाडनेमें है इस दोषशान्तिके निमित्त तिलकी पिट्टीसे अथवा यवोंसे शरीरनिर्माण करै और उसको छाजमें रख और शोभित करके पिताके ऊपर रखकर दाह करै ॥ उसके दाहका मन्त्र बौधायनने लिखा है, 'अस्मात्त्वमधिजातोसि' इस मन्त्रको पढकर उस

इति ॥ वासवे मरणं चेत्स्यात् गृहे वापि पुनर्मृतिः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥" वासवं धनिष्ठा ॥ ब्राह्मे—" कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततौ न शुभं भवेत् ॥ न तस्य दाहः कर्तव्यो विना शास्त्रेषु जन्तुषु । अथ वा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथंचन । त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान्मारयद्ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते । दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् ॥ प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः । प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ॥" अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूजयित्वा ॥ प्रथमां शिरसि । द्वितीयां नेत्रयोः । तृतीयां वामकुक्षौ । चतुर्थीं नाभौ । पञ्चमीं पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्घृतं हुत्वा—यमाय सोमं त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः ॥" सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् । कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद्द्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रवरुणप्रीतये ततः । माषमुद्गयवव्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम् । गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ॥" अपरार्के—" धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि

तिलपिष्टीके शरीरको दाह करै, द्विपुष्कर और त्रिपुष्करका दोष तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे नष्ट होता है, धनिष्ठामें मृत्यु होय तौ घरमें फिर मृत्यु होती है, उस दोषशान्तिके निमित्त सुवर्ण वा कृष्ण वस्त्रकी दक्षिणा देनी चाहिये, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि कुंभ मीनके चन्द्रमामें जिसकी मृत्यु होती है उसकी ऊर्ध्वगति नहीं देखी जाती और संतानमें भी श्रेय नहीं होता, अपने जीवोंके नाशके डरसे उसका दाह न करे, अथवा उस दिन विधिपूर्वक दाह करै, किसी प्रकार धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्र त्रिपुष्कर योग भरणी नक्षत्र इनमें किसीकी मृत्यु होजाय तौ कुलमें उत्पन्न हुएकी अवश्य मृत्यु करता है, उस अनिष्टके दूर करनेकी विधि लिखते हैं कि, कुशाकी पांच प्रतिमा बनावै उनको ऊनसे लपेटे और यवोंके चूनसे लीपकर उनके संग मृतकका दाह करै, उन मूर्तियोंके क्रमसे ये नाम हैं कि प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप पांचवां प्रेतहर्ता इन मूर्तियोंकी गन्ध पुष्पोंसे अर्चा करे पहली शिरमें, दूसरीको नेत्रोंमें, तीसरीको बाईं कोखमें, चौथीको नाभिमें और पांचवींको मृतकके पैरोंमें रखकर और पूर्वोक्त पांचों नामोंसे उनके ऊपर घृतसे हवन करै. यमायसोमंत्र्यम्बकं यजामहे यह मन्त्र पढकर आहुति दें, यह भट्ट कहतेहैं, सूतकके अन्तमें । पुत्र फिर शान्तिक पौष्टिक करै, कांसीके पात्रमें तेलको रखकर और उसमें मुख-अवलोकन कर ब्राह्मणको देदे ऐसा करनेसे ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र वरुण प्रसन्न होतेहैं, उडद मूँग जौ व्रीहि कांगनी आदिभी दे, सुवर्णका दान रुद्रका जप, लक्ष होम, ब्राह्मणोंका पूजन, गौ भूमि दान इन सबको अपने उपार्जतधनके छठे भागसे पंचकदोषकी शांतिके निमित्त अवश्य देना चाहिये ॥ अपरार्कमें कहा है कि

सन्मुखे। प्रास्याहुतित्रयं तत्र हुनेद्वहवप मिति॥ ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः। इतरं निखनेदेव जले वा प्रतिपादयेत्॥ त्रिपादर्क्षमृते तद्वद्धिरण्यशकलं मुखे। तस्य पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषत्रितयं ततः॥ होमं प्रतिमुखं कुर्यात्तथा वहवपामिति। कार्ष्णायसं च कार्पासं कुसुम्भं प्रतिपाद्य च॥ निर्यात्य साग्निं संस्कुर्याद्भुव्यग्नौ वान्यमुत्सृजेत्॥" तत्रैव—"कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्॥ पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः॥ रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च। सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः॥" मदनरत्नेऽप्येवम्॥ तथा—" एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम्। नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः॥" तथान्यच्च—"स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेः स्थापनं ततः। अन्वाधानं निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात्॥ विधिना श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत्। कृष्णां गां कृष्णवस्त्रां च हैमनिष्कसमन्विताम्॥ दद्याद्विप्राय शान्ताय प्रीतो भवतु मे यमः॥" त्रिपादर्क्षेऽप्येतदेव॥ अपरार्के—"पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी। पूर्वाभाद्रा विशाखा च

धनिष्ठाआदि पंचकोंमें जिसकी मृत्यु हो उसके मुखमें पंचरत्न रक्खै, फिर 'वहंव-पाम' इस मन्त्रसे तीन आहुति देनी, फिर श्मशानमें लेजाय यह साग्निको विधि वर्णन की है, और दूसरोंको तो गाडदे वा जलमें डालदे, त्रिपादनक्षत्रमें जिसकी मृत्यु हो उसके भी मुखमें सुवर्णका खण्ड डालना चाहिये, और पिट्ठीके तीन पुरुष निर्माण करै उन तीनोंके मुखमें वहपाम इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये, काला लोहा, कपास, कुसुंमका दान करके साग्निको श्मशानमें लेजाकर भस्म करै, वा पृथ्वी और अग्निमें त्यागदे, वहांही लिखा है कि, सुवर्ण, हीरा, नील, पद्मराग, मोती ये ऋषियोंने पंचरत्न कहे हैं। रत्नोंका अभाव होय तौ आधा कर्ष सुवर्ण और सुवर्णका भी अभाव होय तो बुद्धिमान् मनुष्य घृतको डाले॥ मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है, तैसेही वाक्य है कि, ग्यारह ११ पल वा उससे भी आधी वा नौ छः तीन पल कांसीको स्वशक्तिके अनुसार ब्राह्मणको देना, इसी प्रकार और जगह लिखा है कि, अपने गृह्यकी स्थितिसे अग्निका स्थापन करै, अन्वाधान निर्वपणको संपादन करके इन देवताओंको नामसे क्रमसे आहुति दे कि, यम धर्मराज मृत्यु अन्तक वैवस्वत काल सर्वभूतक्षय औदुंवर दध्न नील परमेष्ठी वृकोदर चित्र चित्रगुप्त। विधिसे श्रपण करके इनके निमित्त आहुति देनी चाहिये, कालीगौ, कालावस्त्र, निष्कप्रमाण सोना, इनको यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करै कि, यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न हो, त्रिपादनक्षत्रमें मृत्युकी भी इसी प्रकार शांति है॥ अपरार्कमें लिखा है कि, पुनर्वसु उत्तराषाढ, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा ये

१ वहवपांजातवेदः पितृभ्योयत्रैनान्वेत्थनिहितान्पराके। मेदसः कुल्याउपतान्स्रवन्तुसत्याएषामाशिषः सन्नमन्तां स्वाहा। यजु० ३५।२०॥

ज्ञेयमेतत्रिपाद्भम् ॥" मयूरचित्रे गर्गः—"मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति मानवः। गृहे यस्य प्रविष्टोसौ तिष्ठेद्य कदाचन ॥ अचिरान्मृत्युमायाति हृतदारपरिग्रहः । तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥ सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः। औदुम्बरीणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् । कपिलां तिलकांस्यं च हुतांते भूरिदक्षिणा " ॥ इति ॥ अथ ब्रह्मचारिमृतौ निर्णयः । शौनकः—"ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः । तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याथ वाचरेत् । स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥ " देशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रामुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिरग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानसंपादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्चाऽज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्य पुनर्देकालौ स्मृत्वार्कविवाहं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वार्कशाखां शवं च हरिद्रया लिप्त्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्तेऽग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय च यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय व्याहृतिभि-

---

त्रिपादनक्षत्र हैं, मयूरचित्रम गर्गका कथन है कि, जो मृतक मनुष्य श्मशानमें जाकर फिर जी उठे वह जिसके घरमें प्रविष्ट होकर टिके वह शीघ्रही स्त्री कुटुंबसहित मृत्युको प्राप्त होता है, धर्मराजके मतसे उसकी शांति लिखी है, वह मनुष्य घीमिले दूधकी अग्निके मुखमें आहुति दे और गूलरोंमें घी भरकर विधिपूर्वक होम करै और आठ सहस्र गायत्रीसे दूधकी शांति करावै, कपिला गौ, तिल, कांसीकी बहुतसी दक्षिणा होमके पश्चात् प्रदान करै ॥ अब ब्रह्मचारीकी मृत्युमें लिखते हैं—शौनकने कहा है कि ब्रह्मचारीकी मृत्युमें संक्षेपसे रीतिको लिखताहूँ, स्वप्नमें वीर्य गिरनेकी शान्तिके निमित्त बारह वा तीन वर्षतक यथाशक्ति ब्रह्मचारी व्रत करै, स्नातक ब्रह्मचारीकी यदि मृत्यु होजाय तो सूर्यमें विधिसे मिलाकर सूर्य और ब्रह्मचारीको संयुक्त करै, फिर देश और कालका स्मरण करके इस गोत्र और इस नामके ब्रह्मचारीका व्रत विसर्जन करताहूं यह उच्चारण कर और सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्ध करके होमकी प्रतिष्ठा आदि आघार आहुतिके अन्तमें चार व्याहृतियोंसे और अग्नये व्रतपतये व्रतानुष्ठानकामसम्पादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यः इनके निमित्त घृतका हवन करके स्विष्टकृत् आदि आहुतियोंको पूर्ण करके फिर देश कालका स्मरण करके कहै कि, अर्कविवाहको सम्पादन करताहूं; सुवर्णसे नान्दीमुख श्राद्धको करके आककी शाखा और मृतकको हरिद्रासे लेपन करके और पीले दो वस्त्रोंसे लपेटकर अग्निस्थापन करके आघार आहुतिके 'अग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय' इस मंत्रको पढ इसके उपरान्त चार घीकी आहुति देकर पृथक् २ और मिली व्याहृतियोंसे घृतका होम करके स्विष्टकृत आदि होमके कर्मको पूर्ण करके आककी शाखा

श्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् ॥ विधानमालायाम्-" येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् ।। त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीन-काननवान् ॥ हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च । पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नकोपि न जायते ॥" अत्र मूलं मृग्यम् ॥ अथ कुष्ठिमरणे निर्णयः । कुष्ठिमृतौ तु यमः- ' मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखनेद्गोष्ठभूमिषु । वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत् ॥ न गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते । षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनान्त्यं क्रतुं चरेत् ॥ ततोऽस्थिसंचयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः । मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणात् ॥ इत्येतत्कुष्ठिमरणे कतिथं शास्त्रकोविदैः ॥" शुद्धितत्त्वे भविष्ये- "शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम् । विचर्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीयस्तृतयिकः । विकर्चूर्व्रणताम्रौ च कृष्णश्वेते तथाष्टकम् ॥ " इत्युक्त्वा-"मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासीयत्रिमासीयमृतः कुष्ठी कदाचन । यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत् ॥" अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठया-

---

और उस मृतकका दाह करे ॥ विधानमालामें कहा है कि, जिनके कुलमें ब्रह्मचारीकी मृत्यु होजाय वह कुल नष्ट होजाता है और ब्रह्मचारीकी भी दुर्गति होती है, मरे और मरने योग्य उन ब्रह्मचारीके निमित्त छः वर्षतक व्रत करै, और तीस ब्रह्मचारियोंको कौपीन दे, हाथ वा कान भर प्रमाण काली मृगछाला दे, खडाऊं छत्री पुष्प गोपीचंदन मणि मूंगा माला भूषणआदि दे इसप्रकार विधि करनेसे कोई विघ्न नहीं होता, इसमें मूल नहीं मिलता ॥ कुष्ठीके मरणमें यमने कहा है कि, मरेहुए कुष्ठीके देहको गोष्ठकी भूमिमें तीनदिनतक गाडदे, फिर उसे निकालकर और स्थानमें दाह करै, उसे गंगामें वहाना उचित नहीं, उसके फैंकनेकी विधिको लिखते हैं, पूर्वोक्त छः वर्षके व्रतकी विधि पूर्ण होनेपर उस विधिको करै फिर उसकी अस्थियोंको बुद्धिमान् मनुष्य गंगामें डालदे, फिर महीने २ में पार्वणकी विधिसे मासिकश्राद्ध करै, यह बुद्धिमानोंने कुष्ठीके मरणमें कहा है, कोई बुद्धिमान् मनुष्य संकल्पविधिसे श्राद्ध करना वर्णन करते हैं, कुष्ठीकी मृत्युमें शास्त्रोंके ज्ञाताओंने यह विधि लिखी है ॥ शुद्धितत्त्वमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे विप्र ! उत्तरोत्तरसे उत्कृष्ट कुष्ठियोंके समूहको श्रवण करो, विचर्चिका दुश्चर्मा चर्चरी विकर्चू व्रण ताम्र कृष्ण श्वेत यह आठ कुष्ठी हैं, ये मरें, तो तीर्थ वा वृक्षकी जडमें पहुँचादेना चाहिये, इसके निमित्त पिंडदान उदकआदि दान न करना । छः महीने वा तीन महीनेके कुष्ठीकी मृत्यु होजाय उसका स्नेहसे दाह करनेसे यतिचान्द्रायणको करना होता है, यह उस कुष्ठीके दाहमें है जिसका प्रायश्चित्त न हुआ हो, इसीसे कुनखीआदिके समान द्वादशरात्रका

दिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् ॥ अत एव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोपि द्वादशरात्रं, शूलपाणिनोक्तम् । अत एवान्यदीयं कुष्ठिनो मरणान्तमाशौचमुक्तम् ॥ कौर्मे—" क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ॥" महारोगास्तु— "वातव्याध्यमश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ॥ अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः॥" इति ॥ अथ रजस्वलामृतौ निर्णयः । रजस्वलायास्तु वृद्धशातातपः—"रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् । ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥" अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्दग्ध्वा त्र्यहोर्ध्वहीनं दहेत् ॥ संकटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—"उदक्या सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा । अशौचे त्वनतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः । आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाश्चतसृभिः ॥ पवमानानुवाकेन यदंतीति च सप्तभिः । ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः ॥ स्नापयित्वान्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः । दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा ॥" यज्ञपवित्रमापोअस्मानिति मिताक्षरायाम् ॥ " पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् । वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥" गृह्यकारिकायाम्—"अन्तरिक्षमृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः । उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥ ततो यवपिष्टेनानुलिप्याष्टोत्तरशतं शूर्पोदकैः संस्नाप्य

प्रायश्चित्त शूलपाणिने कहा है कुष्ठीकाभी लिखा है, इसीसे और कुष्ठियोंका मरणांतपर्यन्त अशौच लिखा है, कूर्ममें कहा है—क्रियाहीन मूर्ख महारोगी यथेष्टआचरण इनको मरणान्त अशौच कहा है, महारोग तो यह लिखे है, कि, वातकी व्याधि, पथरी, कुष्ट, प्रमेह, जलोदर, भगंदर, बवासीर, ग्रहणी ये आठ महारोग हैं ॥ रजस्वलाके निमित्त वृद्ध शातातपने यह लिखा है कि, रजस्वलाकी मृत्यु होजाय तो उसके संस्कार आदि न करने चाहिये, तीन दिनके पश्चात् स्नान कराकर शवके धर्मसे दग्ध करना चाहिये, अतः काष्ठवत तीन दिनके उपरान्त दग्ध करै, संकटमें तो मदनरत्नमें स्मृत्यंतरका कथन है कि, रजस्वला वा सूतिकाकी मृत्यु होजाय तो अशौचके उपरान्त उसका दाह करना, और आपत्ति होय तो इस विधिसे बीचमेंही करै, निकालेहुए जलसे इन मन्त्रोंसे स्नान कराकर कि, 'आपोहिष्ठा' तीन ऋचा और चार 'हिरण्यवर्ण' पवमान अनुवाक और सात यदंतिऋचा फिर यज्ञपवित्र और गोमूत्रसे स्नान करावै फिर और वस्त्रसे ढककर मृतकके धर्मसे प्रजापतिके कथनके अनुसार दाह आदि करै, आपोऽस्मान्शुन्धध्वं यह मन्त्र यज्ञपवित्र है, यह मिताक्षरामें कहा है, मृतक रजस्वलाको पंचगव्यसे स्नान कराकर और पंचगव्यसे ढककर विधिसे दाह करै ॥ गृह्यकारिकामें कहा है, अन्तारिक्षमें वा प्रमादसे अग्नि और जलमें जिनकी मृत्यु हुई है और रजस्वला और सूतिका जो स्त्री मरी हो तो तीन चान्द्रायण करै, फिर जौके चूनसे

भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्यशुद्धोदकैरापोहिष्ठापावमानीभिः संस्नाप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः । अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः...."उदक्यासूतिकामृत्यौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम्' इति ॥ सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्–" सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः ॥ पुण्याद्भिरभिमन्त्र्याथो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः ॥ तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ अब्लिङ्गाभिर्मन्त्रिताभिर्वामदेव्याभिरेव च ॥ अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत् ॥" गृह्यकारिकायम्–" सूतिकामरणे प्राप्ते सर्वौषध्यनुलेपनम् । असूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत् ॥" प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव–" सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता । त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा ॥" इदं चाद्यत्र्यहे ॥" सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता । म्रियेत चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत् ॥" इदं द्वितीयत्र्यहे ॥ " सूतिका तु यदा साध्वी विस्नाता मरणं गता । अब्दकृच्छ्रेण शुद्ध्येत व्यासस्य वचनं यथा ॥" इदं तृतीयत्र्यहे ॥ अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव–" सूतिका तु यदा नारी विस्नाता मरणं गता । त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति ॥" ऊर्ध्वं तु–

लीपकर एक सौ आठ सूपके जलोंसे स्नान कराकर भस्म गोमय मृत्तिका कुशोदक पंचगव्य शुद्धोदक इनसे आपोहिष्ठा और पावमानीऋचा पढकर स्नान कराकर और दूसरे वस्त्र पहनाकर दग्ध करै यह भट्ट कथन करते हैं, इसका प्रायश्चित्त बौधायनने लिखा है कि, रजस्वला और सूतिकाकी मृत्युमें तीन चांद्रायण करै ॥ सूतिकाके निमित्त तो मिताक्षरामें यह लिखा है कि, सूतिकाकी मृत्युमें यज्ञके कर्ता किस प्रकार करैं । घडेमें जल लेकर पंचगव्य डाले, फिर पवित्र मंत्रोंको पढकर वे जल पवित्रताको प्राप्त होते हैं उस जलसे सूतिकाको स्नान कराय विधिपूर्वक दग्ध करै । जलके लिंगवाले और वामदेवमन्त्रोंसे विधिपूर्वक स्नान कराय तथा वरुणमन्त्रोंसे स्नान कराय विधिपूर्वक दाह करै । गृह्यकारिकामें लिखा है कि, सूतिकाके मरण प्राप्त होनेमें सर्वोषधियोंको देहपर लगावै, जिसको सूतक न हो वह स्पर्श करले तौ सौ १०० सूप जलके प्रक्षेप करने चाहिये ॥ प्रायश्चित्तमें विशेष वहांही लिखा है कि, सती स्त्री सूतिकास्नानसे प्रथम मरगई होय तो तीन वर्षके कृच्छ्रसे सदा शुद्ध होती है, यह पहले तीन दिनमें है । सूतिका नारी रजसे युक्त हो मरे तो दो वर्ष कृच्छ्रव्रत करना, यहभी दूसरे तीसरे दिनकी मृत्युमें है, सती सूतिकास्नानसे प्रथम तीन छः नौ दिनके बीचमें मृतक होजाय तो एक वर्षके कृच्छ्रसे पवित्र होती है यह व्यासने कहा है । यह तीसरे त्रिदिनमें जानना इसमें अशक्तहो तो पक्षान्तर है कि, सूतिकानारी विनास्नानके मरजाय तो तीन छः नौ दिन ऊपर एकवर्षमें शुद्धि होती है । आगे तो कहा है कि, जो सूतिका स्त्री मरजाय तो एक-

"सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् । मासमेकावधिं यावत्त्रिभिः कृच्छ्रै-र्विशुद्ध्यति ॥" गर्भिणीमृतौ तु मदनरत्ने शौनकः—"गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशु-संस्कारमेव च । प्रवक्ष्यामि समासेन शौनकोहं द्विजन्मनाम् ॥ गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समाहितः ॥ प्रेतं श्मशाने नीत्वाऽथोल्लिख्य सव्योदरं ततः । पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्त्वा सुताय तु ॥ यस्ते स्तनः शशय इत्यृचा ग्रामे निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्यात्पृष-दाज्येन पूर्य च ॥ मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । स्नाप्य चाच्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥" तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि 'गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणाशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्यमुदरं चतुरंगुलं हिरण्यगर्भः समवर्ततेति छित्त्वा गर्भश्चे-दप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि जीवन् ' जीव त्वं मम पुत्रक ' इत्युक्त्वा क्षेत्रि-येत्वेतिपञ्चभिः स्नापयित्वा हिरण्यमन्तर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनः शशय इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् ॥ गर्भच्छेदस्थले शतायुधायेति पञ्चाहुतीर्हुत्वा प्राणाय स्वाहा पूष्णे स्वाहेत्यनुवाकाभ्यां व्याहृत्या वाज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं सूत्रेण संग्रथ्य घृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान् गां भूमिं सुवर्णं

महीनेमें तीनकृच्छ्रसे शुद्धि होती है । गर्भिणीकी मृत्युमें तो मदनरत्नमें शौनकका कथन है कि, मैं शौनक गर्भिणी रजस्वला बालक इनके संस्कारको संक्षेपसे द्विजातियोंके निमित्त वर्णन करताहूं, गर्भिणीकी मृत्युमें गोमूत्र जल और आपोहिष्ठादि मंत्रोंसे प्रोक्षण करके सावधान हुआ पति मरी स्त्रीको श्मशानमें लेजाकर उसकी वामकोखको चीरै और पुत्रको निकाले, जीता होय तो यस्तेस्तनः० इस ऋचासे स्तन देकर अग्निका स्पर्श करके स्त्रीके उदरको पृषदाज्यसे व्रणरहित करै । मृत्तिका भस्म कुशा गोमूत्रसे आपोहिष्ठा आदि तीन ऋचाओंसे स्नानकराय वस्त्र ओढाय शवके धर्मसे दग्ध करै ॥ वहांही षडशीतिमतमें गद्यवार्तिक लिखे हैं, कि, गर्भिणी मृतक होजाय तो दक्षि-णादिशाको शिर करके रक्खै और उसके नाभिछिद्रसे बांई ओरमें चार अंगुल अन्तरपर हिर-ण्यगर्भःसमवर्तते० इस ऋचासे चीरे, यदि गर्भमें प्राण न होय तो उसे जलसे स्नान कराय गाडदे, यदि वह सजीव होय तो जी तू मेरा पुत्र है, यह कहकर और क्षेत्रिय० इन पांच ऋचाओंसे स्नान कराय सुवर्णका अन्तर कर भूमिपर रक्खै, सुवर्णपर बालकको रखकर घीकी आहुति देकर यस्तेस्तनः शशय० इस मन्त्रसे स्तन पियाकर बालकको ग्राममें पहुँचादे, गर्भच्छेदके स्थानमें शतायुधाम० इस मन्त्रसे पांच आहुति देकर प्राणाय स्वाहा० पूष्णे स्वाहा इन मन्त्रोंका पाठ कर घीकी आहुति दे और चीरे, उदरमें सूत लपेटकर और घी लपेटकर ब्राह्म-

---

१ यस्तेस्तनःशशयोयोभयोभूयारत्नधावसुविद्यः सुदेवः । येनविश्वायुष्यसिवार्य्याणि सरस्वति तमहधातवेदकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि य० ३८ । ५ ॥

दद्यादथ यथोक्तेन कल्पेन दहेत् ॥' बौधायनेन तु शतायुधायेति पञ्चहोमानन्तरं प्रयासायायासाय वियासाय संयासायोद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै ब्रह्महत्यायै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोऽप्याधिका उक्ताः ॥ गृह्यकारिकायाम्–" यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् । कुक्षिं भित्वा ततः शल्यं निर्हरेद्यदि जीवति॥ प्रमीतं निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम् । सा त्रयस्त्रिंशता कृच्छ्रैः शुद्धयते शल्यदोषतः ॥ स गर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् । प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्धयन्ति पापकारिणः ॥ दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥" स्त्रीणामन्वारोहणम् । " अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च । सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च ॥ अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च । जन्मान्तरे च सौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदम् ॥" देशकालौ स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचारत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसंख्याब्दावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुरकुलत्रयपूतत्वब्रह्मघ्नमित्रघ्नकृतघ्नपतिपूतत्वपत्यवियोगकामा भर्तृज्वलच्चितारोहणं करिष्ये ॥ अनुगमने तु फलमुल्लिख्यान्वारोहणं करिष्ये इत्युक्त्वा॥ हरिद्राकुं-

---

णको तिल गौ भूमि सुवर्ण दान कर फिर यथोक्त विधिसे दाह करै ॥ बौधायनने तो यहां आहुति अधिक लिखी है शतायुधाय इन पांच आहुतियोंके पीछे प्रयासाय० आयासाय० वियासाय० संयासाय० उद्यासाय० अवयासाय० शुचे० शोकाय० तप्यते० तपत्यै० ब्रह्महत्यायै० सर्वस्मै० स्वाहा यह पद सबके अन्तमें कहै, गृह्यकारिकामें लिखा है कि, जब गर्भवती स्त्री पीडायुक्त मरजाय तो कुक्षिको चीरकर जो बालक जीता होय तो निकालले, मरगया होय तो गाडदे, जीता होय तो हण करै, फिर यह प्रायश्चित्त करै, अर्थात् तेतीस ३३ कृच्छ्र करनेसे वह शल्यके दोषसे पवित्र होता है, गर्भसहित उसका दाह करै तो वर्णके वधका प्रायश्चित्त लगता है, प्रायश्चित्तसे इस पापके कर्ता शुद्ध होते हैं, जो सगर्भा स्त्रीको दग्ध करै तो तीन वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना होता है ॥ अब स्त्रियोंका सती होना लिखते हैं–जो सती होना अपने और स्वामीके पापका नाशक और नरकसे उद्धार करनेवाला है अनेक स्वर्गका फल और मुक्तिका देनेवाला, दूसरे जन्ममें सौभाग्य और धन पुत्र आदिको देता है, देश कालको स्मरण करके अरुंधतीके समान आचरणवाली और स्वर्गलोकमें पूज्य, मानता और मनुष्यके लोमसंख्याके तुल्य वर्षोंतक स्वर्गवासकी इच्छावाली, चौदह इन्द्रोंके राज्यतक पतिके संग क्रीडा, माता पिता श्वशुर तीनों कुलोंको पवित्र करती, ब्रह्मघ्न मित्रघ्न और कृतघ्नभी पतिके योगकी कामना और पतिके अवियोगकी इच्छावाली मैं प्रज्वलित हुई भर्ताकी चितामें आरोहण करतीहूं यह संकल्प पढै, अनुगमनमें तो फलको कहकर अन्वारोहण करतीहूं यह कहै, फिर हल्दी कुंकुम अंजनादिसे युक्त सूप और वायने सुहागि-

कुमाञ्जनादियुतशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु—"लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः । गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वाणकैः परितोषितः ॥ सोपस्कराणि शूर्पाणि वाणकैः संयुतानि च । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥ अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि पल्लवे । नीलाञ्जनं तथा बद्धा मुखे मुक्ताफलं न्यसेत् ॥ ततोग्निप्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन मिश्रितम् । स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगोत्रहुताशन ॥ स त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥" ततोग्नावाज्येनाग्नये तेजोधिपतये विष्णवे सत्त्वाधिपतये, कालाय धर्माधिपतये, पृथिव्यै लोकाधिपतये, अद्भ्यो रसा-, धिष्ठात्रीभ्यः, वायवे बलाधिपतये, आकाशाय सर्वाधिपतये कालाय धर्माधिष्ठात्रे, कलाभ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः, ब्रह्मणे वेदाधिपतये, रुद्राय श्मशानाधिपतये च, हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलं च संपूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् ॥ "त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता । स त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ॥" गौडास्तु—'इमा नारीरविधवाः' इति ॥

नीको दे ॥ मन्त्र यह है कि, बल और तत्त्वका आश्रय लक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नता हो वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे महासत्त्व प्रदान करे, सामग्रीसहित छाज सुवासिनी स्त्रियोंको दे यह मन्त्र है कि, बल और सत्त्वके आश्रय लक्ष्मीनारायण देव वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे महान् दृढता प्रदान करै, सामग्रीसहित सूप और वायने तत्त्वकी कामनासे लक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नताके लिये प्रदान करती हूँ, अग्निके निकट आकर पञ्चरत्नोंको पल्लवपर रख नेत्रोंमें सुरमा लगाय और दृढ बांधकर मुखमें मोती रक्खे, फिर इस मन्त्रसे निश्चयपूर्वक अग्निकी प्रार्थना करै कि, हे अग्ने ! हे हुताशन ! तू स्वाहा अपनी स्त्रीके संयोगसे निर्विण्ण (विरक्त) हे सर्वगोत्र ! तुम सत्त्वमार्गको देनेवाले हो इससे मुझे भी पतिके निकट प्राप्त करो । फिर अग्निमें स्वाहा अन्तमें कहकर घीकी यह आहुति दे कि, अग्नये० तेजोऽधिपतये० विष्णवे० सत्त्वाधिपतये० कालाय० धर्माधिपतये० पृथिव्यै० लोकाधिष्ठात्र्यै० अद्भ्यो रसाधिष्ठातृभ्यो० वायवे बलाधिपतये० आकाशाय सर्वाधिपतये० कालाय धर्माधिष्ठात्रे० अद्भ्यः सर्वसाक्षिभ्यः ० ब्रह्मणे वेदादिधिपतये० रुद्राय श्मशानाधिपतये० स्वाहा यह आहुति प्रदानकर अग्निकी प्रदक्षिणा करै । पत्थर और शिलाकी पूजा करके पुष्पाजंलिको ले अग्निकी प्रार्थना करै, हे अग्ने ! तुम सब प्राणियोंके मध्य साक्षी होकर विचरते हो । जिन बातोंको मनुष्य नहीं जानते उनको तुम जानते हो । विधवात्वके डरसे पीडित हुई मैं पतिके संग अनुगत करतीहूं । हे सत्त्वमार्गके देनेवाले ! इससे मुझे पतिके निकट प्राप्त करो, इस मन्त्रको उच्चारण कर शनैः २ अग्निमें प्रवेश करै गौड यह लिखते हैं कि, ब्राह्मण इन दो मन्त्रोंको पढै कि, यह नारी अविधवा हो, और यह

"ॐ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो या याः सुशोभनाः । सह भर्तुः शरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ॥" इति च विप्रः पठेदित्याहुः ॥ कातरान्तु—प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत् ॥ एतन्महिमा मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—"अनुव्रजति भर्त्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥" यत्त्वङ्गिराः—"या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥" इति ॥ यच्च व्याघ्रपात्—"न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता । न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ।" इति, तत् पृथक्चितिपरम् ॥ "पृथक्चितं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोयं: परः स्मृतः ॥" इत्युशनसोक्तेः ॥ पृथक्चितिस्तु क्षत्रियादिपरा ॥ तद्विधिर्ब्राह्मे—"देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे निवृत्ते तु श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ॥" इमा नारीरविधवा इति ऋग्वेदवादः ॥ त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः ॥ निषेधवाक्यानि प्रायश्चित्तार्थं मृतेन पतितेन वा सहमरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः ॥ अस्थिदाहे पलाशदाहे वा न पृथक्चितिदोषः ॥ अङ्गत्वेन स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्य

पतिव्रता स्त्री पवित्र और पापरहित और शोभायमान है, इससे स्वामीके शरीरसहित अग्निमे प्रवेश करो. जो स्त्री भय माने तो उसको प्रेतके निकटसे देवर वा शिष्य उदीर्ष्व० इन दो मन्त्रोंसे उठाले. इसकी महिमा मिताक्षरामें समझनी. पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दवाक्य है कि, जो स्त्री प्रसन्न होकर पतिके पीछे जानेकी इच्छासे श्मशानमें जाती है, वह पग २ में सर्व श्रेष्ठ अश्वमेधके फलको प्राप्त होती है, और जो अंगिराका कहा है कि जो ब्राह्मणी स्त्री मृतक पतिके पीछे जाती है वह आत्महत्याके दोपसे अपनेको और पतिको स्वर्गमें नहीं लेजाती ॥ और जो व्याघ्रपादने कहा है कि, शोकसे दुःखी हुई ब्राह्मणी पतिके संग सती न होवे कारण कि, वह आत्मघातिनी ब्रह्मगतिको नहीं प्राप्त होती. ये दोनों वाक्य पृथक् चिताके विषयमें जानने, कारण कि उशनाने कहा है कि, पृथक् चितामें बैठकर ब्राह्मणीको सती होना न चाहिये. अन्यजातिकी स्त्रियोंका तो यह परमधर्म है पृथक्चिता तो क्षत्रियआदिके विषयमें है. उसकी विधि ब्राह्ममें लिखी है कि, देशान्तरमें पति मृतक होजाय तो उसके दोनों खडाऊं हृदयपर रखकर अग्निमें प्रवेश करै. ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्री आत्मघातिनी नहीं होती तीन दिनके अशौचकी निवृत्ति होनेपर शास्त्रोक्तश्राद्धको प्राप्त होती है, यह सती नारी अविधवा है यह ऋग्वेदवाद है. तीन दिनका अशौच अन्वारोहणके विषयमें लिखा है यह स्मार्त्त लिखते हैं निषेधके वाक्य तो प्रायश्चित्तके निमित्त जौनसे हों वहां और पतितके संग मरनेके निषेधमें हैं, यदि पतिके अस्थियोंका दाह वा पतिकी प्रतिमाका दाह होय तो पृथक् चिताप्रवेशका दोष नहीं कारण कि अंग होनेसे वा उसके स्थानमें जो हो वह उसकी समानहीं है इस न्यायसे

त्वात् ॥ यत्तु—"ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या ॥" इति हारीतीयं, तत्पतितदाहादिनिषेधेन सहगमनस्य दूरतोपास्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ जन्मान्तरीयपापवता सह मरणेनोद्धार इति स्मार्तगौडाः ॥ शुद्धितत्त्वे व्यासः—" दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया । न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत् ॥" तत्रैव भविष्ये—"तृतीयेह्नि उदक्या या मृते भर्तरि वै द्विजाः । तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम् । एकां चितां समासाद्य भर्तारं यानुगच्छति । तद्भर्तुर्यः क्रियाकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत्॥" एतद्दशाहान्तम्॥ 'यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात्स एव हि' ॥ इति वायवीयोक्तेः ॥ आपस्तम्बः—"चितिभ्रष्टा तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत् ॥ प्राजापत्येन शुध्येत तस्माद्धि पापकर्मणः॥" तथा—"अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रियाम् । पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ॥ अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्जलीन् । पृथक्छिले न कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा ॥" अन्यत्प्रागुक्तम् । इदं गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्व-

अस्थिभी शरीरकी समान है जो यह हारीतने कहा है कि, ब्रह्महत्यारा कृतघ्नी मित्रघ्नभी पति हो उसको भी वह अविधवा नारी पवित्र करती है. जो जिसको लेकर सती होती है वह वाक्य इससे अर्थवादमात्र जानना जब कि, पतितके दाहआदिका निषेध है तो सहगमन दूरसे दूरही अप्रास्त है यह अर्थवादमात्र है यह पृथ्वीचन्द्रका मत है. जन्मान्तरके पापीके संग सती होनेमें उद्धार नहीं होता यह स्मार्तगौड कथन करते हैं ॥ शुद्धितत्त्वमें व्यासका वाक्य है कि, जो सती स्त्री इतनी दूर पर ग्राममें स्थित हो जितनी दूरसे एक दिनमें पहुंचसके तो निश्चयवाली उस स्त्रीके पतिको उसके आनेतक दाह करना उचित नहीं. वहांही भविष्यपुराणका वाक्य है कि, यदि रजस्वलास्त्रीका पति तीसरे दिन मरे तो हे ब्राह्मणो ! उसके पतिको उस स्त्रीके मरनेके निमित्त एकरात्र रक्खै. एक चितामें बैठकर जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है उसके भर्त्ताकी जो क्रिया करै, वही उसकी क्रिया करै, यहभी दशदिन पर्यन्त है. कारण कि, वायुपुराणमें लिखा है कि, जो प्रेतका अग्निसंस्कार करता है उसीको पिंड देने चाहिये ॥ आपस्तम्बमें लिखा है कि, चितासे भ्रष्टहुई स्त्री मोहसे चलायमान होजाय तो वह इस पापकर्मसे प्राजापत्य व्रतसे पवित्र होती है. इसी प्रकारके वाक्य हैं कि, अन्वारोहमें स्त्री और पतिकी एक जलदान क्रिया है, तथा एक पिण्डदानक्रिया होती है, और एकही शिलापर जलदान होता है और कहने योग्य पहिले कहआये हैं, यहभी गर्भवती, जिसकी बालक सन्तान हो,

१ कोई कहते हैं यदि मृतककी भिन्नमाता और अनेकपुत्र हों तो पिताका सबसे बडा पुत्रही और्ध्वदैहिक कर अन्वारूढा (सती) में तो छोटापुत्रभी करसकता है और सौतका ज्येष्ठपुत्र भी नहीं कर सके कारण कि ऐसे स्थलों उसमें पुत्रता नहीं ॥

२ नवश्राद्ध सब सपिण्डीकरण पृथक् २ एक वृषोत्सर्ग और एक गौ दीजाती है ॥

व्यभिचारिणीभिर्न कार्यम् ॥ "स्वैरिणीनां गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । नास्ति पत्याग्निसंवेशः पतितो हि तथा उभौ॥" इति मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहोक्तेः ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः—'बालसंवर्धनं मुक्त्वा बालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियता रक्षेद्गर्भं च गर्भिणी ॥" तृतीयपादे 'रजस्वला सूतिका च' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्त्वे च पाठः ॥ तत्रैव बृहन्नारदीयेपि—"बालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला राजसुता नारोहन्ति चितां तु ताः" इति ॥ अत्र—'पतिव्रता सा संदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम्' इति भारतात् 'ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री' इति ब्राह्माच्च । पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् ॥ यत्तु—"अवमत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तन्ते याश्च सततं भर्तॄणां प्रतिकूलतः ॥ तत्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवन्त्युत" इति भारतम् ॥ तत्र कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मण्या एकचितिरेव न पृथक्चितिः ॥ क्षत्रियादीनां पृथक्का वेति कल्पतरुरत्नाकरमदनपारिजातादयः ॥ शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् ॥ तत्रान्वारोहणे मन्त्रेशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमध्ये एव दश पिण्डाः ॥ सहग-

---

सूतिका, रजस्वला, व्यभिचारिणी इनसे भिन्नका करना, कारण कि, मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका वाक्य है कि, व्यभिचारिणी गर्भिणी पतित स्त्रियोंका पतिके संग अग्निमें प्रवेश नहीं होता यदि प्रवेश होय तो दोनों पतित होते हैं, मदनरत्नमें बृहस्पतिने लिखा है कि, बालकके भरण पोषणको त्यागकर बालक संतानवाली स्त्री स्वामीके साथ न मरे और गर्भिणीको व्रतउपवासमें तत्पर रहकर गर्भकी रक्षा करनी चाहिये, पूर्वोक्त श्लोकके तीसरे पादमें सूतिका और रजस्वलाको भी पृथ्वीचन्द्रोदय और गौडोंने शुद्धितत्वमें पढा है कि, उनकोभी अनुगमन न करना चाहिये ॥ वहांही बृहन्नारदीयका वाक्य है कि, हे राजपुत्री ! जिसकी सन्तान बालक है वह तथा गर्भिणी और जिसको ऋतु न हुई हो और रजस्वला उनको चितामें आरोहण न करना चाहिये इसमें वह पतिव्रता स्त्री जलती हुई अग्निमें प्रवेश करे इस भारतके वाक्यसे और ऋग्वेदके वादसे साध्वी स्त्रीको आत्मघात न करना चाहिये, इस ब्राह्मके वाक्यसे केवल पतिव्रताकोही सहगमनका अधिकार है दुराचारिणियोंको नहीं. जो यह भारतका वाक्य है कि, जो स्त्री प्रथम दुष्टचित्तसे पतिका तिरस्कार करके और सदा पतिके प्रतिकूल रहती है यदि वेभी समयपर पतिके पश्चात् मरण करें, तो वेभी काम क्रोध भय मोह सबसे पवित्र होती हैं, यह भारतका वाक्य कैमुत्तिकन्यायसे स्तुतिके निमित्त है. यह पृथ्वीचन्द्रका मत है, ब्राह्मणीकी एकचिताही होती है पृथक् नहीं होती, क्षत्रिय आदिकी तो पृथक् वा एकचिता होती है यह कल्पतरुरत्नाकर मदनपारिजात आदिका कथन है ॥ शुद्धिचिन्तामणिमें भी इसी प्रकार कहा है, वहां अन्वारोहणमें पातकके अशौचके बीचमें वा उसके पश्चात् अन्वारोहण होय तो

मने तु भर्तुराशौचतुल्यमाशौचं पिण्डदानं च ॥ "अन्विताया: प्रदातव्या दश पिण्डास्त्र्यहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते" इति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च पैठीनसिस्मृतेः ॥ "संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत्" इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः ॥ अन्यत्प्रागुक्तम् ॥ यदा तु रजस्वलापि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तत्र विधिः देवयाज्ञिकनिबन्धे—"यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान्समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्धये । मुसलाघातैस्तदसृक्स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षयम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्च मृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशतिर्दश च गवां दत्त्वा त्वहः क्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेद्धुताशनम् । नारीणां सरजस्कानामियं शुद्धिरुदाहृता ॥" अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः ॥ इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धावन्त्यकर्मनिर्णयः ॥ अग्निप्रवेशाशक्तौ । अग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः—'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं च' इति ॥ ब्रह्मवैवर्ते—'सहानुगमनं श्रेष्ठं वैधव्यस्याथ पालनम् ॥' यत्तु तत्रैव—'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादृते' इति ब्रह्मचर्या-

---

तीन दिनके मध्यमेंही दश पिंड देने चाहिये, और संग मृत्युमें तो पतिके संग अशौच और पिंडदान होता है, कारण कि, शुद्धितत्त्व और शूलपाणिमें पैठीनसिकी स्मृतिका कथन है कि, (पीछे मरकर सती हुई) स्त्रीको तीन दिनमें दश पिंड दे और भर्ताके अशौच वीतनेपर उसको श्राद्ध दियाजाता है, यह शूलपाणि शुद्धितत्त्वमें व्यासका वाक्य है कि, मृतकहुए पतिको आलिंगन कर जो स्त्री अग्निमें प्रवेश करती है उसके पिण्ड आदि क्रमसे पतिपिंडके तुल्य देने चाहिये ॥ और पहले कहआये हैं जो रजस्वला स्त्री भी पतिके मरनेपर देशकालके वशसे उसी समय सती होनेकी इच्छा करै, अनुगमन चाहे और शुद्धिकी प्रतीक्षा न करै उसका विधान देवयाज्ञिकमें लिखा है कि, जब स्त्री रजस्वला हो, और पति प्राणोंको त्यागदे तो वह एक द्रोणभर चावल शुद्धिके निमित्त मूसलसे कूटे, मूसलकी चोटसे उसके योनिमण्डलसे रक्त गिरजाता है, उस रुधिरके पात होनेसे अपने मनमें रजसे रहित मानती हुई पांच मृत्तिका ओंसे पृथक् २ शौच करै. तीस बीस वा दश गोदान करके और ब्राह्मणोंके वाक्यसे शुद्ध होकर अग्निमें प्रवेश करै. रजस्वला स्त्रियोंकी इस प्रकार शुद्धि लिखी है, इसमें श्राद्धका निर्णय पहले लिख आये हैं ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामन्त्यकर्मनिर्णयः । अग्निप्रवेशकी शक्ति न होय तो विष्णुने कहा है कि, पतिके पीछे ब्रह्मचर्य करै, वा अन्वारोहण करै. ब्रह्मवैवर्तमें कहा है कि, स्त्रीको सहगमन वा वैधव्यका पालन श्रेष्ठ है, जो वहां लिखा है कि, सहगमनके विना कलियुगमें स्त्रियोंकी और गति नहीं है, वह उसके

शक्यत्वपरम् ॥ तथा च मनुः–'ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम् ।' काशीखण्डेपि–" पत्यौ मृतेपि या योषिद्वैधव्यं पालयेत्क्वचित् । सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते ॥ अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथंचन । तत्रापि शीलं संरक्षेच्छीलभङ्गात्पतत्यधः ॥ तद्वैगुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा । तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च ॥" अथ विधवाधर्माः । मदनरत्ने स्कांदे–"विधवाकवरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा । एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । मासोपवासं वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ॥ पर्यंकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैवं कार्यस्तया पुनः । तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः ॥ तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥". इदमपुत्रापरमिति मदनपारिजातः–"नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत् ॥ वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत् ॥" प्रचेताः–"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥" श्राद्धादौ तु विशेषः प्रागुक्तः ॥ यत्तु बौधायनः–"संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्ज-

---

निमित्त है, जो ब्रह्मचर्य्य न करसकै. सोई मनुने लिखा है कि, ब्रह्मचर्य्य वा अग्निमें प्रवेश करै, काशीखंडमें भी कहा है कि, पतिके मृतक होनेपर भी जो स्त्री वैधव्यकी पालना करती है, वह फिर भी पतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें प्राप्त होती है, यदि भाग्यवश किसीप्रकार पतिका अनुगमन न करै, तथापि शीलकी रक्षा करै, कारण कि, शीलके भंगसे नरकमें गिरती है, और उसीके अवगुणोंसे पिता माता भ्राता और पति ये भी स्वर्गसे गिरजाते हैं ॥ अब विधवाके धर्म लिखते हैं, मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, विधवाका वेणीबन्धन पतिके बन्धनार्थ है, इससे विधवा शिरका मुण्डन करावे, सदा एक बार भोजन करै किसी प्रकारभी दूसरी बार भोजन न करै, मासोपवास वा चांद्रायणव्रत करै, जो विधवास्त्री शय्यापर शयन करती है वह पतिको पतित करती है, विधवास्त्रीको कभी उबटना और गन्धद्रव्यका भोग न करना चाहिये. तिलकुशाजलसे पति और उसके पिता और पितामहके निमित्त नामगोत्र उच्चारण कर प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये, यहभी अपुत्राके निमित्त है यह मदनपारिजातमें कहा है. विधवा स्त्रीको उचित है कि, कण्ठमें प्राण आनेपरभी बैलपर आरोहण न करै (न चढे) कुंचुक (चोली) और विकार करनेवाले वस्त्रकोभी कदाचित् धारण न करै. वैशाख कार्तिक माघमासमें विशेष नियम करै. प्रचेताने कहा है कि, पान अंजन कांसीके पात्रमें भोजन इनको संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवाको त्यागने चाहिये. श्राद्धआदिमें विशेष प्रथम लिखआये हैं, और जो बौधायन कहते हैं मृतककी स्त्री वर्षदिनतक मधुमांस त्यागकर नीचे शयन करै यह मौद्गल्यभी कहते हैं,

येत् । अधः शयीत षण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम् ।" इति एतदसवर्णापरमित्यपरार्कः ॥ अथ संन्यासनिर्णयः । अथ संन्यासः ॥ याज्ञवल्क्यः—"वनाद् गृहाद्वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥ अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ॥ शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥" एतदाश्रमसमुच्चयपक्षे ॥ जाबालश्रुतौ त्वन्येपि पक्षा उक्ताः ॥ 'यदि वेतरथाब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वनाद्वा ॥ अथ पुनरव्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति ॥ अङ्गिराः—"प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेद्वा गृहादपि । वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः ॥" आतुरो मुमूर्षुः ॥ दुःखितश्चौरव्याघ्रादिभीतः ॥ भारते—"आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥" जाबालश्रुतावपि—'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्' इति ॥ अत्र विप्रस्यैवाधिकारः 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः—'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्' इति मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरादयः ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्योपि—"चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः । क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको

अपरार्क इस वाक्यको असवर्णविषयक कहते हैं ॥ अब संन्यासको वर्णन करते हैं, याज्ञवल्क्यका वाक्य है कि, वन वा गृहमें सब वेदोंके मन्त्रोंसे दक्षिणा सहित प्राजापत्य यज्ञ करके फिर उन अग्नियोंको आत्मामें आरोपण करे. वेद पढनेवाला. वेद पढेहुए. जपमें तत्पर, पुत्रवान्, अन्नदाता, अग्निवाला, शक्तिसे यज्ञका कर्ता मोक्षमें मनको करे. इससे अन्यथा न करे. यहभी आश्रमके समुच्चय पक्षमें जानना. जाबालश्रुतिमें तो औरभी पक्ष लिखे हैं यदि अन्यथा देखे तो ब्रह्मचर्यसे ही[1] गमन करै वा गृहसे वा वनसे गमन करै और व्रती न होय स्नातक न होय वा स्नातक होय नष्टअग्नि हो वा अग्निहोत्री न हो ऐसे मनुष्यके मनमें जिस दिन विराग हो उसी दिन संन्यास लेना चाहिये. अंगिराने लिखा है कि, ब्रह्मचर्यसे गृहस्थसे वा वनसे गमन करै (संन्यास ले) विद्वान् मनुष्य आतुर (मरने योग्य) दुःखित (चोर व्याघ्रआदिसे डराहुआ) संन्यासको न ग्रहण करै ॥ भारतमें लिखा है कि, रोगियोंके संन्यासमें न विधि और न कर्म है, प्रैषमात्रका उच्चारण करके संन्यासका स्वीकार करना चाहिये जाबालश्रुतिमें कहा है कि, यदि मनुष्य आतुर होय तो मन वा वाणीसे ही संन्यास ग्रहण करले, इसमें ब्राह्मणकाही अधिकार है, कारण कि, यह जाबालश्रुतिमें लिखा है कि, ब्राह्मण संन्यासी होते हैं, मनुने भी कहा है कि, आत्मामें अग्नियोंका आरोप करके ब्राह्मणको संन्यास लेना चाहिये, यह विज्ञानेश्वर आदिने कहा है वृद्धयाज्ञवल्क्यने भी कहा है कि, श्रुतिमें कहेहुये ब्राह्मणको चारों आश्रम, क्षत्रियको तीन वैश्यको

---

१ संन्यासका यही नियम नहीं कि क्रमसे आश्रममें आवे वामदेवादिके समान जब पूर्णज्ञान हो संन्यास स्वीकार करै ॥

वैश्यशूद्रयोः" इति ॥ माधवस्तु—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात्' इति कौर्माद्युक्तेर्वर्णत्रयस्याप्यधिकारः । पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थम् । "मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः ।" इति बौधायनोक्तेरिति पक्षान्तरमाह । तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेतदिति ॥ योपि 'संन्यासं पलपैतृकम्' इति कलौ निषेधः, सोपि त्रिदण्डादिपरः इत्युक्तं प्राक् ॥ स च संन्यासश्चतुर्धेत्याह हारीतः—"कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः । चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥" आद्यः पुत्रादिना कुटीं कारयित्वा तत्र गृहे वा वसन् काषायवासाः शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु स्वगृहे वा भुञ्जान आत्मज्ञो भवेद् । एतदत्यन्ताशक्तपरम् ॥ द्वितीयस्तु बन्धून् हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात् ॥ हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोप्येकदण्डः । ' एकं तु वैणवं दण्डं धारयेन्नित्यमादरात्' इति स्कान्दात् ॥ विष्णुरपि—"यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् । तावान्परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥" चतुर्थोपि स्कान्दे—"परहंसस्त्रिदण्डं च रज्जुं गोवालनिर्मिताम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥" अयमप्येकदण्ड एव ॥ ये तु शिखो-

---

दो और शूद्रको एक आश्रम लिखा है ॥ माधव तो यह पक्षभी लिखते हैं, कि ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य घरसे गमन करै, इस कौर्मआदिके वाक्यसे तीनों वर्णोंका अधिकार है. पहला वाक्य तो काषायवस्त्र और दंडआदिके निषेधके निमित्त है, कारण कि, बौधायनने कहा है कि, विष्णुके चिह्नका धारण (संन्यास) ब्राह्मणोंका धर्म है, क्षत्रिय वैश्यका नहीं, यह दत्तात्रेय कहते हैं. बौधायनोक्तिसे पक्षान्तर है कि, यह वचन कुटीचक आदि पर है, जो यह लिखा है कि, संन्यास और मांससे श्राद्ध कलियुगमें न करै, वह भी त्रिदंड आदिके विषयमें है, यह पहिले लिखआये हैं ॥ वह संन्यास चौथा लेना यह हारीतने कहा है कि, कुटीचक, बहूदक, हंस, और चौथा परम हंस उत्तम है. कुटीचक वह होता है, जो पुत्रआदिके द्वारा कुटी बनाकर उसमें वा घरमें काषायवस्त्रको धारण करके निवास करै शिखा यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड धारण करै, अपने बन्धु वा घरमें भोजन करै, और आत्मज्ञानी होय, यह उसके निमित्त है जो अत्यन्त अशक्त हो. जो अपने बन्धुओंको त्यागकर सातघरमें भिक्षामांगे और पूर्वोक्त वेषको धारै वह बहूदक संन्यासी होता है. तीसरा हंस वह है जो पूर्वोक्तवेष धारै, और एक२ दण्डको धारण करै कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखा है कि, एक बांसके दण्डको आदरपूर्वक नियमसे धारण करै विष्णुने भी लिखा है कि, यज्ञोपवीत दंड जन्तुनिवारण वस्त्र इतनाही परिग्रह हंसको लिखा और नहीं. चौथा परमहंस, स्कंदपुराणमें लिखा है कि, त्रिदंड गौके बालोंकी रज्जु शिखा यज्ञोपवीत नित्य कर्म इनको परमहंस, त्यागदे, यहभी एकदंडीके निमित्त है. और जो शिखा-

पवीतादि त्यागनिषेधाः, ते कुटीचकादिपराः ॥ यत्तु मेधातिथिः—'यावन्न स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत्' इति ॥ तदपि तत्परमेव ॥ यच्चात्रिः—"चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः" इति,—तद्वाग्दण्डादिपरं न यष्टिपरम् ॥ "वाग्दण्डोथ मनोदंडः कर्मदंडस्तथैव च । यस्यैते नियता दंडाः स त्रिदंडीति चोच्यते ॥" इति मनूक्तेः ॥ तस्मात्परमहंसस्यैकदण्ड एव ॥ सोप्यविद्वुपः, विदुषस्तु सोपि नास्ति "न दण्डं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंसः" इति महोपनिषदुक्तेः ॥ 'ज्ञानमेवास्य दंडः' इति वाक्यशेषाच्च ॥ यत्तु यमः—"काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः । स याति नरकान्घोरान् महारौरवसंज्ञितान्" इति तद्वैराग्यं विना जीवनार्थसंन्यासपरम् । 'एकदंडं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते" इति स्मृतेः ॥ यच्चाश्वमेधिके—"एकदंडी त्रिदंडी वा शिखामुण्डित एव वा । काषायमात्रसारोपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥" इति तस्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया ॥ अथ संन्यासविधिः । बाधायनः—"कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योष्टकं पृथक् । वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥" सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः ॥स्मृत्यर्थसारेपि—"एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि

यज्ञोपवीत आदि त्याग न करनेके निषेध हैं वे कुटीचक आदिके निमित्त हैं. जो मेधातिथिका यह वाक्य लिखा है कि, जबतक तीनदंड न हों तबतक एकसे ही वर्त्तना चाहिये वह भी एक दंडीके विषयमें है ॥ जो अत्रि कहते हैं कि चार प्रकारके भिक्षु सब त्रिदंडीके होते हैं यह वाग्दंडादिमें जानना (लाठी) के दंडमें नहीं कारण कि, मनुने लिखा है कि, वाग्दंड, मनोदंड, कर्मदंड जिसमें ये दंड नियमसे हैं वही त्रिदंडी कहाता है तिससे परमहंसको एकही दंड होता है, वह भी अज्ञानीको होता है ज्ञानीको तो वहभी नहीं, कारण कि, महोपनिषद्में लिखा है कि, दंड शिखा आच्छादन वस्त्र इनको परमहंस नहीं रखते और यहभी शेष वाक्य है कि, ज्ञानही इसका दंड है. जो यमने यह लिखा है कि, जिसने काष्ठके दंडको धारण किया और जहां तहां भोजन खाया, और ज्ञानसे हीन रहा वह महारौरव नाम घोरनरकोंमें गमन करता है; वह वाक्य वैराग्यके विना जीवनके निमित्त संन्यासके निमित्त है कारण कि, यह स्मृतिमें है कि, जो बहुतसे मनुष्य एकदंडके आश्रयसे जीते हैं, वे कर्मके त्यागसे घोर रौरवनरकमें जाते हैं. हे युधिष्ठिर ! एकदंडी, त्रिदंडी, शिखावाला वा मुंडी हो केवल काषायको धारण किये भी संन्यासी पूजने योग्य है, उसकी भी पूर्वोक्त व्यवस्था जाननी चाहिये, यह अश्वमेध पर्वमें कहा है ॥ अब संन्यासीकी विधिको वर्णन करते हैं, बौधायनने लिखा है कि, संपूर्ण श्राद्ध और पिताआदिके अष्टका श्राद्ध भिन्न २ करके मुंडन कराय इन मंत्रोंसे मार्जन करै. संपूर्ण श्राद्धोंसे अपने नवश्राद्ध षोडशश्राद्धका ग्रहण है स्मृत्यर्थसारमें भी लिखा है कि,

षोडश। अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम् ॥" इति॥ कात्यायनः-"कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी। आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत् ॥" बौधायनः-"सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे। भौतिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥" अत्र क्रममाह हेमाद्रौ शौनकः-'देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः। आर्षे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयो वा॥' मरीच्यादिऋषय इति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् ॥ दिव्ये वसुरुद्रादित्याः ॥ मानुषे सनकसनंदनसनातनाः ॥ भूतश्राद्धे पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः ॥ पित्र्ये पित्रादित्रयो मातामहाश्च ॥ मातृके मात्रादयस्तिस्रः ॥ आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहा देवताः ॥ आत्मश्राद्धं परमात्मदेवत्यमिति संन्यासपद्धतौ तच्चिन्त्यम् ॥ सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम् ॥ सर्वत्र पिण्डदानम् ॥ युग्मा विप्राः ॥ दक्षक्रतू सत्यवसू वा विश्वेदेवौ ॥ अन्यन्नान्दीश्राद्धवदिति हेमाद्रिः॥ स्मृत्यर्थसारे-'केशश्मश्रुलोमनखं वापयित्वोपकल्पयेत्। दण्डं जलं पवित्रं च शिक्यं पात्रं कमंडलुम् ॥' आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्था पादुके इति दश पञ्च वा ॥ एतच्च पूर्वेद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं कृत्वा कार्यमिति शौनकः ॥ बौधायनः-"त्रीन्दण्डानंगुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्ध-

---

एकोद्दिष्टके विधानसे षोडश श्राद्ध करै अग्निहोत्री होय तो पार्वणकी विधिसे स्वयं श्राद्ध करै. कात्यायनने कहा है कि, किसी आश्रममें न होय तो चार ४ कृच्छ्र और आश्रमी होय तो पवित्रताके लिये तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये, तिससे यह संन्यासके योग्य होता है बौधायनने कहा है कि देव ऋषि दिव्य पित्र्य मातृक मानुष भौतिक और अपना यह आठ श्राद्ध करै ॥ इसमें क्रम हेमाद्रिमें शौनकने कहा है कि, देवश्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवता हैं इनका श्राद्ध करै. आर्षमें देवर्षि ब्रह्मर्षि क्षत्रियर्षि मनुष्यर्षि वा मरीचि आदि लेने, यह संन्यासपद्धतिमें लिखा है वह चिन्ता करनेयोग्य है. दिव्यश्राद्धमें वसु रुद्र आदित्य, मानुषमें सनक सनन्दन सनातन, भूतश्राद्धमें पृथ्वी आदि भूत और नेत्रआदि इन्द्रिय लेने, कारण कि, चार प्रकारका भूतग्राम होता है, पितृश्राद्धमें पिता-आदि तीन, और मातामह आदि तीन मातृश्राद्धमें माता आदि तीन, आत्मश्राद्धमें आत्मा पिता पितामह ये तीन देवता होते हैं, आत्मश्राद्धमें परमात्मा देवता होता है, यह संन्यासपद्धतिमें कहा है सो चिन्त्य है. सब स्थानोंमें नांदीमुख विशेषण जानना, और सब जगह पिण्डदान करना और युग्म ब्राह्मण होते हैं. दक्ष, क्रतु, वा सत्य, वसु, विश्वेदेवा होते हैं और कर्म नांदीमुखके समान होता है यह हेमाद्रि कथन करते हैं. स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, केश, श्मश्रु, लोम, नखको मुंडाकर दंड जल पवित्र शिक्य छीका पात्र कमंडलुको वा आसन कौपीन आच्छादन कन्था खडाऊं इन पांचोंको धारण करै, यह भी पहिले दिन नांदीमुख और दूसरे दिन पुण्याहवाचन करके करना, यह शौनकने कहा है ॥ बौधायनने लिखा है कि, अंगुलीके समान

संमितान् । एकादश नव द्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् ॥ वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्ज्वा तु चतुरंगुलान् । एको वा तादृशो दंडो गोवालसदृशो भवेत् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः । "पृष्टो दिविनिधानेनेत्यर्थः ॥ "स्वाग्नावेवाग्निमान् कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्त्रिवृद्धा जलमेव वा ॥ ॐभूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्तसमयात्पूर्वमग्नीन् विहृत्य सः ॥ आज्यमग्नौ गार्हपत्ये संस्कृत्यैतेन च स्रुचा ॥ पूर्णमाहवनीये तु जुहुयात्प्रणवेन तत् । ब्रह्मान्वाधानमेतस्याद्ग्निहोत्रे हुनेत्ततः ॥ संस्तीर्य गार्हपत्यस्य दर्भानुत्तरतोत्र तु । पात्राण्यासाद्य दर्भेषु ब्रह्मायतन एव तु॥ जागृयाद्रात्रिमेतां तु यावद्ब्राह्मो मुहूर्तकः । अग्निहोत्रं स्वकाले च हुत्वा प्रातस्तनं ततः ॥ इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्प्राजापत्यमथापि वा ॥" जाबालश्रुतौ—'तद्वैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वीत तदु तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात्पश्चात् त्रैधातवीयामेव कुर्यात्' इत्युक्तम् ॥ तेनात्र विकल्पः ॥ अत्राहुः—'त्रेताग्नः प्राजापत्यातद्वाक्यशेषेग्नीनिति बहुत्वश्रुतेः ॥ एकाग्नेस्त्वाग्नेयी' इति अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानर आग्नेयो वा चरुरिति माधवः ॥ कात्यायनः—"आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्यस्थितो हरिम् । ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत् ॥" कपिलः—"विधिवत्प्रैषमुक्त्वाथ त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यथो भुवि ॥ निनीय दंडशिक्यादि

स्थूल और मस्तकपर्यन्त बांसके तीन दण्ड रक्खै, जिनमें ग्यारह नौ दो तीन चार वा सात गांठैं हों और काली गौके वालोंकी रस्सीके चार ४ अंगुलके वेष्टन हों, वा गौके वालोंके तुल्य एकही वैसा दण्ड हो. जो अग्निहोत्री न हो वह पृष्टोदिविआदि विधानसे और अग्निहोत्री अपनी अग्निमें आदिसे अग्निको उत्पादन करके क्रमपूर्वक संन्यास ले घी, दूध, दही ये तीनों वा केवल जलको ॐभूः इत्यादिसे भक्षण करके एकरात्रि व्रत करै. फिर सूर्यके अस्त होनेसे प्रथम अग्निहोत्र करके फिर गार्हपत्य अग्निमें घृतका संस्कार करके उस घी भरे स्रुवेसे आहवनीय अग्निमें ॐकार उच्चारण कर आहुति दे ब्रह्मका आयतन (घर) समझकर उस रात्रिको जागरण करै, और जबतक ब्राह्ममुहूर्त हो तबतक समय २ पर अग्निहोत्र करै, फिर वैश्वानरी और प्राजापत्य यज्ञ करै ॥ जाबालश्रुतिमें कहा है कि, कोई प्राजापत्य यज्ञ कहते हैं, उसका उत्थान करै फिर आग्नेयीयज्ञ करै, फिर त्रैधातवी यज्ञ करना, तिससे यहां विकल्प है. इसमें कोई यह लिखते हैं कि, जो तीन अग्निवाला है उसका प्राजापत्ययज्ञ करना चाहिये, कारण कि, उससे वाक्यशेषमें अग्नीन् यह बहुवचन श्रवण किया है और जो एक अग्निहोत्री है वह आग्नेयीको करै, कारण कि, माधवने लिखा है कि," अनाहिताग्निको इष्टिके स्थानमें वैश्वानर वा आग्नेयचरु होती है. कात्यायनने लिखा है कि आत्मामें अग्नियोंका आरोप करके वेदीके मध्यमें स्थित ब्राह्मण हृदयमें नारायणका ध्यान करके गुरुकी आज्ञासे प्रैषमंत्रका उच्चारण करै. कपिलने कहा है कि, फिर विधिवत् प्रैषमंत्रको उच्चारण कर तीन बार सूक्ष्म स्वरसे तीनवार ऊंचेस्वरसे यह कहै कि, 'अभयं

गृहीत्वाथ बहिर्व्रजेत् ॥" अभयमितिमंत्रेण अपां पूर्णमंजलिं निनीयेत्यर्थः ॥ बौधायनः—"सखे मेत्यादिना दण्डं येन देवाः पवित्रकम् । यदस्य पारे शिक्यं तु पात्रं व्याहृतिभिस्तथा ॥ युवा सुवासाः कौपीनं गृहीत्वा बान्धवांस्त्यजेत् ॥" संन्यासग्रहणक्रमः । अथ क्रमः ॥ तत्र संन्यासेधिकारसिद्ध्यर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डनानि साग्निः पार्वणान्यनग्निस्त्वेकोद्दिष्टविधिनाकृत्वाऽनाश्रमी चेत्कृच्छ्रचतुष्टयम्, अन्यस्तु तप्तकृच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां वा साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथापर्वणि प्राजापत्यं स्यात् ॥ तत्र देशकालौ स्मृत्वा परमहंसादिसंन्याससग्रहणं करिष्ये इतिसंकल्प्य गणेशं संपूज्य पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौपासनं समिध्याहिताग्निस्तु गार्हपत्ये. विधुरोग्निहोत्री तु त्रिकाण्डमण्डनोक्तदिशा कुशपत्न्या सह पवमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात् ॥ ब्रह्मचारी चेल्लौकिके विधुरश्चेद्व्याहृतिभिः प्रणवेन चाग्निमादायान्वग्निरुषसामित्यानीय पृष्टोदिवीति निधाय तत्रैव समिध्य तत्सवितुः, तां सवितुः विश्वानिन इति तिस्रः

सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' सब प्राणियोंको मुझसे अभय हो. फिर भूमिपर झुककर दंड और शिक्यआदि लेकर ग्रामसे बाहर चलाजाय. भूमिपर झुकनेका यह अर्थ है पूर्वोक्त अभयं इस मंत्रसे भूमिपर जलोंकी तीन अंजली देनी चाहिये. बौधायनने कहा है कि, सखे मे इत्यादि मंत्रसे दंड, येन देवा० इस मंत्रसे पवित्री यदस्यपारे० इस मंत्रसे शिक्य व्याहृतियोंसे पात्र, युवासुवासा० इसमंत्रसे कौपीनको ग्रहण करके बांधवोंको त्यागदेना चाहिये ॥ अब क्रमको वर्णन करते हैं—उसमें संन्यासके अधिकार सिद्धिके निमित्त अपने नवश्राद्ध षोडशश्राद्ध सपिंडीको साग्नि पार्वणविधिसे और अनग्नि एकोद्दिष्टविधिसे सम्पादन करके अनाश्रमी होय तो चारकृच्छ्र और आश्रमी होय तो तप्तकृच्छ्र करके उत्तरायण समयमें एकादशी वा द्वादशीको साग्नि अमावस्या पूर्णमासी वा चतुर्दशीको पर्वके अनुसार प्राजापत्यव्रत करै. फिर देशकालका स्मरण करके परमहंस आदि संन्यासको ग्रहण करताहूं यह संकल्प करके गणेशजीकी पूजा पुण्याहवाचन मातृकापूजा और वृद्धिश्राद्ध सम्पादन करके, सूर्यास्तसे प्रथम औपासनअग्निको प्रज्वलित करके और आहिताग्नि गार्हपत्यअग्निसे वा पत्नीसे रहित होय और अग्निहोत्री होय तो त्रिकाण्डमंडनमें लिखे प्रकारसे कुशाकी पत्नीसहित पवमानेष्टिपर्यंत वा पूर्णाहुतिपर्यंत गार्हपत्यअग्निमें आधान करै. ब्रह्मचारी होय तो लौकिक अग्निमें आधान करै, और विधुर होय तो व्याहृति वा ॐकारसे अग्निको लेकर अग्निरुषसाम० इत्यादि निपृष्टो दिवि० इस मंत्रसे वेदीपर अग्निको स्थापन कर और उसी मंत्रसे प्रज्वलित तत्सवितुः, विश्वानिनः० इन मंत्रोंसे तीन समिधा स्थापन करै॥

---

१ युवासुवासाः परिवीत आगात्सउश्रेयान्भवति जायमानः । तंधीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसादेवयन्तः । ३ । १ । ३ । ऋ० ॥

समिधोऽभ्यादध्यात् ॥ एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवर्ज्यं वपनं कृत्वा पयोदधिघृतमाज्यमपो वा ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमिति प्राश्याचम्य पुनरादाय ॐभुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहीति द्वितीयम्, ॐस्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो योनः प्रचोदयादिति तृतीयम्, समस्तया चतुर्थं ॐभूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रविशामि० तत्सवितु० यात् इति संन्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति प्रथमं प्रवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीप्रवेश उक्तः ॥ तत आहवनीयं विहृत्य ब्रह्माणमुपवेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा समित्पूर्वोमों स्वाहा परमात्मन इदमिति हुत्वोपवसेत् ॥ ततः सायंहोमं वैश्वदेवं च कृत्वा अग्नेरुदक्कुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वासाद्य ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो रात्रौ जागरं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं प्राजापत्यां वैश्वानरीं वा कृत्वा ऋत्विग्भ्यः सर्वस्वं ब्रह्मणे च मधुपूर्णं तैजसपात्रं दत्त्वा दारुपात्राण्याहवनीयेऽश्ममृन्मयानि च जले क्षिपेत् ॥ कृष्णाजिनं त्वाददीत ॥ अनाहिताग्निस्तु वैश्वानरमाग्नेयं वा चरुं हुत्वा पात्राण्यग्नौ क्षिप्त्वा भूर्भुवः स्वरित्यपः स्पृष्ट्वा तरत्समन्दीति जप्त्वा विप्रान्संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा

इस प्रकार जब अग्नि सिद्ध होजाय तब कक्ष और लिंगको त्यागकर वपन कराय दूध दहीसे युक्त वा केवल जलको ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि, तत्सवितुर्वरेण्यं० इस मन्त्रसे पहलीवार पीकर और जल पीकर फिर लेकर ॐभुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गोदेवस्य धीमहि० इससे द्वितीय वार ॐस्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्० इस मन्त्रसे तीसरी वार पान कर फिर समस्तसे ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्० चतुर्थसे चौथी वार जलको पान करे । संन्यासपद्धतिमें तो, त्रिवृदसि इससे प्रथम और प्रवृदसि० इससे दूसरी और विवृदसि० इससे तीसरी वार भक्षण करके आपः पुनंतु० इस मन्त्रसे तीन वार जलपान कर सावित्री (गायत्री) में प्रवेश लिखा है फिर आहवनीय अग्निको लाकर और ब्रह्माको बैठायकर और घृतको संस्कार करके चार वा बारह वार घृतको ग्रहण करके समित् पूर्वोमोंस्वाहा परमात्मने इदं० इस मन्त्रसे हवन करके उपवास करै, इसीको ब्रह्मान्वाधान कथन करते हैं. फिर संध्याकालको हवन वैश्वदेवकरके अग्निकी उत्तर ओर कुशा बिछाय पूर्वोक्त दंडआदि दश वा पांच रखकर ब्रह्मासन और कृष्णमृगछालापर बैठ रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल हवनके अनन्तर प्राजापत्य वा वैश्वनारी यज्ञको संपादन कर ऋत्विजोंको सर्वस्व और ब्रह्माको मधुसे भरा सुवर्ण वा चांदीका पात्र देकर काष्टके पात्रको आहवनीय अग्निमें और पत्थरके पात्रोंको जलमें डालदे, कृष्णमृगछालाको तो ग्रहण करै. अनाहिताग्नि तो वैश्वानर वा आग्नेय चरुका हवन करके पात्रोंको अग्निमें डालकर भूर्भुवः स्वः इस मन्त्रसे आचमन करके तरत्समन्दी० सूक्तको जप करके पुण्याहवाचनपूर्वक और मुण्डन कराकर सोना चांदी और कुशाके जलसे स्नान-

अत्र वा वपनं कृत्वा हेमरूप्यकुशजलैः स्नात्वा पुरुषाय चरुं कृत्वा प्राणाय स्वाहेति पञ्चाहुतीर्हुत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यचरुं च जुहुयात् ॥ अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः ॥ यथोक्तं शिवगीतासु—"जुहुयाद्विरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः । अनुवाकान्तमेकाग्नेः समिदाज्यचरून्पृथक् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य याते अग्नेतिमन्त्रतः । भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥ पापैर्विमुच्यते सत्यं मुच्यते नात्र संशयः ॥" तथा—'प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इदमिति त्यागः ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजंघाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं० उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गललोहिताक्ष देहिदेहि ददापयिता मे शुद्ध्यन्ताम् ॥ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योतिरहं० शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिः आत्मा मे शुध्यताम् ॥ क्षुधे स्वाहा । क्षुत्पिपासाय स्वाहा । विविध्यै स्वाहा । ऋग्विधानाय

कर पुरुषके निमित्त चरु कर प्राणाय स्वाहा इस मन्त्रसे पांच आहुति प्रदान कर पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे घृत वा चरुका हवन करै, यहां कोई आचार्य विरजाहोम कहते हैं ॥ यही शिवगीतामें लिखा है कि, विरजाके मन्त्रोंसे हवन करै प्राणअपान आदिसे करै, फिर अनुवाकांत एकाग्नि मन्त्रसे समिध घृत चरुका पृथक् २ हवन करै, पश्चात् आत्मामें अग्निका आरोप करकै, याते अग्ने० इस मन्त्रसे भस्म लेकर और अग्नि इत्यादि मन्त्रोंसे उस भस्मको मलकर अंगसे लेपन करै. इस प्रकार करनेसे निश्चय करकै पापोंसे छूटता है इसमें सन्देह नहीं वह होम इस प्रकार है कि, प्राण अपान समान उदान व्यान मेरे पवित्र हों और मैं ज्योतिरूप रजोगुण और पापोंसे रहितहूं स्वाहा० सब मन्त्रोंसे लिंगोक्त देवताओंके लिये स्वाहा है यह कहकर आहुतिका प्रदान करै. वाणी मन चक्षु श्रोत्र जिह्वा नासिका श्रोत्र बुद्धि आकूति संकल्प मेरे पवित्र हों मैं ज्योतिरूप रजोगुण पापहीन हूं स्वाहा ज्यो० । त्वक्चर्ममांस रुधिर मेद मज्जा स्नायु अस्थि मेरी शुद्ध हों ज्यो० स्वा० । शिर पाणि पाद पार्श्व पृष्ठ ऊरु उदर जंघ शिश्न उपस्थ पायु मेरी शुद्ध हों ज्योति० । उत्तिष्ठ पुरुष हरित पिंगल लोहिताक्ष दे और ददापयिता मेरी शुद्ध हों ज्योतिरूप० पृथिवी जल वायु अग्नि आकाश मेरे पवित्र हों मैं ज्योतिरूप० शब्द स्पर्श रूप रस गंध मेरे शुद्ध हों ज्योति० । मन वाणी काय कर्म मेरे शुद्ध हों ज्यो० । अव्यक्त भावोंसे मेरे अहंकारोंसे ज्योतिरूप मेरा आत्मा शुद्ध हो क्षुधे स्वाहा० क्षुत्पिपासाय स्वाहा०। ऋग्विधानाय स्वाहा० कषोत्काय स्वाहा०

स्वाहा । कपोत्काय स्वाहा । क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीनाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयआत्मा मे शुध्यताम् ॥ ज्योति० ॥ ततः स्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्त्वा समासिञ्चत्वित्युपतिष्ठेत् ॥ अत्र केचिदनग्नेः सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः ॥ ततो याते अग्ने यज्ञिया तनूरिति तिसृभिरेकैकं जिघ्रन्नात्मन्यग्नीन् समारोप्य गुरवे सर्वस्वं दत्त्वा 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इत्युपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादावुपसंगृह्याधीहि भगवो ब्रह्मेति वदेत् ॥ ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा शङ्खं द्वादशप्रणवैरभिमन्त्र्य तेन शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जप्त्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीति च जप्त्वोदङ्मुखः प्रणवार्थमनुसंदधद्दक्षिणे कर्णे प्रणवमुपदिश्य, तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य, अयमात्मा ब्रह्म तत्त्वमसि प्रज्ञानं ब्रह्मेत्याद्युपदिशेत् ॥ तदर्थं च वदेत् ॥ ततो नाम दद्यात् ॥ ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो हरिं स्मरन्नूर्ध्वबाहुरित्तिष्ठन् देवान्साक्षिणः

क्षुत्पिपासा मलं ज्येष्ठामलक्ष्मीनाशयाम्यहं अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान् निर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा, अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय मेरा आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योतिरूप रजोगुण पापरहित हूँ स्वाहा० ज्यो० फिर स्विष्टकृत आदि होम संपादन करके ब्रह्माको सुवर्ण घृतपात्र धेनु देकर और जल सींचकर स्तुति करै यहां कोई अनग्निकी पूर्णाहुती और सावित्रिका प्रवेश वर्णन करते हैं, फिर याते अग्ने यज्ञियातनूः इन तीन ऋचाओंसे एक २ अंगको सूँघकर आत्मामें अग्निका आरोपण कर, गुरुको सर्वस्व प्रदान कर और जिसने प्रथम ब्रह्माको रचकर उसीको वेद प्रदान किया है अपनी बुद्धिके प्रकाश करनेवाले उस नारायणदेवकी मैं मुमुक्षु शरण हूं इस मन्त्रसे स्तुति करके और दक्षिण घुटएको नवाकर गरुके चरण पकडकर कहै कि हे भगवन् ! ब्रह्मका ध्यान करताहूँ फिर गुरुको ब्रह्मरूप और आत्माको ब्रह्मरूप ध्यान करके द्वादश ओंकारोंसे जल भरे शंखको अभिमन्त्रण करके उस शंखके जलसे शिष्यको सिञ्चन कर और शन्नो मित्र० इस शांतिको पढकर, उसके शिरपर हाथ धरकर और पुरुषसूक्तको जपकर तेरा हृदय मेरेमें हो, यह जपकर उत्तर मुख किये ओंकारके अर्थको स्मरण करताहुआ आचार्य शिष्यके दहिने कानमें ओंकारका उपदेश करके, ओंकारका अर्थ और पंचीकरणका बोध कराय यह उपदेश करै कि, यह आत्मा ब्रह्म है और वही प्रज्ञान ब्रह्मरूप तू है। (अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म) और इस मंत्रके अर्थको भी उच्चारण करै. फिर गरु शिष्यका नामस्मरण करै, फिर गुरुके उपदेशवाला शिष्य नारायणका स्मरण करता हुआ ऊपरको

---

१ क्षुधा पिपासा मल बडी अलक्ष्मी अभूति असमृद्धि यह सब दूर होकर मैं पापरहित हूं ।

कृत्वा ॐभूर्भुवःस्वः संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैस्त्रिरुच्चैश्चोक्त्वा, जलसमीपं गत्वा, स्नात्वा अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति त्रिरञ्जलीन् क्षिप्त्वा, युवासुवासा इति काषायं कौपीनं वासश्च परिधाय, सखा मे गोपायेति मुख्यवैणवं पालाशं बैल्वमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात् ॥ अत्र पुत्रकामो गृहस्थः शङ्खेन पुरुषसूक्तेन दण्डमभिषिच्य दद्यादित्याचारः ॥ ततः शिखामुत्पाट्य ॐभूः स्वाहेत्यग्नौ जले वा हुत्वा, तथैवोपवीतं हुत्वा येन देवाः पवित्रेणेति जले पवित्रं यदस्य पार इति शिक्यं सावित्र्या कमण्डलुं सप्तव्याहृतिभिर्भोजनपात्रमिदं विष्णुरित्यासनं वृसीं वा गृहीत्वा ॥ ॐभूस्तर्पयामीति व्यस्तसमस्ताभिर्महर्नम इति तर्पयित्वा ॐभूःस्वधोंभुवःस्वधोंभूर्भुवःस्वर्महर्नमःस्वधेतिपितॄंस्तर्पयित्वा, उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसःशुचिषन्नमोमित्रस्येति स्नात्वा, सुरभिमतीभिरापोहिष्ठेतिहिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिश्च मार्जयित्वा, अष्टोत्तरशतवारमघमर्षणं प्राणायामांश्च कृत्वा, ॐभूर्भुवःसुवरिति

भुजा किये देवताओंको साक्षी करके ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया (मैंने संन्यास ग्रहण-कर लिया) इस मंत्रको तीन वार नीचे और तीन वार ऊंचे स्वरसे जपकर और जलके निकट जांय और स्नान करके, अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा० इस मंत्रसे तीन अंजलि डालकर, युवा सुवासाः० इस मंत्रसे गेरूसे रंगी कौपीन और वस्त्रको धारण करके सखा मे गोपाय इस मन्त्रसे वांसका मुख्य दंड वा ढाक बेल गूलरका दंड ग्रहण करे ॥ यहां जो गृहस्थी पुत्रकी इच्छा करै वह पुरुषसूक्त पढेहुए शंखके जलसे दंडको सिञ्चन-कर संन्यासीको दें यह आचारकी व्यवस्था है. फिर शिखाको उखाडकर ॐभूः स्वाहा० इस मन्त्रसे अग्नि वा जलमें हवन करके इसी प्रकार यज्ञोपवीतको हवन कर येन देवा० इस मन्त्रसे जल पवित्रको, यदस्य पारे० इस मन्त्रसे शिक्यको, गायत्रीसे कमण्डलुको सात व्याहृतियोंसे भोजनपात्रको होम देना चाहिये. फिर इदंविष्णु० इस मन्त्रसे आसन वा वृसी (व्रतियोंके आसन) को ग्रहण करकै ओंभूस्तर्पयामि० इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे महर्नमः इस मन्त्रसे तर्पण करके कि, ॐभूः स्वधोम् भुवः स्वधोम् स्वः स्वधोम् भूर्भुवःस्वर्महर्नमः स्वधा । इन मंत्रोंसे पितरोंका तर्पण करकै, उदुत्यं० चित्रं देवानां० तच्चक्षु० हंसःशुचिष० नमो मित्र० इन मन्त्रोंसे स्नान करकै सुगंधित और सुवर्णके तुल्य वर्ण जलोंसे आपोहिष्ठा०, और हिरण्यवर्णा पावमानी० और व्याहृतियोंसे मार्जन करनेके उपरान्त अष्टोत्तरशत अघमर्षण और प्राणायाम करके ॐ भूर्भुवः स्वः यह पढकर, नमस्सवित्रे० इस

---

१ उदुत्यंजातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशेविश्वायसूर्यम् ॥ य० ३३ । ३१ ॥ २ चित्रं देवानामुगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः, । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चस्वाहा ॥ य० ७ । ४२ ॥ ३ हंसःशुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जागोजा ऋतजाऽअद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

च पठित्वा, नमःसवित्र इति सूर्यं चोपस्थाय, पुनः स्नात्वा जंघे क्षालयित्वा, ओमितिब्रह्मोमितीदं सर्वमोमितिब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष वेदो य एष तपति वेद्यमेवैतद्य एष वेदो यदवनमस्तीति जपित्वा, अष्टसहस्रं गायत्रीं जपेदिति ॥ अथ यतिधर्माः । प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पते इति जपित्वा दण्डादीनि मृदं च निधाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्य पर्वद्वादशीवर्ज्यं प्रणवेन दन्तधावनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जंघे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा मार्जनान्तं कृत्वा केशवादिनमोन्तनामभिस्तर्पयित्वा, ॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् ॥ ॐभूःस्वाहेति स्वाहाशब्दान्तैः स्वधाशब्दान्तैश्चैभिरेव पुनस्तर्पयेदिति केचित् ॥ तत आचम्याञ्जलिना प्रणवेन व्याहृतिभिरुद्धृत्य गायत्र्या त्रिःक्षिप्त्वा गायत्रीं जपेत् ॥ उदिते सूर्ये प्रणवेन व्याहृतिभिर्वार्घ्यं त्रिर्दत्त्वा मित्रस्य चर्षणीत्याद्यैः पूर्वोक्तसौरीभिरिदंविष्णुस्त्रिर्देवो ब्रह्मजज्ञानमिति चोपस्थाय, सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिणमावर्तते ॥ ततो नत्वा, आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयादिति त्रिर्जपेत् ॥ एवं त्रिकालं विष्णुपूजां ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात् ॥ अथ

मंत्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके फिर स्नान कर और जंघाओंको धोकर कहे कि, संपूर्ण जगत् ब्रह्म और ओंकाररूप है, यह फिर ज्योति यह वेद जो यह तपता है यह सूर्य, यह ज्ञानके योग्य, यह रक्षण सब ब्रह्मरूप हैं यह ज्योतिरूप हैं इस प्रकार जपकर आठ सहस्र गायत्रीका जप करै ॥ अब संन्यासीके धर्मोंको वर्णन करते हैं—प्रातःसमय उठकर ब्रह्मणस्पते० इस मंत्रको जपकर दंड आदि और मंत्र जपकर, मूत्र और पुरीषमें गृहस्थसे चारगुणा शौचकर और आचमन करके पर्व और द्वादशीको त्यागकर ओंकारसे दन्तधावन करके ओंकार पढकरही मट्टीसे कटिका बाहिर्भाग धोकर जल तर्पण छोडकर फिर जंघाओंको धोकर वस्त्र आदि ग्रहण करकै मार्जन पर्यन्त कर्मको करकै केशवाय नमः इत्यादि नामोंसे तर्पण करके ॐभूस्तर्पयामि० इत्यादि और समस्त पूर्ण व्याहृतियोंसे महर्जनस्तर्पयामि कहकर तर्पण करै. कोई तो यहां यह लिखते हैं कि, ॐभूः स्वाहा । ॐभूः स्वधा० इस प्रकार स्वाहा वा स्वधा शब्दको उच्चारणकर फिर तर्पण करै. फिर आचमन करके अंजलिमें ॐकार पढकर जल लेकर व्याहृतियोंसे तीनवार छोडकर गायत्रीका जप करै. सूर्योदयपर ॐकार वा व्याहृतियोंसे तीनवार अर्घ लेकर, मित्रस्यचर्षणी० इत्यादि पूर्वोक्त सूर्यकी ऋचा इदंविष्णुस्त्रिर्देवो ब्रह्मज्ञानं इस मंत्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके सब भूतोंको नमस्कार है यह कहकर प्रदक्षिणा करै, फिर नमस्कार करके "ॐआदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्" इसको तीनवार जपै, इस प्रकार त्रिकाल विष्णुपूजा और ब्रह्मयज्ञ करै

भिक्षानिर्णयः । "विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।] कालेऽपराह्णे भूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत्" इत्युक्तकाले ॥ उद्वयमिति चतसृभिरादित्यमुपस्थाय, तेनैक्यं ध्यात्वा ॥ आकृष्णेनेति प्रदक्षिणं कृत्वा "येते पन्थानः" इति जप्त्वा 'योसौ विष्ण्वाख्य आदित्ये पुरुषोन्तर्हृदि स्थितः । सोहं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् ॥ त्रिदण्डं दक्षिणे त्वङ्गे ततः संधाय बाहुना ॥ पात्रं वामकरे क्षिप्त्वा श्लेषयेद्दक्षिणेन तु' इति बौधायनोक्तदिशा त्रीन्पंच सप्त वा गृहान् गत्वा भवत्पूर्वां भिक्षां याचित्वा, पूर्णमसि पूर्णं मे भूया इत्यागत्य शुचिरन्नं प्रोक्ष्य, ॐ भूःस्वधा नमः इत्यादिव्यंस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्यादिदेवेभ्यो भूतेभ्यश्च भूमौ क्षिप्त्वा भुक्त्वा प्रणवेन' षोडशप्राणायामान् कुर्यादिति संक्षेपः ॥ गौतमव्याख्यायां भृगुः—"यतिहस्ते जलं दत्त्वा भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम् ॥" अत्र सर्वत्र मूलं माधवापर्कमदनरत्नस्मृत्यर्थसारादौ ज्ञेयम् ॥ कण्वः—'एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । वर्षाभ्योन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ॥' जाबालश्रुतौ—'शून्यागारे देवगृहतृणकुटीवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्निहोत्रगृहनदीपुलिनगिरिकुहरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतनः' इति ॥ मात्स्ये—' अष्टौ मासान्विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् । एकत्र चतुरो

अब संन्यासीकी भिक्षाको लिखते हैं जब ग्राममें धूम और मूशलका शब्द न हो और अंगार न हो और सब प्राणी भोजन करचुकेहों उस दुपहरसे पीछेके समयमें संन्यासी भिक्षाके निमित्त नित्य पर्यटन करै. इसी समयमें उद्वयमिति० इस मंत्रसे सूर्यकी प्रार्थना करके और सूर्यके संग एकताका ध्यानकरके आकृष्णेनरजसा० इस मंत्रसे प्रदक्षिण करके, येतेपंथानः० इस मन्त्रको पढकर कि, जो यह विष्णु नामक आदित्य पुरुष अन्तः हृदयमें स्थित है सो नारायणदेव में हूँ इस प्रकार ध्यान और प्राणायाम करके फिर त्रिदंड दक्षिण अंगपर भुजासे थामकर पात्रको बांये हाथपर रख दक्षिणहाथसे स्पर्श करै. बौधायनके लिखे उक्त प्रकारसे तीन पांच वा सात घरोंसे भवत्पूर्वक मौन हो भिक्षा मांगकर फिर आनकर पूर्णमसिपूर्णमेभूयाः इस मन्त्रसे भिक्षाको जलसे छिडककर ॐभूः स्वधा नमः इत्यादि व्यस्त समस्तव्या[illegible]ते पढकर सूर्यादिदेवता और भूतोंके निमित्त भूमिमें डालकर भोजन करै प्रणवसे सोलह प्राणायाम करै यह संक्षेपसे कहा है. गौतमव्याख्यामें भृगुका कथन है कि, यदि कोई संन्यासीके हाथमें जल दे फिर भिक्षा दे फिर जल दे तो वह भिक्षा पर्वतके तुल्य और वह जल सागरके तुल्य होते हैं ॥ इन सब वचनोंका मूल माधव अपरार्क मदनरत्न स्मृत्यर्थसार आदिमें लिखा है. कण्वने कहा है कि, ग्राममें एकरात, नगरमें पांचरात्र, वर्षा- ऋतुको त्यागकर वसे और वर्षाके चारों महीनोंमें एकत्रही बसे. जाबालश्रुतिमें लिखा है कि, शून्य घर वा देवमंदिरमें और तृणकी कुटी बामी, वृक्षमूल, कुलालका घर शाला अग्निहोत्रीका घर, नदीका तीर, पर्वतकी गुफा झरने स्थंडिल इनमें कहींभी स्थान न बनावे. मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, वशीभूत मनवाले संन्यासियोंको आठ महीनेतक विचरना चाहिये और वर्षाके चारमहीनोंमें

मासान् वार्षिकान्निवसेत्पुनः ॥ अविमुक्तप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥" अत्रिः- "भिक्षाटनं जपं स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ॥ मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च । दिवास्वापं च यानं च यतीनां पतनानि षट् ॥ आसनं पात्रलोभश्च संचयः शिष्यसंग्रहः । दिवास्वापो वृथाजल्पो यतेर्बन्धकराणि षट् ॥" दक्षः-नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन । यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च ॥" मदनरत्ने अत्रिः-"पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात् । वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा ॥" बृहस्पतिः-"न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः । नचाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ॥" एतद्वेदार्थभिन्नपरम् ॥ अत्रिः-"स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो बलिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः कर्मफलस्य च ॥" एते यतिधर्मा इत्यर्थः ॥ अन्येपि माधवमिताक्षरादौ ज्ञेयाः ॥ यतिधर्मसमुच्चये-'न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते । पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति साम्बरः ॥' अथ यतिसंस्कारः । "संन्यसेद्ब्रह्मचर्याद्वा संन्यसेच्च गृहादपि । वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः ॥ आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं च संन्यासमातुराणां विधी-

---

एकत्र रहना उचित है अविमुक्तमें जो प्रविष्ट हैं उनका विचरनाभी नहीं है ॥ अत्रिने भी कहा है कि, भिक्षाका अटन जप स्नान ध्यान शौच देवपूजन इन छः कर्मोंको सर्वथा नृपदंडके समान करै. शय्या शुक्ल वस्त्र स्त्रीकी कथा चपलता दिनमें शयन मुण्डन इन छः कार्योंको करनेसे संन्यासी पतित होते हैं. आसन, पात्रका लोभ, धनका संचय और शिष्योंका संग्रह, दिनमें शयन, वृथालाप, ये छः यतिके बन्धक हैं दक्षका कथन है कि, संन्यासी न पढे न बोले न कदाचित सुने संन्यासियोंके पात्र मिट्टी बांस काष्ठ तूंबीके होते हैं. मदनरत्नमें अत्रिने कहा है कि, जो अन्न पितर और देवताओंके निमित्त बनायाहो उसको और परकी बाधा करनेवाली भिक्षाको संन्यासी त्यागदे ॥ बृहस्पतिने कहा है कि, संन्यासी नित्यही तीर्थवासी न हो और न सदा उपवास करै और न बहुत अध्ययनमें तत्पर हो और न शास्त्रके व्याख्यानमें तत्पर हो यह भी वेदके अर्थको त्यागकर है वेदार्थ कहनेका निषेध नहीं. अत्रिने कहा है कि, स्नान देवपूजन ध्यान प्राणायाम बलि स्तुति भिक्षाटन जप संध्या कर्मफलका त्याग ये संन्यासीके धर्म हैं. और भी धर्म माधव और मिताक्षरा आदिमें लिखे हैं. धर्मसमुच्चयमें लिखा है कि, पुत्रआदिके मरण सुननेपर संन्यासी स्नान न करै, पितामाताके मरण सुननेपर संन्यासी स्नान करै, अर्थात् पितामाताके मरण सुननेपर तो सचैलस्नान करना चाहिये तब शुद्ध होता है ॥ अब संन्यासीके मरणसंस्कारको लिखतेहैं ब्रह्मचर्यसे वा गृहस्थसे संन्यास ग्रहण करै अथवा विद्वान् वनसे वा आतुर दुःखसे संन्यास ले आतुरोंके संन्यासमें विधि और

यते ॥ उत्पन्ने संकटे घोरे चौरव्याघ्रादिगोचरे । भयभीतस्य संन्यासमंगिरा मनुरब्रवीत् ॥ यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेद्द्विज ।' इति जाबालश्रुतिः । "आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् ॥ संन्यस्तोहमिति ब्रूयात्सवनेषु त्रिषु क्रमात् । त्रिवारं च त्रिलोकात्मा शुभाशुभसुधाद्रवे ॥ यत्किंचिद्बाधकं कर्म कृतमज्ञानतो मया । प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्संत्यक्तवानहम् ॥ एवं सन्त्यज्य भूतेभ्यो दद्यादभयदक्षिणाम् ॥ पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः ॥ करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः ।" इत्यातुरस्य स्वशक्त्याऽवस्थानुरूपमंगलभूतप्रेषोच्चारणादियथाशास्त्रं मनसा वाचा वा कुर्वतस्तावतैव कृच्छ्रचांद्रायणनांदीश्राद्धनखकृंतनादीनि कृत्वा संन्यासपूर्तिरिति प्रतीयते ॥ अङ्गिराः—" षष्टिः कुलान्यतीतानि षष्टीनामाधिकानि च । कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ॥" विष्णुः—" एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते ॥ न सा शक्या गृहस्थेन आतुरोपि च संन्यसेत् । संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कंठगतैरपि । न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तुं शक्नोति मानवः ॥" मनुः—"यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवंति ब्रह्मवादिनः ॥" अथ सौत्यातुरस्य विलंबितस्य 'प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूजयेत्' इति ॥ अत्र मात्रत्वोपसंभवादंगकलापव्यापकत्वेनाप्युपपत्तौ कर्तुर्योगत्यागकलापव्यावृत्तस्यैकत्वा

क्रिया नहीं है आतुरोंका प्रेषमात्र उच्चारणसेही संन्यास होता है. जब घोर संकट प्राप्त हो चोर व्याघ्रादिका भय हो तथा संसारसे डरे हुएको मनु और अंगिराने संन्यास कहाहै. जो आतुर हो वह मन वा वचनसे संन्यास ले यह जाबालश्रुतिमें कहा है. आतुरोंको संन्यासविधि और क्रिया नहीं है वह प्रेषमात्र उच्चारण कर संन्यास करै तीनों सवनमें क्रमसे मैं संन्यासी हुआ इस प्रकार कहै, तीनवार त्रिलोकीका आत्मा शुभअशुभ सुधाद्रव जो कुछ बाधक कर्म मैंने अज्ञानसे किया है वा प्रमाद आलस्य दोषसे किया है वह मैंने सब त्याग किया ऐसा कह सब प्राणियोंको अभय दक्षिणा दे, चरणहाथसे विहार करते मन वचन कर्मसे प्राणीहिंसा कभी न करूंगा मुझसे सब निर्भय हों इस प्रकार आतुरका अपनी शक्तिके अनुसार मंगलरूप प्रेष उच्चारणादि यथाशास्त्र मनवचनसे करते हुए तवतक कृच्छ्रचान्द्रायण नान्दीश्राद्ध नखच्छेदन आदि करके संन्यासकी पूर्ति होती है ॥ अंगिराने कहा है साठकुल पिछले और साठकुल पीछले वह बुद्धिमान् उद्धार करता है जो संन्यस्त कहताहै । विष्णु कहते हैं कि, एकरात रहनेकी भी जो यतिकी गति है वह गृहस्थकी नहीं होसकती इससे आतुर होकर भी संन्यास ले. जो कंठगत प्राण होनेपर भी संन्यासी हुआ यह कहता है वह फल मनुष्योंको १०० यज्ञसे भी नहीं मिलता जो उसको प्राप्त होता है मनु कहतेहैं जो सब प्राणियोंको अभय देकर घरसे चलताहै उस ब्रह्मवादीको तेजोमय लोक प्राप्त होतेहैं और सौति आतुर विलम्बितका प्रेषमात्र उच्चारण कर संन्यास पूजित होता है । यहां मात्राके उपसंभव होनेसे अंगकलाप व्यापकके कारण, आपत्तिमें कर्ताके योगत्यागक-

नुपपत्तेः] कृच्छ्रनांदीश्राद्धविरजाहोमादिकर्तुमशक्तस्यातुरस्य विद्यमानाग्नेरिष्टदेवतायै पूर्णाहुतिं हुत्वा असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये, दारुमयानि पात्राणि प्रज्वाल्य मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य समाप्तिं च मरुत इत्युपस्थाय याते अग्ने इत्यनेन हस्तं प्रताप्य आत्मन्यग्निं समारोप्य. सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्त पंच केशान् विसृज्य वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा आतुरसंन्यासं कुर्यात् ॥ अथातुरसंन्यास-विधिः । अपां समीपे गत्वा तिथ्याः स्मरणपूर्वकं स्नानसंध्यावंदनादि कृत्वा देश-कालौ संकीर्त्य ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानंदप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये च परम-हंससंन्यासं करोमीति संकल्पयेत् । तत्र प्रधानानि । प्रेषोच्चारप्रणवोपदेशमहावाक्यानि ततः संन्यासोचितं क्षौरं कृत्वा पूर्ववत्सप्तपंचकेशान् विसृज्य स्नात्वाचम्य पात्रेण तोयमादाय उपस्पृश्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति । एष वोऽग्ने योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा । इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा । इति द्वितीया । ततो हुतशेषं आशुःशिशान इत्यनुवाकेनाभिमंत्र्य पुत्रैषणा-वित्तैषणा लोकैषणा मया त्यक्ता स्वाहेति प्रथमं पिबेत् । ॐ ॐ भूर्भुवः स्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहेति द्वितीयां पिबेत् । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति तृतीयां पिबेत् । ततोन्यत्तोयमंजलिपूर्णमादाय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत् । ॐभूःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐभुवःसावित्रीं प्रवेशामि ॐस्वःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐभूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रवेषयामि

लापन्याद्वृत्तिकी एकत्रमें अनुपपत्ति होनेसे कृच्छ्र नान्दीश्राद्ध विरजाहोम आदि करनेको अशक्य आतुरकी विद्यमान अग्निरूप इष्टदेवताके निमित्त पूर्णाहुतिसे हवन करके 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इससे आहवनीय काष्ठपात्रोंको प्रज्वलित कर मट्टीके पात्रोंको जलमें डालकर 'समाप्तिं च मरुतः' इस प्रकार उपस्थान करके 'याते अग्ने' इस मंत्रसे हाथको तपाकर आत्मामें अग्निको आरोपण कर सब प्रायश्चित्तपूर्वक सात पांच बालोंको विस-र्जन कर वपन कराय यथाविधि आतुर संन्यास करै ॥ अब आतुर संन्यासकी विधि लिखते हैं. जलके समीप जाय तिथि आदि स्मरणपूर्वक संध्यावंदनादि कर देशकालका संकीर्तन कर अपने सम्पूर्ण दोषकी निवृत्ति और परमानंद तथा परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके निमित्त परमहंस संन्यास करताहूं इस प्रकार संकल्प करै. इसमें प्रधान कहते हैं प्रेषका उच्चा-रण प्रणवका उपदेश और महावाक्य है फिर संन्यासमें उचित क्षौरकरके पूर्ववत् सात पांच बालोंको विसर्जन कर स्नान उपरान्त आचमन करकै पात्रमें जल लाय स्पर्श कर दक्षिणहाथसे जलमें हवन करै, एषवोऽग्नेयोनिर्यः प्राणंगच्छ स्वाहा यह पहली आहुति है. फिर आपो वै सर्वा-देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा, यह दूसरी आहुति है. फिर हुतशेषको 'आशुः शिशान' इस मंत्रसे अभिमंत्रित करकै पुत्र धन लोककी इच्छा मैंने त्यागी स्वाहा ऐसा कह-कर प्रथमको पान करै. ॐ ॐ भूर्भुवःस्वरोम् मया संन्यस्तं स्वाहा ऐसा कहकर दूसरी पियै. मुझसे सब प्राणियोंकी अभय स्वाहा ऐसा कह तीसरी अंजली पियै. फिर. और जलकी पूर्ण अंजली लेकर पूर्वादि दिशामें प्रत्येक डालै ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भुवः सावित्रीं

इति सावित्रीप्रवेशं कृत्वा अथोर्ध्वबाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा ॐ भूःसंन्यस्तं मया ॐभुवः संन्यस्तं मया ॐस्वः संन्यस्तं मया ॐभूर्भुवःस्वःसंन्यस्तं मयेति प्रेषोच्चारं ब्रूयात् ॥ एवं मंद्रमध्योच्चैस्त्रिरुक्त्वा तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाचम्य यज्ञोपवीतमुद्धृत्यांजलिना गृहीत्वा भूःस्वाहेति अप्सु हुत्वा दिगंबरो भूत्वा पुत्रैषणावित्तैषणालोकेषणातो मुक्तोहमिति ब्रूयात्। अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् । मृते च पुरुषसूक्तेन विष्णुबुद्ध्याभिषिच्याति संस्कारमेव कुर्यात् । एवं विरक्तस्यातुरस्य स्वस्थस्य संन्यासविहितांगेषु यन्मन्त्रानुष्ठाने शक्तिर्यथाविधि तदनुष्ठानपूर्वकं प्रधानं प्रेषोच्चारणमात्रं मत्वा संन्यासयुक्तिरिति श्रवणात्॥ तदुत्तरकालमेव मृतस्योपदेशविकलस्यापि खननसंस्कारमेव कुर्यात् । जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च नित्यक्रियां विधिवद्विसृज्य दण्डकाषायवस्त्रादीनि चादाय यतिधर्मानेवानुतिष्ठेत् । सद्गुरुमन्विष्य तदुपदेशं गृहीत्वा स्वधर्मनिष्ठो भवेत् । अयमर्थो विद्वत्संमतः प्रयोक्तव्यः । इत्यातुरसंन्यासः ॥ स्मृत्यर्थसारे– "सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च । न तस्य दहनं कार्यमाशौचं नोदकक्रिया॥" तथा–" कुटीचकं तु प्रदहेत्पूरयेत्तु बहूदकम् । हंसो जले तु निःक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत् ॥" पालाशमूले नदीतीरेऽन्यत्र वा गन्धपुष्पालंकृतं शवं वाद्यघोषेण नीत्वा

प्रवेशयामि ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ भूर्भुवःस्वः सावित्रीं प्रवेशयामि इस प्रकार सावित्री प्रवेश करके ऊर्ध्वबाहु सूर्यके सन्मुख होकर कहै ॐ भूः मैंने संन्यास किया ॐभुवः मैंने संन्यास किया ॐ स्वः मैंने संन्यास किया ॐ भूर्भुवः स्वः मैंने संन्यास किया। फिर प्रेषका उच्चारण करै. इस प्रकार मन्द मध्य और ऊंचे स्वरसे तीनवार कहकर मौन हो शिखा छेदनकर स्नानके उपरांत आचमन करके यज्ञोपवीत उतार अंजलीमें रख भूःस्वाहा कहकर जलमें आहुति दे दिगम्बर हो पुत्र वित्त लोककी इच्छासे मैं मुक्त हुआ ऐसा कहै. इसके उपरांत पुत्रके घर न जाय मरनेमें पुरुष सूक्तसे विष्णुबुद्धिपूर्वक अभिषेक कर संस्कार करै, इस प्रकार विरक्त आतुर स्वस्थका संन्यासविहित अङ्गोंमें जिस मन्त्रके अनुष्ठानमें शक्ति हो यथाविधि उसका अनुष्ठानपूर्वक प्रधान प्रेषोच्चारणमात्र मानकर संन्यास युक्ति ऐसा श्रवण होनेसे है, इसके उत्तर कालमेंही उपदेशसे विकलकी मृत्यु होजाय तो खनन संस्कारही करै और जीता रहै तो शिखा यज्ञोपवीत नित्य क्रियाको विधिपूर्वक विसर्जन करै अथवा दंड और काषाय वस्त्रोंको लेकर यति धर्मोंका अनुष्ठान करै. सद्गुरुको खोजकर उनसे उपदेश लेकर स्वधर्मका अनुष्ठान करै यह अर्थ विद्वानोंका सम्मत प्रयोग करना ॥ इत्यातुरसंन्यासः ॥ स्मृत्यर्थसारमें कहाहै कि, सब संगोंसे निवृत्त होकर ध्यान योगमें तत्पर हुए संन्यासी दाह अशौच जलदान न करै. कहा भी है कि, कुटीचकको दाह, बहूदकको मृत्तिकामें पूर्ण करै. हंसको जलमें विसर्जन करै और परमहंसको भलीभांति मृत्तिकामें पूर्ण करै. ढाककी जडमें नदीके किनारे वा अन्यत्र गंध पुष्पादिसे अलंकार कर वाद्यशब्दसे मृतकको लेजाकर व्याहृति पढकर दंडमात्र

दण्डमात्रं व्याहृतिभिः खनित्वा सप्तव्याहृतिभिस्त्रिः प्रोक्ष्य दर्भानास्तीर्य नवघटे पञ्च रत्नोदकं क्षिप्त्वा नारायणः परंब्रह्मेत्यभिमन्त्र्य, तेनैव संस्नाप्याष्टाक्षरेण वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपादीन् दत्त्वा, विष्णो हव्यं रक्षस्वेति शवं गर्ते निधाय 'इदं विष्णुः' इति दक्षिणहस्ते दण्डं ' यस्य पारे' इति सव्ये शिक्यं 'येन देवाः पवित्रेण' इति मुखे जलपवित्रं सावित्र्योदरे पात्रं 'भूमिः श्वभ्रे' इति गुह्ये कमण्डलुं निधाय 'चित्तिः स्रुक्' इति दशहोत्राभिमन्त्रयेदिति विश्वादर्शटीकायां स्मृत्यर्थसारे च ॥ बृहच्छौनकस्तु– "यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा वटंततः । प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवेन च । गर्ते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ इति मन्त्रेण दंडं तु दद्याद्दक्षिणहस्तके । मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शंखेन भेदयेत् । गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत् । सृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गर्तं प्रपूरयेत्" इति ॥ कुटीचकस्य तु दाहः कार्यः ॥ यथा सर्वं प्राग्वत् कृत्वाऽग्निं प्रज्वाल्य साग्नेर्दक्षिणकरे उपावरोहेत्यवरोह्य निर्मथ्य वा गर्ते चितिं कृत्वाग्निनाग्निः समिध्यते इत्यग्निं दत्त्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत् ॥ ततोऽष्टशतं प्रणवं नारायणः परंब्रह्मेति जप्त्वा सशिरः प्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तदस्थीनि तीर्थे क्षिप्त्वा स्नानाच्छुचिः ॥ नास्यान्यदौर्ध्वदैहिकम् ॥ 'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते' इति

गर्त खनकर फिर सात व्याहृतियोंसे तीनवार प्रोक्षण कर कुशा बिछाय नये घडेमें पञ्चरत्न और जल रखकर नारायणपरब्रह्म इस प्रकार अभिमंत्रित उसी मन्त्रसे स्नान कराय वस्त्र गंध पुष्प धूपदीपादि देकर 'विष्णो हव्यंरक्षस्व' इस प्रकार शवको गर्तमें रखकर 'इदंविष्णुः' इस मंत्रसे दक्षिणहाथसे दंड 'यज्ञस्य पारे' इससे बांयें हाथमें शिक्य और 'येन देवाः पवित्रेण' इस मन्त्रसे मुखमें जल, पवित्र गायत्रीसे भिक्षापात्र उदरमें, 'भूमिः श्वभ्रे' इससे गुह्यमें कमण्डलुको रखकर चित्तिस्रुक् इससे दश होता आदिका आमन्त्रण करै. यह विश्वादर्शटीका और स्मृतिसार ग्रंथमें कहा है बृहत्शौनक तो यह कहते हैं, पुरुषसूक्तसे यतिको स्नान कराय घटको भर ॐकारसे आठवार सब ओरसे प्रोक्षण करै. 'विष्णोहव्यंरक्षस्व' इस यजुर्वेदके मन्त्र और ॐकारसे गर्तमें प्रेतको रखकर 'इदंविष्णुर्विचक्रमे' इस मंत्रसे दक्षिण हाथमें दंडको दे, और भूर्भुवः स्वः ऐसा कहकर शिरको शंखसे भेदन करै. पुरुषसूक्त पढकर गर्तको लवणसे पूर्ण करै, और शृगालश्वानकी रक्षाके निमित्त गर्तको भली प्रकार मृत्तिकासे पूर्ण करै. कुटीचकका तो दाह करना चाहिये और सब पूर्वके समान करके अग्निको प्रज्वलित कर साग्निके दक्षिण हाथमें उपावरोहअवरोह क्रमसे अग्निको मथकर गर्त वा चिता निर्माणकर 'अग्निनाग्निःसमिध्यते' इस मंत्रसे अग्नि देकर गायत्री वा ओंकारसे दग्ध करै. फिर १०८ ॐकारनारायणपरब्रह्म इसको पढकर शिरसहित प्रणवयुक्त व्याहृति और गायत्रीसे उसका भस्म और अस्थि तीर्थमें विसर्जन कर स्नानसे पवित्र होता है. अग्निमें भस्मही इनका और्ध्वदैहिक है, और क्रिया नहीं कारण कि, उशनाने कहा है कि, त्रिदंडके ग्रहणसेही प्रेतत्व नहीं होता. ग्यारहवें दिन पार्वण

उशनसः स्मृतेः ॥ 'एकादशेऽह्नि पार्वणं तदपि त्रिदण्डिनः ॥ हंसपरमहंसादीनां पार्वणादि किमपि न कार्यम्' इति शूलपाणिः ॥ श्राद्धचिंतामणौ दत्तात्रेयः—' एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ॥ न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥' प्रेतक्रिययैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्तद्ग्रहणमाब्दिकपरम् ॥ तेन तत्पार्वणमेवं त्रिदण्डिनां द्वादशे नारायणबलिः ॥ तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्तः ॥ इत्यलं बहुना ॥ श्लोकाः । एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् । तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु ॥ १ ॥ मया सद्वासद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना । तदेवं यत्किंचिद्गदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगणनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता । योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुनास्तु स कृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥ श्रीभट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसूरिसूनोः ॥ श्रीरामकृष्णस्य सुतः कृतीमं व्यधान्निबन्धं कमलाकराख्यः ॥ ४ ॥ नानानिर्णयवत्त्वान्निर्णयसिन्धुः प्रोच्यतां विबुधाः । निर्णयसरोजवत्त्वान्निर्णयकमलाकरोऽप्यस्तु ॥ ५ ॥ वसुऋतुऋतुभूमिते १६६८ गतेऽब्दे नरपतिविक्रमतोऽथ याति रौद्रे ।

करै यह भी त्रिदंडीके निमित्त है हंसपरमहंस आदिकाभी पार्वणादिके सिवाय और कुछ कृत्य करना नहीं चाहिये, यह शूलपाणिका कथन है ॥ श्राद्धचिन्तामणिमें दत्तात्रेय कहते हैं. एकोद्दिष्ट जलपिंडदान अशौच प्रेतका सत्कार (संस्कार) यह न करै. ब्रह्मरूप संन्यासीके निमित्त केवल वार्षिकश्राद्ध करै और कुछ नहीं. प्रेतक्रियासेही एकोद्दिष्टका निषेध सिद्ध था, फिर उसका ग्रहण आब्दिकके निमित्त है। इससे त्रिदण्डियोंका पार्वण और बारहवेंमें नारायणबलि जानना, उसकी विशेष विधि दूसरे स्थानमें पहले कहदी है, अब बहुत विस्तारसे विराम करते हैं इस प्रकार वचन नीति और धर्मतत्त्वको भलीभांती विचारकर मैंने यह कठिन ग्रंथ निरूपण किया है, दोषदृष्टिको छोडकर विद्वानोंको यह विचारने योग्य है, इस कारण मेरा उनको वारंवार प्रणाम है ॥ १ ॥ मुझ थोडी बुद्धिवालेने इस ग्रंथमें जो कुछ सत्असत् कहा है मोटी बुद्धिवाला पुरुष इसके जाननेमें क्या समर्थ होसकता है नहीं होसकता, और जो कुछ मैंने यह कथन किया है वह सब विख्यातमहिमावाले पुरुष मेरे पिताजीके चरणकमलका प्रताप है ॥ २ ॥ जो अगाधसागररूपभट्टोंके रचे तंत्रशास्त्रका कर्णधार. [पार लेजानेवाला] है और जो दूसरे सम्पूर्णशास्त्रोंके मर्मका ज्ञाता है वह पुण्यरूप पण्डित रामकृष्ण इस निर्णयसिन्धुमें किये मेरे परिश्रमसे प्रसन्न हों ॥ ३ ॥ श्रीयुतभट्टरामेश्वरकविके पुत्र श्रीनारायणभट्ट उनके पुत्र रामकृष्ण उनके पुण्यशील पुत्र कमलाकरने यह निबन्ध निर्माण किया है ॥ ४ ॥ हे पण्डितजनो ! इसमें अनेकप्रकारके निर्णय होनेसे यह निर्णयसिन्धु कहाजाताहै और इसमें निर्णयरूपी कमल खिले होनेसे इसे निर्णयकमलाकरभी कहेंगे ॥ ५ ॥ विक्रमादित्यमहाराजके सम्वत् १६६८ रौद्र संवत्सर माघ कृष्ण चतुर्दशीको यह ग्रंथ पूर्ण हुआ और रघुना-

क्षपरि शिवतिथौ संगमितोयं रघुपतिपादसरोरुहेऽर्पितश्च ॥ ६ ॥ जगति सकलविद्यासिन्धुमुष्टिंधयानां परभणितिपरीक्षा युज्यते सज्जनानाम् । तदिह मम निबन्धे दूषणं भूषणं वा यदि भवति विदग्धैस्तद्धचवश्यं विमृश्यम् ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणश्रीमद्रामेश्वरभट्टसूरिसूनुनारायणभट्टसुतविद्वन्मुकुटहीरांकुरश्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ३ ॥

यज्ञीके चरणोंमें अर्पण किया ॥ ६ ॥ संसारमें सब विद्यारूपी सागरको मुट्ठीमें रखनेवाले सज्जनही दूसरेकी कृतिकी परीक्षामें युक्त कियेजाते हैं सो इस मेरे निबन्धमें जो दूषण वा भूषण है सो पण्डितोंको वह अवश्य देखना चाहिये ॥

इति श्रीत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणनिखिलशास्त्रनिष्णातश्रीमिश्रशिवदयालसूरिसूनुश्रीसुखानन्दमिश्रसुतपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

इति निर्णयसिन्धोः भाषाटीका समाप्ता ।

दोहा—शम्भु शिवा गणपति गिरा, विष्णुचरण शिर नाय । भाषा निर्णयसिन्धुकी, बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥ वर्णाश्रमके धर्म अरु, सकल प्रबन्धसहेतु । भाषाटीका कर कह्यो, निर्णयसागरसेतु ॥२॥ जहँतहँ कर टिप्पणी, अरु वेदोंके मंत्र । लिखे प्रयोजन देखकर, नानाविधिके तंत्र ॥ ३ ॥ सम्यक् विधि टीका कियो, निजमतिके अनुसार । तदपि होय जो भ्रम कहीं, लेहैं चतुर सुधार ॥ ४॥ यहिके अनुशीलन किये, शंका रहत न कोय । नित्य विचारै नेमसे, पूर्ण विचक्षण होय ॥ ५ ॥ सम्वत् रस शर अंक विधु, आश्विनसितशशिवार । पूर्णा तिथि लखि पंचमी, कीन्हों पूर्णविचार ॥ ६ ॥ जगत्विदित महिमाअधिक, सज्जनको सुखदान । वेङ्कटेश्वर यंत्रपति, खेमराज गुणवान ॥ ७ ॥ तिन्हें समर्पित यह कियो, भाषायुत शुभग्रंथ । पढहिं सुनहिं कर प्रेम जो, लहहिं सनातनपंथ ॥ ८॥ नारायण गोविन्दश्री, कृष्णचन्द्र सुखधाम । महावीरयुत रामको, लक्ष्मणसहित प्रणाम ॥९॥ सरित रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । तहाँ वसत हरिजपनिरत, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ १० ॥ रामराम जपिये सदा, अथवा राधेश्याम । अथवा शिवशंकर जपो, सिद्ध होहिं सबकाम ॥ ११ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण—मुंबई,

खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्—प्रेस,
मुंबई.